॥ श्रीः ॥

अन्वयांकसहिता

मनुस्मृतिः ।

तथा च

श्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिविरचितया मनुकृत-
भाषाविवृतिनाम्न्या भाषाटीकया सहिता ।

इयं च

श्रीकृष्णदासात्मजेन गंगाविष्णुना

स्वकीये "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

शके १८२१, संवत् १९५६.

कल्याण—मुंबई.

इसका सर्व प्रकाशन हक्क सन १८६७ के आक्ट
२५ के मूजब मालिकातीने रक्खा है.

॥ श्रीः ॥

अथ मनुस्मृतिस्थविषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
अथ प्रथमोऽध्यायः ।		
मनुसे मुनियोंने धर्म पूंछा.	१	१
टीकाकारका मंगल	२	१
टीकाकारका विनय	२	२
मनु उनसे बोले	३	४
जगत्की उत्पत्तिका करना.	३	५
पहले जलसृष्टि	४	८
ब्रह्माकी उत्पत्ति	४	९
नारायणशब्दका अर्थ	४	१०
ब्रह्मका स्वरूपकथन	४	११
स्वर्गभूमि आदिकी सृष्टि....	५	१३
महत् आदिके क्रमसे जगत्की उत्पत्ति	५	१४
देवगण आदिकी सृष्टि	७	२२
तीनों वेदोंकी सृष्टि	७	२३
काल आदिकी सृष्टि	७	२४
काम क्रोध आदिकी सृष्टि.	७	२५
धर्माधर्मविवेक	७	२६
सूक्ष्मस्थूलआदिकी उत्पत्ति.	८	२७
कर्मकी सापेक्ष सृष्टि	८	२८
ब्राह्मणादिक सृष्टि	८	३१
स्त्रीपुरुषकी सृष्टि	९	३२
मनुकी उत्पत्ति	९	३३
मरीचि आदिकी उत्पत्ति.	९	३४
यक्ष गंधर्व आदिकी उत्पत्ति.	९	३७
मेघ आदिकी सृष्टि	१०	३८
पशुपक्षी आदिकी सृष्टि.	१०	३९
कृमि कीट आदिकी उत्पत्ति.	१०	४०
जरायुज	११	४३
अंडज	११	४४
स्वेदज	११	४५
उद्भिज्ज	११	४६
वनस्पति और वृक्ष	११	४७
गुच्छ गुल्म आदि	११	४८
महाप्रलय	१३	५४
जीवका निकलना	१३	५५
दूसरी देहका ग्रहण करना.	१३	५६
इस शास्त्रके प्रचारका कहना.	१३	५८
मन्वन्तरका कहना ...	१४	६१
अहोरात्र आदिके प्रमाण कहना.	१४	६४
पितरोंके राति दिनका कहना.	१५	६६
देवताओंके दिनरातिका कहना.	१५	६७
चारों युगोंका प्रमाण	१५	६९
देवताओंके युगका प्रमाण.	१६	७१
ब्रह्माके दिनरातिका प्रमाण.	१६	७२
मनसे आकाशका प्रकट होना.	१६	७५
आकाशसे वायुका उत्पन्न होना.	१६	७६
वायुसे तेजका प्रकट होना.	१६	७५
तेजसे जल और जलसे पृथिवी.	१६	७८
मन्वन्तरका प्रमाण	१७	७९
सत्ययुगमें चारि पांव धर्म.	१७	८१
और युगोंमें धर्मके पादपादकी हानि	१७	८२
युगयुगमें आयुका प्रमाण.	१७	८३
युगयुगमें धर्मकी विलक्षणता.	१८	८५
ब्राह्मणका कर्म कहते हैं.	१८	८८
क्षत्रियका कर्म कहते हैं.	१८	८९
वैश्यका कर्म कहते हैं.	१८	९०
शूद्रका कर्म कहते हैं	१८	९१
ब्राह्मणका श्रेष्ठत्व	१९	९२
ब्राह्मणोंमें ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ.	१९	९७
यह शास्त्र ब्राह्मणको पढना चाहिये	२०	१०३

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
इस शास्त्रके पढनेका फल.	२०	१०४
आचार मुख्य धर्म है....	२१	१०८
ग्रंथके विषयोंकी अनुक्रमणिका.	२१	१११
अथ द्वितीयोऽध्यायः ।		
धर्मका सामान्य लक्षण.	२३	१
कामात्मताका निषेध	२३	२
व्रत आदि संकल्पसे उत्पन्न है.	२४	३
अकामकी कोई क्रिया नहीं होती.	२४	४
धर्मके प्रमाण कहते हैं....	२४	६
धर्मका वेद मूलपन कहते हैं.	२४	७
श्रुति स्मृतिकरि कहा हुआ धर्म करना चाहिये....	२५	९
श्रुति स्मृतिका परिचय....	२५	१०
नास्तिककी निंदा	२५	११
चार प्रकारसे धर्मका प्रमाण कहते हैं....	२५	१२
श्रुतिके स्मृतिके विरोधमें श्रुति बलवती	२५	१३
श्रुतिके द्वैविध्यमें दोनों प्रमाण.	२५	१४
श्रुतिके द्वैधमें दृष्टान्त कहते हैं.	२५	१५
दश कर्मोंकरि युक्तका इसमें अधिकार है	२५	१६
धर्म करनेके योग्य देशोंको कहते हैं....	२६	१७
ब्रह्मावर्त देशको सदाचार	२६	१८
कुरुक्षेत्र आदि ब्रह्मर्षि देशोंको कहते हैं....	२६	१९
उस देशके ब्राह्मणोंसे सदाचार सीखे	२६	२०
मध्य देश कहते हैं	२६	२१
आर्यावर्त्त कहते हैं	२६	२२
यज्ञ करने योग्य देश कहते हैं.	२७	२३
वर्णोंके धर्म आदि कहते हैं.	२७	२५
द्विजोंका वैदिकमंत्रोंसे गर्भाधान आदि करना चाहिये.	२७	२६
गर्भाधानादिकोंकी पापके क्षय कारणपन कहते हैं.	२७	२७
स्वाध्याय आदिको मोक्ष कारणपन कहते हैं....	२७	२८
जातकर्म कहते हैं	२७	२९
नामकरण कहते हैं	२८	३०
उपपदका नियम कहते हैं.	२८	३२
स्त्रियोंका नामकरण	२८	३३
निष्क्रमण और अन्नप्राशन.	२८	३४
चूडाकरणका समय	२८	३५
यज्ञोपवीतका काल	२९	३६
यज्ञोपवीतकालकी विधि.	२९	३७
व्रात्य कहते हैं	२९	३९
कृष्ण मृगचर्म आदिका धारण.	२९	४१
मौंजीआदिका धारण....	२९	४२
मौंजीके न मिलनेमें कुश आदिकी मेखला करनी चाहिये.	३०	४३
यज्ञोपवीत कहते हैं	३०	४४
दंड कहते हैं	३०	४५
भिक्षा कहते हैं	३०	४९
पहली भिक्षाका नियम.	३०	५०
पूर्वाभिमुख आदि काम्य भोजनका फल	३१	५२
भोजनके आदि और अंतमें आचमन	३१	५३
श्रद्धासे अन्नका भोजन करे.	३१	५४
अश्रद्धाके भोजनका निषेध.	३१	५५
भोजनमें नियम	३१	५६
अतिभोजनका निषेध	३२	५७
ब्राह्म आदि तीर्थसे आचमन पितृतीर्थसे निषेध	३२	५८
ब्राह्म आदि तीर्थ कहते हैं.	३२	५९
आचमनविधि	३२	६०
आचमनके जलका प्रमाण.	३२	६१

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
ऋतुपूर्ण आदि जलका नियम कहते हैं....	३२	६२
सव्य अपसव्य कहते हैं.	३३	६३
पहली मेखला आदिके नष्ट होनेपर दूसरी ग्रहण करनी चाहिये.	३३	६४
केशान्त नाम संस्कार....	३३	६५
स्त्रियोंका संस्कार मंत्ररहित.	३३	६६
स्त्रियोंकी विवाहविधि वैदिकमंत्रोंसे होनी चाहिये	३३	६७
उपनीतके कर्म कहते हैं.	३३	६९
वेद पढनेकी विधि कहते हैं.	३३	७०
गुरुके प्रणामकी विधि....	३४	७२
गुरुकी आज्ञासे पढना और बंद होना	३४	७३
अध्ययनकी आदि तथा अंतमें ओंकारका उच्चारण....	३४	७४
प्राणायाम कहते हैं	३४	७५
प्रणव आदिकी उत्पत्ति.	३४	७६
सावित्रीकी उत्पत्ति	३५	७७
सावित्रीके जपका फल....	३५	७८
सावित्रीके हजार जपका फल.	३५	७९
सावित्रीके जप करनेमें निंदा.	३५	८०
प्रणव व्याहृति तथा सावित्रीकी प्रशंसा	३५	८१
प्रणवकी प्रशंसा	३६	८४
मानसजपकी अधिकता.	३६	८५
इन्द्रियोंका संयम	३६	८८
ग्यारह इन्द्रियां....	३६	८९
इंद्रियोंके संयमसे सिद्धि होती है भोगसे नहीं	३७	९३
विषयोंकी उपेक्षा करनेवाला श्रेष्ठ.	३७	९४
इंद्रियोंके संयमका उपाय कहते हैं....	३७	९६
कामर्मे आसक्तको यज्ञादि फल देनेवाले नहीं होते हैं.	३७	९७
जितेंद्रियका स्वरूप कहते हैं.	३८	९८
एक इंद्रियका असंयमभी निवारण करने योग्य है	३८	९९
इंद्रियोंका संयम पुरुषार्थका कारण है	३८	१००
तीनों कालका संध्यावंदन.	३८	१०१
संध्याहीन शूद्रके तुल्य....	३८	१०३
वेद पाठकी अशक्तिमें सावित्री मात्रका जप	३८	१०४
नित्यकर्म आदिमें अनध्याय नहीं है	३९	१०५
जपयज्ञका फल....	३९	१०७
ब्रह्मचर्यसे गृहस्थ होनेतक होम आदि करना चाहिये.	३९	१०८
कैसा शिष्य पढाना चाहिये.	३९	१०९
विना पूंछे वेद न कहे....	३९	११०
निषेधके उल्लंघनमें दोष.	४०	१११
बुरे शिष्यको विद्या न देनी चाहिये	४०	११२
अच्छे शिष्यको देनी चाहिये.	४०	११५
अध्यापककी आज्ञा विना दूसरेसे पढनेका निषेध नहीं....	४०	११६
अध्यापकोंका मान्यत्व कहते हैं.	४०	११७
विहितके न करनेमें निंदा.	४०	११८
गुरुके अभिवादन आदिमें.	४१	११९
वृद्ध अभिवादनमें	४१	१२०
अभिवादनका फल	४१	१२१
अभिवादनकी विधि	४१	१२२
बदलेके अभिवादनमें	४१	१२३
बदलेके अभिवादन जाननेका दोष	४२	१२६
कुशल पूंछने आदिमें	४२	१२७
दीक्षित आदिके नाम लेनेका निषेध	४२	१२८

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
पराई स्त्री आदिके नाम लेनेका निषेध	४२	१२९
छोटे मामा आदिके वंदनका निषेध	४२	१३०
मावसी आदि गुरुकी स्त्रीके समान पूज्य	४२	१३१
भाईकी स्त्री आदिके अभिवादनमें	४२	१३२
फूफी आदिके अभिवादनमें.	४३	१३३
पुरवासियोंके सख्य आदिमें.	४३	१३४
दशवर्षकाभी ब्राह्मण क्षत्रिय आदिकों कारि पिताके तुल्य वंदना करने योग्य हैं.	४३	१३५
वित्त आदि सामान्यता करनेवाले हैं	४३	१३६
रथ आदिसे चढे हुएको मार्ग देना चाहिये.	४३	१३८
स्नातकको राजाकरिभी मार्ग देना चाहिये	४३	१३९
अथ आचार्य	४४	१४०
अथ उपाध्याय	४४	१४१
गुरु	४४	१४२
ऋत्विक्	४४	१४३
अध्यापककी प्रशंसा	४४	१४४
माता आदिका उत्कर्ष.	४४	१४५
वेद पढानेवालेकी श्रेष्ठता.	४५	१४८
बालकभी आचार्य पिताके समान	४५	१४९
इसमें दृष्टान्त देते हैं	४५	१५१
वर्णके क्रमसे ज्ञान आदिसे जेठापन	४६	१५५
मूर्खकी निंदा	४६	१५७
शिष्यसे मीठी वाणी कहनी चाहिये	४६	१५९
मनुष्यके वाणी और मनके रोकनेको कहते हैं....	४६	१६०
परके द्रोह आदिका निषेध.	४६	१६१
परकरि अपमान करने परभी क्षमा करनी चाहिये.	४७	१६२
अपमान करनेवालेका दोष.	४७	१६३
इस विधिसे वेद पढना चाहिये.	४७	१६४
वेदके अभ्यासकी श्रेष्ठता.	४७	१६६
वेदाभ्यासकी स्तुति	४७	१६७
वेदको न पढ वेदांग अविद्याके पढनेका निषेध.	४८	१६८
द्विजत्व निरूपणके लिये कहते हैं	४८	१६९
यज्ञोपवीत किये हुएका अनधिकार	४८	१७१
यज्ञोपवीत किये हुएका वेद पढना	४८	१७३
गोदान आदिमें नवीन दंड आदि	४८	१७४
ये नियम करने योग्य हैं.	४८	१७५
नित्य स्नान तर्पण और होम.	४९	१७६
ब्रह्मचारीके नियम	४९	१७७
कामसे वीर्यपातका निषेध.	४९	१८०
स्वप्नमें वीर्यपात होनेमें प्रायश्चित्त	४९	१८१
आचार्यके लिये जलकुश आदिका लाना	५०	१८२
वेद तथा यज्ञोपवीत युक्त घरोंसे भिक्षा लेनी योग्य है.	५०	१८३
गुरुकुल आदिकी भिक्षामें.	५०	१८४
कलंकयुक्तसे भिक्षाका निषेध.	५०	१८५
संध्या तथा प्रातःकालके होमकी समिध	५०	१८६
होम आदिके न करनेमें.	५०	१८७
एक घरसे भिक्षाका निषेध.	५०	१८८
निमंत्रितको एकका अन्न खाना चाहिये	५०	१८९

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
क्षत्रिय तथा वैश्यके एक अन्नके भोजनका निषेध.	५१	१९०
अध्ययन तथा गुरुके हितमें यत्न करे....	५१	१९१
गुरुकी आज्ञा करना कहते हैं.	५१	१९२
गुरुके सोने पर सोना आदि.	५१	१९४
गुरुकी आज्ञा करनेका प्रकार.	५१	१९५
गुरुके समीप चंचलताका निषेध	५२	१९८
गुरुका नाम ग्रहण आदि न करना	५२	१९९
गुरुकी निंदा सुननेका निषेध.	५२	२००
गुरुके अपवाद करनेका फल.	५२	२०१
समीप जाके गुरुका पूजन करे.	५२	२०२
गुरुआदिके पीछे कुछ न कहे.	५२	२०३
यान आदिमें गुरुके साथ बैठनेमें	५३	२०४
गुरुके गुरुमें गुरुकेसी वृत्ति रखे.	५३	२०५
विद्यागुरुके विषयमें	५३	२०६
गुरुपुत्रके विषयमें	५३	२०७
गुरुकी स्त्रीके मध्ये	५३	२१०
स्त्रीके स्वभावका कहना.	५४	२१३
माता आदिकोंके साथ एकांत बैठनेका निषेध	५४	२१५
तरुणी गुरुकी स्त्रीके प्रणाम करनेमें	५४	२१६
गुरुकी सेवाका फल	५५	२१८
ब्रह्मचारीके तीनि प्रकार कहते हैं....	५५	२१९
सूर्यके उदय और अस्तकालके सोनेमें	५५	२२०
संध्योपासन अवश्य करना.	५५	२२२
स्त्री आदिके श्रेय करनेमें.	५५	२२३
त्रिवर्ग कहते हैं	५५	२२४
पितृ आचार्य आदि अपमान योग्य नहीं हैं	५५	२२५
उनकी सेवा करने आदिमें.	५६	२२८
उनके अनादरकी निंदा.	५७	२३४
माता आदिकी सेवाकी मुख्यता....	५७	२३५
नीच आदिकोंसेभी विद्या लेना.	५७	२३८
आपत्तिमें क्षत्रिय आदिसेभी वेद पढना परंतु उनके पांव धोना आदि न करे....	५८	२४१
क्षत्रिय आदि गुरुमें अतिवासका निषेध	५८	२४२
जीवनपर्यंत गुरुकी सेवामें.	५८	२४३
गुरुकी दक्षिणा आदिमें.	५९	२४५
आचार्यके मरनेपर उसके पुत्र आदिकी सेवा....	५९	२४७
जीवनपर्यंत गुरुकुलकी सेवाका फल	५९	२४९

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
अथ ब्रह्मचर्यकी विधि....	६०	१
गृहस्थाश्रमका वास कहते हैं.	६०	२
वेद ग्रहण करनेवालेका पिता आदिकरि पूजन	६०	३
ब्रह्मचर्यको पूरा करि विवाह करना	६०	४
असपिंड आदि विवाहने योग्य.	६०	५
विवाहमें निंदित कुल....	६०	६
अथ कन्याके दोष	६१	८
कन्याके लक्षण	६१	१०
पुत्रिका विवाहकी निन्दा.	६१	११
सवर्णा स्त्री उत्तमा	६१	१२
चारों वर्णोंकी स्त्रियोंका ग्रहण.	६२	१३
ब्राह्मण और क्षत्रियको शूद्रा स्त्रीका निषेध	६२	१४

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
हीन जातिके विवाहका निषेध.	६२	१५
शूद्राके विवाहके मध्ये....	६२	१६
आठ विवाहके प्रकार	६३	२०
वर्णोंके धर्मसंबंधी विवाह कहते हैं	६३	२२
पैशाच तथा आसुर विवाहकी निंदा....	६३	२५
ब्राह्मविवाहका लक्षण	६४	२७
दैवविवाहका लक्षण	६४	२८
आर्षविवाहका लक्षण	६४	२९
प्राजापत्य विवाहका लक्षण.	६४	३०
आसुरविवाहका लक्षण.	६४	३१
गांधर्वविवाहका लक्षण....	६४	३२
राक्षस विवाहका लक्षण.	६४	३३
पैशाच विवाहका लक्षण.	६४	३४
जलके देनेसे ब्राह्मणका विवाह.	६५	३५
ब्राह्मविवाहका फल	६५	३७
ब्राह्म आदि विवाहमें उत्तम संततिकी उत्पत्ति	६५	३९
निंदित विवाहमें निंदित संततिकी उत्पत्ति	६६	४१
सवर्णाविवाहविधि	६६	४३
असवर्णाविवाहविधि	६६	४४
स्त्रीके गमनमें	६६	४५
ऋतुकालकी विधि	६६	४६
स्त्रीगमनमें निंदित काल.	६७	४७
युग्मतिथिमें पुत्रकी उत्पत्ति.	६७	४८
स्त्री पुरुष तथा नपुंसककी उत्पत्तिमें कारण	६७	४९
वानप्रस्थकोभी ऋतुकालमें गमन कहते हैं	६७	५०
कन्याके बेचनेमें दोष	६७	५१
स्त्रीधनके लेनेमें दोष	६७	५२
वरसे कुछ थोडाभी न लेना चाहिये	६७	५३
कन्याके लिये धनका देना कहते हैं....	६७	५४
वस्त्र अलंकार आदिसे कन्या शोभित करने योग्य.	६८	५५
कन्या आदिके पूजन करने तथा न करनेका फल.	६८	५६
उत्सवोंमें विशेष करि पूज्य है.	६८	५९
स्त्रीपुरुषके संतोषका फल.	६८	६०
स्त्रीका अलंकार आदिके देने न देनेमें....	६८	६१
कुल घटनेके कर्म	६९	६३
कुल घटनेके कर्म कहते हैं.	६९	६६
पांच महायज्ञोंका करना कहते हैं....	६९	६७
पांच सूना (वधस्थान) कहते हैं.	६९	६८
पांच यज्ञ नित्य करने चाहिये.	७०	६९
पांच यज्ञोंको कहते हैं....	७०	७०
पांच यज्ञ न करनेकी निंदा.	७०	७२
पांचों यज्ञोंके दूसरे नाम.	७०	७३
असामर्थ्यमें ब्रह्मयज्ञ तथा होम करने चाहिये	७०	७५
होमसे वृष्टि आदिकी उत्पत्ति.	७१	७६
गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा....	७१	७७
ऋषि आदिकोंका पूजन अवश्य करना चाहिये	७१	८०
नित्यश्राद्ध कहते हैं	७१	८२
पितरोंके लिये ब्राह्मण भोजनमें.	७२	८३
बलिवैश्वदेवकर्म कहते हैं.	७२	८४
बलिवैश्वदेवका फल कहते हैं.	७३	९३
भिक्षाका देना	७३	९५
सत्कार करिके भिक्षा देना.	७३	९६
अपात्रका दान निष्फल....	७४	९७
सत्पात्रमें देनेका फल	७४	९८
अतिथिके सत्कारमें	७४	९९
अतिथिके न पूजनेकी निंदा.	७४	१००

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
मीठे वचन जल आसन आदिके देनेमें	७४	१०१
अतिथिका लक्षण कहते हैं.	७४	१०२
पराये पाकमें रुचिका निषेध.	७५	१०४
अतिथि नहीं मने करने योग्यहै.	७५	१०५
अतिथि भोजन कराये विना आप न खाना चाहिये....	७५	१०६
बहुत अतिथि होनेपर यथायोग्य सेवा करनी चाहिये.	७५	१०७
अतिथिके लिये फिरि पाक करिके बलि कर्म करे	७५	१०८
भोजनके लिये कुल तथा गोत्र न कहे	७६	१०९
ब्राह्मणके क्षत्रिय आदि अतिथि नहीं होते	७६	११०
पीछे क्षत्रिय आदिको भोजन करावे	७६	१११
मित्रादिकोंको सत्कार करिके भोजन करावे	७६	११३
पहले गर्भिणी आदि भोजन कराने योग्य हैं	७६	११४
गृहस्थको पहले भोजनका निषेध.	७६	११५
स्त्री तथा पतिको सबसे पीछे भोजन	७६	११६
अपने लिये पाकका निषेध.	७७	११८
घरमें आये हुए राजा आदिकी पूजा कहते हैं	७७	११९
राजा और ब्रह्मचारीकी पूजामें संकोच कहते हैं	७७	१२०
स्त्रीको विना मंत्रके बलि करनी चाहिये	७७	१२१
अथ अमावास्यामें पार्वण श्राद्ध कहते हैं	७७	१२२
मांसकरिके श्राद्ध करना चाहिये	७८	१२३
पार्वण आदिमें भोजन योग्य ब्राह्मणोंकी संख्या....	७८	१२५
ब्राह्मणोंका विस्तार न करे.	७८	१२६
पार्वणके अवश्य कर्म	७८	१२७
देवताओं और पितरोंके अन्न श्रोत्रियको देने चाहिये.	७८	१२८
श्रोत्रियकी प्रशंसा	७९	१२९
मंत्ररहित ब्राह्मणका निषेध.	७९	१३३
ज्ञाननिष्ठोंको कव्य आदि देने चाहिये	७९	१३५
श्रोत्रियको पुत्रकी प्राप्ति.	७९	१३६
श्राद्धमें मित्र आदिके भोजनका निषेध	८०	१३८
मूर्खमें श्राद्धका दान निष्फल.	८०	१४२
पंडितमें दक्षिणा देना फल देनेवाला है	८०	१४३
विद्वान् ब्राह्मणके न होनेमें मित्रको भोजन करावे शत्रुको नहीं.	८१	१४४
वेदपारगामी आदिको यत्नसे भोजन करावे	८१	१४५
श्राद्धमें मातामह आदिकोभी भोजन करावे	८१	१४८
ब्राह्मणोंकी परीक्षामें	८१	१४९
स्तेन पतित आदि निषिद्ध हैं.	८१	१५०
श्राद्धमें निषिद्ध ब्राह्मण.	८२	१५१
अध्ययनशून्य ब्राह्मणकी निंदा.	८४	१६८
अपांक्तेयके देनेमें निषिद्ध फल.	८५	१६९
परिवेत्तादि लक्षण कहते हैं.	८५	१७१
परिवेदनके संबंधियोंका फल कहते हैं....	८५	१७२
दिधिषूपतिका लक्षण	८५	१७३
कुंड और गोलक कहते हैं.	८५	१७४
इनको दानका निषेध....	८६	१७५
जैसे स्तेन आदि न देखे ऐसे ब्राह्मण भोजन होना चाहिये....	८६	१७६
शूद्रयाजकका निषेध	८६	१७८

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.	विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
शूद्रयाजकसे दान लेनेका निषेध.	८६	१७९	पितृ ब्राह्मण आदिके भोजनकी विधि	९३	२२३
सोमविक्रय आदिका भोजन तथा दानमें निषिद्ध फल है.	८६	१८०	परोसनेकी विधि	९३	२२४
पंक्तिपावनोंको कहते हैं....	८७	१८३	व्यंजन आदिके दानमें....	९३	२२६
ब्राह्मणके निमंत्रणमें	८८	१८७	रोना और क्रोध आदि न करना.	९४	२२९
निमंत्रितके नियम	८८	१८८	ब्राह्मणके चाहे हुए व्यंजन आदिका देना	९४	२३१
न्योता मानिके भोजन न करनेमें दोष	८८	१९०	वेद आदि ब्राह्मणको सुनावे.	९४	२३२
न्योते हुएको स्त्रीगमनमें.	८८	१९१	ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे	९४	२३३
भोजन करनेवाले और श्राद्ध करनेवालेको क्रोध आदि न करने चाहिये	८८	१९२	दौहित्रको श्राद्धमें यत्नसे भोजन करावे	९४	२३४
पितृगणकी उत्पत्ति	८९	१९३	दौहित्र तिल कुतप आदिश्रेष्ठ.	९५	२३५
पितरोंको चांदीका पात्र उत्तम.	९०	२०२	उष्ण अन्नका भोजन तथा हविके ग्रहण आदिका न कहना.	९५	२३६
देवकार्यसे पितृकार्य विशिष्ट.	९०	२०३	भोजनमें पगडी आदिका निषेध.	९५	२३८
दैवकार्य पितृकार्यका अंग है.	९०	२०४	भोजनके समय ब्राह्मणोंको चांडाल आदि न देखे	९५	२३९
पितृकार्यके अंतमें दैवकार्य होता है	९०	२०५	कुत्ताकी दृष्टि आदिका निषेध.	९५	२४१
अथ श्राद्धके देश	९०	२०६	उस स्थानसे खंज आदि दूरि करने योग्य हैं	९५	२४२
निमंत्रितोंको आसन आदि देना.	९०	२०८	भिक्षुक आदिके भोजनमें.	९६	२४३
गंध पुष्प आदिसे उनका पूजन.	९१	२०९	अग्निदग्धके अन्न दानमें.	९६	२४४
उनकरिके आज्ञा दिया हुआ होम करे	९१	२१०	भूमिगत और उच्छेषण दासका अंश है....	९६	२४६
अग्निके न होनेमें पितरोंके हाथमें होम	९१	२१२	सपिंडन पर्यंत विश्वेदेवा आदि रहित श्राद्ध	९६	२४७
अपसव्यसे अग्नौकरण आदि.	९१	२१४	सपिंडी करनेके पीछे पार्वणकी विधिसे श्राद्ध	९६	२४८
पिंडदान आदिकी विधि.	९२	२१५	श्राद्धमें उच्छिष्ट शूद्रको न देना चाहिये	९७	२४९
कुशोंके मूलमें हाथोंको पोछना.	९२	२१६	श्राद्धमें भोजन करनेवालेको स्त्रीगमनका निषेध	९७	२५०
ऋतुओंको नमस्कार आदि.	९२	२१७	भोजन किये हुए ब्राह्मणोंको आचमन करावे	९७	२५१
प्रत्यवनेजन आदि	९२	२१८	वे ब्राह्मण स्वधा हो ऐसे कहें.	९७	२५२
पितृआदिके ब्राह्मणोंका भोजन करावे	९२	२१९			
पिताके जीवते पितामहआदिका पार्वण	९२	२२०			
पिताके मरनेपर पितामह आदिका पार्वण	९२	२२१			

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
उनकी आज्ञासे बाकीके अन्नका विनियोग करे.	९७	२५३
एकोद्दिष्ट आदिकी विधिको कहते हैं....	९७	२५४
अप्सरा आदि	९७	२५५
श्राद्धमें कहे हुए अन्नआदि.	९८	२५७
ब्राह्मणोंका विसर्जन कर वरकी प्रार्थना	९८	२५८
पिण्डोंको गौ आदिके लिये दे.	९८	२६०
पुत्र चाहनेवाली स्त्रीको पितामहका पिण्ड खाना चाहिये.	९८	२६२
फिर जाति आदिको भोजन करावे	९९	२६४
बाकी अन्नसे गृहबलिका कार्य.	९९	२६५
तिल आदि पितरोंको मासपर्यन्त तृप्ति देनेवाले हैं	९९	२६७
मांस आदिके भेदसे तृप्तिकालके अवधिका नियम	९९	२६८
मघा आदि श्राद्धोंमें मधुमिश्रित अन्नके दानका फल.	१००	२७३
गजकी छायामें दानका फल.	१००	२७४
श्रद्धासे दानका फल....	१००	२७५
पितृपक्षमें उत्तमतिथि.	१००	२७६
युग्मतिथि तथा नक्षत्र उत्तम हैं.	१०१	२७७
कृष्णपक्ष और अपराह्ण काल उत्तम है	१०१	२७८
कुशा ग्रहण पूर्वक अपसव्यसे पितृकर्म	१०१	२७९
रात्रिश्राद्धका निषेध....	१०१	२८०
प्रत्येकमास श्राद्ध करनेको असमर्थ हो तो वर्षमें तीन वार करे.	१०१	२८१
साग्निको अग्नौकरणमें.	१०१	२८२
तर्पणका फल	१०२	२८३
पितरोंकी प्रशंसा	१०२	२८४
ब्राह्मणभुक्तशेष और यज्ञशेषका भोजन करे	१०२	२८५
अथ चतुर्थोऽध्यायः ।		
ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्यका काल कहते हैं	१०३	१
शिल उञ्छ आदि वृत्तिसे निर्वाह करे	१०३	२
उचित धनका संग्रह करे.	१०३	३
आपद् रहित कालमें जीविकाका उपाय कहते हैं	१०३	४
ऋत अमृत आदि शब्दोंका अर्थ कहते हैं	१०३	५
कितने धनका संचय करे इस विषयमें कहते हैं....	१०४	७
एक दिनसे अधिक भोजनान्न रखनेवालेकी प्रशंसा.	१०४	८
याजन अध्यापन आदिसे जीविका करे	१०४	९
शिल उञ्छसे जीविकामें विधान....	१०४	१०
निन्दित जीविका न करे.	१०५	११
सन्तोषकी प्रशंसा	१०५	१२
व्रतका करना	१०५	१३
वेदोक्त कर्म करने योग्य है.	१०५	१४
गीत आदिसे धनके सञ्चयका निषेध....	१०५	१५
विषयोंमें आसक्त होनेका निषेध	१०५	१६
वेदार्थ विरोधि कर्मोंका त्याग.	१०६	१७
अवस्था कुल आदिके अनुसार आचरण करे	१०६	१८
नित्यप्रति शास्त्र आदिका देखना....	१०६	१९
जबतक शक्ति हो तबतक पंचयज्ञोंका त्याग न करे.	१०६	२१
कोई इन्द्रियोंका संयम करते हैं.	१०६	२२

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
कोई वाणीसे यज्ञ करते हैं.	१०७	२३
कोई ज्ञानसे यज्ञ करते हैं.	१०७	२४
दोनों संध्यामें अग्निहोत्र और दर्शपौर्णमास करे ...	१०७	२५
सोमयाग आदिका करना.	१०७	२६
नवान्नसे श्राद्ध न करनेका निषेध	१०८	२७
यथाशक्ति अतिथिका पूजन करे	१०८	२९
पाखण्डी आदिके पूजनका निषेध....	१०८	३०
श्रोत्रिय आदिका पूजन करे.	१०८	३१
ब्रह्मचारी आदिके लिये अन्नदान	१०८	३२
क्षत्रिय आदिसे धन ग्रहण.	१०९	३३
धन होनेपर क्षुधित न रहे.	१०९	३४
पवित्र और वेदाध्ययन आदिसे युक्त रहे	१०९	३५
दण्ड कमण्डलु आदिका धारण.	१०९	३६
सूर्यके दर्शनका निषेध.	१०९	३७
वच्छेकी रस्सीका लंघन और जलमें अपनी छायाके दर्शनका निषेध	१०९	३८
मार्गमें गौ आदिको दक्षिण करे.	१०९	३९
रजस्वलास्त्रीसे गमन आदिका निषेध....	१०९	४०
स्त्रीके साथ भोजन आदिका निषेध....	११०	४३
स्त्रीदर्शन न करनेके समय.	११०	४४
नग्न होके स्नान आदि करनेका निषेध....	११०	४५
मार्ग आदिमें मलमूत्रके त्यागका निषेध	११०	४६
मलमूत्रके त्यागके समय सूर्यादिके दर्शनका निषेध.	११०	४८
मलमूत्रके त्यागकी विधि.	१११	४९

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
दिन आदिमें उत्तर आदि दिशाको मुख करना.	१११	५०
अन्धकार आदिमें चाहे जिस दिशाको मुख करे.	१११	५१
अग्नि आदिके सम्मुख मलमूत्र त्यागका निषेध.	१११	५२
अग्निमें पैरोंका तपाने आदिका निषेध....	१११	५३
अग्निके लंघन आदिका निषेध.	१११	५४
संध्याकालमें भोजन आदिका निषेध....	१११	५५
जलमें मूत्र आदि टपकानेका निषेध....	१११	५६
शून्य घरमें शयन आदिका निषेध....	१११	५७
भोजन आदिमें दक्षिण हाथको वस्त्रसे बाहर करे....	११२	५८
जल चाहनेवाली गौका निवारण न करे तथा इन्द्रधनुषको न दिखावे	११२	५९
अधार्मिक ग्राममें निवास तथा मार्गमें एकाकी गमन आदिका निषेध	११२	६०
शूद्रराज्य आदिमें निवासका निषेध....	११२	६१
अत्यंत भोजन आदिका निषेध.	११२	६२
अञ्जलिसे जलपान आदिका निषेध....	११३	६३
नाचने आदिका निषेध.	११३	६४
कांस्यपात्रमें चरण प्रक्षालन तथा फूटे आदि पात्रमें भोजनका निषेध	११३	६५
दूसरेसे धारण किये हुए यज्ञोपवीत आदिके धारणका निषेध.	११३	६६

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
अशिक्षित अश्व आदिकी सवारीका निषेध....	११३	६७
धुर्यका लक्षण कहते हैं.	११३	६८
प्रेतधूमका तथा नख आदिके छेदनका निषेध	११३	६९
तृण आदिके छेदनका निषेध.	११३	७०
लोष्टमर्दन आदिका निषेध.	११४	७१
मालाके धारण तथा वृषकी सवारी आदिके विषयमें.	११४	७२
द्वारके विना गृहगमन आदिका निषेध	११४	७३
जुआ खेलना आदि तथा शय्यापर स्थित होके भोजन आदिका निषेध	११४	७४
रात्रिमें तिलभोजन तथा नग्न होके शयन करने आदिका निषेध	११४	७५
गीले पैरोंसे भोजन न करे.	११४	७६
दुर्गगमन मलदर्शन नदीतरणका निषेध....	११५	७७
केश, भस्म, आदिपर स्थिति न करना	११५	७८
पतित आदिके साथ निवास न करे....	११५	७९
शूद्रके लिये व्रत कथन आदिका निषेध....	११५	८०
शिरका खुजालना तथा स्नान आदिके विषयमें....	११५	८२
क्रोधसे शिरप्रहार केशग्रहणके विषयमें	११५	८३
तैलसे स्नान किये हुएको फिर तैलके स्पर्शमें	११५	८३
क्षत्रिय भिन्न राजा आदिसे प्रति ग्रहणका निषेध.	११५	८४
तैली आदिसे प्रतिग्रहका निषेध.	११६	८५
शास्त्रविरुद्ध मार्गमें चलनेवाले राजासे प्रतिग्रहका निषेध.	११६	८७
तामिस्र आदि इक्कीस नरकोंको कहते हैं	११६	८८
ब्राह्म मुहूर्तमें उठे	११७	९२
प्रातःकालमें कर्तव्य आदि.	११७	९३
प्रातःकर्तव्यको आयु कीर्ति आदिकी वर्द्धकता....	११७	९४
श्रावणीमें उपाकर्म करना चाहिये	११७	९५
पुष्पमें उत्सर्ग कर्म करे.	११७	९६
उत्सर्ग करनेपर अनध्याय काल.	११८	९७
फिर वेदोंको शुक्लपक्षमें और वेदांगोंको कृष्णपक्षमें पढे.	११८	९८
अस्पष्टपाठ तथा निशाके अन्तमें सोनेका निषेध.	११८	९९
गायत्री आदि नित्य पढे.	११८	१००
अनध्यायोंको कहते हैं.	११८	१०१
वर्षाकालके अनध्यायोंको कहते हैं	११८	१०२
अकालके अनध्यायको कहते हैं	११८	१०३
सब कालके अनध्यायको कहते हैं	११९	१०५
संध्याके गर्जने आदिमें.	११९	१०६
नगर आदिमें नित्य अनध्याय	११९	१०७
श्राद्धके भोजनमें और सूर्य चंद्र आदिके ग्रहणमें तीनि रात्रि अनध्याय.	११९	११०
गंध तथा लेपयुक्त वेदको न पढे	१२०	१११
शय्या आदिपर न पढे.	१२०	११२
अमावस्या आदि अध्ययनमें निषिद्ध है	१२०	११४

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
सामवेदकी ध्वनि होनेपर दूसरा वेद न पढे....	१२१	१२३
तीनों वेदोंके देवताओंका कथन.	१२१	१२४
गायत्री जपके अनंतर वेदपाठ.	१२२	१२५
गौ आदिकोंके बीचमें निकलनेपर....	१२२	१२६
शुद्ध देशमें शुद्ध होके पढना चाहिये	१२२	१२७
ऋतुकालमेंभी अमावास्या आदिमें स्त्रीगमन न करे.	१२२	१२८
आतुर आदिकोंको स्नानका निषेध	१२२	१२९
गुरु आदिकी छायाके लांघनेका दोष	१२२	१३०
श्राद्धभोक्ताके चौराहेके जानेसे.	१२२	१३१
रक्त कफ आदिके ऊपर न बैठे.	१२२	१३२
शत्रु चौर और पराई स्त्रीकी सेवाका निषेध	१२३	१३३
पराई स्त्रीकी निन्दा	१२३	१३४
क्षत्रिय सर्प तथा ब्राह्मण अपमानके योग्य नहीं है.	१२३	१३५
अपने अपमानका निषेध.	१२३	१३६
प्यारा और सत्य वचन कहे.	१२३	१३८
वृथा वाद न करे	१२३	१३९
प्रातःकाल आदिमें अज्ञातके साथ न जाना चाहिये.	१२३	१४०
हीन अंग आदिकोंपर आक्षेप.	१२४	१४१
उच्छिष्टके छूनेमें सूर्य आदिके दर्शनमें	१२४	१४२
अपने इंद्रियके छूने आदिमें.	१२४	१४४
मङ्गलाचार युक्त होय....	१२४	१४५
वेदाध्ययनकी मुख्यता.	१२४	१४६
अष्टका श्राद्धआदिमें अवश्य करना चाहिये ...	१२५	१५०
अग्निगृहसे दूर मूत्र आदिका त्याग....	१२५	१५१
पूर्वाह्णमें स्नान पूजादि.	१२५	१५२
पर्वोंमें देवता आदिका दर्शन.	१२६	१५३
आये हुए वृद्ध आदिके सत्कारमें	१२६	१५४
श्रुतिस्मृतिमें कहा हुआ आचार करना चाहिये.	१२६	१५५
आचारका फल	१२६	१५६
दुराचारकी निन्दा	१२६	१५७
आचारकी प्रशंसा	१२६	१५८
परवश कर्मके त्याग आदिमें.	१२६	१५९
मनका संतुष्ट करनेवाला कर्म करे	१२६	१६०
आचार्य आदिकी हिंसाका निषेध	१२७	१६१
नास्तिक्य आदिका निषेध.	१२७	१६३
अन्यके ताडन आदिका निषेध.	१२७	१६४
ब्राह्मणके ताडनके उद्योगमें.	१२७	१६५
ब्राह्मणके ताडनमें	१२७	१६६
ब्राह्मणके रुधिर निकालनेमें.	१२७	१६७
अधर्मी आदिको सुख नहीं.	१२८	१७१
अधर्ममें मन न लगावे.	१२८	१७२
हौले २ अधर्मके फलकी उत्पत्ति होती है....	१२८	१७३
शिष्य आदिके शासनमें.	१२९	१७५
अर्थ कामके त्यागमें....	१२९	१७६
हाथ पांवकी चपलताका निषेध.	१२९	१७७
कुलके मार्गमें चलना.	१२९	१७८
ऋत्विक् आदिसे वाद न करे.	१२९	१७९
इनके साथ विवादकी उपेक्षाका फल कहते हैं	१३०	१८१
प्रतिग्रहकी निन्दा	१३०	१८६
विधिके विना जाने प्रतिग्रह न करना चाहिये.	१३१	१८७

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
मूर्खको सोने आदिके लेनेमें.	१३१	१८८
बैडाल व्रतिक आदिमें दानका निषेध....	१३१	१९२
बैडाल व्रतिकका लक्षण.	१३२	१९५
बकवृत्तिका लक्षण	१३२	१९६
उन दोनोंकी निन्दा	१३२	१९७
प्रायश्चित्तमें वंचना न करनी चाहिये	१३२	१९८
छलसे व्रतके करनेमें....	१३३	१९९
छलसे कमंडलु आदिके धारणमें	१३३	२००
पराई बनाई हुई पुष्करिणी आदिके स्नानमें	१३३	२०१
विना दिये हुए यान आदिके भोगका निषेध.	१३३	२०२
नदी आदिमें स्नान करना चाहिये	१३३	२०३
यम और नियम कहते हैं.	१३३	२०४
अश्रोत्रिय यज्ञमें भोजनका निषेध	१३४	२०५
क्रुद्ध आदिका अन्न तथा केश आदिसे मिला हुआ न भोजन करे	१३४	२०७
रजस्वलाकरि छूए हुए अन्न आदिका निषेध	१३४	२०८
गऊ करि सूंघा हुआ और गणिका आदिके अन्नका निषेध.	१३४	२०९
स्तेन आदिके अन्न अभोज्यान्न हैं	१३४	२१०
राजा आदिके अन्न भोजनमें मंद फल	१३६	२१८
उनके अन्नके भोजनमें प्रायश्चित्त	१३६	२२२
शूद्रकरि पक्वअन्नका निषेध.	१३६	२२३
कृपण श्रोत्रिय तथा व्याज खानेवालेका अन्न निषिद्ध.	१३६	२२४
श्रद्धासे दिये हुए दाता तथा व्याज खानेवालेके अन्न.	१३७	२२५
श्रद्धासे यज्ञ आदि करे.	१३७	२२६
श्रद्धासे दिये हुए दानका फल.	१३७	२२७
जल भूमि दान आदिका फल.	१३७	२२८
वेदके दानकी प्रशंसा.	१३८	२३३
जिस २ भावसे दान देता है उसीको जन्मांतरमें पाता है.	१३८	२३४
विधिसे दान देने तथा लेनेमें.	१३८	२३५
द्विजकी निंदाका दानके कहनेका निषेध	१३८	२३६
अनृत आदिका फल....	१३९	२३७
हौले २ धर्म करे	१३९	२३८
धर्मकी प्रशंसा	१३९	२३९
ऊंचोंसे संबंध करना हीनोंसे नहीं	१३९	२४४
फल मूल आदिके लेनेमें.	१४०	२४७
दुष्कृत कर्मकी भिक्षा लेना.	१४०	२४८
भिक्षाके न लेनेमें	१४०	२४९
विना मांगी भिक्षामें	१४०	२५०
कुटुंबके लिये भिक्षा	१४१	२५१
अपने लिये साधु भिक्षा.	१४१	२५२
जिनका अन्न भोजनके योग्य ऐसे शूद्र	१४१	२५३
शूद्रोंको अपना निवेदन करना चाहिये	१४१	२५४
झूंठ कहनेमें निन्दा	१४१	२५५
योग्य पुत्रको कुटुंबका भार देना चाहिये	१४२	२५७
ब्रह्मकी चिन्ता	१४२	२५८
कहे हुएके फलका कहना.	१४२	२६०

अथ पंचमोऽध्यायः।

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
मनुष्योंकी कैसे मृत्यु होती है यह प्रश्न	१४३	२

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
मृत्युके पहुँचानेवालोंकोकहते हैं.	१४३	३
लशुन आदि अभक्ष्य कहते हैं.	१४३	५
वृथा मांस आदिका निषेध.	१४४	७
अभक्ष्य दूध	१४४	८
शुक्तोंमें दही आदि भक्ष्य.	१४४	१०
अथ अभक्ष्य पक्षी	१४४	११
सौन और सूखे मांस आदि.	१४५	१३
गांवके शूकर मछली आदि.	१४५	१४
मछली खानेकी निन्दा.	१४५	१५
खानेयोग्य मछली कहते हैं.	१४५	१६
सर्व वानर आदिका निषेध.	१४५	१७
खाने योग्य पंचनख कहते हैं.	१४५	१८
लशुन आदिके खानेमें प्रायश्चित्त	१४६	१९
यज्ञके लिये पशुहिंसाकी विधि.	१४६	२२
बासीभी भक्ष्य	१४६	२४
मांसके भक्षणमें	१४७	२७
प्रोक्षित मांस खानेका नियम.	१४७	३१
वृथा मांस खानेका निषेध .	१४८	३३
श्राद्धमें मांसके न खानेमें निन्दा....	१४८	३५
अप्रोक्षित मांस न खाय.	१४८	३६
अज्ञके लिये वधकी प्रशंसा.	१४९	३९
पशुके मारनेमें कालका नियम.	१४९	४१
वेदमें न कही हुई हिंसाका निषेध....	१४९	४३
अपने सुखकी इच्छासे मारनेमें.	१५०	४५
वध और बंधन न करना चाहिये	१५०	४६
मांसके वर्जनमें	१५०	४८
अथ घातकका कहिये मारनेवाले	१५०	५१
मांसके वर्जनका फल.	१५१	५३
सपिंडोंका दश दिन आदि आशौच	१५१	५८
अथ सपिण्डता	१५२	६०
जननेमें माताका न छूना.	१५२	६२
वीर्यके गिरने और पर पूर्व अपत्यके मरनेमें	१५२	६३
शवके स्पर्श और समानोदकके मारनेमें	१५२	६४
गुरुके मरनेका आशौच.	१५३	६५
गर्भस्राव होनेपर रजस्वलाकी शुद्धिमें	१५३	६६
बालक आदिका आशौच.	१५३	६७
दो वर्षसे न्यूनका भूमिमें गाडना	१५३	६८
इसके अग्निसंस्कार आदि नहींहै	१५३	६९
बालकके जलदानमें	१५३	७०
सहपाठीके मरनेमें	१५४	७१
वाग्दत्ता स्त्रीका आशौच.	१५४	७२
हविष्यका भक्षण आदि.	१५४	७३
अथ विदेशका आशौच.	१५४	७५
आचार्यके और उसके पुत्रके मरनेमें	१५५	८०
श्रोत्रिय तथा मामा आदिके मरनेमें	१५५	८१
राजाके अध्यापक आदिके मरनेमें	१५५	८२
संपूर्ण आशौच कहते हैं.	१५५	८३
अग्निहोत्रके लिये स्नानसे शुद्धि	१५५	८४
छूनेके कारण आशौच.	१५६	८५
आशौचके दर्शनमें	१५६	८६
मनुष्यके स्पर्शनमें	१५६	८७
ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तितक प्रेतको जलदान आदि न करे.	१५६	८८
पतित आदिकोंको जलदान न करे....	१५६	८९
व्यभिचारिणी आदिको जलदान न करे	१५६	९०

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
ब्रह्मचारीको मृतपिता आदिके ले जानेमें	१५७	९१
शूद्र आदिकोंके मृतकको दक्षिण आदि पुरद्वारसे निकाले.	१५७	९२
राजा आदिकोंको आशौच न होनेमें	१५७	९३
राजाकी शीघ्रही शुद्धता.	१५७	९४
वज्र आदिसे मरे हुएकी शीघ्रही शुद्धता	१५७	९५
राजाके आशौच न होनेकी स्तुति	१५७	९६
क्षत्रधर्मसे मारे हुएकी शीघ्रही शुद्धता	१५८	९८
आशौचके अंतका कृत्य.	१५८	९९
असपिंडका आशौच कहते हैं.	१५८	१००
मृतक असपिंडके ले जानेमें.	१५८	१०१
आशौचवालेका अन्न खानेमें.	१५८	१०२
मृतक ले जानेवालेंके साथ जानेमें....	१५८	१०३
ब्राह्मणको शूद्रोंसे न उठवावे.	१५९	१०४
ज्ञान आदि शुद्धिके साधन हैं.	१५९	१०५
अर्थ कहिये धनमें शुद्धकी प्रशंसा	१५९	१०६
क्षमा दान जप तथा तप शोधनेवाले हैं	१५९	१०७
मैली नदी स्त्री तथा द्विजकी शुद्धिमें	१५९	१०८
शरीर मन आत्मा बुद्धिकी शुद्धिमें	१६०	१०९
द्रव्यशुद्धि कहते हैं....	१६०	११०
सुवर्ण आदि तथा मणिकी शुद्धिमें	१६०	१११
घृत आदि शय्या आदि तथा काष्ठकी शुद्धिमें.	१६०	११५
यज्ञके पात्रोंकी शुद्धिमें.	१६०	११६
धान्य तथा वस्त्रकी शुद्धिमें.	१६१	११८
चर्म बांसका पात्र शाक मूल तथा फलकी शुद्धिमें.	१६१	११९
कंबल पटवस्त्रकी शुद्धिमें.	१६१	१२१
तृण काष्ठ गृह मृद्भांडकी शुद्धिमें	१६१	१२२
रुधिर आदिसे दूषित मृद्भांडका त्याग	१६२	१२३
भूमिकी शुद्धिमें	१६२	१२४
पक्षीके खाये और गौके सूंघे आदिमें	१६२	१२५
गंधलेपयुक्त द्रव्यकी शुद्धिमें.	१६२	१२६
पवित्र कहते हैं	१६२	१२७
जलकी शुद्धिमें	१६२	१२८
नित्य शुद्ध कहते हैं....	१६२	१२९
छूनेमें नित्य शुद्ध	१६३	१३२
मूत्र आदिके त्यागकी शुद्धि.	१६३	१३४
अथ बारह मल	१६३	१३५
मिट्टी और जलके लेनेमें नियम.	१६३	१३६
ब्रह्मचारी आदिको द्विगुण आदि आचमनके अनंतर इंद्रिय आदिका छूना.	१६४	१३७
आचमनकी विधि	१६४	१३९
शूद्रोंको मासमें शिर मुडाना और द्विजोच्छिष्ट भोजन.	१६४	१४०
मुखके बिंदु और मूछ आदि उच्छिष्ट नहीं हैं....	१६४	१४१
पावोंमें गिरी कुल्लेकी बूंद शुद्ध है	१६४	१४२
द्रव्य हस्तको उच्छिष्टके छूनेमें	१६५	१४३
वमन विरेचन तथा मैथुनकी शुद्धिमें	१६५	१४४
निष्ठीवन क्षुधा भोजन आदिकी शुद्धिमें....	१६५	१४५

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
अथ स्त्रीधर्मोंको कहते हैं.	१६५	१४६
स्त्रीको स्वतंत्र होना चाहिये.	१६५	१४७
किसके वशमें रहे सो कहते हैं.	१६५	१४८
प्रसन्न हो घरका काम करे.	१६५	१५०
स्वामीकी सेवा....	१६६	१५१
स्वामीपनका कारण कहते हैं.	१६६	१५२
स्वामीकी प्रशंसा	१६६	१५३
स्त्रियोंके पृथक् यज्ञका निषेध.	१६६	१५५
स्वामीका अप्रिय न करे.	१६६	१५६
जिसका पति मर गया है उसके धर्म	१६७	१५७
पराये पुरुषसे गमनकी निंदा.	१६७	१६०
पतिव्रतापनका फल	१६८	१६५
भार्याके मरनेपर श्रौत अग्निसे दाह	१६८	१६७
फिर स्त्रीके ग्रहणमें	१६८	१६८
गृहस्थके कालकी अवधि.	१६८	१६९
अथ षष्ठोऽध्यायः।		
वानप्रस्थ आश्रम कहते हैं.	१६९	१
भार्या और अग्निहोत्र सहित वनमें वसे	१६९	३
फल मूलसे पंचयज्ञ करना.	१६९	५
मृगचर्म चीर जटा आदिका धारण....	१६९	६
अतिथिचर्या	१६९	७
वानप्रस्थके नियम....	१७०	८
मधु मांस आदिका वर्जन.	१७०	१४
आश्विनमें संचय किये हुए नीवार आदिका त्याग.	१७१	१५
फालसे जुते हुए अन्न आदिका निषेध	१७१	१६
अश्मकुट्ट आदि	१७१	१७
तृण धान्य आदिके इकट्ठे करनेमें....	१७१	१८
भोजनके काल आदि.	१७१	१९
भूमि परिवर्त्तन आदि.	१७१	२२
ग्रीष्म आदि ऋतुओंका कृत्य.	१७२	२३
अपने देहको सुखावे....	१७२	२४
अग्निहोत्रका समाप्त करना आदि....	१७२	२५
वृक्षोंके नीचे तथा भूमिमें सोना आदि	१७२	२६
भिक्षा करनेमें	१७२	२७
वेदपाठ आदि	१७३	२९
महाप्रस्थान	१७३	३१
संन्यासीका काल कहते हैं.	१७३	३३
ब्रह्मचर्य आदिके क्रमसे संन्यास लेवे	१७३	३४
ऋण शोधे विना संन्यास न लेवे.	१७४	३५
पुत्र विना उत्पन्न किये संन्यास न लेवे	१७४	३६
प्राजापत्य यज्ञ करिके संन्यास लेवे	१७४	३८
अभय दानका फल	१७४	३९
वांछारहित हो संन्यास लेवे.	१७५	४१
अकेला मोक्षके लिये विचरे.	१७५	४२
संन्यासीके नियम	१७५	४३
मुक्तका लक्षण	१७५	४४
जीवने आदिकी कामनासे रहित होवे	१७५	४५
संन्यासीका आचार....	१७५	४६
भिक्षाके ग्रहणमें	१७६	५०
दंड कमंडलु आदि	१७६	५२
भिक्षाके पात्र	१७६	५३
एककालमें भिक्षा करना.	१७७	५५
भिक्षाका काल	१७७	५६
मिलने न मिलनेमें हर्ष विषाद न करे	१७७	५७

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
पूजापूर्वक भिक्षाका निषेध.	१७७	५८
इन्द्रियोंका रोकना	१७७	५९
संसारकी गतिका कथन.	१७८	६१
सुख दुःखके धर्म अधर्म कारण हैं	१७८	६४
चिह्नमात्र धर्मका कारण नहीं है	१७८	६६
भूमिको देखके भ्रमण करे.	१७९	६८
छोटे जीवोंकी हिंसाका प्रायश्चित्त	१७९	६९
प्राणायामकी प्रशंसा.	१७९	७०
ध्यानके योगसे आत्माको देखे.	१७९	७३
ब्रह्मके साक्षात्कारमें मुक्ति.	१७९	७४
मोक्षके साधक कर्म	१८०	७५
देहका स्वरूप	१८०	७६
देहका त्यागमें दृष्टांत कहते हैं.	१८०	७८
प्रिय अप्रियमें पुण्य पापका त्याग	१८०	७९
विषयोंकी इच्छा न करनी.	१८१	८०
आत्माका ध्यान	१८१	८२
संन्यासका फल	१८१	८५
वेद संन्यासियोंके कर्म कहते हैं.	१८२	८६
चारि आश्रम	१८२	८७
सब आश्रमोंका फल.	१८२	८८
गृहस्थकी श्रेष्ठता	१८२	८९
दश प्रकारका धर्म सेवन करने योग्य है	१८२	९१
दश प्रकारके धर्म कहते हैं.	१८३	९३
वेदहीका अभ्यास करे.	१८३	९५
वेद संन्यासका फल	१८३	९६
अथ सप्तमोऽध्यायः।		
राजधर्मोंको कहते हैं....	१८४	१
संस्कार किये हुएका प्रजाका रक्षण	१८४	२
रक्षाके लिये इंद्र आदिकोंके अंशसे राजाकी उत्पत्ति.	१८४	३
राजाकी प्रशंसा	१८४	६
राजासे द्वेषकी निन्दा.	१८५	१२
राजाके स्थापित धर्मको न चलावे....	१८६	१३
दंडकी उत्पत्ति	१८६	१४
दंडका करना	१८६	१६
दंडकी प्रशंसा	१८६	१७
अयोग्य दंडका निषेध.	१८७	१९
दंडके योग्योंको दंड न देनेमें निंदा	१८७	२०
फिर दंडकी प्रशंसा	१८७	२२
दंड देनेवाला कैसा होय इसपर कहते हैं	१८७	२६
अधर्म दंडमें राजा आदिकोंके दोष	१८८	२८
मूर्ख आदिकोंको दंड देनेका निषेध	१८८	३०
सत्यप्रतिज्ञावाले करि दंड देना योग्य है	१८८	३१
शत्रु मित्र ब्राह्मण आदिमें दंडकी विधि	१८८	३२
न्यायमें चलनेवाले राजाकी प्रशंसा	१८९	३३
राजाके कृत्यमें वृद्धकी सेवा.	१८९	३४
विनयका ग्रहण	१८९	३७
अविनयकी निन्दा	१९०	३९
यहां दृष्टांत कहते हैं	१९०	४०
विनयसे राज्य आदि पानेका दृष्टांत	१९०	४१
विद्याका ग्रहण	१९०	४३
इन्द्रियोंका जीतना	१९०	४४
काम क्रोधसे उत्पन्न व्यसनका त्याग	१९१	४५

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
कामसे उत्पन्न दश व्यसन कहते हैं	१९१	४७
क्रोधसे उत्पन्न दश व्यसन कहते हैं	१९१	४८
सबोंके मूल लोभका त्याग.	१९१	४९
अतिदुःखके देनेवाले व्यसन हैं.	१९१	५०
व्यसनकी निन्दा	१९२	५३
अथ सचिव कहिये मंत्री.	१९२	५४
मंत्रियोंके साथ विचार करिके हित करना चाहिये.	१९३	५६
ब्राह्मण मंत्री	१९३	५८
औरोंकोभी मंत्री करे....	१९३	६०
खानि आदि धनके उत्पत्ति-स्थानमें धर्मसे भय मानने-वालोंको नियत करे.	१९४	६२
दूतका लक्षण	१९४	६३
सेनापति आदिका कार्य.	१९४	६५
दूतकी प्रशंसा	१९४	६६
प्रत्येक राजाका वांछित दूतसे जाने	१९५	६७
जंगल देशके आश्रय लेनेमें.	१९५	६९
अथ दुर्गके प्रकार	१९५	७०
दुर्गको अस्त्र अन्न आदि संपूर्ण करे	१९६	७५
सुंदर स्त्रीसे विवाह करे.	१९७	७७
पुरोहित आदि	१९७	७८
यज्ञ आदिका करना....	१९७	७९
करके लेनेमें	१९७	८०
अथ अध्यक्ष	१९७	८१
ब्राह्मणोंको जीविका देना.	१९७	८२
ब्राह्मणोंको जीविका देनेकी प्रशंसा	१९७	८३
पात्रमें दानका फल कहते हैं.	१९८	८५
संग्राममें बुला हुआ न लौटे.	१९८	८७
सन्मुख मरनेमें स्वर्गप्राप्ति.	१९८	८९

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
छलके अस्त्रआदिका निषेध.	१९८	९०
संग्राममें अवध्य कहते हैं.	१९९	९१
भीत आदिके मारनेमें दोष.	१९९	९४
संग्राममें मारे हुएके मारनेमें दोष	१९९	९५
जिसने जो जीता वह उसीका धन	१९९	९६
श्रेष्ठ वस्तु राजाको देनी.	२००	९७
हाथी घोडे आदिका वढाना.	२००	९९
न पाये हुएके पानेकी इच्छा करे	२००	१०१
घोडे प्यादे आदिकी नित्य शिक्षा....	२००	१०२
नित्य उद्यत दंड होय.	२००	१०३
मंत्री आदिकोंमें माया न करनी चाहिये	२००	१०४
प्रजाका भेद आदि रक्षा करना चाहिये	२०१	१०५
अर्थ आदिकी चिन्ता करनी.	२०१	१०६
विजयके विरोधी वश करने चाहिये	२०१	१०७
सामदंडकी प्रशंसा	२०१	१०९
राजाकी रक्षा	२०२	११०
प्रजाके पीडा देनेमें दोष.	२०२	१११
प्रजाकी रक्षामें सुख....	२०२	११३
ग्रामके अधिपति आदि.	२०२	११५
ग्रामके दोषका कहना.	२०२	११६
ग्रामके अधिकारीकी. वृत्ति कहते हैं	२०३	११८
ग्रामके कार्य इसकरके करने योग्य हैं	२०३	१२०
अर्थका चिंतवन करनेवाला होय.	२०३	१२१
उसके चरित्रको आप जाने.	२०३	१२२
घूंस आदिके लेनेवालेका शासन करना....	२०४	१२३

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
प्रेष्य आदि वृत्तिकी कल्पना करना	२०४	१२५
वणियोंसे कर लेनेमें	२०४	१२७
थोडा थोडा कर लेनेमें.	२०५	१२९
धान्यआदिकोंपर कर लेनेमें.	२०५	१३०
श्रोत्रियसे कर न ग्रहण करे.	२०५	१३३
श्रोत्रियकी जीविका करनेमें.	२०५	१३४
शाक आदि वेचनेवालेपर थोडा कर	२०६	१३७
शिल्प आदि कर्म करावे.	२०६	१३८
थोडे बहुत अधिक कर लेनेका निषेध	२०६	१३९
कार्यको देखकर तीक्ष्ण वा मृदु होय	२०६	१४०
मंत्रीके साथ कार्यका विचार करे	२०६	१४१
चोरोंको दंड देता रहे.	२०६	१४३
प्रजापालनकी श्रेष्ठता.	२०६	१४४
सभाका काल	२०७	१४५
एकान्तमें गुप्त मंत्र करे.	२०७	१४७
मंत्र करनेके समय स्त्री आदिको हटा देना.	२०७	१४९
धर्म काम आदिकी चिंता करना	२०७	१५१
दूतोंको प्रेषण आदि	२०८	१५३
अथ प्रजाके प्रकार	२०९	१५६
शत्रुकी प्रकृतिको जाने.	२०९	१५८
अथ छः गुण	२०९	१६०
संधि आदिका प्रकार.	२१०	१६२
संधि विग्रह आदिके काल.	२११	१६९
वली राजाके आश्रय लेनेमें.	२१२	१७५
आपको अधिक करे....	२१२	१७७
आनेवाले गुणदोषोंकी चिंता.	२१२	१७८
राजाकी रक्षा	२१३	१८०
शत्रुके राज्यमें जानेकी विधि.	२१३	१८१
शत्रुके सेवन करनेवाले मित्र आदिमें सावधानी.	२१४	१८६
सेनाके व्यूह बनानेमें....	२१४	१८७
जलआदिमें युद्धका प्रकार.	२१५	१९२
आगेकी सेनाके योग्योंको कहते हैं	२१५	१९३
सेनाकी परीक्षा करना.	२१५	१९४
पराये देशके पीडा देनेमें.	२१६	१९५
पराई प्रजाका भेद आदि.	२१६	१९७
उपायके न होनेमें युद्ध करे.	२१६	२००
जीतिकरि ब्राह्मण आदिका पूजन और प्रजाका अभय दान	२१७	२०१
उसके वंशवालेको उसका राज्य देनेमें	२१७	२०२
करका लेना आदि	२१८	२०६
मित्रकी प्रशंसा	२१८	२०७
शत्रुके गुण	२१८	२१०
उदासीनके गुण	२१९	२११
अपने लिये भूमि आदिका त्याग	२१९	२१२
आपत्तिमें उपायोंका शोचना.	२१९	२१४
राजाके भोजनमें	२१९	२१६
अन्न आदिकी परीक्षा.	२१९	२१७
आयुध आदिका देखना.	२२०	२२२
संध्योपासन करके दूतके काम देखे	२२०	२२३
तिस पीछे रात्रिका भोजन आदि करे	२२०	२२४
राजा स्वस्थ न होय तौ श्रेष्ठ मंत्रीके आधीन करे.	२२१	२२६
अथ अष्टमोऽध्यायः ।		
राजा व्यवहारोंके देखनेकी इच्छासे सभामें जाय.	२२१	१

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
कुल तथा शास्त्र आदिसे व्यवहारोंको देखे....	२२१	३
अठारह विवादोंको कहते हैं.	२२२	४
धर्मका आश्रय लेकर निर्णय करे	२२२	८
आप असमर्थ होय तौ विद्वान्को नियत करे.	२२२	९
वह तीनि ब्राह्मणोंके साथ कर्म देखे	२२३	१०
उस सभाकी प्रशंसा	२२३	११
अधर्ममें सभासदोंका दोष.	२२३	१२
सभामें सत्यही बोलना चाहिये....	२२३	१३
अधर्मवादीको दंड	२२३	१४
धर्मके उलांघनेमें दोष.	२२३	१५
बुरे व्यवहारमें राजा आदिको अधर्म	२२४	१८
अर्थी प्रत्यर्थीके पापमें.	२२४	१९
व्यवहारके देखनेमें शूद्रका निषेध	२२४	२०
जिसमें नास्तिक तथा शूद्र अधिक द्विज न्यून ऐसे देशका निषेध	२२५	२१
लोकपालोंको प्रणाम करि व्यवहारको देखे	२२५	२३
ब्राह्मण आदिके क्रमसे व्यवहारको देखे	२२५	२४
स्वर और वर्ण आदिसे अर्थी आदिकी परीक्षा करे.	२२५	२५
बालकका धन राजाकरि रक्षा करने योग्य है.	२२६	२७
प्रोषितपतिका आदिके धनकी रक्षा करना.	२२६	२८
अपुत्राके धन लेनेवालेको शासन....	२२६	२९
स्वामिरहित धनकी रक्षाका काल	२२६	३०
द्रव्यके रूप और संख्या आदिका कहना	२२६	३१
न कहनेमें दंड	२२६	३२
नष्ट हुए द्रव्यसे छठा भाग लेना.	२२७	३३
चोरका मरवाना	२२७	३४
निधि आदिमें छठा भाग लेना.	२२७	३५
पराई निधिमें झूठके बोलनेमें.	२२७	३६
ब्राह्मणकी निधिके विषयमें.	२२७	३७
राजा निधि पाके आधी ब्राह्मणोंको देवे	२२७	३८
चोरोंकरि लिया हुआ धन राजाको देना चाहिये.	२२७	४०
जाति तथा देशके विरोध विना करना चाहिये	२२८	४१
राजाको विवादका उठाना आदि न करना चाहिये ...	२२८	४३
अनुमानसे सत्यका निश्चय करे	२२८	४४
सत्य आदिसे व्यवहारको देखे.	२२८	४५
सदाचार करना चाहिये.	२२८	४६
ऋणके देनेमें	२२९	४७
अथ हीन....	२३०	५३
अभियोग करनेवालेका दण्ड आदि....	२३०	५८
धन परिमाणके झूठ कहनेमें.	२३१	५९
साक्षियोंसे निश्चय करना.	२३१	६०
अथ साक्षी	२३१	६१
साक्षी होनेमें निषिद्ध.	२३१	६४
स्त्री आदिकोंकी स्त्री साक्षी.	२३२	६८
वादीके साक्षी	२३३	६९
बालक आदिके साक्ष्य आदिमें	२३३	७०

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
साहस आदिमें साक्षीकी परीक्षा नहीं	२३३	७२
साक्षियोंके द्वैधमें	२३३	७३
साक्षिका सत्य कहना....	२३३	७४
झूठा साक्षी होनेमें दोष.	२३३	७५
सुने हुए साक्षी	२३३	७६
धर्मज्ञ एकभी साक्षी होता है.	२३४	७७
साक्षीका स्वाभाविक वचन ग्रहण करे	२३४	७८
साक्षियोंसे पूछनेमें	२३४	७९
साक्षियोंको सत्य कहना चाहिये	२३४	८१
एकांतमें किये कामको आत्मा आदि जानता है....	२३५	८४
ब्राह्मण आदि साक्षियोंसे प्रश्नमें....	२३५	८७
असत्य कहनेमें दोष....	२३५	८९
सत्यकी प्रशंसा	२३६	९२
असत्य कहनेका फल.	२३६	९३
फिर सत्य कहनेकी प्रशंसा.	२३६	९६
विषयके भेदसे सत्यका फल.	२३७	९७
निंदित ब्राह्मणोंसे शूद्रकी भांति पूंछे	२३७	१०२
विषयके भेदसे झूठ कहनेमें दोष	२३८	१०३
झूठ कहनेमें प्रायश्चित्त.	२३८	१०५
तीनि पक्षतक साक्ष्य कहनेमें पराजय	२३८	१०७
साक्षियोंके भंगमें	२३८	१०८
विना साक्षीके विवादमें शपथ	२३८	१०९
वृथा शपथमें दोष	२३९	१११
वृथा शपथका प्रतिप्रसव कहते हैं	२३९	११२
ब्राह्मण आदि सत्य कहना आदि शपथ है	२३९	११३
शूद्रके शपथमें	२३९	११४
शपथमें शुद्ध कहते हैं.	२३९	११५
अथ पुनर्वाद	२४०	११७
लाभ आदिसे साक्ष्यमें दंड-विशेष....	२४०	११८
दंडके हाथ आदि दश स्थान हैं	२४१	१२४
अपराधकी अपेक्षा दंड देना.	२४१	१२६
अधर्म दंडकी निन्दा....	२४१	१२७
दंडयोग्यका परित्याग.	२४१	१२८
वाग्दंड धिग्दंड आदि.	२४१	१२९
त्रसरेणु आदि परिमाणोंको कहते हैं	२४२	१३२
प्रथम मध्यम उत्तम साहस.	२४३	१३८
ऋणदानमें दंडका नियम.	२४३	१३९
अथ वृद्धि कहिये व्याज.	२४३	१४०
आधिके स्थलमें	२४४	१४३
वलसे आधिके भोगका निषेध.	२४४	१४४
आधिके निक्षेप आदिमें.	२४४	१४५
गौ आदिके भोगनेपरभी स्वत्वकी हानि नहीं होती.	२४४	१४६
आधि सीमा आदिमें भोगनेपरभी स्वत्वहानि नहीं.	२४५	१४७
वलसे आधिके भोगनेमें आधि वृद्धि	२४५	१४९
दुगुनेसे अधिक वृद्धि नहीं होती	२४५	१५१
वृद्धिके प्रकार	२४५	१५२
फिर लेख्य करनेमें	२४६	१५४
देशकालकी वृद्धिमें	२४६	१५६
दर्शनप्रतिभूके स्थलमें.	२४७	१५८
जमानतका ऋण पुत्र न देवे.	२४७	१५९

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
दानप्रतिभूके स्थलमें	२४७	१६०
निरादिष्ट धनमें प्रतिभू होनेपर.	२४८	१६२
क्रियेकी निवृत्तिमें	२४८	१६३
कुटुंबके लिये किया अदेय है.	२४८	१६६
बलसे किया हुआ लौटाने योग्य है	२४८	१६८
प्रतिभू होने आदिका निषेध.	२४९	१६९
अग्राह्य धनको न लेवे.	२४९	१७०
ग्रहण करने योग्यके त्यागमें दोष	२४९	१७१
निर्बलकी रक्षा करने आदिमें.	२४९	१७२
अधर्मसे कार्य करनेमें.	२४९	१७४
धर्मसे काम करना	२५०	१७५
धनिकसे धनके साधनमें.	२५०	१७६
धन न होनेमें काम करके ऋण शोधन करे	२५०	१७७
अथ निक्षेप कहिये धरोहडमें.	२५०	१७९
साक्षीके न होनेमें निक्षेपसे निर्णय....	२५१	१८२
निक्षेपके देनेमें	२५१	१८५
आपही निक्षेपके देनेमें.	२५१	१८६
मुर्दा हुई धरोहडमें	२५२	१८८
धरोहडके चोरी हो जानेपर.	२५२	१८९
निक्षेपक मुकर जानेमें शपथ.	२५२	१९०
निक्षेपके अपहार आदिमें दंड.	२५२	१९१
छलसे पराये धनके लेनेमें.	२५३	१९३
धरोहडमें झूठ बोलनेसे दंड.	२५३	१९४
धरोहडके देने लेनेमें	२५३	१९५
विना स्वामीके बेचनेमें.	२५३	१९६
आगमसहित भोगका प्रमाण.	२५४	२००
खुलाखुली बेचने तथा मूल्यके धरन लाभमें	२५४	२०१
साझेकी वस्तुके बेचनेमें.	२५४	२०२
और कन्या दिखाके औरसे विवाहमें	२५४	२०४
उन्मत्त आदि कन्याके विवाहमें.	२५५	२०५
पुरोहितकी दक्षिणा देनेमें.	२५५	२०६
अध्वर्यु आदिको दक्षिणा.	२५५	२०९
संभूय समुत्थानमें	२५६	२११
दियेका मुकर जाना....	२५६	२१२
मरनेके स्थलमें	२५६	२१५
प्रतिज्ञाके बदल जानेमें.	२५७	२१८
बेची हुई वस्तुमें पछतावा करना.	२५७	२२२
विना कहे दोषयुक्त कन्याके दानमें....	२५८	२२४
झूठ कन्याके दोष कहनेमें.	२५८	२२५
दूषित कन्याकी निंदा	२५८	२२६
अथ सप्तपदी	२५८	२२७
स्वामी और पालनेवालेका विवाद....	२५९	२२९
क्षीरकी भृतिके स्थलमें.	२५९	२३१
पालनेवालेके दोषसे नष्ट स्थलमें.	२५९	२३२
चोरके ले जानेपर	२५९	२३३
सींग आदि चिह्न दिखाना.	२५९	२३४
भेडिया आदिके मारनेके स्थलमें....	२६०	२३५
धान्य नाश करनेवालेके दंडमें.	२६०	२३७
सीमा विवादके स्थलमें.	२६१	२४५
सीमाके वृक्ष आदि	२६१	२४६
नष्ट किये गये सीमाके चिह्न.	२६२	२४९
भोगसे सीमाका निर्णय करे.	२६२	२५२
सीमाके साक्षी	२६३	२५३
साक्ष्य युक्त सीमाको बांधे.	२६३	२५५
साक्ष्य देनेकी विधि	२६३	२५६
अन्यथा कहनेमें दंड	२६३	२५७
साक्षीके न होनेमें गांवके सामंत आदि	२६३	२५८
सामंतोंके झूठ कहनेमें दंड.	२६४	२६३
गृह आदिके हरि लेनेमें दंड.	२६४	२६४

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
राजा आप सीमाका निर्णय करे.	२६४	२६५
अथ वाक्पारुष्यमें दंड.	२६४	२६६
ब्राह्मण आदिके गाली देनेमें.	२६५	२६७
बराबर वर्णके गाली देनेमें.	२६५	२६९
द्विजको शूद्रके गाली देनेमें.	२६५	२७०
धर्मका उपदेश करनेवाले शूद्रको दंड	२६५	२७२
सुने हुए देश तथा जातिके आक्षेपमें	२६६	२७३
काणा आदि बुराई करनेमें.	२६६	२७४
माता आदिके बुरा कहनेमें.	२६६	२७५
आपसमें पतित होने योग्य बुराई करनेमें	२६६	२७६
अथ दंडपारुष्य	२६६	२७८
शूद्रको ब्राह्मण आदिके ताडनेमें	२६७	२७९
बडेके साथ बैठनेमें	२६७	२८१
थूकने आदिमें	२६७	२८२
बाल पकडने आदिमें.	२६७	२८३
त्वचाके फोडने और हड्डीके तोडने आदिमें	२६७	२८४
वनस्पतिके काटनेमें	२६७	२८५
मनुष्योंके दुःखके अनुसार दंड.	२६८	२८६
समुत्थानका खरच देनेमें.	२६८	२८७
द्रव्यकी हिंसामें	२६८	२८८
चमडेके भांड आदिमें.	२६८	२८९
यान आदिकी दशाओंका बदलना	२६८	२९०
रथके स्वामी आदिके दंड देनेमें	२६९	२९३
भार्या आदिकी ताडनामें.	२७०	२९९
अन्यथा ताडनमें दंड....	२७०	३००
चोरके दंड देनेमें	२७०	३०१
चोर आदिसे अभय दानकाफल.	२७०	३०३
राजा धर्म अधर्मके छठे भागका पानेवाला है.	२७०	३०४
रक्षा विना कर लेनेकी निंदा.	२७१	३०७
पापीके दंड और साधुके संग्रहणमें	२७१	३१०
बालक वृद्ध आदिकोंमें क्षमा.	२७२	३१२
ब्राह्मणके सुवर्णके चोरमें.	२७२	३१४
शासन न करनेमें राजाका दोष.	२७२	३१६
पराये पापके लगनेमें	२७३	३१७
राजदंडसे पापके नाश होनेपर.	२७३	३१८
कुएपरसे घट रस्सी आदिके चुराने और प्याऊके तोडनेमें.	२७३	३१९
धान्य आदिके चुरानेमें.	२७३	३२०
सुवर्ण आदिके चुरानेमें.	२७३	३२१
स्त्री पुरुष आदिके हरनेमें.	२७४	३२३
बडे पशु आदिके चुराने आदिमें	२७४	३२४
सूत कपास आदिके चुरानेमें.	२७४	३२६
हरे धान्य आदिके चुरानेमें.	२७५	३३०
निरन्वय सान्वय धान्य आदि.	२७५	३३१
स्तेय साहसका लक्षण.	२७५	३३२
तीनों अग्नियोंके चुरानेमें.	२७५	३३३
चोरका हाथ काटना आदि.	२७५	३३४
पिता आदिके दंडमें....	२७६	३३५
राजाके दण्डमें	२७६	३३६
विप्र शूद्र आदिको आठ गुना आदि दंड	२७६	३३७
अस्तेय कहते हैं	२७६	३३९
चोरके यजन कराने आदिमें	२७६	३४०
मार्गमें स्थित दो ईखोंके लेनेमें.	२७६	३४१
दासाश्वआदिके हरने आदिमें.	२७७	३४२
अथ साहस कहते हैं.	२७७	३४४
साहसके योग्य निंदा.	२७७	३४६
द्विजातिका शस्त्रग्रहणकाल.	२७७	३४८
आततायीके मारनेमें....	२७८	३५०

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
पराई स्त्रीके छेडनेमें दंड.	२७८	३५२
पराई स्त्रीसे एकांतमें बात करनेमें	२७८	३५४
स्त्रीसंग्रहणमें	२७९	३५८
भिक्षुक आदिक पराई स्त्रीसे बोलनेमें	२७९	३६०
पराई स्त्रीके साथ निषिद्ध संभाषणमें	२८०	३६१
नट आदिकी स्त्रियोंसे संभाषणमें दोष	२८०	३६२
कन्याके दूषणमें	२८०	३६४
अंगुली आदिके डालनेमें.	२८०	३६६
व्यभिचार करनेवाले स्त्री और जारको दंड	२८१	३७१
संवत्सरके अभिशस्त आदिमें.	२८१	३७३
शूद्र आदिको अरक्षित उत्कृष्ट आदिके गमनमें	२८२	३७४
ब्राह्मणगुप्ता विप्राके गमनमें.	२८२	३७८
ब्राह्मणको वधदंड नहीं है.	२८३	३८०
गुप्ता वैश्य क्षत्रियाके गमनमें.	२८३	३८२
अगुप्ता क्षत्रिया आदिके गमनमें	२८३	३८४
साहसी आदिकोंसे शून्य राज्यकी प्रशंसा	२८४	३८६
कुल पुरोहित आदिके त्यागमें.	२८४	३८८
माता आदिके त्यागमें.	२८४	३८९
ब्राह्मणोंके वादमें राजाका धर्म न कहना चाहिये.	२८४	३९०
सामाजिक आदिके न भोजनमें.	२८४	३९१
इसके उपरांत आकररहित.	२८५	३९४
धोबीके वस्त्र धोनेमें	२८५	३९६
कोलीके सूत ले लेनेमें.	२८५	३९६
बेचने योग्य वस्तुके मोल करनेमें	२८५	३९८
राजाकरि निषिद्धोंके ले जानेमें.	२८६	३९९
अकालके विक्रय आदिमें.	२८६	४००
विदेशके विक्रममें	२८६	४०१
मूल्यके स्थापित करनेमें.	२८६	४०२
तुलादिकी परीक्षा	२८६	४०३
नौकाकी उतराई	२८६	४०४
गर्भिणी आदिकी नावकी उतराई	२८७	४०७
नाववालेके दोषसे वस्तुके नाशमें	२८७	४०८
वैश्य आदिके व्यापार न कर क्षत्रिय और वैश्य दासकर्म योग्य नहीं हैं	२८८	४११
शूद्रसे दासकर्म करावे.	२८८	४१३
शूद्रदासपनसे नहीं छूटता है.	२८८	४१४
अब सत्रह दासोंके प्रकार.	२८८	४१५
भार्यादास आदि अधन हैं.	२८८	४१६
वैश्य तथा शूद्रोंसे अपना काम करना चाहिये	२८९	४१८
दिन दिन आय व्यय अर्थात् आमदनी और खरच देखे	२८९	४१९
अच्छी भांति व्यवहार देखनेका फल	२८९	४२०
अथ नवमोऽध्यायः ।		
स्त्री पुरुषोंके धर्म	२८९	१
स्त्रीकी रक्षा	२८९	२
जायाशब्दके अर्थका कहना.	२९०	८
स्त्रीकी रक्षाके उपाय....	२९१	११
स्त्रीके स्वभाव	२९१	१४
स्त्रियोंकी मंत्ररहित क्रिया.	२९२	१८
व्यभिचारके प्रायश्चित्तमें.	२९२	१९
स्त्री स्वामीके गुणयुक्त होती है.	२९३	२२
स्त्रीकी प्रशंसा	२९३	२६

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
व्यभिचार न करनेका फल.	२९४	२९
व्यभिचारका फल	२९४	३०
बीज और क्षेत्रका बलाबल.	२९४	३२
पराई स्त्रियोंमें बीज बोनेका निषेध	२९६	४१
स्त्री और पुरुषका एकत्व.	२९७	४५
एकबार अंशभाग आदि.	२९७	४७
क्षेत्रकी प्रधानता	२९७	४८
स्त्रीधर्म कहते हैं	२९८	५६
भाईकी स्त्रीमें गमन करनेमें पतित होता है	२९९	५७
नियोग कहते हैं	२९९	५९
नियोगमें दूसरा पुत्र न उत्पन्न करे	२९९	६०
कामसे गमनका निषेध.	३००	६३
नियोगकी निन्दा	३००	६४
वर्णसंकरकाल	३००	६६
वाग्दत्ताके विषयमें	३००	६९
कन्याके फिर देनेका निषेध.	३०१	७१
सप्तपदीपूर्वक स्त्रीके त्यागमें.	३०१	७२
दोषयुक्त कन्याके दानमें.	३०१	७३
स्त्रीकी जीविका कल्पना करिके प्रवास करे.	३०१	७४
प्रोषितभर्तृकाके नियम.	३०१	७५
एकतक स्त्रीकी प्रतीक्षा करे.	३०२	७७
रोगपीडितके अतिक्रममें.	३०२	७८
नपुंसक आदिको स्त्रीका त्याग नहीं	३०२	७९
अधिवेदमें....	३०२	८०
स्त्रीके मद्यपानमें	३०३	८४
धर्मकार्य सजातिकी स्त्री करे अन्य नहीं	३०३	८६
गुणीके लिये कन्यादान निर्गुणको नहीं	३०३	८८
स्वयंवरका काल	३०४	९०
स्वयंवरमें पिताके दिये अलंकारका त्याग.	३०४	९३
रजस्वलाके विवाहमें शुल्कका देना नहीं	३०४	९३
कन्या वरकी अवस्थाका नियम.	३०४	९४
विवाहकी आवश्यकता.	३०५	९५
मूल्य दी हुईके पतिके मरनेमें.	३०५	९७
मोल लेनेका निषेध	३०५	९८
वचनसे कन्या देकर अन्यके लिये दान नहीं	३०५	९९
स्त्री पुरुषका अव्यभिचार.	३०५	१०१
अब दायभाग कहते हैं.	३०६	१०३
विभागका काल	३०६	१०४
सामिल रहनेमें जेठेकी प्रधानता.	३०६	१०५
ज्येष्ठको प्रशंसा	३०६	१०६
ज्येष्ठको ज्येष्ठ वृत्ति न होनेपर.	३०७	११०
विभागमें हेतु कहते हैं.	३०७	१११
ज्येष्ठ आदिके विशोद्धरमें.	३०७	११२
एकभी श्रेष्ठवस्तु ज्येष्ठको देवें.	३०७	११४
दश वस्तुओंमें समानोंका उद्धार नहीं है	३०७	११५
सम तथा विषम विभाग.	३०७	११६
अपने २ भागोंको सबहिनके लिये देना चाहिये.	३०८	११८
विषम बकरी मेड जेठेकी है.	३०८	११९
क्षेत्रजके साथ विभागमें.	३०८	१२०
अनेक मातावालोंमें ज्येष्ठता.	३०९	१२२
जन्मसे ज्येष्ठता	३०९	१२५
पुत्रिका करनेमें	३१०	१२७
पुत्रिकाका ग्राहित्व नहीं है.	३१०	१३०
माताका स्त्रीधन कन्याका है.	३१०	१३१
पुत्रिकापुत्रका धन ग्राहित्व है.	३१०	१३२
पुत्रिका और औरसके विभागमें	३११	१३४

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
पुत्ररहित पुत्रिकाके धनमें.	३११	१३५
पुत्रिका दो प्रकारकी है.	३११	१३६
पौत्रप्रपौत्रका धनमें भाग.	३११	१३७
पुत्रशब्दका अर्थ	३११	१३८
पुत्रिका पुत्रके किये श्राद्धमें.	३११	१४०
दत्तकके धनग्राहित्वमें.	३१२	१४१
कामज आदिका धनग्राही नहीं है	३१२	१४३
क्षेत्रजके धन ग्राहित्वमें.	३१२	१४५
अनेक मातावालोंका विभाग.	३१३	१४९
विना व्याहे हुए शूद्रापुत्रके भागका निषेध	३१४	१५५
सजातीय अनेक मातावालोंका विभाग	३१४	१५६
शूद्रका समही भाग होता है.	३१४	१५७
दायाद अदायाद बांधवपन है.	३१४	१५८
कुपुत्रकी निंदा	३१५	१६१
औरस और क्षेत्रजके विभागमें.	३१५	१६२
क्षेत्रजके पीछे औरस होनेपर.	३१५	१६३
दत्तक आदि गोत्ररिक्थके भागी हैं	३१५	१६५
औरस आदि बारह पुत्रोंके लक्षण....	३१५	१६६
दासीपुत्रको समभागित्व.	३१७	१७९
क्षेत्रज आदि पुत्रके प्रतिनिधि हैं	३१७	१८०
औरस होनेपर दत्तक आदि नहीं कर्तव्य हैं	३१८	१८१
पुत्रिकापुत्रत्वका अतिदेश.	३१८	१८२
बारह पुत्रोंमें पहिला २ श्रेष्ठ है.	३१८	१८४
क्षेत्रज आदि रिक्थहर हैं.	३१८	१८५
क्षेत्रज आदिकोंको पितामहके धनमें	३१९	१८६
सपिंड आदि धन लेनेवाले होते हैं	३१९	१८७
ब्राह्मणका अधिकार है.	३१९	१८८
राजाका अधिकार है....	३१९	१८९
मृतपतिका नियुक्त पुत्रका अधिकार है	३१९	१९०
औरस पौनर्भवके विभागमें.	३२०	१९१
माताके धनके विभागमें.	३२०	१९२
स्त्रीधन कहते हैं	३२०	१९४
संततिसहित स्त्रीके धनाधिकारी	३२०	१९५
संततिरहित स्त्रीके धनाधिकारी.	३२०	१९६
साधारण स्त्रीधन न करे.	३२१	१९९
स्त्रियोंका अलंकरण नहीं वांटने योग्य है	३२१	२००
अब अनंश कहते हैं....	३२१	२०१
नपुंसक आदि क्षेत्रज अंशभागी होते हैं	३२१	२०३
साझेके जोडे हुए धनमें.	३२१	२०४
विद्या आदि	३२१	२०६
समर्थको भागकी उपेक्षामें.	३२२	२०७
अविभाज्य धनमें	३२२	२०८
नष्टके उद्धारमें	३२२	२०९
मिले हुए धनके विभागमें.	३२२	२१०
विदेश आदिमें गये हुएका भाग लोप नहीं होता है.	३२२	२११
गुणशून्य ज्येष्ठ समान भाग पावे	३२३	२१३
विकर्ममें स्थित सब भ्राता धनको नहीं पाते हैं ज्येष्ठके असाधारण करनेमें.	३२३	२१४
जिनका पिता जीवता है उनका विभाग	३२३	२१५
विभागके पीछे उत्पन्नके स्थलमें.	३२३	२१६
संततिरहित धनमें माताका अधिकार	३२३	२१७

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
ऋण और धनमें समान विभाग.	३२३	२१८
अविभाज्य कहते हैं	३२३	२१९
अब द्यूत समाव्हय कहते हैं.	३२३	२२०
द्यूतसमाव्हयका निषेध.	३२४	२२१
द्यूत समाव्हयका अर्थ.	३२४	२२३
द्यूत आदि करनेवालोंका दण्ड.	३२४	२२४
पाखंडी आदिकोंको देशसे निकाल दे	३२४	२२५
दंड देनेकी असमर्थतामें.	३२५	२२९
स्त्री बालक आदिके दंडमें.	३२५	२३०
नियुक्तके काम बिगाडनेमें.	३२५	२३१
कूटशास और बालवध आदि करनेमें	३२५	२३२
धर्मसे किये हुए व्यवहारको न लौटावे	३२६	२३३
अधर्मसे किया लौटाने योग्य है.	३२६	२३४
प्रायश्चित्त न करनेमें महापातकीका दण्ड	३२६	२३५
प्रायश्चित्त करनेसे दागने योग्य नहीं है	३२७	२४०
महापातकमें ब्राह्मणको दंड.	३२७	२४१
क्षत्रिय आदिका दंड.	३२७	२४२
महापातकीके धन लेनेमें.	३२७	२४३
ब्राह्मणके पीडा देनेमें दण्ड.	३२८	२४८
वधयोग्यके छुटानेमें दोष.	३२८	२४९
राजा कंटकोंके उखाडनेमें यत्न करे	३२८	२५२
आर्यकी रक्षाका फल....	३२९	२५३
चोर आदिके दंड न देनेमें दोष	३२९	२५४
निर्भय राज्य बढाना	३२९	२५५
प्रकट तथा गुप्त चोरोंका ज्ञान.	३२९	२५६
प्रकट तथा गुप्त तस्कर कहते हैं	३२९	२५७
उनका जानना	३३०	२६२
चोरोंका रोकनेवाला दण्डही है.	३३०	२६३
चोरका ढूंढना	३३०	२६४
चोरीके चिह्नके न देखनेमें.	३३१	२७०
चोरको आश्रय देनेवालेको दंड	३३२	२७१
स्वधर्मसे भ्रष्टके दंड देनेमें.	३३२	२७३
चोर आदिके उपद्रवमें न दौडनेवालेको दंड	३३२	२७४
राजाका खजाना लेनेवालेको दंड	३३२	२७५
संधिके फोडनेमें	३३२	२७६
गांठि काटनेमें	३३२	२७७
चोरके चिह्न धारण आदिमें.	३३२	२७८
तलाव तथा घरके फोडनेमें.	३३३	२७९
राजमार्गमें मल मूत्र करनेमें.	३३३	२८२
झूठी चिकित्सा करनेमें दंड.	३३३	२८४
प्रतिमाके तोडनेमें	३३४	२८५
मणियोंके अन्यथा छेद करनेमें.	३३४	२८६
विषव्यवहारमें	३३४	२८७
बंधन स्थान राजमार्गमें.	३३४	२८८
परकोटेके तोडने आदिमें.	३३४	२८९
अभिचारकर्ममें	३३४	२९०
अबीजके बेचने आदिमें.	३३५	२९१
स्वनारके दंड देनेमें	३३५	२९२
हलके उपकरण चुरानेमें.	३३५	२९३
अब सात प्रकृति कहते हैं.	३३५	२९४
अपनी और पराई शक्तिका देखना....	३३६	२९८
कामके आरंभमें	३३६	२९९
राजाका युगत्व कहना.	३३७	३०१
इंद्र आदिकोंके तेजको राजा धारण करता है	३३७	३०३
इन उपायोंसे चोरका पकडना.	३३८	३१२

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
ब्राह्मणको कुपित न करे.	३३८	३१३
ब्राह्मणकी प्रशंसा	३३९	३१४
श्मशानकी अग्नि दूषित नहीं ऐसेही ब्राह्मण	३३९	३१८
ब्राह्मण क्षत्रियको परस्पर साहित्य है	३४०	३२२
पुत्रको राज्य दे रणमें प्राणत्याग.	३४०	३२३
वैश्यके धर्मोंको कहते हैं.	३४०	३२६
शूद्रके कर्मोंको कहते हैं.	३४२	३३४

अथ दशमोऽध्यायः ।

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
अध्यापन ब्राह्मणहीका है.	३४२	१
वर्णोंका ब्राह्मण प्रभु है.	३४३	३
अब द्विजवर्णका कथन.	३४३	४
अब सजातीय कहते हैं.	३४३	५
पिताकी जातिके सदृश.	३४३	६
अब वर्णसंकर कहते हैं.	३४४	८
अब व्रात्य कहते हैं....	३४६	२०
व्रात्योंसे उत्पन्न आदि संकीर्ण.	३४६	२१
उपनयन करने योग्य....	३५०	४१
वे सुकर्मसे उत्कर्षको प्राप्त होते हैं	३५०	४२
क्रियाके लोपसे वृषलत्वको प्राप्त होते हैं	३५०	४३
दस्यु कहते हैं	३५०	४५
वर्णसंकरोंके कर्म कहते हैं.	३५१	४७
चांडालका कर्म कहते हैं.	३५१	५१
कर्मसे पुरुषका ज्ञान....	३५२	५७
वर्णसंकरकी निन्दा	३५२	५९
इनकाब्राह्मणके लिये प्राण त्यागना श्रेष्ठ है....	३५३	६२
साधारण कर्म कहते हैं.	३५३	६३
सातवें जन्ममें ब्राह्मणत्व और शूद्रत्व....	३५३	६४
वर्णसंकरमें श्रेष्ठता	३५४	६७
बीज और क्षेत्रका बलाबल.	३५४	७०
षट्कर्म कहते हैं	३५५	७५
ब्राह्मणकी जीविका	३५६	७६
क्षत्रिय तथा वैश्यकर्म कहते हैं.	३५६	७७
द्विजोंका श्रेष्ठ कर्म कहते हैं.	३५६	८०
आपत्तिका धर्म कहते हैं.	३५६	८१
वेचनेमें वर्जित कहते हैं.	३५७	८६
दूध आदिके वेचनेका फल.	३५८	९२
ज्यायसी वृत्तिका निषेध.	३५८	९५
पराये धर्मसे जीवनेकी निंदा.	३५९	९७
वैश्य शूद्रका आपद्धर्म.	३५९	९८
आपत्तिमें विप्रका हीन याजन आदि....	३५९	१०२
दान लेनेकी निंदा	३६०	१०९
याजन अध्यापन ब्राह्मण करे.	३६०	११०
प्रतिग्रह आदिके पापनाशमें.	३६१	१११
शिलोंछसे जीवनमें	३६१	११२
धनके याचनमें	३६१	११३
सात धनके आगम	३६१	११५
दश जीवनके हेतु	३६१	११६
व्याजसे जीवनेका निषेध.	३६२	११७
राजाओंका आपद्धर्म कहते हैं.	३६२	११८
शूद्रका आपद्धर्म	३६३	१२१
शूद्रको ब्राह्मणका आराधन श्रेष्ठ	३६३	१२२
शूद्रकी वृत्ति कल्पना करना.	३६३	१२४
शूद्रके संस्कार आदि नहीं.	३६४	१२६
शूद्रका विना मंत्रके धर्मकार्य.	३६४	१२७
शूद्रके धनके संचयका निषेध.	३६४	१२९

अथ एकादशोऽध्यायः ।

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
स्नातकके प्रकार	३६५	१
नवीन स्नातकोंको अन्न देनेमें.	३६५	२
वेदवेत्ताओंको अन्न देना.	३६५	४
भिक्षासे दूसरे व्याहका निषेध.	३६६	५
कुटुंबी ब्राह्मणके लिये दान.	३६६	६

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
सोमयागके अधिकारी.	३६६	७
कुटुंबके न भरण करनेमें दोष.	३६६	९
यज्ञशेष आदिके लिये वैश्या आदिसे धन लेना.	३६७	११
छः उपवासोंके पीछे आहार लेनेमें	३६७	१६
ब्रह्मस्व आदि हरनेका निषेध.	३६८	१८
असाधुओंका धन लेकर साधुओंके देनेमें	३६८	१९
यज्ञशील आदि धनकी प्रशंसा....	३६८	२०
ब्राह्मणके यज्ञके लिये चोर आदिमें दंड	३६८	२१
क्षुधासे पीडितकी वृत्ति कल्पना करनेमें....	३६८	२२
यज्ञके लिये शूद्रकी भिक्षाका निषेध	३६९	२४
यज्ञके लिये धन मांगके न रखना चाहिये	३६९	२५
देवता और ब्राह्मणके धन हरनेमें....	३६९	२६
सोमयागकी अशक्तिमें वैश्वानर यज्ञ	३६९	२७
समर्थके अनुकल्पक निषेध.	३६९	२८
द्विजको शक्तिसे वैरीका जय.	३७०	३१
क्षत्रिय आदिका बाहुबलसे शत्रुका जय	३७०	३४
ब्राह्मणका अनिष्ट न कहें.	३७०	३५
अल्प विद्यावाला तथा स्त्री आदिका होतृत्वका निषेध है	३७०	३६
अल्पकी दक्षिणा देनेमें.	३७१	३८
थोडी दक्षिणाके यज्ञकी निंदा.	३७१	३९
अग्निहोत्रीको उसके न करनेमें.	३७१	४१
शूद्रसे प्राप्त धनसे अग्निहोत्रकी निंदा	३७१	४२
विहितके न करने आदिमें प्रायश्चित्ती होता है.	३७२	४६
जाने विना जाने पापके लिये.	३७२	४६
प्रायश्चित्तीके संसर्गका निषेध.	३७२	४७
पहले पापसे कुष्ठी अंधे आदि होते हैं	३७२	४८
प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये	३७३	५४
पांच महापातक कहते हैं.	३७४	५५
ब्रह्महत्या आदिके समान कहते हैं	३७४	५६
उपपातक कहते हैं	३७४	६०
जातिभ्रंश करनेवाले कहते हैं.	३७६	६८
संकरीकरण कहते हैं....	३७६	६९
अपात्रीकरण कहते हैं.	३७६	७०
मलिनीकरण कहते हैं.	३७६	७१
अथ ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त.	३७६	७३
गर्भ आत्रेयी और क्षत्र वैश्यके वधमें प्रायश्चित्त	३७९	८८
स्त्री तथा मित्रका वध धरोहड दबा लेनेका	३७९	८९
मद्यपानका प्रायश्चित्त.	३८०	९१
सुराके प्रकार	३८०	९५
सुवर्णके चुरानेका प्रायश्चित्त.	३८२	१००
गुरुकी स्त्रीसे गमनका प्रायश्चित्त....	३८२	१०३
गोधन आदि उपपातकोंका प्रायश्चित्त	३८३	१०८
अवकीर्णका प्रायश्चित्त.	३८४	११८
जातिभ्रंश कर प्रायश्चित्त.	३८५	१२५
संकरीकरण आदिका प्रायश्चित्त	३८५	१२६

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
क्षत्रिय आदिके वधका प्रायश्चित्त	३८५	१२७
बिलाव आदिके वधका प्रायश्चित्त	३८६	१३२
घोडे आदिके वधका प्रायश्चित्त....	३८७	१३७
व्यभिचारित स्त्रीके वधमें प्रायश्चित्त	३८७	१३८
सर्प आदिके वधमें दानकी आसक्ति होनेपर....	३८७	१४०
क्षुद्रजंतुओंके समूहके वधमें.	३८८	१४१
वृक्ष आदिके काटनेमें.	३८८	१४३
अन्नमें उत्पन्न जीवोंके वधमें.	३८८	१४४
वृथा औषधी आदिके छेदनेमें.	३८८	१४५
अमुख्य सुराके पानमें प्रायश्चित्त....	३८९	१४७
सुराके पात्रमें स्थित जल पीनेका प्रायश्चित्त.	३८९	१४८
शूद्रका उच्छिष्ट जल पीनेमें.	३८९	१४९
सुरागंधके सूंघनेमें	३९०	१५०
विष्ठा मूत्र सुरासे मिले भोजनमें	३९०	१५१
फिर संस्कार होनेमें दंड आदिकी निवृत्ति	३९०	१५२
अभोज्य अन्न स्त्री शूद्रके उच्छिष्ट और अभक्ष्य मांसके भक्षणमें	३९०	१५३
शुक्त आदिके खानेमें.	३९०	१५४
शूकर आदिके विष्ठा मूत्रके भक्षणमें	३९०	१५५
सूखे सूना आदिमें स्थित अज्ञातमांसके भक्षणमें.	३९०	१५६
कुक्कुट नरसूकर आदि भक्षणमें.	३९१	१५७
मासिक अन्नके खानेका प्रायश्चित्त	३९१	१५८
ब्रह्मचारीके मधु मांस खानेमें.	३९१	१५९
बिलाव आदिका उच्छिष्ट खानेमें....	३९१	१६०
अभोज्य अन्न उतारना चाहिये.	३९१	१६१
सजातीयके धान्य आदि चुरानेमें	३९२	१६३
मनुष्यादिकोंके हरनेका प्रायश्चित्त	३९२	१६४
रांगा सीसा आदिके चुरानेमें.	३९२	१६५
भक्ष्ययानशय्या आदिक रहनेमें.	३९२	१६६
सूखे अन्न गुड आदिके लेनेमें.	३९२	१६७
मणि मोती चांदी आदिके लेनेमें	३९२	१६८
रुईके बने वस्त्र चुरानेमें.	३९२	१६९
अगम्यागमनका प्रायश्चित्त.	३९२	१७०
घोडी तथा रजस्वला आदिके गमनमें	३९३	१७४
दिनमें मैथुन आदि करनेमें.	३९३	१७५
चांडाली आदिके गमनमें.	३९३	१७६
व्यभिचारसे स्त्रियोंका प्रायश्चित्त....	३९४	१७७
चांडालीके गमनमें	३९४	१७९
पतितोंके संसर्गका प्रायश्चित्त.	३९४	१८२
पतितकी जीवतेही प्रेतक्रिया.	३९५	१८३
पतितके स्पर्श आदिकी निवृत्ति.	३९५	१८५
प्रायश्चित्त करनेवाले पतितका संसर्ग	३९५	१८७
पतित स्त्रियोंको अन्न आदि देना	३९५	१८९
पतित संसर्गका निषेध आदि.	३९५	१९०
बालक मारनेवाले आदिका त्याग....	३९६	१९१

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
व्रात्य और वेद त्यागनेवालेका प्रायश्चित्त	३९६	१९२
निंदित जोडे हुए धनका त्याग.	३९६	१९४
असत्प्रतिग्रहका प्रायश्चित्त.	३९६	१९५
प्रायश्चित्त किये हुएसे साम्य पूछे	३९६	१९६
गौओंके लिये घास देना और वहां संसर्ग	३९७	१९७
व्रात्यका याजन और पतितकी क्रिया कृत्य आदिमें.	३९७	१९८
वेदके शरणागतके त्यागमें.	३९७	१९९
कुत्ता आदिके काटनेका प्रायश्चित्त	३९७	२००
अपंक्तिका प्रायश्चित्त.	३९७	२०१
ऊंट आदि यानका प्रायश्चित्त.	३९७	२०२
जलमें वा विना जलके मूत्र त्यागमें प्रायश्चित्त.	३९७	२०२
वेदमें कहे हुए कर्मके त्यागमें.	३९८	२०४
ब्राह्मसेतु करके बोलनेमें.	३९८	२०५
ब्राह्मणके धमकानेमें....	३९८	२०६
नहीं कहे हुए प्रायश्चित्तके स्थलमें....	३९८	२१०
प्राजापत्य आदि व्रतका निर्णय.	३९९	२१२
व्रतके अंग कहते हैं	४०१	२२३
पाप न छपाना चाहिये.	४०२	२२८
पापके पीछे पछतावे....	४०३	२३१
पापवृत्तिकी निन्दा	४०३	२३३
मनके संतोषपर्यंत तप करे.	४०३	२३४
तपकी प्रशंसा	४०३	२३५
वेदके अभ्यासकी प्रशंसा.	४०५	२४६
रहस्यका प्रायश्चित्त	४०५	२४८
अथ द्वादशोऽध्यायः।		
शुभ अशुभ कर्मका फल.	४०८	१
कर्मका मन प्रवर्त्तक है.	४०९	४
तीनि प्रकारके मानस कर्म.	४०९	५
चारि प्रकारके वाचिक कर्म.	४०९	६
तीनि प्रकारके शारीरक कर्म.	४०९	७
मनवाक्काय और कर्मके भोगमें.	४०९	८
त्रिदंडीका परिचय	४१०	१०
क्षेत्रज्ञका परिचय	४१०	१२
जीवात्माका परिचय....	४११	१३
जीवोंकी अनंतता	४११	१५
परलोकमें पंचभूतोंका शरीर.	४११	१६
भोगके अनंतर आत्मामें लीन हो जाता है	४११	१७
धर्मअधर्मकी अधिकतासे भोग.	४१२	२०
तीनि प्रकारके गुणोंका कहना.	४१२	२४
अधिक गुण प्रधान देह है.	४१२	२५
सत्व आदिके लक्षण कहते हैं.	४१२	२६
सात्विक गुणके लक्षण.	४१३	३१
राजस गुणके लक्षण....	४१३	३२
तामस गुणके लक्षण	४१४	३३
संक्षेपसे तामस आदिके लक्षण.	४१४	३५
तीनों गुणोंकी तीनि प्रकारकी गति है	४१५	४०
तीन प्रकारकी गतिके प्रकार.	४१५	४१
पापसे कुत्सित गति होती है.	४१६	५२
पाप विशेपसे योनिविशेपकी उत्पत्ति	४१७	५३
पापकी प्रवीणतासे नरक आदि.	४१७	५४
मोक्षके उपाय षट्कर्म कहते हैं.	४२१	८३
आत्मज्ञानकी प्रधानता.	४२२	८५
वेदोक्त कर्मकी श्रेष्ठता.	४२२	८६
वैदिककर्म दो प्रकारका है.	४२२	८८
प्रवृत्तिनिमित्त कर्मका फल.	४२२	९०
समदर्शन....	४२३	९१
वेदके अभ्यास आदिमें.	४२३	९२
वेदबाह्य स्मृतिकी निन्दा.	४२३	९५

विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.	विषय.	पृष्ठ.	श्लोक.
वेदकी प्रशंसा	४२४	९७	परिषत् कहिये सभा....	४२६	११३
वेदके ज्ञाताको सेनापत्य आदि.	४२४	१००	मूर्खोंकी परिषत् नहीं होती.	४२६	११४
वेदके जाननेवालेकी प्रशंसा.	४२४	१०१	आत्मज्ञान पृथक् कहते हैं.	४२७	११८
वेदके व्यवसायीकी श्रेष्ठता.	४२५	१०३	वायु आकाश आदिका लय कहते हैं	४२८	१२०
तप और विद्यासे मोक्ष.	४२५	१०४	आत्माका स्वरूप कहते हैं.	४२८	१२२
प्रत्यक्ष अनुमान शब्दसे प्रमाण.	४२५	१०५	आत्माका दर्शन अवश्य करना चाहिये	४२९	१२५
धर्मका लक्षण	४२५	१०८	इस संहिताके पाठका फल.	४२९	१२६
विना कहे हुए धर्मके स्थलमें.	४२६	१०९			
शिष्ट कहते हैं	४२६	११०			

इति मनुस्मृतिस्थविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना
कल्याण—मुंबई.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

अन्वयांकभाषाविवृतिसमेता

मनुस्मृतिः ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः ॥
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐ नमो भगवते धर्ममूर्तये । गौडे नन्दनवासिनाम्नि सुजनैर्वन्द्ये वरेन्द्र्यां कुले श्रीमद्भट्टदिवाकरस्य तनयः कुल्लूकभट्टोऽभवत् । काश्यामुत्तरवाहिजह्नुतनयातीरे समं पण्डितैस्तेनेयं क्रियते हिताय विदुषां मन्वर्थमुक्तावली ॥ १ ॥ सर्वज्ञस्य मनोरसर्वविदपि व्याख्यामि यद्वाङ्मयं युक्त्या तद्बहुभिर्यतो मुनिवरैरेतद्बहु व्याहृतम् । तां व्याख्यामधुनातनैरपि कृतां न्याय्यां ब्रुवाणस्य मे भक्त्या मानववाङ्मये भवभिदे भूयादशेषेश्वरः ॥ २ ॥ मीमांसे बहु सेवितासि सुहृदस्तर्काः समस्ताः स्थ मे वेदान्ताः परमात्मबोधगुरवो यूयं मयोपासिताः । जाता व्याकरणानि बालसखिता युष्माभिरभ्यर्थये प्राप्तोऽयं समयो मनूक्तविवृतौ साहाय्यमालम्ब्यताम् ॥ ३ ॥ द्वेषादिदोषरहितस्य सतां हिताय मन्वर्थतत्त्वकथनाय ममोद्यतस्य । दैवाद्यदि क्वचिदिह स्खलनं तथापि निस्तारको भवतु मे जगदन्तरात्मा ॥ ४ ॥ मानववृत्तावस्यां ज्ञेया व्याख्या नवा मयोद्भिन्ना। प्राचीना अपि रुचिरा व्याख्यातॄणामशेषाणाम् ॥ ५ ॥ मनुमेकाग्रमासीनमित्यादि ॥ अत्र महर्षीणां धर्मविषयप्रश्ने मनोः श्रूयतामित्युत्तरदानपर्यन्तश्लोकचतुष्टयेनैतस्य शास्त्रस्य प्रेक्षावत्प्रवृत्त्युपयुक्तानि विषयसंबन्धप्रयोजनान्युक्तानि । तत्र धर्म एव विषयस्तेन सह वचनसंदर्भरूपस्य मानवशास्त्रस्य प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः संबन्धः । प्रमाणान्तरासंनिकृष्टस्य स्वर्गापवर्गादिसाधनस्य धर्मस्य शास्त्रैकगम्यत्वात् । प्रयोजनं तु स्वर्गापवर्गादि तस्य धर्माधीनत्वात् । यद्यपि पत्न्युपगमनादिरूपः कामोऽप्यत्राभिहितस्तथापि " ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा । " इति ऋतुकालादिनियमेन सोऽपि धर्म एव । एवं चार्थार्जनमपि ऋतानृताभ्यां जीवेतेत्यादिनियमेन धर्म एवेत्यवगन्तव्यम् ।

मोक्षोपायत्वेनाभिहितस्यात्मज्ञानस्यापि धर्मत्वाद्धर्मविषयत्वं मोक्षोपदेशकत्वं चास्य शास्त्रस्योपपन्नम् । पौरुषेयत्वेऽपि मनुवाक्यानामविगीतमहाजनपरिग्रहाच्छ्रुत्युपग्रहाच्च वेदमूलकतया प्रामाण्यम् । तथा च छांदोग्यब्राह्मणे श्रूयते । " मनुर्वै यत्किंचिद्वदत्तद्भेषजं भेषजतायाः" इति । बृहस्पतिरप्याह । "वेदार्थोपनिबन्धृत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् । मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते ॥ तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानि च । धर्मार्थमोक्षोपदेष्टा मनुर्यावन्न दृश्यते॥" महाभारतेऽप्युक्तम् । "पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः॥" विरोधिबौद्धादितर्कैर्न हन्तव्यानि । अनुकूलस्तु मीमांसादितर्कः प्रवर्तनीय एव । अत एव वक्ष्यति । "आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना । यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥" इति । सकलवेदार्थादिमननान्मनुं महर्षय इदं द्वितीयश्लोकवाक्यरूपम् उच्यते अनेनेति वचनमब्रुवन् । श्लोकस्यादौ मनुनिर्देशो मङ्गलार्थः । परमात्मन एव संसारस्थितये सार्वज्ञैश्वर्यादिसंपन्नमनुरूपेण प्रादुर्भूतत्वात्तदभिधानस्य मङ्गलातिशयत्वात् । वक्ष्यति हि । "एनमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।" इति । एकाग्रं विषयान्तराव्याक्षिप्तचित्तम् । आसीनं सुखोपविष्टम् ईदृशस्यैव महर्षिप्रश्नोत्तरदानयोर्योग्यत्वात् । अभिगम्य अभिमुखं गत्वा । महर्षयो महान्तश्च ते ऋषयश्चेति । तथा प्रतिपूज्य पूजयित्वा । यद्वा मनुना पूर्वं स्वागतासनदानादिना पूजितास्तस्य पूजां कृत्वेति प्रतिशब्दादुन्नीयते । यथान्यायं येन न्यायेन विधानेन प्रश्नः कर्तुं युज्यते प्रणतिभक्तिश्रद्धातिशयादिना । वक्ष्यति च । " नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः । " इति । अभिगम्य प्रतिपूज्य अब्रुवन्निति क्रियात्रयेऽपि मनुमित्येव कर्म । अब्रुवन्नित्यत्राकथितकर्मता ब्रुञ्धातोर्द्विकर्मकत्वात् ॥ १ ॥

श्रीनारायणपादपद्मयुगलं ध्यात्वा पितुः पद्युगं
स्मृत्वा श्रीमनुना प्रणीतमधुना व्याख्यायते भाषया ॥
लोकानां च हिताय केशव इति ख्यातेन सम्यङ्मया
तर्काब्ध्यङ्कनिशाकरैः परिमिते श्रीवैक्रमे वत्सरे ॥ १ ॥
यत्किञ्चित्स्खलितं भवेदिह धियस्तत्क्षम्यतां सज्जना
एषा वै मम चार्थनाऽत्र विदुषामग्रे चिरं तिष्ठतु ॥
ग्रंथोयं मनुभाषितोऽतिकठिनः सर्वैरपि ज्ञायते
तस्मात्साहसमत्र मेऽतिविपुलं जानंतु सर्वे बुधाः ॥ २ ॥

भाषा—एकाग्रचित्त सुखसे बैठे हुए मनुजीके सन्मुख जाके यथायोग्य उनका सत्कार करके न्यायपूर्वक अर्थात् प्रणति भक्ति और श्रद्धाकी अधिकता आदिसे महर्षि यह वचन बोले ॥ १ ॥

भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥
अन्तरप्रभवानां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

भाषा-हे भगवन् अर्थात् छः प्रकारके ऐश्वर्य्य करि सम्पन्न! सब वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णोंका और अन्तरप्रभाव जो संकीर्ण जाति अर्थात् अनुलोमज प्रतिलोमज अंबष्ठ क्षत्तृ करण आदि जो अन्य जातिके स्त्रीपुरुषके योगसे उत्पन्न हैं उन सबोंके धर्म्म यथायोग्य अर्थात् जो जिसके योग्य है सो क्रमसे अर्थात् पहले जातकर्म फिर नामकरण इत्यादिक रीतिसे हमसे कहनेको योग्य हो ॥ २ ॥

त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः ॥
अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्य्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ ३ ॥

भाषा-जिससे हे प्रभो! तुम्हीं एक अचिन्त्य कहिये जो चिंतवनमें न आ सके और जिसका प्रमाण न हो सके ऐसे इस स्वयम्भू अर्थात् आपसे उत्पन्न हुए वेदमें लिखे हुए ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ ब्रह्मज्ञानके जाननेवाले हो ॥ ३ ॥

स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ॥
प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षीञ्छ्रूयतामिति ॥ ४ ॥

भाषा-उन महात्माओं करिके उक्त प्रकारसे अर्थात् प्रणय, भक्ति और श्रद्धाकी अधिकता आदिसे पूछे गये वे सामर्थ्यवाले मनुजी उन सब महर्षियोंका सत्कार करि यह बोले कि सुनिये ॥ ४ ॥

आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥

भाषा-यह जगत् अंधकार अर्थात् प्रकृतिमें लीन और अप्रज्ञात अर्थात् जो जाना न जाय और अलक्षण अर्थात् चिन्हरहित जिसका कुछभी चिन्ह न जाना जाय और जिसमें कुछ तर्क न होय सके इसीसे अविज्ञेय कहिये जो कुछभी जाना न जाय और सर्वत्र सोये हुएके समान होता भया ॥ ५ ॥

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥

भाषा-अव्यक्त अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियोंको प्रत्यक्ष नहीं ऐसा स्वयम्भू परमात्मा इस महाभूत आदि आकाशादिकोंको प्रकाशित करता हुआ जिसका पराक्रम कहिये सृष्टिसामर्थ्य नहीं रुका और प्रकृतिकी प्रेरणा करनेवाला प्रकट हुआ ॥ ६ ॥

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥

भाषा-सब लोक वेद पुराण इतिहासादिकोंमें प्रसिद्ध परमात्मा इन्द्रियोंके ज्ञानसे बाहर है अर्थात् केवल प्रसन्न मन करिके ग्रहण करने योग्य और अवयवों करिके रहित सूक्ष्मरूप तथा नित्य रहनेवाला और सब भूतोंका आत्मा और प्रमाण करनेके योग्य नहीं है वही आप प्रकाशित हुआ अर्थात् महत्तत्त्व आदि कार्य्यरूपसे प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥

भाषा-नाना प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छा करते हुए उस परमात्माने जल उत्पन्न होय ऐसे ध्यान करिके अपने शरीरसे आदिमें जलहीको उत्पन्न किया और उस जलमें अपना शक्तिरूप बीज स्थापित किया ॥ ८ ॥

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥

भाषा-वह बीज परमेश्वरकी इच्छासे सुवर्णकासा अंडा हो गया जिसकी कांति सूर्य्यकीसी थी उस अंडेमें सब लोकोंका उत्पन्न करनेवाला ब्रह्मारूप वह परमात्मा आपही उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥

भाषा-जल नरसे उत्पन्न हैं इस कारण उनका नाम नार है वेही नार इस परमात्माके प्रथम आश्रय अर्थात् निवास स्थान हैं तिससे इस परमात्माका नाम नारायण हुआ ॥ १० ॥

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

भाषा-जो वह लोक वेद आदि सबमें प्रसिद्ध परमात्मा सब उत्पन्न होनेवालोंका कारण और अव्यक्त अर्थात् बाहरी इन्द्रियों करि नहीं ग्रहण करने योग्य और उत्पत्तिविनाशरहित और सत् असत्का आत्माभूत है उस करिके उत्पन्न किया हुआ वह पुरुष हुआ वह पुरुष ब्रह्म इस नामसे कहा जाता है ॥ ११ ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥

स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥ १२ ॥

भाषा-उस पहले कहे हुए अंडेमें उस भगवान्ने एक वर्षतक वसिके आपही अपने ध्यानसे उसके दो खंड किये ॥ १२ ॥

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे ॥
मध्येव्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥ १३ ॥

भाषा-उसने उस अंडेके दोनों खंडोंसे आकाश और पृथिवीको अर्थात् ऊपरके खंडसे स्वर्गलोक और नीचेके खंडसे भूलोक बनाया और दोनोंके बीचमें आकाश तथा आठों दिशा और स्थिर जलोंका स्थान समुद्र बनाया ॥ १३ ॥

उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ॥
मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥

भाषा-अब महदादिकोंके क्रमहीसे जगत्की रचना है यह दिखानेके लिये उनकी सृष्टि कहते हैं ब्रह्माने परमात्मासे उसी रूप करिके सत् असत् रूप मनको उत्पन्न किया और मनसे मैं इस अभिमानकार्य्य करिके युक्त कार्य्य करनेमें समर्थ अहंकार तत्त्वको उत्पन्न किया ॥ १४ ॥

महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ॥
विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ १५ ॥

भाषा-अविकाररूप प्रकृतिसहित परमात्माहीसे अहंकारसे प्रथम महत्तत्वको उत्पन्न किया फिर आत्माको उसके पश्चात् संपूर्ण सत्व रज तम युक्त सृष्टिको वर्णन पिछले श्लोकोंमें हो चुका है और आगे होगा। उत्पन्न किया फिर शब्द स्पर्श रूप रस गंधकी ग्रहण करनेवाली श्रोत्र आदि पांच बुद्धींद्रियोंको और वायु आदि पांच कर्मेन्द्रियोंको और पांच शब्द तन्मात्रादिकोंको क्रमसे उत्पन्न किया १५

तेषान्त्ववयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् ॥
संनिवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १६ ॥

भाषा-उन पहले कहे हुए अहङ्कार और तन्मात्राओंके जो सूक्ष्म अवयव हैं तिनको अपनी मात्राओंमें छःहोंके स्वविकारोंमें मिलाकर परमात्माने मनुष्य तिर्य्यक् स्थावर आदि सब भूत बनाये उनमें तन्मात्राओंका विकार पंचमहाभूत और अहंकारका विकार इन्द्रियें हैं, पृथ्वी आदि पंच महाभूतोंको शरीर रूपसे परिणामको प्राप्त होनेपर तन्मात्रा और अहङ्कारको मिलाके सब कार्यके समूहकी रचना होती है, इसीसे ये अमितौजस अर्थात् अनंत कार्योंके बनानेसे अति वीर्यसे शोभित हैं ॥ १६ ॥

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् ॥
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ १७ ॥

भाषा-मूर्ति शरीरको कहते हैं उसके बनानेवाले अवयव सूक्ष्म तन्मात्रा अहङ्कार रूप ये छः प्रकृतिसहित उस ब्रह्मके वक्ष्यमाण पृथ्वी आदि भूत और पहले कही हुई श्रोत्र आदि इन्द्रियां कार्यभावसे आश्रित हैं क्योंकि तन्मात्राओंसे भूतोंकी और अहंकारसे इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होनेसे उस ब्रह्मकी इन्द्रियादिक करिके शोभित मूर्तिको लोग शरीर कहते हैं. क्योंकि पञ्चतन्मात्रा और अहंकार इन छः-का जो आश्रय करे वह शरीर है. इस व्युत्पत्तिसेभी वही भाव आया ॥ १७ ॥

तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्म्मभिः ॥
मनश्चावयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥

भाषा-फिर उस नाशरहित और सब भूतोंके करनेवाले ब्रह्मसे अपने अपने कार्योंके साथ आकाश आदि महाभूत और सूक्ष्म अवयवोंके साथ मन उत्पन्न हुवा आकाशका काम अवकाश देना, वायुका गति, तेजका पाक, जलका पिंडीकरण, पृथ्वीका धारण और मनका शुभ अशुभकी इच्छा है ॥ १८ ॥

तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ॥
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवत्यव्ययाद्व्ययम् ॥ १९ ॥

भाषा-अपना कार्य्य करनेसे पराक्रमी उन अहंकार और पञ्चतन्मात्रारूप सातकी सूक्ष्ममात्रा अर्थात् शरीर बनानेवाले अविनाशी भागोंसे विनाश होनेवाला जगत् उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥

आद्याद्यस्य गुणांस्त्वेषामवाप्नोति परः परम् ॥
यो यो यावतिथश्चैषां स स तावद्गुणः स्मृतः ॥ २० ॥

भाषा-इनमें जो आदि आकाश आदि हैं तिनके शब्द आदि गुणोंको वायु आदि आगेके तत्व प्राप्त होते हैं इनके मध्यमें जो जौनसा है वह उसके दूसरे आदि गुणों करि युक्त कहा है. जैसे आकाशका गुण शब्द है, वायुके शब्द स्पर्श हैं, तेजके शब्द, स्पर्श, रूप हैं, आपके शब्द, स्पर्श, रूप, रस हैं और भूमिके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध हैं ॥ २० ॥

सर्वेषां तु स नामानि कर्म्माणि च पृथक् पृथक् ॥
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्म्ममे ॥ २१ ॥

भाषा-हिरण्यगर्भरूपसे स्थित उस परमात्माने सबोंके नाम जैसे गौकी जातिका

गौ और घोडेकी जातिका घोडा और कर्म्म जैसे ब्राह्मणके पढना आदि क्षत्रिके प्रजा-रक्षा आदि और लौकिकी व्यवस्था जैसा कुम्हारका घडा बनाना और कोलीका कपडा बुनना आदि वेदके शब्दोंहीसे सृष्टिकी आदिमें भिन्न भिन्न बनाये ॥ २१ ॥

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः ॥
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥ २२ ॥

भाषा-उस ब्रह्माने देवताओंके गणको और इन्द्रादिक प्राणियोंको तथा कर्म्म-स्वभावोंको अप्राणी पाषाणादिकोंको और साध्य जो देवता विशेष हैं तिनके समूह-को ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंको और सूक्ष्म साध्यनाम देवताविशेषके समूहको उत्पन्न किया ॥ २२ ॥

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ॥
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ २३ ॥

भाषा-सनातन ब्रह्मरूप अपनी बुद्धिमें स्थित ब्रह्माके ऋक, यजु, साम नाम वेदोंको अग्नि, वायु और सूर्यसे यज्ञकी सिद्धिके लिये गौके अयनमें स्थित दूधके समान निकाला ॥ २३ ॥

कालं कालविभागांश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥
सरितः सागरान् शैलान् समानि विषमाणि च ॥ २४ ॥

भाषा-फिर काल और कालविभागों अर्थात् मास ऋतु अयन (जैसे उत्तरायण दक्षिणायन) वर्षादिकोंको कृत्तिका आदि नक्षत्रोंको सूर्य्यादिक ग्रहोंको और नदी समुद्र पर्वत तथा समान और ऊंचे नीचे स्थानोंको बनाया ॥ २४ ॥

तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च ॥
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥ २५ ॥

भाषा-फिर इन प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छायुक्त उस ब्रह्माने तप अर्थात् प्राजापत्य आदिको, वाणीको, रति अर्थात् चित्तके संतोषको, काम अर्थात् इच्छाको और क्रोध अर्थात् चित्तके विकारको उत्पन्न किया ॥ २५ ॥

कर्म्मणां च विवेकार्थं धर्म्माधर्म्मौ व्यवेचयत् ॥
द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २६ ॥

भाषा-धर्म यज्ञ आदि जो करने योग्य और अधर्म ब्रह्महत्या आदि जो न करने योग्य इस प्रकार कर्म्मोंके विभाग करनेके लिये धर्म अधर्मको जुदा जुदा किया अर्थात् धर्मका फल सुख और अधर्मका फल दुःख यह विवेचना की और आपसमें विरोध रखनेवाले सुख दुःखके जोडोंसे इन प्रजाओंको युक्त किया

अर्थात् उनके पीछे सुख दुःख लगा दिये, और आदि शब्दसे यह भाव है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, क्षुधा, पिपासा इनकेभी जोडोंको पीछे लगा दिया ॥ २६ ॥

अण्व्यो मात्रा विनाशिन्यो दशार्द्धानां तु याः स्मृताः ॥
ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः ॥ २७ ॥

भाषा–उन पंच महाभूतोंकी जो सूक्ष्म पंच तन्मात्रारूप विनाश होनेवाली पंचमहाभूतरूप हैं तिनके साथ सब जगत् क्रमसे अर्थात सूक्ष्मसे स्थूल और स्थूलसे अति स्थूल उत्पन्न होता है इससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्मकी मानसी सृष्टि जानी गई ॥ २७ ॥

यन्तु कर्मणि यस्मिन्स न्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः ॥
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥ २८ ॥

भाषा–उस प्रजापतिने जिस जाति विशेष अर्थात् व्याघ्र आदिको सृष्टिके आरम्भमें हरिणोंके मारने आदि जिस काममें लगाया वार वार उत्पन्न होकर उस जातिविशेषका जीव वही कर्म आपही करने लगा ॥ २८ ॥

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ॥
यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥ २९ ॥

भाषा–ब्रह्माने जिस जीवका जो कर्म जैसे हिंसाका कर्म सिंह आदिका हाथियोंका मारना, अहिंसा जैसे ब्राह्मणादिकोंको हरिणादिकोंपर दया करना, क्रूर जैसे क्षत्रियादिकोंका कर्म, धर्म जैसे ब्रह्मचारी आदिका गुरुकी सेवा करना, अधर्म जैसे ब्रह्मचारीको मांस मैथुन सेवा आदि ऋत अर्थात् सत्य सो बहुधा देवताओंको और अनृत अर्थात् झूंठ सोभी बहुत करके मनुष्योंको ऐसे जो कर्म जिसको नियत किये वह आपही उनको करने लगा ॥ २९ ॥

यथर्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्त्तुपर्य्यये ॥
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः ॥ ३० ॥

भाषा–जैसे वसंत आदि ऋतु अपने २ समयमें अपने २ चिह्न आमके बौर आदिको प्राप्त होते हैं ऐसेही देहधारीभी हिंसा आदि अपने २ कर्मोंको प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत् ॥ ३१ ॥

भाषा–फिर उस परमेश्वरसे भूलोक आदिकी वृद्धिके लिये मुख बाहु ऊरु तथा पांवोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णोंको क्रमसे बनाया ॥ ३१ ॥

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥

भाषा-उस ब्रह्माने देहके दो खंड करके आधेसे पुरुष हुआ और आधेसे स्त्री उसमें मैथुन धर्मसे विराड्नाम पुरुषको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥

तपस्तप्त्वाऽसृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ॥
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥

भाषा-मनु कहते हैं कि हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस विराट् पुरुषने तप करिके जिसको आप उत्पन्न किया उसको इस जगत्की सृष्टि करनेवाले मुझ मनुको जानो ॥३३॥

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥

भाषा-मैंने प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छासे अति कठिन तप करके पहले दश प्रजापति महर्षियोंको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ ३५ ॥

भाषा-उनके नाम यह हैं मरीच १ अत्रि २ अङ्गिरा ३ पुलस्त्य ४ पुलह ५ क्रतु ६ प्रचेता ७ वसिष्ठ ८ भृगु ९ नारद १० ॥ ३५ ॥

एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन्भूरितेजसः ॥
देवान्देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥

भाषा-इन मरीचि आदि बडे तेजवालोंने और बडे तेजवाले सात मनुओंको तथा देवताओंको और देवताओंके निवासके स्थान स्वर्ग आदिकोंको तथा महर्षियोंको उत्पन्न किया यह मनुशब्द अधिकारका वाची है चौदह मन्वंतरोंमें जब जिसका सृष्टि करनेका अधिकार होता है तब वही उस मन्वंतरमें स्वायम्भुव स्वारोचिष आदि नामोंसे मनु कहा जाता है ॥ ३६ ॥

यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाऽप्सरसोऽसुरान् ॥
नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान् ॥ ३७ ॥

भाषा-इन्होंने यक्ष अर्थात् कुवेर और उनके अनुचरोंको तथा राक्षसों अर्थात् रावण आदिकोंको और उनसे नीच अशुद्ध मरुदेशके रहनेवाले पिशाचोंको, चित्ररथ आदि गंधर्वोंको, उर्वशी आदि अप्सराओंको, विरोचन आदि असुरोंको, वासुकी आदि

नागोंको, अलगर्द आदि सर्पोंको, गरुड आदि सुपर्णोंको और आज्यपा आदि पितरोंके समूहको उत्पन्न किया ॥ ३७ ॥

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥

भाषा—फिर इन्होंने बिजली अर्थात् मेघमें चमकनेवाली ज्योतिको, वज्र अर्थात् वृक्षादिकोंकी नाश करनेवाली ज्योतिको, मेघोंको, रोहित नाम सीधे इन्द्र धनुषको, उसी प्रकारके टेढे धनुषाकार इन्द्रधनुषको, उल्का अर्थात् रेखाके आकार आकाशसे गिरती हुई ज्योतिको, निर्घात कहिये पृथ्वी आकाशमें स्थित उत्पात शब्दको, केतु कहिये उत्पातरूप पूंछवाले तारोंको तथा औरभी ध्रुव अगस्त्य आदि नाना प्रकारकी छोटी बडी ज्योतियोंको उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्च विहंगमान् ॥
पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ ३९ ॥

भाषा—घुडमुंहे किन्नरोंको वानरोंको मछलियोंको और नाना प्रकारके पक्षियोंको गौ आदि पशुओंको हरिण आदि मृगोंको व्याल अर्थात् सिंहादिकोंको और ऊपर नीचे दोनों ओरके दांतवाले घोडा आदिको उत्पन्न किया ॥ ३९ ॥

कृमिकीटपतंगांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥
सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ ४० ॥

भाषा—कृमि छोटे कीडोंको और कीट अर्थात् कृमिसे कुछ मोटे कीडोंको पतंगोंको और जूं मक्खी तथा खटमलोंको और सब डांस मच्छरोंको और नाना प्रकारके स्थावर अर्थात् वृक्ष लता आदिको उत्पन्न किया ॥ ४० ॥

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः ॥
यथाकर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४१ ॥

भाषा—ऐसे इन मरीचि आदि दश महर्षियोंने मेरी आज्ञा लेकर बडा तप करिके कर्मयोगसे अर्थात् जिसका जैसा कर्म है उसके अनुरूप देव मनुष्य तिर्यक् योनियोंमें उत्पन्न किया ॥ ४१ ॥

येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ॥
तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोगं च जन्मनि ॥ ४२ ॥

भाषा—इन जीवोंमें जिसका जो कर्म इस संसारमें पहले आचार्योंने कहा है जैसे औषधी फलपाकांत है और बहुत फल फूलोंकी देनेवाली है और ब्राह्मणादिकोंका पढना आदि सो सब वैसाही और जन्म आदिके क्रमयोगको तुमसे कहूंगा ॥ ४२ ॥

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः ॥
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥ ४३ ॥

भाषा-पशु, मृग, व्याल, दोनों ओरके दांतवाले, राक्षस, पिशाच और मनुष्य ये सब जरायुज हैं अर्थात् झिल्लीमें उत्पन्न होते हैं फिर उसे छूटते हैं ॥ ४३ ॥

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः ॥
यानि चैवं प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥ ४४ ॥

भाषा-पक्षी, सांप, मगर, मछली और इस प्रकारके जीव जो स्थलमें उत्पन्न होते हैं जैसे गिरगट आदि और जो जलमें उत्पन्न शंख आदि हैं वे सब अंडज हैं अर्थात् पहले अंडा उत्पन्न होता है फिर उस अंडेमेंसे वे जीव उत्पन्न होते हैं ॥४४॥

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥
ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किंचिदीदृशम् ॥ ४५ ॥

भाषा-डांस मच्छर जूं मक्खी खटमल ये सब स्वेदज हैं और जो ऐसेही भुनगे चेंटी आदि हैं वे सब ऊष्मा अर्थात् गरमीसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४५ ॥

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ॥
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ ४६ ॥

भाषा-बीजके बोने और डालियोंके लगानेसे उगनेवाले सब उद्भिज्ज हैं अर्थात् बीज और भूमिको फोडकर ऊपरको निकलते हैं और फलोंके पकनेपर जिनका नाश हो जाता है अर्थात् सूख जाती हैं वे धान आदि सब औषधी हैं वे बहुतसे फूलफलोंकरि युक्त होती हैं ॥ ४६ ॥

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ॥
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥ ४७ ॥

भाषा-जिनमें फूलके विना फल आता है वे बड, पीपल, पाकरि आदि वनस्पति कहाते हैं और जिनमें फूल फल दोनों होते हैं वे दोऊ वृक्ष कहे गये हैं॥४७॥

गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः ॥
बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ॥ ४८ ॥

भाषा-गुच्छ अर्थात् जिनमें जडहीसे लताओंका समूह निकलता है शाखा नहीं होती है जैसे चमेली बेला आदि और गुल्म जैसे एक जडसे उगे हुए बहुतसे ईख सरपता आदिको और तृण अर्थात् घास आदि और प्रतान जैसे तुंबी आदि

तथा वल्ली जैसे गिलोय आदि येभी सब बीजके बोने और डालियोंके लगानेसे ऊगनेवाले हैं ॥ ४८ ॥

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ॥
अन्तस्संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥ ४९ ॥

भाषा–ये वृक्ष आदि विचित्र दुःख है फल जिसका और धर्मकर्म है कारण जिसके ऐसे तमोगुणसे घिरे हुए हैं और सुख दुःखकारि युक्त ये सब अन्तस्संज्ञा अर्थात् भीतर ज्ञानयुक्त होते हैं ॥ ४९ ॥

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः ॥
घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ॥ ५० ॥

भाषा–प्राणियोंके जन्म होने और मरनेसे घोर अर्थात् दुःख देनेवाले तथा सदा नाश होनेवाले इस जगत्में ब्रह्मसे लेकर स्थावरतक उत्पत्तियां कहीं ॥ ५० ॥

एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं मां चाचिन्त्यपराक्रमः ॥
आत्मन्यन्तर्दधे भूयः कालं कालेन पीडयन् ॥ ५१ ॥

भाषा–इस प्रकार सृष्टि कहिके अब प्रलयकी दशा कहते हैं वह अचिंत्य शक्ति प्रजापति ऐसे उक्त प्रकारसे इस स्थावर जंगमरूप जगत्को तथा मुझको उत्पन्न करके सृष्टिके कालको प्रलयके नाश करता हुआ आत्मामें अंतर्धान हो गया॥५१॥

यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् ॥
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥ ५२ ॥

भाषा–इसमें कारण कहते हैं जब वह प्रजापति जागता है अर्थात् सृष्टि और स्थितिकी इच्छा करता है तब यह जगत् श्वास और प्रश्वास और आहार आदिकी चेष्टाको प्राप्त होता है और जब सोता है अर्थात् इच्छारहित होता है तब यह जगत् लीन होता जाता है ॥ ५२ ॥

तस्मिन्स्वपति तु स्वस्थे कर्मात्मानः शरीरिणः ॥
स्वकर्मभ्यो निवर्त्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ॥ ५३ ॥

भाषा–पहले कहे हुएहीको स्पष्ट करते हैं उस प्रजापतिके सोने अर्थात् इच्छारहित होनेपर तथा स्वस्थ कहिये मनका व्यापार समेट लेनेपर कर्मसे देह पानेवाले क्षेत्रज्ञ अर्थात् प्राणी देहधारण करने आदि अपने कर्मोंसे निवृत्त हो जाते हैं और सब इंद्रियोंसमेत मनभी अपनी वृत्तिसे रहित हो जाता है ॥ ५३ ॥

युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि ॥
तदाऽयं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः ॥ ५४ ॥

भाषा-अब महाप्रलय कहते हैं एकही समयमें जब सब भूत उस परमात्मामें प्रलयको प्राप्त होते हैं तब यह सब भूतोंका आत्मा जाग्रत और स्वप्नके व्यापारसे रहित हो सुखसे सोता है अर्थात् सोयासा होता है यद्यपि नित्य आनन्दस्वरूप परमात्मामें सोना नहीं हो सकता तिसपरभी जीवके धर्मका उपचार करते हैं ॥५४॥

तमोऽयं तु समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेन्द्रियः ॥
न च स्वं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तितः ॥ ५५ ॥

भाषा-अब प्रलयके प्रसंगसे जीवके निकलनेकोभी दो श्लोकोंमें कहते हैं. यह जीव तम अर्थात् ज्ञानकी निवृत्तिको प्राप्त होके बहुत कालतक इन्द्रिय आदिकों करि सहित स्थित रहता है और जब श्वास प्रश्वास आदि अपने कर्मोंको नहीं कर सकता है तब मूर्ति जो प्रथम देह है तिससे निकल जाता है ॥ ५५ ॥

यदाऽणुमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च ॥
समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥ ५६ ॥

भाषा-दूसरी देहको कब धारण करता है सो कहते हैं. जब जीव अणुमात्रिक अर्थात् भूत १ इंद्रिय २ मन ३ बुद्धि ४ वासना ५ कर्म ६ वायु ७ अविद्या ८ रूप इस पुर्य्यष्टक करि युक्त हो स्थास्नु कहिये स्थिररूप वृक्ष आदिके कारणमें प्रवेश करता है तब वृक्ष आदि रूप स्थावर शरीरको धारण करता है और जब चरिष्णु कहिये मनुष्य आदिके जंगमरूप बीजमें प्रवेश करता है तब मनुष्य आदिके शरीरको कर्मके अनुसार धारण करता है ॥ ५६ ॥

एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं चराचरम् ॥
सञ्जीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ॥ ५७ ॥

भाषा-प्रसंगसे आये हुए जीवके उत्क्रमणको कहिके मुख्यका कथन करते हैं इस प्रकार सदा अविनाशी वह ब्रह्मा जगत् तथा स्वप्नसे इस स्थावर जंगमरूप जगत्को जिवाता है और मारता है ॥ ५७ ॥

इदं शास्त्रं तु कृत्वाऽसौ मामेव स्वयमादितः ॥
विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् ॥ ५८ ॥

भाषा-पहले ब्रह्माने इस शास्त्रको बनाके सृष्टिकी आदिमें विधिपूर्वक मुझकोही पढाया और मैंने मरीचि आदि मुनियोंको पढाया. शंका-जो कहो कि, ब्रह्माके

कहे हुए इस शास्त्रको मनुका कैसे कहते हो ? उत्तर—यहां मेधातिथि कहते हैं कि शास्त्रशब्दसे शास्त्रका अर्थ विधिनिषेधसमूह कहा जाता है उसको ब्रह्माने मनुको पढाया मनुने उसका प्रतिपादन करनेवाला ग्रंथ वनाया इससे मनुका शास्त्र कहाया ५८

एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ॥
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ ५९ ॥

भाषा—मनु कहते हैं कि इन्होंने मुझसे यह सव पढा है इस कारण ये भृगु मुनि इस शास्त्रको तुझे संपूर्ण सुनावेंगे ॥ ५९ ॥

ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः ॥
तानब्रवीदृषीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ६० ॥

भाषा—तिस पीछे मनु करिके ऐसे कहे गये भृगु महर्षि प्रसन्न होके सव ऋषियोंसे यह बोले कि सुनिये ॥ ६० ॥

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोऽपरे ॥
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः ॥ ६१ ॥

भाषा—ब्रह्माके पौत्र इन स्वायम्भुव मनुके वंशमें छः और महात्मा वडे पराक्रमी मनु हुए उन्होंनेभी अपने २ सृष्टिपालन आदिके समयमें अपनी २ प्रजा उत्पन्न की ॥ ६१ ॥

स्वारोचिषश्चौत्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा ॥
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च ॥ ६२ ॥

भाषा—स्वारोचिष १ औत्तमि २ तामस ३ रैवत ४ चाक्षुष ५ और वडे तेजस्वी वैवस्वत ६ ये छः मनुनामसे कहे गये ॥ ६२ ॥

स्वायम्भुवाद्याः सप्तैते मनवो भूरितेजसः ॥
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥ ६३ ॥

भाषा—स्वायम्भुव आदि इन सात मनुओंने अपने २ अधिकारमें इस स्थावर जंगम जगत्को उत्पन्न करके पालन किया ॥ ६३ ॥

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला ॥
त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः ॥ ६४ ॥

भाषा—अव कहे हुए मन्वंतरके सृष्टिप्रलय आदिके कालका प्रमाण जाननेके लिये कालका क्रम कहते हैं. आपसे आंखोंके खुलने मूंदनेको निमेष अर्थात् पलक कहते हैं. उन अठारह पलकोंका एक काष्ठा नाम कालका प्रमाण हुआ, उन तीस

काष्ठाओंकी एक कला होती है, तीस कलाओंका एक मुहूर्त्त होता है, और तीस मुहूर्त्तोंका एक अहोरात्र अर्थात् दिनरातिका समय होता है ॥ ६४ ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ॥
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥ ६५ ॥

भाषा–मनुष्यों और देवताओंके दिन रात्रिका विभाग सूर्य्य करते हैं उनमें रात्रि प्राणियोंके सोनेके लिये और दिन काम करनेके लिये है ॥ ६५ ॥

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ॥
कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ ६६ ॥

भाषा–मनुष्योंके एक महीनेका पितरोंका रात दिन होता है उसके दोनों पक्षोंमें काम करनेके लिये कृष्णपक्ष दिन है सोनेके लिये शुक्लपक्ष रात्रि है ॥ ६६ ॥

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ ६७ ॥

भाषा–मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका रातादिन होता है उसकाभी यह विभाग है कि मनुष्योंका उत्तरायण देवताओंका दिन है उसमें वहुधा देवकर्म्म करना चाहिये और दक्षिणायन देवताओंकी रात है ॥ ६७ ॥

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ॥
एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ६८ ॥

भाषा–ब्रह्माके रातादिनका जो प्रमाण है वह प्रत्येक सत्ययुगादिकोंके क्रमसे है उसको संक्षेपसे सुनो ॥ ६८ ॥

चत्वार्य्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् ॥
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ ६९ ॥

भाषा–मनु आदि चार हजार वर्षका सत्ययुगका प्रमाण कहते हैं उसके उतनेही वर्षोंके सैंकडे संध्या और संध्यांश होता है. युगका पहला भाग सन्ध्या और दूसरा संध्यांश होता है ॥ ६९ ॥

इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ॥
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ७० ॥

भाषा–त्रेता द्वापर कलियुग इन तीनों युगोंका संध्या और संध्यांश सहितोंका प्रमाण क्रमसे एक सहस्र और एक शतके घटानेसे होता है अर्थात् तीन हजार (३०००) वर्षका त्रेतायुग और तीन सौ (३००) वर्ष संध्या और तीन सौ (३००)

वर्ष संध्यांश और दो हजार (२०००) वर्ष द्वापरयुग दो सौ (२००) वर्ष संध्या और दो सौ (२००) वर्ष संध्यांश और एक (१०००) वर्षका कलियुग सौ (१००) वर्ष संध्या और सौ (१००) वर्ष संध्यांश ॥ ७० ॥

यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् ॥
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥

भाषा–यह जो मनुष्योंका चारों युगका प्रमाण कहा इसीका बारह गुण देवताओंका एक युग होता है ॥ ७१ ॥

दैविकानां युगानां तु सहस्रपरिसंख्यया ॥
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च ॥ ७२ ॥

भाषा–देवताओंके एक हजार युगोंका ब्रह्माका एक दिन होता है और उतनीही रात्रि होती हैं ॥ ७२ ॥

तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः ॥ रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ ७३ ॥ तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ॥ प्रतिबुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् ॥ ७४ ॥

भाषा–जिसकी समाप्ति हजार युगोंमें होती है ऐसा ब्रह्माका एक पवित्र दिन कहते हैं और वे रातिदिनके जाननेवाले जन उतनीही रात्रि कहते हैं ॥ ७३ ॥ सोया हुआ वह ब्रह्माके उस अपनी रातिके अंतमें जागता है और जागकर सत असत् रूप मनको उत्पन्न करता है अर्थात् भूलोक आदि तीनों लोकोंकी सृष्टिमें मनको लगाता है उत्पन्न नहीं करता है ॥ ७४ ॥

मनस्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ॥ आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥ ७५ ॥ आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः ॥ बलवान् जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः ॥ ७६ ॥

भाषा–परमात्माकी सृष्टिकी इच्छा करि प्रेरा गया मन सृष्टिको करता है तौ उससे पहले आकाश उत्पन्न होता है जिसका गुण मनुआदिकोंने शब्द कहा है ॥ ७५ ॥ विकारको प्राप्त हुए आकाशसे सब भांतिके गंधका वहनेवाला बलवान् पवित्र पवन उत्पन्न होता है उसका गुण स्पर्श कहा गया है ॥ ७६ ॥

वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ॥ ज्योतिरुत्पद्यते भास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ७७ ॥ ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः ॥ अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥ ७८ ॥

भाषा-विकारको प्राप्त हुए पवनसेही दूसरेको प्रकाशित करनेवाला तथा अंधकारका विनाशक प्रकाशमान तेज उत्पन्न होता है उसका गुण रूप है ॥ ७७ ॥ विकारको प्राप्त हुए तेजसे रस जिनका गुण ऐसे जल उत्पन्न होते हैं और जलसे गन्ध जिसका गुण ऐसी भूमि उत्पन्न होती है यह आदिसे सृष्टि कही ॥ ७८ ॥

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् ॥ तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ७९ ॥ मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च ॥ क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ॥ ८० ॥

भाषा-पहले कही हुई जो वारह हजार वर्षोंकी मनुष्योंकी संध्या तथा संध्यांशसहित मनुष्योंकी चतुर्युगी है वह देवताओंका एक युग होता है उसका इकहत्तरि गुणा करनेसे एक मन्वंतर होता है उसमें एक मनुका सृष्टि आदि करनेका अधिकार होता है ॥ ७९ ॥ असंख्य कहिये जिनकी संख्या नहीं ऐसे मन्वंतरोंको और सृष्टि तथा संहारको वह परमेष्ठी लेखते हुए मानो वारंवार करता है ॥ ८० ॥

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ॥ नाधर्म्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान्प्रति वर्तते ॥ ८१ ॥ इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः ॥ चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः ॥ ८२ ॥

भाषा-सत्ययुगमें सब धर्म चतुष्पात् कहिये सब अंगोंसे परिपूर्ण था और सत्यभी था धर्मोंमें श्रेष्ठ होनेसे सत्यका पृथक् ग्रहण किया और अधर्मसे अर्थात् शास्त्रको उलांघिके मनुष्योंमें किसी प्रकारका धन विद्या आदिका आना नहीं होता था ॥ ८१ ॥ त्रेता आदि और युगोंमें अधर्मसे धनके जोडने तथा विद्याके पढनेसे धर्म अर्थात् यज्ञ आदि क्रमसे प्रत्येक युगमें चौथाई २ घटता जाता है और धन तथा विद्यासे जो कुछ धर्म इकट्ठा किया जाता है सोभी चोरी झूंठ और छलसे हरएक युगमें चौथाई २ कम होनेसे चला जाता है अर्थात् नष्ट हो जाता है क्रम २ से कम होनेका यह कारण है कि चोरी झूंठ छल ये तीनों त्रेता आदि तीनों युगोंमें क्रमसे एक २ वढता जाता है ॥ ८२ ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ॥ कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ॥ ८३ ॥ वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्म्मणाम् ॥ फलन्त्यनुयुगं लोके प्रभावश्च शरीरिणाम् ॥ ८४ ॥

भाषा-सत्ययुगमें रोगका कारण अधर्म न होनेसे रोगरहित और विघ्नरूप अधर्मके न होनेसे सिद्ध हैं कामनाओंके फल जिनके ऐसे और चार सौ वर्षकी है

आयु जिनकी ऐसे और अधिक आयुके करनेवाले धर्मके कारण अधिक अवस्थाकेभी होते हैं इससे रामचन्द्रने दश हजार वर्ष राज्य किया इस वाल्मीकिके लेखसेभी विरोध न हुआ और "शतायुर्वै पुरुषः" इत्यादि श्रुतिमें शत शब्द बहुतसे सैकरोंका कहनेवाला है अथवा कलियुगके लिये कहा है और त्रेता आदि युगोंमें फिर चौथाई २ आयु कम होती है ॥८३॥ "शतायुर्वै पुरुषः" इत्यादि वेदमें कही हुई आयु और काम्यकर्मोंकी फलविषयक चाहना और ब्राह्मण आदिकोंका प्रभाव अर्थात् शाप देने तथा अनुग्रह करनेकी शक्ति ये सब युगके अनुसार फलके देनेवाले होते हैं ॥८४॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे ॥ अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ॥ ८५ ॥ तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥ द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ ८६ ॥

भाषा—सत्ययुगमें और धर्म थे फिरि युगोंके घटनेके अनुरूप त्रेता तथा द्वापरमें औरही हुए और कलियुगमें औरही हैं ॥ ८५ ॥ यद्यपि तप आदि सब शुभकर्म सब युगोंमें करनेयोग्य हैं तिसपरभी सत्ययुगमें तप मुख्य था अर्थात् बडे फलका देनेवाला था ऐसेही त्रेतामें आत्माका ज्ञान और द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दानही एक बडा फल देनेवाला है ॥ ८६ ॥

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ॥ मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ॥ ८७ ॥ अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ ८८ ॥

भाषा—उस बडे तेजस्वी ब्रह्माने इस सब सृष्टिकी रक्षाके लिये मुख आदिसे उत्पन्न चारों वर्णोंके लिये जुदे २ कर्म बनाये ॥ ८७ ॥ पढाना पढना यज्ञ करना यज्ञ कराना दान देना दान लेना ये छः कर्म ब्राह्मणोंके बनाये ॥ ८८ ॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ॥ विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ ८९ ॥ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ॥ वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च ॥ ९० ॥

भाषा—प्रजाओंकी रक्षा करना १, दान देना २, यज्ञ करना ३, वेद पढना ४, विषय जो गाना नाचना आदि हैं तिनमें चित्तका न लगाना ५ ये संक्षेपसे क्षत्रियोंके कर्म बनाये ॥ ८९ ॥ पशुओंकी रक्षा करना १, दान देना २, यज्ञ करना ३, वेद पढना ४, जलमें नाव वा जहाजोंसे और स्थलमें भारवरदारी आदिसे व्यापार करना ५, व्याज लेना और खेती करना ६ ये वैश्यके कर्म नियत किये ॥ ९० ॥

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ॥ एतेषामेव वर्णानां शु-

श्रूषामनसूयया ॥९१॥ ऊर्ध्वं नाभेर्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्तितः ॥
तस्मान्मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा ॥ ९२ ॥

भाषा-प्रभुने शूद्रको एकही काम बताया वह कि, द्वेषरहित होकर इन तीनोंही वर्णोंकी सेवा करे ॥ ९१ ॥ अब मुख्यतासे तथा सृष्टिकी रक्षाके निमित्त होनेसे और उससे धर्मका आरंभ होनेसे तथा शास्त्रके, पढनेसे ब्राह्मणकी प्रशंसा लिखते हैं. पुरुषसेभी पवित्र है परंतु नाभिसे ऊपर तो बहुतही पवित्र है उससेभी पवित्र ब्राह्मणका मुख कहा गया है ॥ ९२ ॥

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैव धारणात् ॥ सर्वस्यैवास्य सर्गस्य
धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ९३ ॥ तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तं-
प्त्वादितोऽसृजत् ॥ हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये॥९४॥

भाषा-उससे क्या हुआ सो कहते हैं. उत्तम अंग जो मुख है तिसमेंसे उत्पन्न होनेसे तथा क्षत्रिय आदिकोंसे पहले उत्पन्न होनेसे और पढने तथा व्याख्यान आदिसे वेदका धारण करनेसे ब्राह्मण इस सब जगत्का वेदकी आज्ञासे स्वामी है और संस्कार विशेषभी सब वर्णोंका प्रभु है ॥ ९३ ॥ किसके उत्तम अंगसे यह उत्पन्न हुआ सो कहते हैं. उस ब्राह्मणको ब्रह्माने अपने मुखसे दैव पित्र्य हव्य कव्यके पहुँचानेके लिये तप करिके जगत्की रक्षाके लिये क्षत्रिय आदिकोंसे पहले उत्पन्न किया ॥ ९४ ॥

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥ कव्यानि चैव पि-
तरः किं भूतमधिकं ततः॥९५॥ भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां
बुद्धिजीविनः ॥ बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥९६॥

भाषा-पहले कहे हुए हव्य कव्यके पहुँचानेको बोलते हैं. जिस ब्राह्मणके मुखसे श्राद्ध आदिमें सदा देवता हव्योंको और पितर कव्योंको भोजन करते हैं उससे अधिक कौन प्राणी होगा ॥ ९५ ॥ स्थावर जंगम भूतोंमें प्राणी कहिये प्राण-वाले कीडे आदि श्रेष्ठ हैं उनमेंभी बुद्धिसे जीनेवाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं उनसेभी उत्तम ज्ञानके होनेसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं उनसेभी ब्राह्मण सबोंके पूज्य तथा मोक्षके अधिकार योग्य होनेसे श्रेष्ठ हैं ॥ ९६ ॥

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥ कृतबुद्धिषु कर्तारः क-
र्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥९७॥ उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती ॥
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ९८ ॥

भाषा–ब्राह्मणोंमें तौ बडे फलवाले ज्योतिष्टोम आदि कर्मोंका अधिकारी होनेसे विद्वान् और उनसेभी कृतबुद्धि अर्थात् शास्त्रोक्त बातोंके करनेकी जिनकी बुद्धि उपस्थित है उनसेभी करनेवाले और उनसेभी ब्रह्मज्ञानी मोक्षका लाभ होनेसे श्रेष्ठ हैं ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणदेहका जन्मही धर्मका अविनाशी शरीर है जिससे धर्मके लिये उत्पन्न वह धर्मसे प्राप्त हुए आत्मज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ॥ ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥ ९९ ॥ सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम् ॥ श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोर्हति ॥ १०० ॥

भाषा–जिससे उत्पन्न हुआ ब्राह्मण पृथ्वीमें सबसे ऊपर होता है अर्थात् सबसे श्रेष्ठ है और सब जीवोंके धर्मसमूहकी रक्षाके लिये समर्थ है ॥ ९९ ॥ जो कुछ जगत्में धन है वह ब्राह्मणका है तिससे ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न होनेके कारण और श्रेष्ठ होनेसे निश्चय ब्राह्मण सब लेनेके योग्य है ॥ १०० ॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ॥ आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुंजते हीतरे जनाः ॥ १०१ ॥ तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणामनुपूर्वशः ॥ स्वायंभुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत् ॥ १०२ ॥

भाषा–जो दूसरेका अन्न ब्राह्मण खाता है तथा पहिरता है और दूसरेका लेकर औरको देता है वहभी ब्राह्मणका धन है ऐसा होनेपर ब्राह्मणकी करुणासे और लोग भोजन आदि करते हैं ॥ १०१ ॥ ब्राह्मणके तथा क्षत्रिय आदिकोंके कर्म जाननेके लिये ब्रह्माके प्रपौत्र बुद्धिमान् स्वायम्भुव मनुने इस शास्त्रको बनाया ॥ १०२ ॥

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥ शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यक् नान्येन केनचित् ॥ १०३ ॥ इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः शंसितव्रतः ॥ मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥ १०४ ॥

भाषा–विदुषा कहिये इस शास्त्रके पढनेका फल जाननेवाले ब्राह्मणको व्याख्यान तथा पढाने आदि उचित यत्नोंसे अध्ययन करना और शिष्योंके लियेभी इसका व्याख्यान करना योग्य है, और अन्य क्षत्रिय आदिकोंको केवल पढना चाहिये व्याख्यान करना तथा पढाना न चाहिये ॥ १०३ ॥ इस शास्त्रको पढता हुआ ब्राह्मण इसके अर्थको जानि व्रतको करिके मन वाणी तथा शरीरसे उत्पन्न हुए पापोंकरि लिप्त नहीं होता है ॥ १०४ ॥

पुनाति पंक्तिं वंश्यांश्च सप्त सप्त परावरान् ॥ पृथिवीमपि चैवेमां

कृत्स्नामेकोऽपि सोऽर्हति ॥ १०५ ॥ इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्द्धनम् ॥ इदं यशस्यमायुष्यमिदं निःश्रेयसं परम् ॥ १०६ ॥

भाषा–इस शास्त्रको पढता हुआ ब्राह्मण जो पंक्तिके योग्य नहीं ऐसे मनुष्य करि दूषित हुई पंक्ति अर्थात् क्रमसे बैठे हुए जनोंके समूहको और सात पहले अर्थात् पितामहादिकोंको और सात आगेके पौत्र आदिकोंको पवित्र करता है और सब धर्मका ज्ञाता होनेके कारण पात्र होनेसे वह एकभी सब पृथ्वीको लेनेके योग्य होता है ॥ १०५ ॥ इस शास्त्रका पढना स्वस्त्ययन अर्थात् चाहे हुए अर्थका देनेवाला है और जप होम आदिका बोधक होनेसे श्रेष्ठ है अर्थात् स्वस्त्ययनसेभी अधिक है और बुद्धिका वढानेवाला है क्योंकि इसके अभ्याससे संपूर्ण विधिनिषेधका ज्ञान होता है और यशका देनेवाला तथा आयुका वढानेवाला है और मोक्षके उपायका उपदेश करनेवाला है ॥ १०६ ॥

अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् ॥ चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः ॥ १०७ ॥ आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ॥ तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥ १०८ ॥

भाषा–इसमें संपूर्णतासे धर्म कहा है और कर्मोंके गुण दोष अर्थात् भलाई बुराई कही है और चारों वर्णोंका परंपरासे आया हुआ आचार कहा है ॥ १०७ ॥ श्रुति तथा स्मृतिमें कहा हुआ आचार परम धर्म है तिससे आत्मवान् कहिये अपने धर्मका चाहनेवाला ब्राह्मण सदा आचारयुक्त रहे ॥ १०८ ॥

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ॥ आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभाग्भवेत् ॥ १०९ ॥ एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ॥ सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥ ११० ॥

भाषा–आचारसे रहित ब्राह्मण वेदके फलको नहीं प्राप्त होता है और आचारयुक्त संपूर्ण फलका पानेवाला होता है ॥ १०९ ॥ ये कहे हुए प्रकारसे आचारके द्वारा ऋषियोंने धर्मकी प्राप्तिको जानके संपूर्ण जो चांद्रायण आदि तप हैं उनके मूलरूप आचारका ग्रहण किया ॥ ११० ॥

जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेव च ॥ व्रतचर्योपचारं च स्नानस्य च परं विधिम् ॥ १११ ॥ दाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् ॥ महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पश्च शाश्वतः ॥ ११२ ॥

भाषा–जगत्की उत्पत्ति और संस्कार जो जातक कर्म आदि हैं तिनकी विधि

और ब्रह्मचर्य्यका उपचार अर्थात् गुरु आदिकोंका नमस्कार और उपासना आदि और स्नान कहिये गुरुकुलसे निवृत्त हुएका एक प्रकारका संस्कार उसकी वहुत अच्छी विधि कहेंगे ॥ १११ ॥ दाराधिगमन जो विवाह तिसकी विधि और ब्राह्म आदि विवाहोंके लक्षण तथा वैश्वदेव आदि पंचमहायज्ञोंका विधान और नित्यश्राद्धकी विधि कहेंगे ॥ ११२ ॥

वृत्तीनां लक्षणं चैवं स्नातकस्य व्रतानि च ॥ भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां शुद्धिमेव च ॥ ११३ ॥ स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च ॥ राज्ञश्च धर्ममखिलं कार्याणां च विनिर्णयम् ॥ ११४ ॥

भाषा—वृत्ति कहिये ऋत आदि जीविकाके उपायोंको और स्नातक जो गृहस्थ हैं तिसके व्रत कहिये नियमोंको और भक्ष्य दही आदि तथा अभक्ष्य लहसन आदि और जो मरण आदिमें ब्राह्मण आदि वर्णोंकी दश दिन आदिकी शुद्धिको और जल आदिसे द्रव्योंकी सिद्धिको कहेंगे ॥ ११३ ॥ स्त्रियोंके धर्मयोग अर्थात् धर्मके उपायोंको और तापस्य कहिये वानप्रस्थके लिये हित धर्मको संन्यासको और संपूर्ण राजाके धर्मोंको और और कार्योंके निर्णय अर्थात् द्रव्यके लेन देन हैं तिनके निर्णय कहिये विचारको कहेंगे ॥ ११४ ॥

साक्षिप्रश्नविधानं च धर्मं स्त्रीपुंसयोरपि ॥ विभागधर्मं द्यूतं च कण्टकानां च शोधनम् ॥ ११५ ॥ वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभवम् ॥ आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥ ११६ ॥

भाषा—साक्षियोंके प्रश्नका विधान और स्त्रीपुरुषोंके समीप होने तथा न होनेमें धर्म करना तथा विभागधर्म अर्थात् हिस्सा बांट और जुआ आदिकी विधि और कंटक जो चोर आदि हैं तिनका शोधना अर्थात् दूरि करना इन सबोंको कहेंगे ॥ ११५ ॥ वैश्य शूद्रोंका उपचार अर्थात् अपने २ धर्मका करना और संकीर्ण अर्थात् और २ जातिसे मिलके जो उत्पन्न हैं जे अनुलोमज प्रतिलोमज आदि हैं तिनकी उत्पत्ति और सब वर्णोंके आपद्धर्म अर्थात् विपत्तिके समयमें जीविका करनेका उपदेश और प्रायश्चित्त इन सब बातोंको कहेंगे ॥ ११६ ॥

संसारगमनं चैवं त्रिविधं कर्मसंभवम् ॥ निःश्रेयसं कर्मणां च गुणदोषपरीक्षणम् ॥ ११७ ॥ देशधर्माञ्जातिधर्मान्कुलधर्मांश्च शाश्वतान् ॥ पाषण्डगणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः ॥ ११८ ॥

भाषा—संसारगमन अर्थात् शुभ अशुभ कर्मोंके कारण उत्तम मध्यम अधमके

भेदसे तीनि प्रकारके दूसरे देहमें जानेको और निश्रेयस कहिये आत्मज्ञानको और हे हुए तथा निषेध किये हुए कर्मोंके गुण दोषोंकी परीक्षा कहेंगे ॥ ११७ ॥ देशोंके धर्मोंको और नियत किये हुए जाति तथा कुलके धर्मोंको और वेदसे बाहर आगममें कहे हुए निषिद्ध धर्मोंके करनेको पाखंड कहते हैं उसके करनेवाले पाखंडी मनुष्योंके धर्मको और गण अर्थात् समूह जे बनिया व्यापारी आदि हैं तिनके धर्मोंको इस ग्रंथमें मनुने कहा है ॥ ११८ ॥

यथेदमुक्तवाञ्छास्त्रं पुरा पृष्टो मनुर्मया ॥
तथेदं यूयमप्यद्य मत्सकाशान्निबोधत ॥ ११९ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

भाषा-पहले मुझकर पूछे गये मनुने जैसे इस शास्त्रको कहा है वैसेही आपभी अब हमसे सुनिये ॥ ११९ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ॥ हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥ १ ॥ कामात्मना न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ॥ काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥ २ ॥

भाषा-प्रकृष्ट परमात्माके ज्ञानरूप धर्मके ज्ञानके लिये जगत्के कारण ब्रह्मका प्रतिपादन करिके अब ब्रह्मज्ञानका अंगभूत जो संस्कार आदि धर्म है तिसके प्रतिपादनकी इच्छासे पहले धर्मका सामान्य लक्षण कहते हैं. वेदके जाननेवाले रागद्वेषरहित धर्मात्माओंकरिके सदा सेवन किया गया और हृदयसे जाना जो धर्म है तिसको सुनिये ॥ १ ॥ कामात्मता कहिये फलकी इच्छासे बंदनको कारणरूप कर्मका करना अच्छा नहीं है जैसे स्वर्ग आदि फलकी चाहनासे किये हुए कामनायुक्त कर्म फिरि जन्मके लिये कारण होते हैं और नित्य नैमित्तिक कर्म तो आत्मज्ञानके सहकारी होनेसे मोक्षके देनेवाले होते हैं इससे इच्छामात्रका निषेध नहीं किया क्योंकि वेदका पढना कामनायुक्त है और वैदिक कर्मयोगभी कामनायुक्तही है ॥ २ ॥

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः ॥ व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥ ३ ॥ अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित् ॥ यद्यद्धि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥

भाषा–संकल्प है मूल जिसका ऐसा काम है अर्थात् इस कर्मसे यह इष्ट फल सिद्ध किया जाता है ऐसी बुद्धिको संकल्प कहते हैं तिस पीछे इस साधनता करिके निश्चय किये हुए उसमें इच्छा उत्पन्न होती है तब उसके लिये यत्नभी करता है इस भांति यज्ञभी संकलपसे उत्पन्न हैं और व्रत नियम धर्म ये सब संकल्पसे उत्पन्न कहे गये हैं ॥ ३ ॥ यहांही लौकिक नियम दिखाते हैं लोकमें भोजन गमन आदि कोई क्रिया विना इच्छाके कर्म नहीं दिखाई देती है तिससे सब लौकिक कर्मोंको जो करता है वह सब इच्छाका चेष्टित कहिये काम है ॥ ४ ॥

तेषु सम्यग्वर्त्तमानो गच्छत्यमरलोकताम् ॥ यथा संकल्पितांश्चेह सर्वान्कामान्समश्नुते॥ ५ ॥ वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ॥ आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ६ ॥

भाषा–अब पहले कहे हुए फलकी इच्छाका निषेध करते हुए नियम करते हैं. उन कर्मोंमें अच्छी भांति वर्तमान पुरुष अमरलोकता कहिये अमरधर्मी ब्रह्मभावको प्राप्त होता है अर्थात् मुक्त हो जाता है ऐसा पुरुष सर्वेश्वर होनेसे इस लोकमेंभी सब वांछित पदार्थोंको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ वेद कहिये ऋग् यजु साम अथर्व ये सब धर्मका मूल कहिये प्रमाण हैं स्मृति तथा हारीतका कहा हुआ ब्रह्मण्यता आदि तेरह प्रकारका शील ये सब वेदके जाननेवालोंको धर्ममें प्रमाण हैं और आचार तथा साधुओंके मनका संतोषभी धर्ममें प्रमाण है ॥ ६ ॥

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्त्तितः ॥ स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥७॥सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ॥ श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत वै ॥ ८ ॥

भाषा–वेदसे भिन्न औरोंके वेद मूल होनेसे प्रामाण्य कहनेपरभी मनुस्मृतिकी सबसे अधिकता दिखानेके लिये वेदमूलता कहते हैं. जो कोई धर्म किसी ब्राह्मण आदिका मनुने कहा है वह सब वेदमें प्रतिपादन किया गया है जिससे वे मनु सबके जाननेवाले हैं ॥ ७ ॥ वेदके अर्थ जाननेमें सहाय करनेवाले शास्त्रसमूह अर्थात् मीमांसा व्याकरण आदि इस सबको ज्ञानरूपी आंखिसे देखि अर्थात् विचारिके विद्वान् अपने धर्ममें स्थित होय ॥ ८ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः ॥ इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ९ ॥ श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ॥ ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥१०॥

भाषा-श्रुतिस्मृतिमें कहे हुए कर्मको करता हुआ मनुष्य इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें सबसे उत्तम सुखको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ श्रुति वेदको कहते हैं और मनु आदि धर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं ये दोनों प्रतिकूल तर्कोंसे नहीं विचार करने योग्य हैं जिससे सब धर्म उन्हींसे प्रकाशित हुआ है ॥ १० ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ॥ स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ११ ॥ वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ॥ एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

भाषा-जो ब्राह्मण धर्ममूल जो वे श्रुति स्मृति दोनों तिनका अपमान करता है अर्थात् नहीं मानता है वह वेदके निंदाका हेतु कहिये कारणभूत जो शास्त्र है तिसके आश्रयसे नास्तिकके समान है वह शिष्टोंकरिके ब्राह्मणोंके करने योग्य अध्ययन आदि कर्मोंसे निकालने योग्य है ॥ ११ ॥ वेद स्मृति सदाचार कहिये शिष्टोंका आचार और अपने आत्माका प्रिय कहिये अपना जिसमें सन्तोष होय यह चार प्रकारका साक्षात् धर्मका लक्षण है ॥ १२ ॥

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ॥ धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ १३ ॥ श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ॥ उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः ॥ १४ ॥

भाषा-अर्थ और कामके पानेकी इच्छारहित मनुष्योंको यह धर्मका उपदेश है और जो धर्मको जानना चाहते हैं उनके लिये श्रुति सबसे अधिक प्रमाण हैं और जहां कहीं श्रुति और स्मृतिके अर्थमें विरोध पडे वहां स्मृतिका अर्थ नहीं आदर करने योग्य है ॥ १३ ॥ जहां फिरि श्रुतियोंहीमें परस्पर विरुद्ध अर्थका प्रतिपादन है वहां मनुने दोनोंही धर्म कहे हैं जिससे मनु आदिकोंसे पहले पंडितोंने दोनों धर्म समीचीन कहे हैं इसी भांति स्मृतियोंकेभी विरोधमें विकल्प जानना चाहिये ॥१४॥

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ॥ सर्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥१५॥ निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ॥ तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥१६॥

भाषा–इसमें दृष्टान्त कहते हैं. सूर्य नक्षत्रवर्जित कालको समयाध्युषित कहते हैं और उदयसे पहले अरुणकी किरणयुक्त थोडी जिसमें तारा हैं ऐसे कालको अनुदित कहते हैं तो आपसमें कालका विरोध पडनेपरभी विकल्पसे अग्निहोत्रका होम होता है ॥ १५ ॥ गर्भाधानसे लेकर श्मशानांत कहिये अंत्येष्टिपर्यंत जिस द्विजातिकी विधि वैदिक मंत्रोंसे कही है उसका इस मानवशास्त्रके पढनेमें अधिकार है और किसीका नहीं है ॥ १६ ॥

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ॥ तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ १७ ॥ तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः ॥ वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ १८ ॥

भाषा–धर्मका स्वरूप प्रमाण और परिभाषाको कहके अब धर्म करनेके योग्य देशको कहते हैं. सरस्वती और दृषद्वती नाम देवनदियोंके वीचके प्रदेशका जो देश है उस देवताओंके बनाये हुए देशको ब्रह्मावर्त कहते हैं ॥ १७ ॥ बहुधा शिष्टोंके उत्पन्न होनेसे उस देशमें ब्राह्मणसे लेकर वर्णसंकरोंतक परंपराके क्रमसे चला आया हुआ आचार है वह सदाचार कहा जाता है ॥ १८ ॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पाञ्चालाः शूरसेनकाः ॥ एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥ १९ ॥ एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ॥ स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ २० ॥

भाषा–कुरुक्षेत्र और मत्स्य आदि देश और पांचाल कहिये कान्यकुब्ज देश और शूरसेन कहिये मथुराके देश ये ब्रह्मर्षि देश ब्रह्मावर्त्तसे कुछ न्यून हैं ॥ १९ ॥ इन कुरुक्षेत्र आदि देशोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणसे पृथिवीमें सब मनुष्योंने अपने २ चरित्र कहिये आचार सीखे ॥ २० ॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ॥ प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ २१ ॥ आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात् ॥ तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ २२ ॥

भाषा–उत्तर और दक्षिणदिशाओंमें स्थित हिमाचल विंध्याचल पर्वतोंका मध्य और विनशन नाम सरस्वती नदीके गुप्त होनेका स्थान है उससे जो पूर्व और प्रयागसे जो पश्चिम है उस देशका नाम मध्य देश है ॥ २१ ॥ पूर्वके समुद्रसे और पश्चिमके समुद्रसे उन्हीं दोनों अर्थात् हिमाचल विंध्याचल पर्वतोंके बीचके भूमिभागको पंडित आर्यावर्त कहते हैं इससे समुद्रके मध्यके द्वीप आर्यावर्तमें नहीं हैं यह निश्चय हुआ ॥ २२ ॥

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ॥ स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥ २३ ॥ एतान्द्विजातयो देशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः ॥ शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः ॥ २४ ॥

भाषा—जहां कृष्णसार कहिये करसायल हरिण स्वभावसे वसता है वह देश यज्ञके योग्य जानना चाहिये इससे अन्य म्लेच्छ देश अर्थात् यज्ञके योग्य नहीं है ॥ २३ ॥ और देशोंमें उत्पन्नभी ब्राह्मण यज्ञके अर्थ बडे उपायसे इन देशोंमें आके रहे और जीविकासे दुःखी शूद्र चाहे जिस देशमें जाके रहे ॥ २४ ॥

एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता ॥ संभवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान्निबोधत ॥ २५ ॥ वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ॥ कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ २६ ॥

भाषा—यह धर्म जाननेका कारण मैंने संक्षेपसे कहा अब इस सब जगत्का उत्पत्ति और वर्ण आश्रम आदिकोंके धर्म सुनो ॥ २५ ॥ वैदिक कहिये वेदमें कहे हुए मंत्रयोग आदि शुभ कर्मोंकरिके द्विजोंका गर्भाधान आदि संस्कार करना चाहिये वह पावन कहिये पापके क्षयका कारण है प्रेत्य कहिये परलोकमें यज्ञादि फलोंके संबंधसे और इह कहिये इस लोकमेंभी वेदाध्ययन आदिमें अधिकारसे ॥ २६ ॥

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौलमौञ्जीनिबन्धनैः ॥ बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥ २७ ॥ स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ॥ महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ २८ ॥

भाषा—गार्भ कहिये जो गर्भकी शुद्धिके लिये किये जाते हैं और होम जातकर्म चूडाकरण यज्ञोपवीत इन कर्मोंकरिके बैजिक कहिये प्रतिसिद्ध मैथुनके संकल्प आदिसे पिताके वीर्यके दोषसे जो पाप होता है और गार्भिक कहिये जो अशुचिमाताके गर्भमें वसनेसे उत्पन्न हुआ ये सब पाप दूरि हो जाते हैं ॥२७॥ स्वाध्याय कहिये वेदके पढनेसे और व्रत कहिये मधु मांस वर्जन आदि नियमोंसे और होम कहिये सावित्रचरुके होम आदिसे अथवा सायंकाल और प्रातःकालके होमसे और त्रैविद्यमान व्रतकरिके और इज्या कहिये ब्रह्मचर्य अवस्थामें देवऋषि पितृतर्पण रूप और सुत कहिये गृहस्थकी अवस्थामें पुत्रका उत्पन्न करना और महायज्ञ कहिये पांच ब्रह्मयज्ञ आदि और यज्ञ कहिये ज्योतिष्टोम आदि इन सबोंकरिके ब्राह्मीय कहिये ब्रह्मकी प्राप्ति योग्य शरीर किया जाता है ॥ २८ ॥

प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ॥ मन्त्रवत्प्राशनं चास्य

के नीचेके वस्त्रोंको धारण करे ॥ ४१ ॥ मुंजकी बराबरकी तीन लरोंसे बनी हुई चिकनी ब्राह्मणकी मेखला करनी चाहिये और क्षत्रियको मूर्वा नाम रूखडीकी धनुषकी प्रत्यंचाके समान और वैश्यकी सनके सूतकी मेखला करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

मुञ्जालाभे तु कर्तव्याः कुशाश्मन्तकबल्वजैः ॥ त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥ ४३ ॥ कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् ॥ शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥४४॥

भाषा–मूंज न मिले तो तीनों वर्णोंकी मेखला क्रमसे कुश अश्मंतक बल्वज इन तीनि प्रकारके तृणोंसे मेखला बनानी चाहिये वह मेखला तीनि लरोंकी होय और एक तीनि अथवा पांच गाठोंकरके युक्त होय यहां वाशब्दके कहनेसे गाठोंका ब्राह्मणादिकोंके साथ क्रमसे संबंध नहीं है किंतु कुलोंके आचारके अनुसार है । ॥ ४३ ॥ प्रकार विशेषसे बने जिसकी यज्ञोपवीत संज्ञा कहेंगे वही जिसका धर्म है ऐसे ब्राह्मणका यज्ञोपवीत कपासके सूतका होता है और क्षत्रियका सनके सूतका और वैश्यका मेंढेके रोमोंसे बना हुआ होता है उसके बनानेका प्रकार यह है कि दक्षिणावर्त तिगुणा करके फिरि तिगुना करे इस प्रकार नव तारोंका होता है ॥४४॥

ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ ॥ पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डमर्हन्ति धर्मतः ॥ ४५ ॥ केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः ॥ ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः ॥४६॥

भाषा–ब्राह्मण बेल और पलाशके क्षत्रिय वड और खैरके और वैश्य पीलू तथा गूलरके दंडोंके धर्मसे योग्य हैं ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणका दंड केशतक और क्षत्रियका मस्तकतक तथा वैश्यका नासिकापर्यंत दंड बनाना चाहिये ॥ ४६ ॥

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः ॥ अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचो नाग्निदूषिताः ॥ ४७ ॥ प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् ॥ प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्ष्यं यथाविधि ॥ ४८ ॥

भाषा–वह सब दंड सीधे और चिकने देखनेमें सुंदर मनुष्योंके मनको न विगाडनेवाले छिलकेसमेत और आगिमें न जले होंय ऐसे होने चाहिये ॥ ४७ ॥ वांछित दंडको ग्रहण करि और सूर्यके संमुख स्थित हो अग्निकी प्रदक्षिणा करि विधिपूर्वक भिक्षा मांगे ॥ ४८ ॥

भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः ॥ भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥ ४९ ॥ मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं

न्नियाम् ॥ भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ॥ ५० ॥

भाषा—यज्ञोपवीत जिसका हो गया है ऐसा ब्राह्मण भवति भिक्षां देहि ऐसे पहले भवत्शब्दका उच्चारण करि भिक्षा मांगे और क्षत्रिय भिक्षां भवति देहि ऐसे भवत्शब्द बीचमें कहे और वैश्य भिक्षां देहि भवति ऐसे भवत्शब्दको अंतमें कहिके भिक्षा मांगे ॥ ४९ ॥ उपनयन कर्मकी अंगभूत भिक्षाको पहले मातासे बहिनसे और माताकी निज बहिनी अर्थात् मौसीसे मांगे और जो इस ब्रह्मचारीको नहीं करके अपमान न करे पहलीके न होनेमें औरोंसे मांगना चाहिये ॥ ५० ॥

समाहृत्य तु तद्भैक्ष्यं यावदर्थममायया॥ निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः॥५१॥आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ॥ श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुंक्ते ऋतं भुंक्ते ह्युदङ्मुखः ॥ ५२ ॥

भाषा—तृप्तिको योग्य उस भिक्षाको बहुतोंसे लायके गुरुको निवेदन करि कपटरहित हो पूर्वको मुख करि आचमन करिके भोजन करे ॥ ५१ ॥ अब काम्य भोजन कहते हैं आयुष्यकी इच्छा होय तो पूर्वको मुख करिके भोजन करे, यशकी इच्छा होय तो दक्षिणको मुख करके भोजन करे, लक्ष्मीकी इच्छा होय तो पश्चिमको मुख करके और सत्यकी इच्छा होय तो उत्तरको मुख करके भोजन करे ॥ ५२ ॥

उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः ॥ भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत् ॥ ५३ ॥ पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ॥ दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ ५४ ॥

भाषा—नित्य कहिये ब्रह्मचर्यके पीछेभी ब्राह्मण आचमन करिके सावधान चित्त हो भोजन करे फिर भोजन करिके शास्त्रके अनुसार आचमन करे और जलसे इंद्रिय जो शिरमें स्थित छः छिद्र नाक नेत्र कान आदिका स्पर्श करे ॥५३॥ सदा अन्नका पूजन करे अर्थात् हमारे प्राणोंके रक्षक हो ऐसे ध्यान करे और इस अन्नकी निंदा न करता हुआ भोजन करे और देखकर हर्ष करे और प्रसन्न होय और सब अन्नोंको हमको सदा यहां मिलो ऐसे कहिके भक्तिसे स्तुति करता हुआ नमस्कार करे ॥ ५४ ॥

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति॥अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम् ॥५५॥ नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ॥ नचैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत्॥ ५६ ॥

भाषा—कारण यह है कि, पूजन किया हुआ अन्न बल तथा वीर्यको देता है और विना पूजन किये हुए खाया हुआ यह अन्न इन दोनोंका नाश करता है ॥ ५५ ॥

उच्छिष्ट जो जूंठा है उसे किसीको न देवे और अंतरा कहिये दिन और संध्याके बीचमें न खाय और दो वारमेंभी बहुत भोजन न करे और उच्छिष्ट कहिये जूंठा होके कहीं न जाय ॥ ५६ ॥

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ॥ अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥ ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ॥ कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥ ५८ ॥

भाषा–अति भोजनमें दोष कहते हैं अति भोजन आरोग्यता और आयुष्यको नाश करनेवाला है और स्वर्गके कारणभूत यज्ञादिकोंका विरोधी होनेसे स्वर्गकाभी नाश करनेवाला है अपवित्र और लोकमें निंदित है तिसे उस अति भोजनका त्याग करे अर्थात् बहुत कभी न खाय ॥ ५७ ॥ ब्राह्मण सदा ब्रह्मतीर्थसे आचमन करे अथवा क जो ब्रह्मा है तिनकी काय और त्रिदश जे देवता हैं तिनके तीर्थको त्रैदाशिक कहते हैं इन दोनोंसे आचमन करे और पितरोंका जो तीर्थ है उसको पित्र्य कहते हैं इस पित्र्य तीर्थसे कभी आचमन न करे ॥ ५८ ॥

अंगुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ॥ कायमंगुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥ त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥ खानि चैवं स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एव च ॥ ६० ॥

भाषा–अंगुष्ठमूलके नीचे ब्राह्मतीर्थ और कनिष्ठा अंगुलीके मूलमें काय तीर्थ और अंगुलियोंके अग्रमें दैवतीर्थ और अंगुष्ठप्रदेशिनीके मध्यमें पित्र्य तीर्थ कहते हैं ॥ ५९ ॥ सामान्यतासे कहे हुए आचमनके करनेका क्रम कहते हैं पहले ब्रह्म आदि तीर्थोंसे जलके तीनि कुल्ले पीवे तिस पीछे ओठोंको बंद करके दाहिने अंगूठेके मूलसे दो वार मुखको धोवे और जलसे नाक कान आदि इंद्रियोंको छुवे फिरि अपने हृदय और शिरको जलसे छुवे ॥ ६० ॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् ॥ शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः ॥ ६१ ॥ हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः ॥ वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥ ६२ ॥

भाषा–धर्मज्ञ पुरुष गरम न किये और फेनरहित जलसे ब्राह्म आदि तीर्थों-करिके शौचकी इच्छासे शुद्ध देशमें पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख हो सदा आचमन करे ॥ ६१ ॥ आचमनका प्रमाण कहते हैं ब्राह्मण हृदयमें गये हुए और क्षत्रिय कंठमें गये हुए और वैश्य मुखमें गये हुए और शूद्र जीभ तथा ओठोंके [illegible] छुए हुए जलसे पवित्र होता है ॥ ६२ ॥

उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः ॥ सव्ये प्राचीन आवीती निवीती कण्ठसज्जने ॥ ६३ ॥ मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ॥ अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ॥ ६४ ॥

भाषा-उपवीतकी आचमनकी अंगता दिखानेको उपवीतही है लक्षण जिसका ऐसे प्राचीनावीती इत्यादि लक्षणोंको कहते हैं. दाहिने हाथको निकाल बाएँ कंधेपर रक्खे हुये और दाहिनी कोखिमें लटके हुए यज्ञोपवीत अथवा वस्त्रसे द्विज उपवीती कहा जाता है और बाएँ कंधेको निकाल दाहिने कंधेपर स्थित और बाईं कोखिमें लटके हुए यज्ञोपवीत वा वस्त्रसे प्राचीनावीती कहाता है और दोनों भुजाओंमेंसे एककोभी न निकाल गलेमें पहिरे हुए यज्ञोपवीत वा वस्त्रसे निवीती कहा जाता है ॥ ६३ ॥ टूटे फूटे हुए मेखला मृगचर्म दंड और कमंडलुको जलमें डालकर अपने २ गृह्यमें कहे हुए मंत्रोंसे और नवीन धारण करे ॥ ६४ ॥

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥ ६५ ॥ अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ॥ संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥ ६६ ॥

भाषा-गृह्यमें कहा हुआ केशांत कर्म ब्राह्मणका गर्भसे सोलहे वर्ष और क्षत्रियका गर्भसे बाईसवें वर्ष और वैश्यका गर्भसे चौवीसवें वर्ष करना चाहिये ॥ ६५ ॥ यह सब स्त्रियोंका जातकर्मादि क्रिया कलाप कहे हुए कालके क्रमसे शरीर संस्कारके लिये विना मंत्रोंके करना चाहिये ॥ ६६ ॥

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ॥ पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ६७ ॥ एष प्रोक्तो द्विजातीनामौपनायनिको विधिः ॥ उत्पत्तिव्यञ्जकः पुण्यः कर्मयोगं निबोधत ॥ ६८ ॥

भाषा-इससे स्त्रियोंकाभी उपनयन प्राप्त होनेपर विशेष कहते हैं विवाहकी विधिही मनु आदिने स्त्रियोंका वैदिक संस्कार अर्थात् उपनयन कहा है और पतिकी सेवाही गुरुकुलमें वास और वेदका पढना कहा है और घरका कामही संध्या सवेरे समिधोंका होम लेप अग्निकी सेवा कही है तिससे विवाह आदिकोंकोही यज्ञोपवीत आदिके स्थानमें जानना चाहिये ॥ ६७ ॥ द्विजातियोंकी दूसरे जन्मका सूचक और पवित्र यह उपनयन कहिये यज्ञोपवीतकी विधि आदिका क्रियाकलाप कहा ॥ ६८ ॥

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ॥ आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च ॥ ६९ ॥ अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमु-

दङ्मुखः ॥ ब्रह्माञ्जलिकृतोऽध्याप्यो लघुवासा जितेन्द्रियः ॥७०॥

भाषा–अब यज्ञोपवीत किये हुएको जो कर्म करने चाहिये सो कहते हैं गुरु शिष्यका यज्ञोपवीत करिके उसको पहले "एका लिङ्गे गुदे पंच" इत्यादि आगे कहा शौच और स्नान आचमन आदि आचार और अग्निमें संध्या सवेरे होम करना और मंत्रोंसमेत संध्योपासन आदि विधिको सिखावे ॥ ६९ ॥ वेद पढनेकी इच्छावाला शिष्य शास्त्रके अनुसार आचमन करि उत्तराभिमुख हो हाथोंको जोरि पवित्र वस्त्रोंको धारण करि जितेंद्रिय हो गुरु करि पढाने योग्य है ॥ ७० ॥

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा ॥ संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥७१॥ व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ॥ सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥ ७२ ॥

भाषा–वेदाध्ययनके आरंभमें और अंतमें सदा गुरुके चरण ग्रहण करने योग्य हैं और हाथोंको जोरिके पढना चाहिये उसको ब्रह्मांजलि कहते हैं ॥ ७१ ॥ फेरे हुए सीधे हाथोंसे गुरुके चरणोंका ग्रहण करना चाहिये अर्थात् दाहिनेसे दाहिना और बाएँसे बाएँको ग्रहण करे ॥ ७२ ॥

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः ॥ अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चारमेत् ॥ ७३ ॥ ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ॥ स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥ ७४ ॥

भाषा–गुरु आलस्यरहित हो पढनेके लिये उपस्थित शिष्यसेही अधीष्व अर्थात् पढो ऐसे पहले कहे और विराम हो ऐसे कहिके पढानेसे बंद होय ॥ ७३॥ ब्राह्मण वेदपाठके आरंभमें और अंतमें ओंकारका उच्चारण करे क्योंकि जिसमें पहिले ओंकारका उच्चारण न हुआ वह हौले २ नष्ट हो जाता है और जिसमें पीछे ओंकारका उच्चारण न हुआ वह बिसर जाता है ठहरता नहीं ॥ ७४ ॥

प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ॥ प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओंकारमर्हति ॥ ७५ ॥ अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः ॥ वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवःस्वरितीति च ॥ ७६ ॥

भाषा–पूर्वको हैं अग्र जिनके ऐसे कुशोंपर बैठा हुआ और हाथोंमें स्थित पवित्र कुशोंसे पवित्र किया हुआ और पंद्रह मात्रारूप तीनि प्राणायामोंकरिके पवित्र किया हुआ द्विज ओंकारके उच्चारण योग्य होता है ॥ ७५ ॥ ब्रह्माने अकार उकार और मकारको ऋक् यजु साम इन्हीं वेदोंसे तथा भूः भुवः स्वः इन व्याहृतियोंको क्रमसे निकाला ॥ ७६ ॥

**त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् ॥ तदित्यृचोऽस्याः सा-
वित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ७७ ॥ एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृ-
तिपूर्विकाम् ॥ संध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥ ७८ ॥**

भाषा–तैसेही परम उत्कृष्ट स्थानमें स्थित प्रजापति ब्रह्माने ऋक्, यजु, साम इन तीन वेदोंहीसे तदच इस प्रतीकसे कहे हुए सावित्रीके चौथाई २ तीनि पाद निकाले ॥ ७७ ॥ इस ओंकाररूप अक्षरको और भूर्भुवः स्वः इन व्याहृतियोंसमेत त्रिपदा सावित्रीको संध्याकालमें जपता हुआ वेदका जाननेवाला ब्राह्मण आदि तीनों वेदोंके पढनेके फलको प्राप्त होता है इसीसे संध्याके कालमें प्रणव और तीनों व्याहृतियों-समेत सावित्रीका जप करे यह विधि है ॥ ७८ ॥

**सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः ॥ महतोऽप्येनसो मासा-
त्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ ७९ ॥ एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया
स्वया ॥ ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥ ८० ॥**

भाषा–संध्यामें अथवा और कालमें प्रणव तीनों व्याहृती और सावित्रीरूप तिगड्डेको ग्रामसे वाहर नदीके तीर वन आदिमें हजार वार जपके वडेही पापसे ऐसे छूट जाता है जैसे कांचलीसे सांप तिससे पाप दूरि होनेके लिये इसका जप अवश्य करना चाहिये ॥ ७९ ॥ संध्याके समय अथवा और कालमें इस सावित्री ऋचा करिके विसंयुक्त कहिये त्याग किया हुआ और सावित्री जपकी निज क्रिया कहिके सायंकाल प्रातःकाल होम आदि रूप क्रिया करि अपने कालमें त्याग किया हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य सज्जनोंमें निंदाको प्राप्त होता है तिससे अपने कालमें सावित्रीके जपको और अपनी क्रियाको न छोडे ॥ ८० ॥

**ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ॥ त्रिपदा चैव सावि-
त्री विज्ञेयं ब्राह्मणो मुखम् ॥ ८१ ॥ योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि व-
र्षाण्यतन्द्रितः ॥ स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥ ८२ ॥**

भाषा–ओंकार जिनके पहले है ऐसी भूर्भुवस्स्वः ये तीनि व्याहृति और अक्षर ब्रह्म प्राप्तिरूप फल होनेसे अव्यक्त कहिये अविनाशिनी त्रिपदा सावित्री ब्रह्म जो वेद है तिसका मुख कहिये आदि जानना चाहिये क्योंकि इनको पहले पढकर वेदाध्ययनका आरंभ होता है ॥ ८१ ॥ जो प्रतिदिन आलस्यरहित हो प्रणव व्याहृतियुक्त सावित्रीको तीन वर्ष पर्यंत पढता है वह वायुभूत अर्थात् वायुके समान कामचारी और ख जो ब्रह्म है सोई मूर्ति जिसकी ऐसा हो जाता है शरीरके नाश होनेपर ब्रह्महीमें मिल जाता है ॥ ८२ ॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः ॥ सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥ ८३ ॥ क्षरंति सर्वा वैदिक्यो जुहोतिय-जतिक्रियाः ॥ अक्षरं त्वक्षयं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥ ८४ ॥

भाषा–ॐ यह एक अक्षर परब्रह्मकी प्राप्तिका कारण होनेसे अक्षय ब्रह्म है और प्राणायाम परम तप है और मंत्र नहीं है मौनसेभी सत्य अधिक है ॥ ८३ ॥ वेदमें कही हुई सब होम यज्ञ आदि क्रिया स्वरूपसे और फलसे नष्ट हो जाती है और प्रणवरूप अक्षर तौ अक्षय जानना चाहिये जिससे प्रजाओंका अधिपति जो ब्रह्म है सोई यह ओंकार है ॥ ८४ ॥

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ॥ उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥ ८५ ॥ ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञस-मन्विताः ॥ सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८६ ॥

भाषा–विधियज्ञ जे दर्श पौर्णमास आदि हैं तिनसे प्रणव आदिकोंका जो जपयज्ञ है सो दशगुणा अधिक है वहभी जो उपांशु होय अर्थात् जिसको समी-पकाभी मनुष्य न सुन सके उससे सौ गुणा अधिक है और जो मानस है अर्थात् जिसमें जीभ और होंठ कुछभी न चलें वह उससेभी हजार गुणा अधिक है ॥८५॥ ब्रह्मयज्ञसे अन्य ये पांच महा यज्ञोंके अंतर्गत होम बलिकर्म नित्य श्राद्ध अतिथि-भोजन ये चार पाकयज्ञ और दर्श पौर्णमास आदि विधियज्ञ ये सब जपयज्ञकी सोलही कलाकोभी नहीं प्राप्त होते हैं अर्थात् ये सब जपयज्ञके सोलहे हिस्सेकीभी बराबर नहीं हैं ॥ ८६ ॥

जप्येनैव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्या-न्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ ८७ ॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वप-हारिषु ॥ संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥ ८८ ॥

भाषा–ब्राह्मण जपसेही निस्संदेह सिद्धिको प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष प्राप्तिके योग्य होता है और जो वैदिक यागादिक हैं तिनको करे अथवा न करे क्योंकि ब्राह्मण मैत्र कहा जाता है ॥ ८७ ॥ अब सब वर्णोंके करने योग्य और सब पुरु-षार्थोंका उपयोगी ऐसे इंद्रियोंके संयमको कहते हैं चित्तके हरनेवाले विषयोंमें वर्त-मान इंद्रियोंके रोकनेमें ऐसे यत्न करे जैसे सारथी घोडोंके रोकनेमें करता है ॥८८॥

एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः ॥ तानि सम्यक्प्रवक्ष्या-मि यथावदनुपूर्वशः ॥८९॥ श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चै-

वं पञ्चमी ॥ पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता ॥ ९० ॥

भाषा-पहले पंडित जिन ग्यारह इन्द्रियोंको कहते हैं उन सबोंको अबके लोगोंकी शिक्षाके लिये कर्मसे और नामसे क्रमसे कहूंगा ॥ ८९ ॥ उन ग्यारहोंमें कान, त्वचा, आंखें, जीभ और पांचवीं नाक, गुदा, लिंग, हाथ, पैर और दशवीं वाक् ये दशों इंद्रियां हैं ॥ ९० ॥

बुद्धींद्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ॥ कर्मेंद्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते॥९१॥एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ॥ यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ९२ ॥

भाषा- इनमें क्रमसे पांच श्रोत्र आदि बुद्धीन्द्रिय हैं और पायु कहिये गुदा आदि पांच इंद्रियोंको कर्मेंद्रिय कहते हैं॥९१॥ ग्यारहवां भीतरी इंद्रिय मन जानिये जो संकल्परूप दोनों इंद्रियोंके गणका प्रवर्त्तकरूप है इसीसे जिस मनके जीतनेपर दोनों पंचक अर्थात् बुद्धींद्रिय और कर्मेन्द्रियके गण जीते जाते हैं ॥ ९२ ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥ संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ९३ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ९४ ॥

भाषा-इंद्रियोंके विषयोंमें लगनेसे निस्संदेह दृष्ट अदृष्ट दोषको प्राप्त होता है फिर उन्हीं इंद्रियोंको भली भांति रोकके सिद्धि जो मोक्ष आदि पुरुषार्थकी योग्यताको प्राप्त होता है तिससे इन्द्रियोंको रोके ॥ ९३ ॥ काम जो अभिलाष है सो काम जे विषय हैं तिनके भोगनेसे कभी नहीं शान्त होता है घीके डालनेसे अग्निके समान पुनः अधिक बढता है ॥ ९४ ॥

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत् ॥ प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥ ९५ ॥ न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तुमसेवया ॥ विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ ९६ ॥

भाषा-जो इन सब विषयोंको प्राप्त होय और जो इनकी उपेक्षा करे उन दोनोंमें विषयोंकी उपेक्षा करनेवाला श्रेष्ठ है तिससे सब कामोंकी प्राप्तिसे उनकी उपेक्षा प्रशंसा योग्य है ॥ ९५ ॥ अब इंद्रियोंके संयमका उपाय कहते हैं. विषयोंमें लगी हुई इंद्रियें उन विषयोंके छोडनेसे रोकनेको नहीं समर्थ हैं जैसे सदा ज्ञानसे रुकि जाती हैं ॥ ९६ ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च॥न विप्रदुष्टभावस्य सि-

द्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ ९७ ॥ श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ॥ न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥

भाषा-वेद अथवा दान यज्ञ नियम और तप माला आदि विषयोंको सेवा-वाले पुरुषको कभी सिद्धिके लिये नहीं होते ॥ ९७ ॥ स्तुतिका वचन तथा निंदाका वचन सुनिके और छूनेमें सुख देनेवाले, वस्त्र आदि तथा छूनेमें दुःख देनेवाले मेढेके बालोंके कंबल आदिको छूके और कुरूप सुरूपको देखि और स्वादयुक्त तथा विना स्वादकी वस्तुको खायके और सुगंधि तथा विना सुगंधकी वस्तुको सूंघिके जिसको हर्ष विषाद नहीं होता वह जितेन्द्रिय जानना चाहिये ॥ ९८ ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ॥ तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥ ९९ ॥ वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ॥ सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥ १०० ॥

भाषा-सब इंद्रियोंमेंसे जो एक इंद्रिय विषयोंमें लग्न हो जाय तो विषयोंमें लगे हुए इस मनुष्यके दूसरी इंद्रियोंसेही तत्त्वज्ञान ऐसे जाता रहता है जैसे चर्मके जलपात्रसे जल ॥ ९९ ॥ बाहरके इंद्रियसमूहको वशमें करिके और मनको रोकिके उपायोंसे अपनी देहको पीडा न देता हुआ सब पुरुषार्थोंका भली भांति साधन करे ॥ १०० ॥

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥ पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥ १०१ ॥ पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ॥ पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ १०२ ॥

भाषा-प्रातःकालकी संध्यामें सावित्रीको जपता हुआ सूर्यके उदय पर्यंत स्थित रहे और सायंकालकी संध्यामें सावित्रीको जपता हुआ नक्षत्रोंके भली भांति लक्षित होनेतक स्थित रहे ॥ १०१ ॥ प्रातःकालकी संध्यामें स्थित जप करता हुआ रात्रिके पापको दूर करता है और सायंकालकी संध्यामें स्थित जप करता हुआ दिनमें किये हुए पापको दूर करता है ॥ १०२ ॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ १०३ ॥ अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ॥ सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥ १०४ ॥

भाषा-जो प्रातःकालकी संध्या नहीं करता और पिछिली अर्थात् सायंकालकी संध्याकी उपासना नहीं करता अर्थात् उस कालमें कहे हुए जप आदिको नहीं

करता है वह शूद्रके समान सब ब्राह्मणके कर्म और अतिसत्कारसे बाहर करने योग्य है ॥ १०३ ॥ बहुत वेदके पढनेकी असमर्थतामें ब्रह्मयज्ञरूप यह सावित्रीमात्रके पढनेका विधान कहते हैं वन आदि अन्य देशोंमें जाके नदी आदिके जलके समीप इंद्रियोंको रोकि सावधान मन हो ब्रह्मयज्ञरूप नित्य विधिको किया चाहता पुरुष प्रणव तथा तीनि व्याहृतियोंसे युक्त सावित्रीकाभी जप करे ॥ १०४ ॥

वेदोपकरणे चैवं स्वाध्याये चैव नैत्यके ॥ नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥ १०५ ॥ नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् ॥ ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ॥ १०६ ॥

भाषा-वेदोपकरण कहिये वेदके अंग शिक्षा आदिमें और नित्य करने योग्य स्वाध्यायमें और ब्रह्मयज्ञरूप होमके मंत्रोंमें अनध्यायका आदर नहीं है ॥१०५॥ नित्य करने योग्य जपयज्ञमें अनध्याय नहीं है मनु आदिमें उसको ब्रह्मयज्ञ कहा है ब्रह्माहुति जो हवि है उसका होम वह अनध्यायमेंभी वषट्कार किया गया पुण्य कहिये पवित्रही है ॥ १०६ ॥

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः ॥ तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु ॥ १०७ ॥ अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधःशय्यां गुरोर्हितम् ॥ आ समावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः ॥ १०८ ॥

भाषा-जो जितेन्द्रिय शुद्धपुरुष एक वर्षतक विधिपूर्वक कहे हुए अंगोंसमेत स्वाध्याय कहिये जपयज्ञको करता है उसका यह जपयज्ञ क्षीर आदिकोंसे पितरोंको प्रसन्न करता है वे प्रसन्न हो जपयज्ञ करनेवालेको सब कामोंसे तृप्त करते हैं ॥१०७॥ यज्ञोपवीत किया हुआ ब्रह्मचारी सायंकाल प्रातःकाल समिधोंका होम भिक्षासमूहका लाना खाटपर न सोना अर्थात् नीचे सोना और जलका लाना आदि गुरुका हित गृहस्थीमें जानेपर्यंत करे ॥ १०८ ॥

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ॥ आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः ॥ १०९ ॥ नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ॥ जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ११०

भाषा-कैसा शिष्य पढाना चाहिये सो कहते हैं. आचार्यका पुत्र १ सेवा करनेवाला २ दूसरे प्रकारसे ज्ञान देनेवाला ३ धर्मका जाननेवाला ४ मृत्तिका तथा जल आदिसे शुद्ध ५ बांधव ६ लेने देनेमें समर्थ ७ धन देनेवाला ८ द्रोह न करनेवाला ९ ज्ञातिका १० ये दश प्रकारके शिष्य पढाने योग्य हैं ॥ १०९ ॥ जो किसीने थोडे अक्षरोंमें अथवा विना स्वरके पढा होय उसको अर्थ विना पूंछे उसके तत्व न प्रका-

शित करे और शिष्यसे तो विना पूंछेभी कहे और भक्ति श्रद्धा आदि जे पूंछनेके धर्म हैं तिनको छोडकर पूंछे ऐसेके पूंछनेपरभी न कहे बुद्धिमान् पुरुष जानता हुआभी लोकमें गूंगेके समान रहे ॥ ११० ॥

अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ॥ तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाऽधिगच्छति ॥ १११ ॥ धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा ॥ तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥ ११२ ॥

भाषा-अधर्मसे पूंछा हुआही जो जिससे कहता है और जो जिससे अन्याय करि पूंछता है उनमेंसे एक मर जाता है अथवा उसके साथ द्वेषी हो जाता है ॥ १११ ॥ जिस शिष्यके पढानेमें धर्म अर्थ न होय अथवा पढनेके अनुरूप सेवा न होय वहां विद्या न देनी चाहिये वह देना ऐसे निष्फल है जैसे ऊषरमें बोया हुआ धान आदि बीज नहीं उगता ॥ ११२ ॥

विद्ययैव समं कामं मर्त्तव्यं ब्रह्मवादिना ॥ आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनमिरिणे वपेत् ॥ ११३ ॥ विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम् ॥ असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥ ११४ ॥

भाषा-वेद पढानेवालेको विद्याके साथही मरना अच्छा सब भांति पढानेके योग्य शिष्यके न होनेरूप आपत्तिमेंभी इस विद्याको ऊषरमें न बोवे ॥ ११३ ॥ विद्याकी अधिष्ठाता देवता किसी अध्यापकके समीप आके ऐसे बोली कि मैं तुम्हारी निधि हूं मेरी रक्षा करो और असूया आदि दोषवाले मनुष्यको मुझे मत दे सत्यकी अधिकतासे मैं वीर्यवती होऊं ॥ ११४ ॥

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम् ॥ तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥ ११५ ॥ ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् ॥ स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥ ११६ ॥

भाषा-जिस शिष्यको शुद्ध जितेंद्रिय और ब्रह्मचारी जानते हो उस विद्यारूपी निधिके रक्षा करनेवाले प्रमादरहितको मुझे दे ॥ ११५ ॥ जो अभ्यासके लिये पढते हुए अथवा औरको पढाते हुएसे उसकी आज्ञा विना वेदको ग्रहण करता है तौ वेदका चोर वह मनुष्य नरकको जाता है तिससे ऐसा न करे ॥ ११६ ॥

लौकिकं वैदिकं वापि तथाऽऽध्यात्मिकमेव च ॥ आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥ ११७ ॥ सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः ॥ नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ ११८ ॥

भाषा—लौकिक कहिये अर्थशास्त्र आदिका ज्ञान और वैदिक कहिये वेदके अर्थका ज्ञान तथा आध्यात्मिक कहिये ब्रह्मज्ञान इनको जिससे ग्रहण करे बहुमान्योंके मध्यमें स्थित उसको पहले नमस्कार करे लौकिक आदि ज्ञान देनेवाले तीनोंके समूहमें क्रमसे एकसे एक मान्य है ॥ ११७ ॥ केवल सावित्रीहीका जाननेवाला जितेंद्रिय ब्राह्मण मान्य है और निषिद्ध भोजन आदिका करनेवाला और निषिद्ध वस्तुओंका वेचनेवाला तीनि वेदोंका ज्ञाताभी मानने योग्य नहीं है ॥ ११८ ॥

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ॥ शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत्॥ ११९ ॥ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति॥प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥१२०॥

भाषा—विद्या आदिमें अधिक अथवा गुरु करके मुख्यतासे अंगीकार की हुई शय्या अथवा आसनपर न वैठे और आप जो शय्या अथवा आसनपर वैठा हो तो गुरुके आनेपर उठिके नमस्कार करे ॥ ११९ ॥ अवस्था और विद्या आदिसे वृद्धके आनेपर थोडी अवस्थावालेके प्राण ऊपरको चढते हैं अर्थात् देहसे वाहर निकलना चाहते हैं उन प्राणोंको वृद्धके अभ्युत्थान देने और नमस्कार करनेसे फिर स्वस्थ करता है तिससे बूढेको उठिकर प्रणाम करना चाहिये ॥१२०॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ॥ चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ १२१ ॥ अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन् ॥ असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्त्तयेत्॥१२२॥

भाषा—उठकर सदा वृद्धको नमस्कार करनेवाले और वृद्धकी सेवा करनेवाले मनुष्यकी आयु विद्या यश और वल ये चारों वढते हैं ॥ १२१ ॥ अव नमस्कारकी विधि कहते हैं वृद्धको नमस्कार करता हुआ ब्राह्मण आदि नमस्कारके पीछे मैं नमस्कार करता हूं यह कहनेके पीछे मेरा यह नाम है ऐसे अपने नामको कहे ॥ १२२ ॥

नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते॥ तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात् स्त्रियः सर्वास्तथैव च॥१२३॥ भोःशब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने॥नाम्नां स्वरूपभावो हि भोभाव ऋषिभिः स्मृतः॥१२४॥

भाषा—नमस्कार करनेके योग्य जो कोई पुरुष संस्कृत विद्या न जाननेके कारण नामधेयके उच्चारणपूर्वक नमस्कारको नहीं जानते हैं उनसे नमस्कार करनेवाला बुद्धिमान् ऐसेही कहे कि मैं नमस्कार करता हूं और सब स्त्रियोंसेभी ऐसेही कहे ॥ १२३ ॥ नमस्कारमें कहे हुए अपने नामके पीछे नमस्कार करने योग्यके संवोधनके लिये भोशब्दका उच्चारण करे इसीसे ऋषियोंने नमस्कार करने योग्यके नामके

स्वरूपकी सत्ता भोशब्दहीमें कही है जैसे अभिवादये शुभशर्माऽहमस्मि भोः अर्थ यह है कि नमस्कार करनेवाला मैं शुभशर्मा हूं ॥ १२४ ॥

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ॥
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥ १२५ ॥

भाषा–नमस्कार करनेपर बदलेका नमस्कार करनेवाला ब्राह्मण भो सौम्य आयुष्मान् भव ऐसा कहे और नमस्कार करनेवालेके नामके अंतके पहले अक्षरको प्लुत उच्चारण करे ॥ १२५ ॥

यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ॥ नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ १२६ ॥ ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् ॥ वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥ १२७ ॥

भाषा–जो ब्राह्मण किये हुए नमस्कारके योग्य बदलेका नमस्कार नहीं जानता है वह विद्वान् करिके नमस्कार करने योग्य नहीं है यह शूद्रके समान है॥ १२६ ॥ मिलनेपर छोटी अवस्थावाले अथवा बराबर अवस्थाके नमस्कार न करनेवालेभी ब्राह्मणसे कुशल पूंछे और क्षत्रियसे अनामय तथा वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे आरोग्य पूंछे॥१२७॥

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ॥ भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित्॥ १२८ ॥ परपत्नी तु या स्त्री स्यादसंबन्धा च योनितः ॥ तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च१२९

भाषा–बदलेके नमस्कारके समय अथवा और समयमें दीक्षित अवस्थामें छोटाभी हो तोभी धर्मज्ञ पुरुष उसका नाम न उच्चारण करे किंतु भो दीक्षित ! ऐसे कहके बोले ॥ १२८ ॥ जो पराई स्त्री होय और जिससे कुछ योनिसंबंध न होय अर्थात् बहिन आदि न होय उससे बोलनेके समय भवति, सुभगे, भागिनि ऐसे कहिके बोले ॥ १२९ ॥

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ॥ असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥ १३० ॥ मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा ॥ संपूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्यया ॥ १३१ ॥

भाषा–मामा चाचा ससुर ऋत्विज गुरु जो ये छोटेभी होंय तोभी इनके आनेपर उठिके असौ अहं अर्थात् यह मैं ऐसा कहके निज नाम प्रकट करे नमस्कार न करे ॥ १३० ॥ मावसी, मामी, सास, बुआ ये सब गुरुकी स्त्रीके समान उत्थान अभिवादन आसन देने आदिसे पूजने योग्य हैं क्योंकि वे गुरुभार्याके समान हैं ॥ १३१ ॥

भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि ॥ विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञा-

तिसंबन्धियोषितः ॥ १३२ ॥ पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि ॥ मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥ १३३ ॥

भाषा-जेठे भाईकी सजातीया स्त्रीके प्रति दिन चरण छुवे और जातिकी अर्थात् पितृपक्षकी चाचा आदि और संबंधी मातापक्षके तथा ससुर आदि इनकी स्त्रियोंके परदेशसे आके चरण छुवे प्रतिदिन नहीं ॥ १३२ ॥ पिताकी वहिन तथा माताकी और अपनी वडी वहिन इन सवका आदरमान माताके समान करे परन्तु माता इन सवसे वहुतही अधिक है ॥ १३३ ॥

दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम् ॥ त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥१३४॥ ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम् ॥ पितापुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता॥१३५॥

भाषा-आगे कहे हुए विद्यादि गुणहीन एक पुर वा ग्रामके वसनेवालोंमें एक दशवर्ष वडा होय और एक उतनाही छोटा होय तोभी सख्य कहिये मित्रता होती है और गीत आदि कलाओंके जाननेवालोंमें पांच वर्षकी वडाई छुटाईमें मित्रता होती है और श्रोत्रियोंकी तीनि वर्षकी छुटाई वडाईमें और सपिंडोंकी वहुतही थोडे कालकीमें मित्रता होती है और सर्वत्र कहे हुए कालसे उपरांत ज्येष्ठका व्यवहार होता है ॥१३४॥ ब्राह्मण दश वर्षका होय और क्षत्रिय सौ वर्षका तो उन दोनोंको पितापुत्रके समान जाने उनमें ब्राह्मण पिता है ॥ १३५ ॥

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ॥ एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ १३६ ॥पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च ॥ यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः ॥१३७॥

भाषा-वित्त कहिये न्यायसे जोडा हुआ धन वंधु कहिये चाचा आदि तथा वय अधिक अवस्था कर्म श्रौत स्मार्त्त आदि विद्या वेदके अर्थका तत्व जानना ये पांच मान्यताके कारण हैं इनमें आगे २ एकसे एक अधिक है ॥ १३६ ॥ ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंमें पहले कहे हुए पांच गुणोंमेंसे जिसमें जितने अधिक हैं वह उतनाही मानने योग्य है और नव्वे वर्षसे अधिक अवस्थाको पहुँचा हुआ शूद्र द्विजोंकोभी मानने योग्य है सौ वर्षके दश भाग करनेपर नव्वेसे ऊपर दशमी अवस्था होती है॥१३७॥

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ॥ स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥१३८॥ तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ॥ राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक् ॥१३९॥

भाषा–चक्रयुक्त रथ आदि सवारीमें बैठे हुएको और नव्वेसे अधिक अवस्थावालेको, रोगीको, बोझवालेको, स्त्रीको, स्नातकको, राजाको वर जो विवाहको जाता हो उसको मार्ग देना चाहिये अर्थात् इनमेंसे कोई आगे आता होय तौ मार्गसे हटि जाय ॥ १३८ ॥ इकट्ठे हुए उन सबोंमें राजा और स्नातक मान्य हैं और राजा तथा स्नातकमें राजाकी अपेक्षा स्नातक मान्य है ॥ १३९ ॥

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ॥ सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १४० ॥ एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ॥ योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥ १४१ ॥

भाषा–जो ब्राह्मण शिष्यका यज्ञोपवीत करके कल्प कहिये यज्ञविधि और रहस्य कहिये उपनिषद्सहित सब वेदकी शाखाको पढता है उसको आचार्य्य कहते हैं ॥ १४० ॥ वेदके एकदेश अर्थात् मंत्र वा ब्राह्मणको और वेदके अंग व्याकरण आदिको जीविकाके लिये जो पढता है वह उपाध्याय कहा जाता है ॥ १४१ ॥

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ॥ संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥ १४२ ॥ अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ॥ यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥ १४३ ॥

भाषा–जो गर्भाधान आदि संस्कारोंको विधिपूर्वक करता है और अन्नसे बढाता है वह ब्राह्मण गुरु कहा जाता है गर्भाधान करनेसे यहां पिताहीको गुरु कहा है ॥ १४२ ॥ वरण किया हुआ जो ब्राह्मण अग्न्याधेय कहिये आहवनीय आदि अग्नियोंके उत्पन्न करनेवाले कर्मको पाकयज्ञ कहिये अष्टकादिकोंको और अग्निष्टोम आदि यज्ञोंको जिसकी ओरसे करता है वह उसका ऋत्विक् कहाता है ॥ १४३ ॥

य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ ॥ स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कदाचन ॥ १४४ ॥ उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ॥ सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ १४५ ॥

भाषा–जो ब्राह्मण वर्ण और स्वरकी विगुणतासे रहित सत्यरूप वेदसे दोनों कानोंको भरता है वह बडे उपकार करनेवाले गुणके योगसे मातापिताके समान जानना चाहिये उससे कभी द्रोह न करे ॥ १४४ ॥ दश उपाध्यायोंकी अपेक्षा एक आचार्य, शत आचार्योंकी अपेक्षा एक पिता और सहस्र पिताओंकी अपेक्षा एक माता गौरवमें अधिक होती है ॥ १४५ ॥

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ॥ ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रे-

त्य चेह च शाश्वतम् ॥१४६॥ कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः ॥ संभूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते ॥ १४७ ॥

भाषा–उत्पन्न करनेवाला और वेद पढानेवाला ये दोनों पिता हैं उनमें आचार्य्य पितासे श्रेष्ठ है क्योंकि ब्राह्मणका ब्रह्मजन्मही इस लोक तथा परलोकमें शाश्वत कहिये सदा मोक्षरूप फलका देनेवाला है॥ १४६ ॥ माता पिता जो कामके वशमें होके इस वालकको उत्पन्न करते हैं जिस जिस योनिकी माताकी कोखिमें उत्पन्न होता है उसके वैसेही हाथ पैर होते हैं ॥ १४७ ॥

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः ॥ उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजराऽमरा ॥ १४८ ॥ अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः ॥ तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया १४९॥

भाषा–वेदका जाननेवाला आचार्य जिस जाति कहिये जन्मको विधिपूर्वक गायत्रीके उपदेशसे करता है वह जन्म सत्य है और ब्रह्मप्राप्तिरूप फल होनेसे अजर अमर है ॥ १४८ ॥ जो उपाध्याय जिस शिष्यका थोडा वा वहुत वेदके पढानेसे उपकार करता है उसकोभी शास्त्र पाठनरूप उपकारसे इस शास्त्रसे गुरु जाने॥ १४९॥

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्त्ता स्वधर्मस्य च शासिता ॥ बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥१५०॥ अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः॥पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान्१५१

भाषा–वेद सुननेके लिये जन्मका देनेवाला अर्थात् यज्ञोपवीत करनेवाला और अपने धर्मका सिखानेवाला अर्थात् वेदके अर्थका व्याख्यान करनेवाला वालक वृद्ध कहिये जेठेका धर्मसे पिता होता है अर्थात् पिताके समान मानने योग्य है ॥१५०॥ आंगिरस ऋषिका पुत्र विद्वान् वालक अधिक अवस्थाके पितृव्य कहिये चाचा ताऊ और उनके पुत्रोंको पढाता था उनको ज्ञानसे शिष्य जानि भो पुत्रकाः अर्थात् हे पुत्रो ऐसा वोले ॥ १५१ ॥

ते तमर्थमपृच्छन्तः देवानागतमन्यवः ॥ देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान् ॥१५२॥अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः॥अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम्॥१५३॥

भाषा–पिताके तुल्य और पुत्रकाः ऐसे कहे गये वे क्रोधयुक्त हो पुत्रक शब्दका अर्थ देवताओंसे पूछते भये तव देवताओंने मिलकर इनसे कहा कि वालकने तुमको योग्य कहा ॥ १५२ ॥ जो कुछ नहीं जानता है वही वालक होता है और

मंत्रका देनेवाला अर्थात् वेदका पढानेवाला पिता होता है इस कारण अज्ञको बालक और मंत्र देनेवालेको पिता कहते हैं ॥ १५३ ॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ॥ ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥१५४॥ विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ॥ वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥ १५५ ॥

भाषा–न बहुत वर्षोंसे और न सपेद डाढी मूछोंसे न बहुत धनसे न चाचा ताऊ आदि बहुतसे भाइयोंसे अथवा इकट्ठे हुएभी इन सबोंसे बडापन नहीं होता है किंतु ऋषियोंने यह धर्म किया है कि जो हम लोगोंमें अंगोंसमेत वेदका पढनेवाला है वही बडा है ॥ १५४ ॥ ब्राह्मणोंकी ज्ञानसे ज्येष्ठता होती है और क्षत्रियोंकी बलसे और वैश्योंकी धनधान्यसे और शूद्रोंकी जन्मसे श्रेष्ठता होती है ॥ १५५ ॥

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ॥ यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥१५६॥ यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ॥ यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥१५७॥

भाषा–शिरके बाल सफेद होनेसे वृद्ध नहीं होता है जो जवानभी पढा लिखा होय तौ उसको वृद्ध कहते हैं ॥ १५६ ॥ जैसे काठका बना हुआ हाथी और जैसे चमडेका बना हुआ मृग और विना पढा हुआ ब्राह्मण ये तीनों केवल नामको धारण करते हैं शत्रुवध आदि हाथी आदिके कामको नहीं कर सकते हैं ॥ १५७ ॥

यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला ॥ यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥१५८॥ अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ॥ वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता १५९

भाषा–जैसे नपुंसक स्त्रियोंमें निष्फल होता है और गौवोंमें गौ और जैसे मूर्खमें दान निष्फल होता है तैसे श्रौत स्मार्त्त कर्मोंमें अयोग्य होनेसे विना पढा ब्राह्मण निष्फल होता है ॥ १५८ ॥ शिष्योंको अति हिंसाके विनाही कल्याण देनेवाले अर्थकी शिक्षा करनी चाहिये और धर्म बुद्धिकी इच्छा करनेवाले पुरुषको मधुर कहिये प्रीति करनेवाली वाणी मंद स्वरसे कहनी चाहिये ॥ १५९ ॥

यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ॥ स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥१६०॥ नारुंतुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः ॥ ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ॥ १६१ ॥

भाषा-जिसके वाणी और मन दोनों शुद्ध होते हैं और वाणी मिथ्या आदिसे दूषित नहीं होती और मन राग द्वेष आदिसे दूषित नहीं होता है अर्थात् जिसके वाणी और मन निषिद्ध विषयोंसे भली भांति बचे रहते हैं वह वेदांतके संपूर्ण मोक्षरूप यथार्थ फलको प्राप्त होता है ॥ १६० ॥ पीडित होनेपरभी किसी-से मर्मको दुःख देनेवाले वचन न कहे और दूसरेके द्रोहकी बुद्धि न करे इसकी जिस वाणीसे दूसरेका मन दुःखी होय ऐसी अनालोक्या कहिये स्वर्ग आदि लो-कोंकी प्राप्तिसे विरुद्ध वाणीको न कहे ॥ १६१ ॥

**संमानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ॥ अमृतस्येव चाकाङ्-
क्षेदवमानस्य सर्वदा॥ १६२ ॥ सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबु-
ध्यते ॥ सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥ १६३ ॥**

भाषा-ब्राह्मण सन्मानसे सदा विषके समान डरे और सदा अमृतके समान अपमानकी चाहना करे ॥ १६२ ॥ दूसरे करि अपमान किया हुआ पुरुष सुखसे सोता है और मन सुखसे जागता है और सुखसे इस लोकमें विचरता है और अ-पमान करनेवाला उस पापसे नाशको प्राप्त होता है ॥ १६३ ॥

**अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः॥ गुरौ वसन् संचिनुया-
द्ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥ १६४ ॥ तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचो-
दितैः ॥ वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥ १६५ ॥**

भाषा-जातकर्मको आदि ले यज्ञोपवीततक क्रमसे कहे हुए उपायसे संस्कार किया गया ब्राह्मण गुरुकुलमें वास करता हुआ हौले २ देवकी प्राप्तिरूप तपको करे ॥ १६४ ॥ विधि करिके बतलाये और अपने गृह्यमें कहे हुए वक्ष्यमाण नियमोंको करके और गुरुकी सेवा आदि व्रतोंकरिके उपनिषदोंसमेत मंत्र ब्राह्मणरूप संपूर्ण वेद ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य करि पढने योग्य हैं॥ १६५ ॥

**वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः ॥ वेदाभ्यासो हि विप्र-
स्य तपः परमिहोच्यते॥१६६॥ आहैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्य-
ते तपः ॥यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम्१६७**

भाषा-तपको करता हुआ ब्राह्मण सदा वेदहीका अभ्यास करे क्योंकि वेद-का पढनाही इस लोकमें ब्राह्मणका परम तप मुनीश्वरोंने कहा है॥ १६६ ॥ जो द्वि-ज फूलोंकी मालाको धारण करकेभी अर्थात् ब्रह्मचारीके नियमोंको छोडकरभी प्रति-दिन शक्तिके अनुसार वेदको पढता है वह नखशिखतक सर्व देहव्यापी बडे भारी तपको करता है ॥ १६७ ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥ स जीवन्नेव शूद्र-
त्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ १६८ ॥ मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौ-
ञ्जिबन्धने ॥ तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥ १६९ ॥

भाषा-जो द्विज वेदको न पढकर अन्यत्र कहिये शास्त्र आदिकोंमें श्रम करता है वह जीते हुए पुत्र पौत्रादिकोंसमेत शीघ्र शूद्रत्वको प्राप्त होता है ॥ १६८ ॥ वेदसे द्विजत्वको कहते हैं पहला पुरुषका जन्म मातासे होता है फिर दूसरा यज्ञोपवीत होनेसे और तीसरा ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंकी दीक्षासे होता है यह प्रथम द्वितीय तृतीय जन्मका कहना द्वितीय जन्मकी बडाईके लिये है १६९ ॥

तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ॥ तत्रास्य माता सा-
वित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥ १७० ॥ वेदप्रदानादाचार्यं पितरं
परिचक्षते ॥ न ह्यस्मिन्युज्यते कर्म किंचिदा मौञ्जिबन्धनात्॥१७१॥

भाषा-उन पहले कहे हुए तीनों जन्मोंमें वेदके ग्रहणके लिये जो यज्ञोपवीत संस्काररूप जन्म है उसमें इस बालककी माता सावित्री और पिता आचार्य कहा जाता है ॥ १७० ॥ वेदके पढानेसे मनु आदि आचार्यको पिता कहते हैं उस बालकमें यज्ञोपवीतसे पहले कोई श्रौत स्मार्त्तरूप कर्म नहीं हो सकता है ॥ १७१ ॥

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानियमनादृते ॥शूद्रेण हि समस्तावद्याव-
द्वेदे न जायते ॥१७२॥ कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते॥
ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥ १७३ ॥

भाषा-मौंजीबंधनसे पहले वेदके मंत्रोंका उच्चारण न करे और जिन मंत्रोंसे श्राद्ध किया जाता है उनको छोडके अर्थात् जिसका पिता मर गया है वह नवश्राद्ध आदिमें मंत्रोंका उच्चारण करे परन्तु उनके सिवाय वेदका उच्चारण न करे क्योंकि जबतक वेदमें अधिकारी नहीं होता तबतक वह शूद्रके तुल्य है ॥ १७२ ॥ जिससे इस बालकको समिध होमो और दिनमें न सोवो इत्यादि व्रतोंका बताना और मंत्र ब्राह्मणके क्रमसे वेदका पढना यज्ञोपवीत किये हुएको कहा है तिससे यज्ञोपवीत न होनेके पहले वेद न पढे ॥ १७३ ॥

यद्यस्य विहितं चर्म यत्सूत्रं या च मेखला॥ यो दण्डो यच्च वसनं
तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥ १७४ ॥ सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गु-
रौ वसन् ॥ संनियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः ॥ १७५ ॥

भाषा-उपनयनकालमें जिस ब्रह्मचारीको जौनसे चर्म सूत्र मेखला दंड वस्त्र ग्रहणे कहे हैं गो दानादिक व्रतोंमेंभी वेही नवीन करे ॥ १७४ ॥ ब्रह्मचारी गुरुके समीप वसता हुआ इंद्रियोंके समूहको वशमें करिके इन आगे कहे हुए नियमोंको अपने तपकी वृद्धिके लिये करें ॥ १७५ ॥

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् ॥ देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥७६॥ वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः ॥ शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥७७॥

भाषा-ब्रह्मचारी प्रति दिन स्नान करि शुद्ध हो देवऋषि तथा पितरोंका तर्पण करे और प्रतिमा आदिकोंमें हरिहरादिकोंका पूजन करे और प्रातःकाल तथा सायंकाल समिधोंका होम करे ॥ ७६ ॥ शहत और मांसको ब्रह्मचारी त्याग करे और गंध कहिये कपूर चंदन कस्तूरी आदिको न खाय न देहमें लगावे फूलोंकी माला न पहिरे रस जे गुड आदि हैं तिनको न खाय स्त्रीगमन न करे और शुक्त कहिये सिरका आदि न खाय और जीवहिंसा न करे ब्रह्मचारीको ये सब वर्जित हैं ॥७७॥

अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ॥ कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम् ॥ ७८ ॥ द्यूतं च जनवादं च परीवादं तथानृतम् ॥ स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥ ७९ ॥

भाषा-तिल आदिका लगाना आंखोंको आंजना जूता और छातेका धारण करना और काम क्रोध लोभ नाचना गाना वजाना इन सबोंको ब्रह्मचारी वर्जित करे ॥ ७८ ॥ द्यूत कहिये फासोंसे खेलना और वाद कहिये विना प्रयोजन लोगोंसे झगडा करना पराये दोषका कहना झूंठ बोलना और मैथुनकी इच्छासे स्त्रियोंका देखना अथवा आलिंगन करना और पराया अपकार इन सबोंको त्याग करे ॥ ७९ ॥

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित् ॥ कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥१८०॥ स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ॥ स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥८१

भाषा-सदा अकेला सोवे इच्छासे वीर्यको न गिरावे इच्छासे वीर्यको गिराता हुआ ब्रह्मचारी अपने व्रतका नाश करता है ॥ १८० ॥ ब्रह्मचारी द्विज इच्छाके विना स्वप्नमें वीर्यको गिराके चंदन पुष्प धूप आदिसे सूर्यका पूजन करि पुनर्मामित्विन्द्रियं इस ऋचाको तीनिवार जपै यही यहां प्रायश्चित्त है ॥ ८१ ॥

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान् ॥ आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥ ८२ ॥ वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ॥ ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥ ८३ ॥

भाषा–पानीका घट फूल गोवर मृत्तिका कुश इनको जितनेसे गुरुका प्रयोजन होय उतनेही गुरुके लिये लावे और प्रतिदिन भिक्षाको लावे ॥ ८२ ॥ वेदयज्ञसे जे हीन नहीं हैं और अपने नित्यनैमित्तिक कर्मोंमें कुशल हैं उनके घरोंसे सावधान ब्रह्मचारी प्रति दिन भिक्षा लावे ॥ ८३ ॥

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ॥ अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥ ८४ ॥ सर्वं वापि चरेद् ग्रामं पूर्वोक्तानामसंभवे ॥ नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत् ॥ ८५ ॥

भाषा–आचार्यके सपिंडोंमें और अपनी ज्ञातिमें कुलमें और वंधु तो मामा आदि हैं तिनमें भीख न मांगे और जो अन्य घरोंमें न मिले तो पहला पहला छोड दे अर्थात् पहले वंधुओंमें मांगे वहां न मिले तो ज्ञातिमें और जो ज्ञातिमेंभी न मिले तो आचार्यकीभी जातिमें मांगे ॥८४॥ पहले कहे हुए वेद यज्ञयुक्त न होंय तो कहे हुए गुणोंकरि हीनभी सव ग्राममें शुद्ध और मौन व्रत धारण करके मांगे और पातकी आदिकोंको छोड दे ॥ ८५ ॥

दूरादाहृत्य समिधः संनिदध्याद्विहायसि ॥ सायं प्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः ॥ ८६ ॥ अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्य च पावकम् ॥ अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥ ८७ ॥

भाषा–दूरसे समिधोंको लायके उन्हें ऊंचे स्थानमें धरे उन समिधोंसे आलस्यरहित हो संध्या सवेरे अग्निमें होम करे ॥ ८६ ॥ रोगी होनेके विना जो ब्रह्मचारी सात दिनतक भिक्षा न मांगे और सायंकाल प्रातःकाल अग्निमें समिधोंका होम न करे तो उसका ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट हो जाय तिस पीछे अवकीर्णी जो क्षतव्रत है तिसका प्रायश्चित्त करे ॥ ८७ ॥

भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती ॥ भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥ ८८ ॥ व्रतवद्देवदैवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्षिवत् ॥ काममभ्यर्थितोऽश्नीयाद्व्रतमस्य न लुप्यते ॥ ८९ ॥

भाषा–ब्रह्मचारी एकका अन्न न खाय किंतु वहुत घरोंसे लाये हुए भिक्षाके समूहसे जीवे जिससे भिक्षाके समूहसे ब्रह्मचारीकी जीविका मुनियोंने उपवासके

तुल्य कही है ॥ ८८ ॥ देव दैवत्यकर्ममें देवताके उद्देश करके प्रार्थना किया …
ब्रह्मचारी व्रतके समान अर्थात् व्रतसे विरुद्ध मधु मांस आदिको छोडके …
अन्न इच्छापूर्वक भोजन करे तौभी भिक्षावृत्ति नियमरूप इसका व्रत लुप्त न…
होता है ॥ ८९ ॥

ब्राह्मणस्यैव कर्मैतदुपदिष्टं मनीषिभिः ॥ राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नैतत्कर्म विधीयते ॥ १९० ॥ चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा ॥ कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ॥ ९१ ॥

भाषा–वेदार्थके जाननेवाले पण्डितोंने यह एकान्न भोजनरूप कर्म ब्राह्मणके लिये कहा है क्षत्रिय वैश्यके लिये तौ यह ऐसा नहीं कहा है ॥ १९० ॥ आ… कहनेसे अथवा न कहनेसे आपही प्रति दिन पढनेमें और गुरुके हितकारी का… उद्योग करे ॥ ९१ ॥

शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ॥ नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ ९२ ॥ नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ॥ आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥ ९३ ॥

भाषा–देह बुद्धि इंद्रिय मन इनको रोक हाथ जोरके गुरुके मुखको देखता हुआ खडा रहे बैठे नहीं ॥ ९२ ॥ सदा ओढनेके वस्त्रसे दाहिनी बांहको ब… किये हुए सुंदर आचारयुक्त वस्त्रसे देह ढके हुए बैठिये ऐसे गुरुकरि कहा … ब्रह्मचारी गुरुके सन्मुख बैठे ॥ ९३ ॥

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसंनिधौ ॥ उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत् ॥ ९४ ॥ प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत् ॥ नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥ ९५ ॥

भाषा–गुरुके समीप सदा गुरुसे हीन अन्न वस्त्र खाय पहिरे और सवेरे … घडी रात रहे गुरुसे पहले उठे और संध्याको गुरुके सोनेके पीछे आप सोवे ॥ ९४ ॥ शय्यामें पडा हुआ आसनपर बैठा हुआ भोजन करता हुआ और मुँह फेरे … हुआ ब्रह्मचारी गुरुकी आज्ञाका स्वीकार और उनसे वार्त्तालाप न करे ॥ ९५ ॥

आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः ॥ प्रत्युद्गम्य त्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तु धावतः ॥ ९६ ॥ पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् ॥ प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः ॥ ९७ ॥

भाषा–आसनपर बैठे हुए गुरु आज्ञा दे तो आ… …नसे उठ खडा हो

और जो खडे होके गुरु आज्ञा दें तौ उनके सन्मुख दो चार कदम चलके और जब गुरु सन्मुख आवे तौभी उनके सन्मुख जायके और जब गुरु दौडते आज्ञा दें तब उनके पीछे दौडके आज्ञाका अंगीकार और वार्त्तालाप करे ॥ ९६ ॥ गुरु मुख फेरे हुए आज्ञा देते होंय तौ उनके सन्मुख होके और दूर स्थित होय तो उनके समीप आयके और सोते हुए आज्ञा करें तो नम्र होके और जो समीप होय तौभी नम्र होके आज्ञाका अंगीकार और वार्त्तालाप करे ॥ ९७ ॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥ गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥ ९८ ॥ नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ॥ न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥ ९९ ॥

भाषा–गुरुके समीप शिष्यके शय्या और आसन नीचेही होना चाहिये और गुरुके देखते हाथ पांव फैलाके इच्छापूर्वक न बैठे ॥ ९८ ॥ पीठ पीछेभी गुरुका केवल नाम अर्थात् उपाध्याय आचार्य इत्यादि सत्कारके उपनामोंके विना उच्चारण न करे और हँसीसे उनके चलने बोलने आदिकी नकल न करे ॥ ९९ ॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्त्तते ॥ कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः॥ २०० ॥ परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः ॥ परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥१॥

भाषा–जहां गुरुका परीवाद अर्थात् उनमें वर्त्तमान दोषोंका कहना और निंदा अर्थात् झूठे दोष लगाना ये दोनों बातें जहां होती होंय वहां स्थित शिष्यको कान मूंद लेने चाहिये अथवा वहांसे अन्यत्र चला जाना चाहिये ॥ २०० ॥ गुरुके परीवादसे शिष्य गधा होता है और निंदा करनेवाला कुत्ता होता है और परिभोक्ता कहिये अनुचित गुरुके धनसे जीनेवाला कृमि होता है और मत्सरी कहिये गुरुका उत्कर्ष न सहनेवाला कीट कहिये कृमिसे कुछ मोटा होता है ॥ १ ॥

दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः ॥ यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत् ॥ २ ॥ प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत गुरुणा सह ॥ असंश्रवे चैव गुरोर्न किंचिदपि कीर्तयेत् ॥ ३॥

भाषा–दूर स्थित शिष्य दूसरेको नियुक्त करके माला वस्त्र आदिसे गुरुकी पूजाको न करे तथा क्रोधमें होके न करे और स्त्रीके पास स्थित गुरुकी आपभी पूजा न करे और सवारी तथा आसनपर बैठा हुआ शिष्य यान तथा आसनको छोडके गुरुको नमस्कार करे ॥ २ ॥ जो पवन गुरुकी ओरसे शिष्यकी ओर आवे हव

प्रतिवात है जो शिष्यकी ओरसे गुरुकी ओर आवे वह अनुवात है इन दोनोंमें गुरुके साथ न बैठे और जहां गुरु न सुने वहां गुरुके मध्ये अथवा और किसीके मध्ये कुछ न कहे ॥ ३ ॥

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च ॥ आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ॥ ४ ॥ गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ॥ न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरूनभिवादयेत् ॥ ५ ॥

भाषा-बैल, घोडा, ऊंट जिनमें जुते होंय ऐसी सवारियोंमें अर्थात् रथ छकडा आदिमें महलके ऊपर, गचपर, चटाईपर, शिलापर, तख्तपर और नावमें गुरुके साथ बैठे ॥ ४ ॥ जो गुरुके गुरु आवें तो गुरुके समान उनकाभी नमस्कार आदि सत्कार करे और गुरुके घरमें वसता हुआ शिष्य गुरुकी आज्ञा विना अपने गुरु माता चाचा आदिको प्रणाम न करे ॥ ५ ॥

विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु ॥ प्रतिषेधत्सु चाधर्मान्हितं चोपदिशत्स्वपि ॥ ६ ॥ श्रेयःसु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत ॥ गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥ ७ ॥

भाषा-आचार्यसे भिन्न उपाध्याय आदि विद्यागुरु होते हैं उनमें तथा स्वयोनि जो चाचा ताऊ हैं उनमें और अधर्मसे जो बचावे तथा जो हितका उपदेश करे उनमें गुरुके समान वर्त्तना चाहिये ॥ ६ ॥ श्रेयस्सु कहिये विद्या और तपसे भरे पूरोंमें और श्रेष्ठ गुरुपुत्रोंमें तथा समान जातिके गुरुपुत्रोंमें और गुरुके भाई बंधुओंमें और चाचा ताऊ आदिकोंमें गुरुके समान वर्ते ॥ ७ ॥

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि ॥ अध्यापयन्गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥ ८ ॥ उत्सादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने ॥ न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥ ९ ॥

भाषा-छोटा होय अथवा समान अवस्थाका होय वा ज्येष्ठ होय अथवा शिष्य होय वेद पढानेको समर्थ अर्थात् वेद पढा हुआ गुरुपुत्र जो यज्ञकर्ममें ऋत्विक् हो अथवा न होय यज्ञ देखनेके लिये आया हुआ गुरुके समान पूजाके योग्य है ॥ ८ ॥ देहमें उबटन करना स्नान जूंठा भोजन करना और पैरोंका धोना इतनी बातें गुरुपुत्रकी न करे अर्थात् गुरुहीकी करे ॥ ९ ॥

गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुयोषितः ॥ असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥ २१० ॥ अभ्यंजनं स्नापनं च गात्रोत्सा-

दनमेव च ॥ गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥ ११॥

भाषा–गुरुकी सवर्णा स्त्रियां गुरुके समान पूजने योग्य हैं और जो असवर्णा होंय तो अभ्युत्थान और नमस्कारसे सत्कार करने योग्य हैं ॥ २१० ॥ देहमें तेल आदिका लगाना न्हवाना देहमें उवटना करना और फूलोंकी माला आदिसे बाल गूथना इतनी बातें गुरुकी स्त्रीकी न करे ॥ ११ ॥

गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः ॥ पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥ १२ ॥ स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम् ॥ अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥ १३ ॥

भाषा–गुणदोषके जाननेवाले तरुण पूरे वीस वर्षके शिष्यकर तरुणी गुरुकी स्त्री पाव पकडकर नहीं नमस्कार करने योग्य है किन्तु दूरसे भूमिमें दंडवत् प्रणाम करे ॥ १२ ॥ यह स्त्रियोंका स्वभाव है कि, अपने शृंगार आदि चेष्टाओंसे मोहित कर पुरुषोंको दूषण देना इसी कारणसे पंडित स्त्रियोंमें प्रमत्त नहीं होते हैं ॥ १३॥

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ॥ प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥ १४ ॥ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ॥ बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १५ ॥

भाषा–मैं विद्वान् हूं जितेंद्रिय हूं ऐसा समझके स्त्रियोंके समीप न बैठना चाहिये देहके धर्मसे कामक्रोधके वशीभूत पुरुष विद्वान् हो अथवा मूर्ख हो उसको स्त्रियां कुमार्गमें ले जानेको समर्थ हैं ॥ १४ ॥ माता वहिनी अथवा पुत्री इनके साथ एकांत स्थानमें न बैठे क्योंकि, इंद्रियोंका समूह बलवान् है शास्त्रकी रीतिसे चलनेवालेभी पुरुषको वशमें कर लेता है ॥ १५ ॥

कामं तु गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि ॥ विधिवद्वन्दनं कुर्यादसावहमिति ब्रुवन् ॥ १६ ॥ विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम् ॥ गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ १७ ॥

भाषा–तरुण शिष्य तरुणी गुरुकी स्त्रियोंको अमुक शर्म्मा यह मैं तुमको नमस्कार करता हूं ऐसे कहके पहले कही हुई विधिसे भूमिमें दूरसे नमस्कार करे ॥ १६ ॥ शिष्ट पुरुषोंका यह आचार है इस बातको जानता हुआ तरुण शिष्य परदेशसे आयके तरुणी गुरुकी स्त्रियोंके कही हुई विधिसे चरण छुवे और प्रति दिन दूरसे भूमिमें नमस्कार करे ॥ १७ ॥

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ॥ तथा गुरुगतां विद्यां
शुश्रूषुरधिगच्छति॥१८॥मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिख-
जटः॥ नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेत् सूर्यो नाभ्युदियात्कचित् ॥१९॥

भाषा-जैसे कुदालीसे खोदता हुआ पानीको प्राप्त होता है ऐसेही गुरुमें स्थित विद्याको शिष्य सेवा करनेसे प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ ब्रह्मचारीके तीनि प्रकार कहते हैं सब शिर, डाढी, मूछ मुंडें होय अथवा जटाधारी होय अथवा जिसकी शिखाही जटा हो गई होय ऐसे ब्रह्मचारीको ग्राममें सोते हुए कभी सूर्य अस्त न होय और न उदय हो ॥ १९ ॥

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः ॥ निम्लोचेद्वाप्यविज्ञा-
नाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥ २२० ॥ सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽ-
भ्युदितश्च यः ॥ प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा ॥ २१ ॥

भाषा-इच्छासे सोते हुए ब्रह्मचारीको निद्राके वशमें होनेसे अज्ञानतासे जो सूर्य उदय हो आवें अथवा अस्त हो जांय तो सावित्रीको जपता हुआ एक दिन उपवास करे रात्रिको भोजन करे ॥ २२० ॥ जो ब्रह्मचारी सूर्यके अस्तसमय अथवा उदयके समय सोता रहे और प्रायश्चित्त न करे तो पापकर युक्त होके नरकको जाय तिससे यथोक्त प्रायश्चित्त करे ॥ २१ ॥

आचम्य प्रयतो नित्यमुभे संध्ये समाहितः ॥ शुचौ देशे जपञ्ज-
प्यमुपासीत यथाविधि ॥ २२ ॥ यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किंचि-
त्समाचरेत् ॥ तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्य रमेन्मनः ॥ २३ ॥

भाषा-आचमन करके पवित्र हो मनको एकाग्र कर शुद्ध देशमें सावित्रीको जपता हुआ विधिपूर्वक दोनों कालकी संध्याओंकी उपासना करे ॥ २२ ॥ जो स्त्री अथवा शूद्र कुछ श्रेय अर्थात् अच्छा काम करे तो उसकोभी मन लगाके करे अथवा शास्त्रकरि नहीं मने किये हुए जिस काममें इसका मन लगे उसकोभी करे ॥ २३ ॥

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च ॥ अर्थ एवेह वा श्रेय-
स्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः॥२४॥ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः
प्रजापतेः॥माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्त्तिरात्मनः ॥ २५ ॥

भाषा-श्रेय क्या है सो कहते हैं. कोई आचार्य कहते हैं कि, सुखके कारण होनेसे धर्म और अर्थ श्रेय है और कोई कहते हैं कि, सुखका हेतु और अर्थकामका उपाय होनेसे धर्मही श्रेय है और कोई कहते हैं कि, धर्म और कामकाभी

सहायक होनेसे लोकमें अर्थही श्रेय है अब कुल्लूकभट्ट अपना मत कहते हैं आपसमें विरोध न रखनेवाला धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्गही पुरुषार्थतासे श्रेय है यह निश्चय है यह बुभुक्षु जो भोगकी इच्छावाले हैं उनको उपदेश है मुमुक्षु जो मोक्ष चाहनेवाले हैं उनको नहीं उनको तो मोक्षही श्रेय है सो छठे अध्यायमें कहेंगे ॥ २४ ॥ आचार्य वेदांतमें कहे हुए ब्रह्म परमात्माकी मूर्ति कहिये शरीर है और पिता हिरण्यगर्भकी मूर्त्ति है और माता धारण करनेसे पृथिवीकी मूर्त्ति है और अपना सहोदर भाई क्षेत्रज्ञकी मूर्त्ति है तिससे देवतारूप ये अपमान करने योग्य नहीं हैं ॥२५॥

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ॥ नार्त्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ २६ ॥ यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम् ॥ न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२७॥

भाषा—आचार्य, पिता, माता, ज्येष्ठ सगा भाई ये पीडित पुरुष करकेभी नहीं अपमान करने योग्य हैं और विशेषतासे ब्राह्मण करके ॥ २६ ॥ संततिके संभव कहिके गर्भाधानके पीछे उत्पत्ति पालन आदिमें मातापिता जिस क्लेशको सहते हैं उसका ऋण सैकरों वर्षोंमेंभी नहीं दूरि हो सकता है इस कारण देवतारूप माता पिता अपमान करने योग्य नहीं हैं ॥ २७ ॥

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ॥ तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥ २८ ॥ तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते ॥ न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ २९ ॥

भाषा—मातापिताका और आचार्यका सदा प्रिय करे अर्थात् जिसमें वे प्रसन्न रहें सो करे क्योंकि उनके प्रसन्न रहनेसे सब तप पूरे होते हैं ॥ २८ ॥ उन तीनोंकी सेवा परम कहिये उत्कृष्ट तप कहाता है उनकी आज्ञा विना और किसी धर्मको न करे ॥ २९ ॥

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः ॥
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥ २३० ॥

भाषा—वेही तीनों अर्थात् माता पिता और गुरु तीनों लोकोंकी प्राप्तिका कारण होनेसे तीनों लोक हैं और वेही गृहस्थ आदि तीनों आश्रमोंके देनेवाले होनेसे ब्रह्मचर्य आदि तीनों आश्रम हैं और वेही तीनों वेदोंके जपफलका उपाय होनेसे तीनों वेद हैं और वेही तीनों अग्नियोंमें करने योग्य यज्ञ आदिके फल देनेवाले होनेसे तीनों अग्नि हैं ॥ २३० ॥

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ॥ गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥ ३१ ॥ त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकान्वि-जयेद् गृही ॥ दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ॥ ३२ ॥

भाषा-पिताही गार्हपत्य अग्नि है और माता दक्षिणाग्नि है और आचार्य आ-हवनीय है सो ये तीनों आग्नि अति श्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ इन तीनोंमें प्रमादको न करता हुआ ब्रह्मचारी तौ सर्वोत्कर्षसे वर्तमान होताही है परंतु गृहस्थभी तीनों लोकोंको जीति लेता है और अपने शरीरसे प्रकाशमान हो सूर्य आदि देवताओंके समान स्वर्गमें आनंद करता है ॥ ३२ ॥

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ॥ गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ ३३ ॥ सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ॥ अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥ ३४ ॥

भाषा-माताकी भक्तिसे इस भूलोकको और पिताकी भक्तिसे मध्यम लोकको और आचार्यकी भक्तिसे हिरण्यगर्भके लोकको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जिसने इन तीनों अर्थात् माता पिता और आचार्यका आदर किया उसको सब धर्म फल देने-वाले होते हैं और जिसने अनादर किया उसके सब श्रौत स्मार्त कर्म निष्फल होते हैं ॥ ३४ ॥

यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ॥ तेष्वेव नित्यं शुश्रू-षां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥ ३५ ॥ तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदा-चरेत् ॥ तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥ ३६ ॥

भाषा-जबतक ये तीनों जीवें तबतक स्वतंत्र होके और धर्मको न करे प्रिय और हितमें मन लगाके उन्हींकी सेवा करे ॥ ३५ ॥ उनकी सेवामें अंतर न पडने-से उन्हींकी आज्ञासे मन वचन कर्मोंसे जो परलोक संबंधी कर्म करे सो मैंने यह किया है ऐसे उनसे पीछे कह दे ॥ ३६ ॥

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते ॥ एष धर्मः परः साक्षा-दुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥ ३७ ॥ श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीताव-रादपि ॥ अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ ३८ ॥

भाषा-इन तीनोंकी सेवा करनेपर पुरुषका संपूर्ण श्रौत स्मार्त कर्मफल मिल-नेसे कियाहीसा होना है तिससे यह धर्म श्रेष्ठ है और साक्षात् पुरुषार्थका साधन है और अन्य अग्निहोत्र आदि स्वर्गादिकोंका साधन होनेसे छोटाही धर्म है ॥ ३७ ॥

श्रद्धायुक्त हो शुभ कहिये जिसकी शक्ति देखी है ऐसी गारुड आदि विद्याको शूद्रसेभी ग्रहण कर ले और चांडालसेभी मोक्षके उपाय तत्वज्ञानको ग्रहण करे और अपने कुलसे नीच कुलकेभी स्त्रीरत्नको व्याह करनेके लिये ग्रहण करे ॥ ३८ ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ॥ अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ॥ ३९ ॥ स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ॥ विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥२४०॥

भाषा—विषमें जो अमृत मिला होय तौ विषको दूर करके अमृत लेना चाहिये और बालकसेभी हित वचन लेना चाहिये और सज्जनका चरित्र शत्रुसेभी लेना चाहिये और अपवित्र स्थानसेभी सुवर्ण आदि लेना चाहिये ॥ ३९ ॥ स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, सुंदर वचन और नाना प्रकारके शिल्प कहिये कारीगरी चित्र लिखना आदि सबोंसे लेने चाहिये ॥ २४० ॥

अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ॥ अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥ ४१ ॥ नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत् ॥ ब्राह्मणे चाननूचाने काङ्क्षन्गतिमनुत्तमाम् ॥ ४२ ॥

भाषा—आपत्तिसमयमें अब्राह्मणसे अर्थात् ब्राह्मणभिन्न क्षत्रिय अथवा वैश्यसे पढना कहा है और अनुगम आदि रूप सेवा जबतक पढे तभीतक करे गुरु होनेसे पैर धोना जूंठा खाना आदिभी प्राप्त हुए सो न करे जबतक पढे तभीतक क्षत्रियका गुरुत्व है पीछे नहीं सो व्यासने कहा है। " मंत्रदः क्षत्रियो विप्रैः शुश्रूष्योऽनुगमादिना। प्राप्तविद्यो ब्राह्मणस्तु पुनस्तस्य गुरुः स्मृतः ॥" अर्थ—मंत्रका देनेवाला क्षत्रिय ब्राह्मणोंकरके अनुगमन आदिसे सेवा करने योग्य है और विद्या पानेके पीछे फिर उसका गुरु कहा गया है इति ॥ ४१ ॥ अनुत्तमा कहिके मोक्षरूप गतिको चाहता हुआ शिष्य ब्राह्मणभिन्न अर्थात् क्षत्रिय आदि गुरुके स्थानमें जन्मभर ब्रह्मचर्ययुक्त वास न करे और जो अंगोंसमेत वेद न पढा होय ऐसे ब्राह्मणकेभी स्थानमें वास न करे ॥ ४२ ॥

यदि त्वात्यन्तिकं वासं रोचयेत गुरोः कुले ॥ युक्तः परिचरेदेनमा शरीरविमोक्षणात् ॥ ४३ ॥ आ समाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् ॥ स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम् ॥ ४४ ॥

भाषा—जो गुरुके कुलमें नैष्ठिक ब्रह्मचर्यरूप जन्मभर वास करना चाहे तो जबतक जीवे तबतक अर्थात् देह छूटनेपर्यंत तत्पर होके गुरुकी सेवा करे ॥ ४३ ॥

फल कहते हैं. जो शिष्य शरीरकी समाप्ति कहिये मरनेतक गुरुकी सेवा

करता है वह ब्रह्मके शाश्वत कहिये अविनाशी स्थानमें प्राप्त होता है अर्थात् ब्रह्ममें लीन हो जाता है ॥ ४४ ॥

न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित् ॥ स्नास्यंस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् ॥ ४५ ॥ क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम् ॥ धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत् ॥ ४६ ॥

भाषा-गुरुदक्षिणा देनेके धर्मका जाननेवाला ब्रह्मचारी स्थानसे गौ वस्त्र आदि कुछ धन गुरुको अवश्य न देवे और स्नान करता हुआ गुरुकी आज्ञा पाके शक्तिके अनुसार किसी धनीसे मांगकरभी अथवा दान आदिसे धनको लायके गुरुको अवश्य दे ॥ ४५ ॥ खेत, सोना, गौ, घोडा, छाता, जूता, आसन, अन्न, शाक और वस्त्र ये सब अथवा इनमेंसे पहले कहे हुओंको छोडके जो मिल सके सो गुरुको दे और जो कुछ न मिले तो शाकही दे ॥ ४६ ॥

आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते ॥ गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ॥ ४७ ॥ एतेष्वविद्यमानेषु स्नानासनविहारवान् ॥ प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ॥ ४८ ॥

भाषा-नैष्ठिक ब्रह्मचारी गुरुके मरनेपर जो गुरुपुत्र गुणयुक्त होय तो उसको गुरुके समान माने और गुरुपुत्र न होय तो गुरुकी स्त्रीको स्त्री न होय तो सपिंड भाई आदिकोंको गुरुके समान माने ॥ ४७ ॥ जो इसमेंसे गुरुपुत्र आदि कोई न हो तो आचार्यकी अग्निसे समीप रहने बैठने और संध्या सबेरे समिधोंके होम आदिसे अग्निकी सेवा करता हुआ अपनी देह अर्थात् अपनी देहमें स्थित जीवको ब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य करे ॥ ४८ ॥

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः ॥
स गच्छत्युत्तमस्थानं न चेहाजायते पुनः ॥ २४९ ॥

इति मनुस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

भाषा-जो ब्राह्मण ऐसे अखंड ब्रह्मचर्य्यको निवाहता है वह उत्तम ब्रह्मके स्थानमें प्राप्त होता है और कर्मोंके वशसे इस संसारमें जन्मको नहीं लेता है ॥ २४९ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ॥ तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥ वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ॥ अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ २ ॥

भाषा—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इन तीनोंको गुरुकुलमें छत्तीस वर्ष पढे अर्थात् प्रत्येक वेदकी शाखाको बारह वर्ष पढे अथवा उसके आधे अठारह वर्षतक पढे तब प्रत्येक वेदकी शाखाका छः वर्ष पढना हुआ अथवा उसकी चौथाई नव वर्षपर्यंत पढे तो प्रत्येक वेदकी शाखाके तीन वर्ष हुए अथवा कही हुई अवधिके भीतर बाहर जितने कालमें वेदोंको पढे उतने कालपर्यंत गुरुकुलमें वसके ब्रह्मचर्य व्रत करे ॥ १ ॥ क्रमसे तीनों वेदोंकी शाखाओंको अथवा दो वेदोंकी शाखाओंको अथवा एक वेदकी शाखाको मंत्रब्राह्मणके क्रमसे पढके अविप्लुत ब्रह्मचर्य कहिये पहले कहे हुए स्त्रीसंग मधुमांसका त्यागरूप ब्रह्मचर्यसे युक्त वह गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे अर्थात् गृहस्थके लिये कहे हुए कर्मोंको करे ॥ २ ॥

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ॥ स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥ ३ ॥ गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ॥ उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ ४ ॥

भाषा—ब्रह्मचारीके धर्म करनेसे प्रसिद्ध और पिता वेदरूप भागके लेनेवाले अर्थात् पितासे अथवा पिताके अभावमें आचार्य आदिसे वेद पढे हुए ब्रह्मचारीको मालासे अलंकृत करि उत्तम शय्यापर बैठाय पिता अथवा आचार्य विवाहसे पहले गौ है साधन जिसका ऐसे मधुपर्कसे पूजन करे ॥ ३ ॥ गुरुकी आज्ञासे निज गृह्यकी विधिपूर्वक स्नान समावर्त्तन करि समान वाणी और शुभ लक्षणोंकर युक्त कन्यासे विवाह करे ॥ ४ ॥

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ॥ सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥ महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ॥ स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

भाषा—जो माताकी सपिंडा कहिये सात पिढीमें न होय सगोत्राभी न होय और पिताके गोत्रमें न होय ऐसी स्त्री, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको अग्निहोत्र और

संतति उत्पन्न करना आदि कर्मोंमें उत्तम है ॥ ५ ॥ ऊंचेभी होय और गौ, बकरी, भेड, धन, धान्य इनसे भरे पूरेभी होनेपर आगे कहे हुए सात कुलोंकी कन्यासे विवाह न करे ॥ ६ ॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ॥
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ७ ॥
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ॥
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥ ८ ॥

भाषा-वे कुल कहते हैं. हीनक्रिय अर्थात् जातकर्म आदि क्रियाओंसे रहित १ स्त्रीजनक जिसमें स्त्रियांही उत्पन्न होती होंय २ वेद पढनेसे रहित ३ बहुतसे रोमोंसे युक्त ४ बवासीररोगयुक्त ५ क्षयरोगयुक्त ६ मंदाग्नियुक्त ७ अपस्मार कहिये मिरगीयुक्त ८ श्वेतकुष्ठयुक्त ९ गलत्कुष्ठयुक्त १० इन दश कुलोंको छोड दे अर्थात् इन कुलोंकी कन्यासे विवाह न करे ॥ ७ ॥ भूरे बालोंकी अधिक अंगकी जैसे छः अंगुलीकी सदा रोगी न रहे जिसके रोम न होय जिसके बहुत रोम होंय बहुत बोलनेवाली आंखोंमें कंजी होय ऐसी कन्यासे विवाह न करे ॥ ८ ॥

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥ न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ९ ॥ अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ॥ तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ १० ॥

भाषा-नक्षत्रोंके जैसे आर्द्रा रेवती इत्यादि नामोंकी और वृक्ष नदी म्लेच्छ पर्वत पक्षी सर्प दास और भयानक नामकी कन्यासे विवाह न करे ॥ ९ ॥ जिसके अंगमें कुछ व्यंग नहीं मधुर नामवाली हंस अथवा हाथी इन्होंके समान गमन करनेवाली सूक्ष्म लोमवाली बारीक केशवाली और कोमल दांतवाली सुंदर है शरीर जिसका ऐसे स्त्रीके साथ विवाह करना ॥ १० ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥ नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥ ११ ॥ सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि ॥ कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः ॥ १२ ॥

भाषा-जिसके भाई न होय उसको पुत्रिकाकी शंकासे न व्याहे पुत्रिका उसको कहते हैं कि, जिसका पिता पहले यह कहे कि, इसका पुत्र होगा वह मेरा पिंडदानादि करनेवाला होगा और जिसके पिताका कुछ ठीक ठिकाना न होय उसकोभी बुद्धिमान् न व्याहे अथवा जिसका पिता न जाना जाय उसको अधर्म शंका

कहिये जारकी शंकासे न व्याहे ॥ ११ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको प्रथम विवाह करनेमें सवर्ण कहिये अपने २ वर्णकी कन्या श्रेष्ठ है और फिर कामसे जो विवाह करना चाहे तो उनके लिये अनुलोम क्रमसे आगे जो कही जांयगी वे श्रेष्ठ हैं॥१२॥

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते ॥
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥ १३ ॥
न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः ॥
कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥ १४ ॥

भाषा-शूद्रकी शूद्राही स्त्री होती है ऊंची जातिकी वैश्या आदि तीनी नहीं होती है और वैश्यके शूद्रा और वैश्या दो स्त्री मनु आदिकोंने कही हैं और क्षत्रियके वैश्या, शूद्रा और क्षत्रिया और ब्राह्मणके क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा और ब्राह्मणी ये चार स्त्रियां कही हैं ॥ १३ ॥ गृहस्थीकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रियको आपत्तिमेंभी अर्थात् सवर्णाकन्याके न मिलनेपरभी किसी प्रकारसे शूद्रकी कन्यासे विवाह करना नहीं कहा है यह निषेध प्रतिलोम अर्थात् उलटे विवाहके मध्य है और अनुलोम कहिये सीधेमें तो कहे चुके हैं ॥ १४ ॥

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः ॥ कुलान्येव नयन्त्या-
शु ससंतानानि शूद्रताम् ॥ १५ ॥ शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतन-
यस्य च ॥ शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः ॥ १६ ॥

भाषा-सवर्णाको विना व्याहे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शास्त्रके विचार विना हीन जाति कहिये शूद्रासे विवाह करता है वह उस कन्यामें उत्पन्न पुत्र पौत्र आदिके क्रमसे कुलोंको शूद्र कर देता है ॥ १५ ॥ शूद्रा कन्याके साथ विवाह करनेसे पतितहीसा होता है यह अत्रि और गौतमका मत है और शूद्रामें पुत्र उत्पन्न होनेसे पतित होता है यह शौनकका मत है और शूद्राके संतानके संतान होनेसे पतित होता है यह भृगुका मत है अथवा तदपत्यतया अर्थात् उसी शूद्रासे उत्पन्न है पुत्र जिसके ऐसा वह द्विज पतित होता है॥ १६ ॥

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥ जनयित्वा सुतं
तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ १७ ॥ दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधा-
नानि यस्य तु ॥ नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति॥ १८ ॥

भाषा-शूद्राके साथ भोग करके ब्राह्मण नरकको जाता है और उसमें पुत्र उत्पन्न करके ब्राह्मणपनसेही रहित हो जाता है ॥ १७ ॥ दैव होम आदि और पि-

न्य श्राद्ध आदि तथा आतिथ्य अतिथिभोजन आदि इनको जिसके शूद्रा करती है उस हव्य और कव्यको देवता और पितृ नहीं खाते हैं और वह स्वर्गको नहीं जाता है ॥ १८ ॥

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ॥ तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १९ ॥ चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान् ॥ अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत ॥ २० ॥

भाषा—शूद्रीका ओंठ चुंबन करनेसे और उसके मुखकी भाफ लगनेसे और उसीमें संतति उत्पन्न करनेवालेकी शुद्धि नहीं है ॥ १९ ॥ ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके कोई परलोक और इस लोकमें हित तथा अहित जिनको आगे कहते हैं ऐसे आठ विवाहोंको संक्षेपसे सुनिये ॥ २० ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २१ ॥ यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ ॥ तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥ २२ ॥

भाषा—उन आठोंके नाम कहते हैं. जैसे ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ राक्षस ७ और आठवां सबोंसे अधम पैशाच ॥ २१ ॥ जो विवाह जिस वर्णका धर्मसंबंधी है और जिसके गुण तथा दोष अर्थात् भलाई बुराईको और उन २ विवाहोंसे उत्पन्न संतानिमें जो गुणदोष हैं तिनको सुनिये ॥ २२ ॥

षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान् ॥ विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानराक्षसान् ॥ २३ ॥ चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः ॥ राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥ २४ ॥

भाषा—ब्राह्मणको क्रमसे ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ ये ६ विवाह धर्म्य हैं और क्षत्रियको आर्ष १ प्राजापत्य २ आसुर ३ गांधर्व ४ ये विवाह धर्म्य हैं और वैश्य तथा शूद्रकेभी वेही आसुर गांधर्व पैशाच जनिये और राक्षस उनके योग्य नहीं है ॥ २३ ॥ ब्राह्मणके ब्राह्म आदि चारि और क्षत्रियके एक राक्षस और वैश्य तथा शूद्रके आसुर इन विवाहोंको जाननेवाले श्रेष्ठ जानने हैं ॥ २४ ॥

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविह ॥ पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन ॥ २५ ॥ पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥ २६ ॥

भाषा–प्राजापत्य आदि पांच विवाहोंमें प्राजापत्य गांधर्व और राक्षस ये तीनि विवाह धर्मसंबंधी हैं दो धर्मसंबंधी नहीं हैं पैशाच और आसुर ये दो कभी करने योग्य नहीं हैं ॥२५॥ जुदे २ अथवा मिले हुए पहले कहे हुए गांधर्व और राक्षस विवाह क्षत्रियको धर्मके अनुसार मनु आदिकोंने कहे हैं ॥ २६ ॥

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतशीलवते स्वयम् ॥ आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः ॥ २७ ॥ यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ॥ अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ २८ ॥

भाषा–विद्या और आचारयुक्त वरको बुलायके उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंसे कन्या तथा वरको भूषित कर वरके लिये जो दान किया जाता है उसको मनु आदि ब्राह्मविबाह कहते हैं ॥ २७ ॥ ज्योतिष्टोम आदि यज्ञके आरंभ होनेमें अच्छे प्रकारसे कर्म करते हुए ऋत्विग्के लिये वस्त्र आभूषणोंसे शोभित कर जो कन्याका देना है उसको मुनीश्वर दैवविवाह कहते हैं ॥ २८ ॥

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ॥ कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ २९ ॥ सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च ॥ कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ ३० ॥

भाषा–एक गौ और एक बैल ऐसे गौओंका एक जोडा अथवा दो जोडे वरसें यज्ञ आदिकी सिद्धिके लिये अथवा कन्याके देनेके लिये लेकर शास्त्रके अनुसार जो कन्यादान किया जाता है उसको आर्ष विवाह कहते हैं ॥ २९ ॥ तुम दोनों मिलके धर्म करो ऐसे कन्यादानके समय पहले नियम करके पूजन कर जो कन्यादान किया जाता है उसको प्राजापत्य विवाह कहते हैं ॥ ३० ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः ॥ कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥ ३१ ॥ इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ॥ गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥ ३२ ॥

भाषा–कन्याके पिता आदिको अथवा कन्याको यथाशक्ति धन देकर जो अपनी इच्छासे कन्याका लेना है उसको आसुर विवाह कहते हैं ॥ ३१ ॥ कन्या और वरकी आपसकी प्रीतिसे परस्पर आलिंगन आदि रूप मिलना है उसको गांधर्व विवाह कहते हैं ॥ ३२ ॥

हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशंतीं रुदतीं गृहात् ॥ प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ३३ ॥ सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रो-

पगच्छति ॥ स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ ३४ ॥

भाषा—वलात्कारसे कन्याका हर लेना राक्षसविवाहका यही लक्षण है कन्याके पक्षवालोंको मारके और उनके अंगोंको काटके और परकोटा आदिको फोडकर हाय पिता हाय भाई अनाथ मैं हरी जाती हूं ऐसे कहती हुई और आसुओंको छोडती हुई कन्याको जो उसके घरसे हर लेना है उसको राक्षसविवाह कहते हैं इससे कन्याकी अनिच्छा प्रगट होती है ॥ ३३ ॥ सोती हुईको मद्यसे व्याकुलको और शीलकी रक्षासे रहितको एकांतस्थानमें जो विषयकी इच्छासे प्रवृत्त होता है उस पापमूल विवाहको सव विवाहोंमें अधम पैशाच विवाह कहते हैं ॥ ३४ ॥

अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं विशिष्यते ॥ इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ॥ ३५ ॥ यो यस्यैषां विवाहानां मनुना कथितो गुणः ॥ सर्वं शृणुत तं विप्राः सम्यक् कीर्तयतो मम ॥ ३६ ॥

भाषा—ब्राह्मणोंको जलदान पूर्वकही कन्यादान करना उत्तम है और क्षत्रिय आदि अन्य वर्णोंको जलके विनाभी आपसकी इच्छासे वाणीमात्रसेभी कन्यादान होता है॥ ३५ ॥इन विवाहोंमें जिसका जो गुण मनुने कहा है वह सव हे ब्राह्मणो ! कहते हुए मुझसे सुनो यह भृगुने ब्राह्मणोंसे कहा है ॥ ३६ ॥

दश पूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम् ॥ ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितॄन् ॥ ३७ ॥ दैवोढजः सुतश्चैव सप्त सप्त परावरान् ॥ आर्षोढजः सुतस्त्रींस्त्रीन् षट् षट् कायोढजः सुतः ॥ ३८ ॥

भाषा—ब्राह्मविवाहमें व्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र जो शुभ कर्म करनेवाला होय तौ पिता आदिको नरकसे निकार लेता है और उसके कुलमें पुत्र आदि निष्पाप उत्पन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ दैवविवाहमें व्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र पिता आदि सात पीढी पहली और पुत्र आदि सात पीढी पिछली और आर्षविवाहमें व्याही हुईका पुत्र तीन पीढी पहली और तीन पिछली और प्राजापत्यमें व्याही हुईका पुत्र छः पीढी पहली और छः पिछलीको और आपको पापसे छुडाता है ॥ ३८ ॥

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ॥ ३९ ॥ रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ॥ पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥ ४० ॥

भाषा—ब्राह्म आदि चार विवाहोंमें श्रुताध्ययन सम्पत्तिरूप तेजकरि युक्त और शिष्टोंके प्यारे पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ रूपवान् पराक्रमी धनवान् गुणवान्

यशस्वी और अपनी इच्छासे वस्त्र माला गंधलेप आदिसे शोभित धर्मात्मा और सौ वर्षकी आयुष्यतक जीनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ॥ जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥ ४१ ॥ अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ॥ निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥

भाषा–ब्राह्म आदि चारि विवाहोंसे अन्य आसुर आदि चारोंमें क्रूर कर्म करनेवाले मिथ्यावादी वेदसे द्वेष करनेवाले यज्ञ आदि धर्मोंसे द्वेष करनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४१ ॥ स्त्रीकी प्राप्तिके कारण जे अच्छे विवाह हैं उनसे पुरुषके संतानभी अच्छी होती हैं और निंदित विवाहोंसे प्रजाभी निंदित होती है तिससे निंदित विवाहोंका त्याग करे ॥ ४२ ॥

पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते ॥ असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि ॥ ४३ ॥ शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया ॥ वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥ ४४ ॥

भाषा–पाणिग्रहण संस्कार कहिये हाथ पकडनेकी विधि समानजाति कन्याके विवाहमें किया जाता है और अन्य वर्णकी कन्याके विवाहमें आगेके श्लोकमें कही हुई विधि जानिये ॥ ४३ ॥ ऊंची जातिके पुरुषके साथ ब्याहमें क्षत्रिया कन्याको प्राणिग्रहणके स्थानमें ब्राह्मणके विवाहमें ब्राह्मणके हाथमें पकडे हुए तीरका एक भाग ग्रहण करने योग्य है और वैश्या स्त्रीको ब्राह्मण क्षत्रियके विवाहमें ब्राह्मण क्षत्रिय करि पकडे हुए चाबुकका एक सिरा पकडना चाहिये और शूद्रा स्त्रीको ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके लिपटे हुए कपडेकी वत्ती ग्रहण करनी चाहिये ॥ ४४ ॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ॥ पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ ४५ ॥ ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ॥ चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ ४६ ॥

भाषा–रुधिरके दर्शनसे जाने गये गर्भ रहनेके समयको ऋतुकाल कहते हैं उसमें स्त्रीसे पुत्रकी प्राप्तिके लिये भोग करे और अपनी स्त्रीमें सदा संतुष्ट रहे और पर्व जो अमावास्या आदि हैं तिनको छोडके भार्यासे अति प्रीति करनेवाला पुरुष ऋतुकालसे भिन्न कालमेंभी रतिकी कामनासे गमन करे पुत्र उत्पन्न करनेकी बुद्धिसे नहीं ॥ ४५ ॥ सज्जनोंकरि निंदित रुधिर दीखनेके चार दिनों समेत स्त्रियोंके सोलह राते दिन स्वाभाविक ऋतुकाल कहा है रोग आदिसे न्यूनाधिकभी हो जाता है॥४६॥

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ॥ त्रयोदशी च शेषा-स्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ४७ ॥ युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽ-युग्मासु रात्रिषु ॥ तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥ ४८ ॥

भाषा-फिर उन सोलह रातदिनोंमें रुधिरदर्शनसे लगाके पहले चार रात्रि दिन और एकादशी तथा तेरसी गमनमें निंदित हैं और शेष दश रात्रियां उत्तम हैं ॥ ४७ ॥ पहले कही दश तिथियोंमें युग्म कहिये षष्ठी और अष्टमी रात्रिमें पुत्र उत्पन्न होते हैं तिससे पुत्रका चाहनेवाला पुरुष युग्म रात्रिमें ऋतुके समय स्त्रीसे गमन करे ॥ ४८ ॥

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ॥ समे पुमान्पुंस्त्रि-यौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥ ४९ ॥ निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ॥ ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ५० ॥

भाषा-पुरुषका वीर्य अधिक होनेसे विषम रात्रिमेंभी पुत्रही होता है और स्त्रीका वीर्य अधिक होनेसे युग्ममेंभी कन्याही होती है और दोनोंका वीर्य बराबर होनेसे नपुंसक होय अथवा जोडिया स्त्रीपुरुष उत्पन्न होय अथवा दोनोंका वीर्य क्षीण अथवा थोडा होय तौ गर्भका संभव न होय अर्थात् गर्भ न रहे ॥ ४९ ॥ पहले कही ऋतुकालकी निंद्य छः रात्रियोंमें और अन्य अनिंद्य जिन किन्ही आठ रात्रि-योंमेंभी स्त्रीको त्यागता हुआ बाकी पर्वकी दो रात्रियोंको छोड गमन करनेवाला जिस किसी आश्रममें वसता हुआ पुरुष अखंड ब्रह्मचर्य व्रतको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि ॥ गृह्णञ्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥ ५१ ॥ स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजी-वन्ति बान्धवाः ॥ नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥ ५२ ॥

भाषा-धन लेनेके दोषका जाननेवाला कन्याका पिता कन्यादानके निमित्त थोडाभी धन न ले, जो लोभसे ले तो संतानका वेंचनेवाला होय ॥ ५१ ॥ पति, पिता, भ्राता आदि जे बांधव स्त्री पुत्री आदिका धन और नारीके वाहन अश्व आदिको और वस्त्रोंको ले लेते हैं वे पाप करनेवाले नरकको जाते हैं तिससे स्त्रीधन किसीको न लेना चाहिये ॥ ५२ ॥

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् ॥ अल्पोऽप्येवं महा-न्वापि विक्रयस्तावदेव सः ॥ ५३ ॥ यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः ॥ अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम् ॥ ५४ ॥

भाषा-कोई आचार्य कहते हैं कि आर्षविवाहमें वरसे गौका जोडा लेना चाहिये

वंह झूंठही है जिससे थोडा होय अथवा बहुत होय वह वेंचनाही है ॥ ५३ ॥ जिन कन्याओंका वरकरि प्रीतिसे दिया हुआ धन पिता आदि नहीं लेते किंतु कन्याको दे देते हैं वहभी वेंचना नहीं है जिससे कुमारियोंका पूजन केवल दयारूप है ॥ ५४ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ॥ पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ५५ ॥ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ॥ यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ५६ ॥

भाषा—केवल विवाहकालहीमें वरका दिया हुआ धन कन्याको देना चाहिये किंतु उसके पीछेभी पिता आदि करिके कन्या भोजन आदिसे पूजन योग्य हैं और वहुत धन आदि संपत्तिके चाहनेवाले पिता भ्राता आदिको वस्त्र अलंकार आदिसे भूषित करने योग्यभी हैं ॥ ५५ ॥ जिस कुलमें पिता आदि करके स्त्री पूजी जाती हैं वहां देवता प्रसन्न होते हैं और जहां ये नहीं पूजी जाती हैं वहां देवताओंकी प्रसन्नता न होनेसे सब यज्ञादिक क्रिया निष्फल हो जाती हैं ॥ ५६ ॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ॥ न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥ ५७ ॥ जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ॥ तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥ ५८ ॥

भाषा—जिस कुलमें बहिन स्त्री पुत्री और पुत्रकी वहू आदि दुःखी होती हैं वह कुल शीघ्रही निर्धन हो जाता है और देवता तथा राजा आदिकरि पीडित होता है और जहां ये नहीं शोचती हैं वह धन आदिसे सदा वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ भगिनी पत्नी बेटी वहू ये दुःखी हो जिन घरोंको कोसती हैं वे घर कृत्या जो अभी चाहे तिस करके नाश कियेकी समान धन पशु आदि समेत नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥ भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ५९ ॥ संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ॥ यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ ६० ॥

भाषा—तिससे ये भगिनी आदि कौमुदी आदि सत्कारोंमें और यज्ञोपवीत आदि उत्सवोंमें समृद्धि चाहनेवाले पुरुषोंकरके सदा पूजने योग्य हैं ॥ ५९ ॥ जिस कुलमें स्त्रीसे पुरुष प्रसन्न रहता है अर्थात् दूसरी स्त्री आदिकी इच्छा नहीं करता है और पुरुषसे स्त्री प्रसन्न रहती है उस कुलमें चिरकालपर्यंत श्रेय रहता है ॥ ६० ॥

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ॥ अप्रमोदात्पुनः पुंसः

प्रजनं न प्रवर्तते ॥ ६१ ॥ स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ॥ तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ६२ ॥

भाषा—जो स्त्री वस्त्रआभरण आदिकोंसे शोभित न होय तो यह अपने स्वामीके प्रसन्न न करे तो फिर पुरुषके प्रसन्न न होनेसे गर्भाधान नहीं होता है ॥ ६१ ॥ मंडन आदिसे स्त्रीके कांतिमती होनेपर पतिके स्नेहसे परपुरुषका संसर्ग न होनेके कारण वह कुल प्रकाशमान होता है और उसके न शोभित होनेपर भर्त्ताके द्वेषसे दूसरे पुरुषका मेल होनेसे सब कुल मलिन हो जाता है ॥ ६२ ॥

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्यापनेन च ॥ कुलान्यकुलतां यांति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ६३ ॥ शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः ॥ गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ॥ ६४ ॥

भाषा—आसुर आदि बुरे विवाहोंसे और जातकर्म आदि क्रियाओंकेलोपसे और वेदके न पढनेसे और ब्राह्मणका पूजन न करनेसे प्रसिद्ध कुल हीन हो जाता है ॥ ६३ ॥ चित्र खींचना आदि शिल्पसे और व्याजके लिये धनके व्यवहारसे और केवल शूद्रामें उत्पन्न पुत्रसे और गौ घोडा रथके वेंचनेसे खेती करनेसे राजाकी नौकरी करनेसे कुलोंका नाश हो जाता है ॥ ६४ ॥

अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणाम् ॥ कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥ ६५ ॥ मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि ॥ कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥ ६६ ॥

भाषा—अयाज्य जो हैं व्रात्य आदि तिनको यजन करानेसे और श्रौत स्मार्त्त कर्मोंके न माननेसे और वेदके मंत्रोंकरि हीन होनेसे सब कुल शीघ्र नाश हो जाता है ॥ ६५ ॥ यद्यपि धनसे कुल होते हैं यह बात लोकमें प्रसिद्ध है तिसपरभी थोडे धनवालेभी कुल वेदके पढने और उसके अर्थके जाननेसे ऊंचे कुलोंकी गणनामें गने जाते हैं और बडी भारी प्रसिद्धि पाते हैं ॥ ६६ ॥

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि ॥ पञ्चयज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहिकीं गृही ॥ ६७ ॥ पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ॥ कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥ ६८ ॥

भाषा—वैवाहिक अग्निमें सायंकाल और प्रातःकालका गृह्यमें कहा हुआ होम और अष्टका आदि विधिपूर्वक पंच यज्ञोंमेंसे प्रति दिन करने योग्य बलि वैश्वदेव आदिको और नितके पाककोभी गृहस्थ उसी अग्नि[illegible] ॥ ६७ ॥ गृहस्थके

ये पांच हिंसाके स्थान हैं· चूलहा १ चक्की २ बुहारी ३ ओखली मुसल ४ जलका घट ५ इनको अपने काममें लाता हुआ पुरुष पापोंकरि युक्त होता है ॥ ६८ ॥

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ॥ पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ ६९ ॥ अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥ होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥

भाषा—उन चूलहा आदि पांच वधके स्थानोंसे उत्पन्न पापके नाशके लिये क्रमसे पांच यज्ञ मनु आदि आचार्योंने प्रति दिन गृहस्थोंके करनेको कहे हैं॥६९॥ उन पंच यज्ञोंके नाम लिखते हैं वेदका पढना और पढाना ब्रह्मयज्ञ है १ तर्पण कहिये अन्न आदिसे अथवा जलसे पितरोंका तृप्त करना पितृयज्ञ है २ आगिमें होम करना देवयज्ञ है ३ भूतोंको बलि देना यह भूतयज्ञ है ४ अभ्यागतका सत्कार करना यह मनुष्ययज्ञ है ५ ये पांचों महायज्ञ कहे गये ॥ ७० ॥

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः ॥ स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥ ७१ ॥ देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः ॥ न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥ ७२ ॥

भाषा—जो पुरुष इन पांच महायज्ञोंको शक्तिसे कभी नहीं छोडता है वह सदा घरमें वसता हुआभी सूनाके दोषोंकरि लिप्त नहीं होता है ॥ ७१ ॥ देवता कहनेसे देवता और भूत दोनों जानने चाहिये क्योंकि भूतोंकोभी देवतारूपसे बलि दी जाती है और भृत्य कहिये सेवक और पितृ कहिये बूढे मातापिता आदिका और सब भावसे अपना पालन तो अवश्यही कर्तव्य है और जो देवता आदि पांचको अन्न नहीं देता है वह श्वास लेताभी जीता नहीं है किंतु मरे हुएके समान है॥७२॥

अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च ॥ ब्राह्मं हुतं प्राशितं च पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते ॥ ७३ ॥ जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ॥ ब्राह्मं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥

भाषा—अन्य मुनीश्वरोंने इन्हीं पंचयज्ञोंके नाम दूसरे प्रकारसे कहे हैं जैसे अहुत १ हुत २ प्रहुत ३ ब्राह्महुत ४ और प्राशित ५ ॥ ७३ ॥ अहुत कहिये ब्रह्मयज्ञ नाम जप और हुत कहिये देवयज्ञ नाम होम, प्रहुत कहिये भूतयज्ञ नाम भूतबलि और ब्राह्महुत कहिये मनुष्ययज्ञ नाम श्रेष्ठ ब्राह्मणकी पूजा और प्राशित कहिये पितृयज्ञ नाम नित्यश्राद्ध ॥ ७४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ॥ दैवकर्मणि युक्तो

हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥ ७५ ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥ आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ७६ ॥

भाषा–जो दरिद्रता आदि दोषसे अतिथिको भोजन देना आदि करनेको न समर्थ होय तौ ब्रह्मयज्ञमें सदा लगा रहे क्योंकि दैवकर्ममें लगा हुआ पुरुष इस चराचर संस्कारको धारण करता है ॥ ७५ ॥ यजमानकरि अग्निमें अच्छी तरहसे डाली हुई आहुति रसोंके खींचनेवाले होनेसे सूर्यको पहुँचती है और सूर्यसे वर्षा होती है वर्षासे अन्न उत्पन्न होता है और अन्नके भोजन आदिसे प्रजा उत्पन्न होती है ॥ ७६ ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः ॥ तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ ७७ ॥ यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ॥ गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ ७८ ॥

भाषा–जैसे हृदयमें स्थित प्राण नाम पवनके आश्रयसे सब जीव जीते हैं वैसेही गृहस्थके सहारेसे सब आश्रम निर्वाह करते हैं ॥ ७७ ॥ गृहस्थ सब आश्रमवालोंके प्राणके समान है यह कहा है इसीको सिद्ध करते हैं जिससे गृहस्थके सिवाय तीन आश्रमी वेदका अर्थ व्याख्यान करनेसे और अन्नके देनेसे सद्गृहस्थोंही करि सदा उपकार किये जाते हैं तिससे गृहस्थ जेठा आश्रम है ॥ ७८ ॥

स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ॥ सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ ७९ ॥ ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा ॥ आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ॥ ८० ॥

भाषा–अक्षय स्वर्गकी इच्छा करनेवाले और इस लोकमें स्त्रीका भोग तथा स्वादिष्ठ अन्न आदिके भोजनके सुखको सदा चाहनेवाले पुरुषको यह गृहस्थाश्रम यत्नसे धारण करने योग्य है दुर्बलेंद्रिय कहिये इंद्रिय जिनके वशमें नहीं है उनको जिसका धारण करना कठिन है ॥ ७९ ॥ ऋषि पितर देवता भूत और अभ्यागत ये गृहस्थोंसे प्रार्थना करते हैं इसीसे शास्त्रके जाननेवालेको उनके लिये पंचमहायज्ञ करना चाहिये ॥ ८० ॥

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ॥ पितॄन् श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ८१ ॥ कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ॥ पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ ८२ ॥

भाषा–स्वाध्याय जो वेदपाठ है तिससे ऋषियोंको और होमसे देवताओंको

और श्राद्धोंसे पितरोंको और अन्नसे मनुष्योंको और वालिकर्मसे भूतोंको यथाविधि कहिये शास्त्रके अनुसार पूजे ॥ ८१ ॥ अन्न आदिसे वा जलसे अथवा दूध मूल फलोंसे पितरोंके अर्थ प्रीतिपूर्वक श्राद्ध करे ॥ ८२ ॥

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके ॥ न चैवात्राशयेत्किंचिद्वैश्वदेवं प्रति द्विजम् ॥ ८३ ॥ वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम् ॥ आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥ ८४ ॥

भाषा–पितरोंके निमित्त पंच यज्ञोंमेंसे एकभी ब्राह्मणको भोजन करावे और वैश्वदेवके लिये किसी ब्राह्मणको यहां भोजन न करावे ॥ ८३ ॥ आवसथ्य अग्निमें सिद्ध किये हुए वैश्वदेव अन्नका इन देवताओंके लिये ब्राह्मण प्रतिदिन विधिपूर्वक होम करे ॥ ८४ ॥

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ॥ विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च ॥ ८५ ॥ कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च ॥ सह द्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः ॥ ८६ ॥

भाषा–वे देवता ये हैं. पहले अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा फिर अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ये दोनोंका एक साथ करके फिर समस्त देवताओंका होम करे तिस पीछे विश्वेदेवोंके निमित्त और धन्वंतरिके लिये होम करे ॥८५॥ कुह्वै अनुमत्यै प्रजापतये द्यावापृथ्वीभ्यां अग्नये स्विष्टकृते इन सबोंके अंतमें स्वाहा लगाके होम करे ॥८६॥

एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ॥ इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत् ॥८७॥ मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि ॥ वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् ॥ ८८ ॥

भाषा–ऐसे उक्त प्रकारसे अच्छी भांति चित्त लगाके देवताके ध्यानमें तत्पर हो होम करके सब पूर्व आदि दिशाओंमें प्रदक्षिण पुरुषसहित इंद्र आदि देवताओंके लिये बलि दे सो जैसे प्राच्यां इन्द्राय नमः इंद्रपुरुषेभ्यो नमः. दक्षिणस्यां यमाय नमः यमपुरुषेभ्यो नमः. पश्चिमायां वरुणाय नमः वरुणपुरुषेभ्यो नमः. उत्तरस्यां सोमाय नमः. सोमपुरुषेभ्यो नमः ॥ ८७ ॥ मरुद्भ्यो नमः ऐसे कहकर द्वारमें बलि दे और अद्भ्यो नमः ऐसे कहकर जलमें बलि दे और वनस्पतिभ्यो नमः ऐसे कहकर ओखली मूसलमें बलि दे ॥ ८८ ॥

उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ॥ ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥ ८९ ॥ विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमा-

काश उत्क्षिपेत्॥दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥९०॥

भाषा-वास्तु पुरुषके शिरपर उत्तर पूर्व दिशामें श्रीके लिये दे और उसीके पायोंपर दक्षिण पश्चिम दिशामें भद्रकालीके लिये बलि दे और कोई आचार्य उच्छीर्षक रहस्यके सोनेके सिरहानेको और पादतः यह उसीके पैरोंकी भूमिको कहते हैं और ब्रह्म तथा वास्तुका पति इन दोनोंके लिये घरके बीचमें बलि दे ॥८९॥विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ऐसे कहके घरके आकाशमें बलि दे दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ऐसे कहके दिनमें बलि दे और नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ऐसे कहके रात्रिमें बलि दे ॥ ९० ॥

पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ॥ पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥ ९१ ॥ शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ॥ वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ ९२ ॥

भाषा-घरके ऊपर जो घर होता है उसको पृष्ठवास्तु कहते हैं वहां अथवा बलि देनेवालेके पीछेकी भूमिमें सर्वात्मभूतये नमः ऐसे कहके बलि दे कहे हुए बलिदानसे बचा हुआ सब अन्न दक्षिणको मुख कर दक्षिण दिशामें स्वधा पितृभ्य ऐसे कहके बलि दे प्राचीनावीती हो इस बलिको दे ॥ ९१ ॥ और अन्नपात्रमें निकालकर कुत्ता पतित चांडाल और पापरोगी कहिये कुष्ठी और क्षयी रोगवाला कौआ और कीडे इनके लिये हौलेसे जिसमें रज न लगे ऐसे भूमिमें बलि दे ॥ ९२ ॥

एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ॥ स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्तिः पथर्जुना ॥ ९३ ॥ कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् ॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥ ९४ ॥

भाषा-ऐसे कहे हुए प्रकारसे जो सब भूतोंको अन्नदान आदिसे नित्य पूजता है वह परम स्थान कहिये ब्रह्मरूप तेजोमूर्ति स्वप्रकाशको अर्चिरादि मार्गसे प्राप्त होता है अर्थात् ब्रह्ममें लीन हो जाता है क्योंकि ज्ञानसे और कर्मसे मोक्षकी प्राप्ति होती है॥९३॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे इस बलिकर्मको करके घरके मनुष्योंसे पहले अतिथिको भोजन करावे और संन्यासी तथा ब्रह्मचारीको गौतम आदि करि कही हुई विधिसे भिक्षाका दान करे ॥ ९४ ॥

यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद्गुरोः ॥ तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ॥ ९५ ॥ भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥

भाषा-विधिवत् कहिये सोनेके सींग आदि मढाके गुरुको गौ देनेसे जो फल होता है वह फल गृहस्थको विधिपूर्वक भिक्षा देनेसे प्राप्त होता है ॥ ९५ ॥ अधिक अन्न न होनेपर एक ग्रासके प्रमाण व्यंजन आदि करके युक्त भिक्षाकोभी उसकेभी न होनेमें जलसे भरे हुए पात्रकोभी फल पुष्प आदिसे सत्कार करके तत्वसे वेदका अर्थ जाननेवाले ब्राह्मणके अर्थ स्वस्तिवाच्य इत्यादि विधिसे दान करे ॥ ९६ ॥

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् ॥ भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ॥ ९७ ॥ विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ॥ निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥ ९८ ॥

भाषा-अज्ञानसे पात्रको न पहिचानकर देवता और पितरोंके निमित्त वेदके पढने और उसके अर्थके जाननेरूप तेजके न होनेसे भस्मके समान पात्रोंमें दाताओंकरके दिये हुए दान निष्फल होते हैं ॥९७॥ विद्या तथा तपरूप तेजसे युक्त ब्राह्मणोंके मुख अग्निके समान होते हैं उनमें डाला गया हव्य कव्य आदि इस लोकमें कठिन रोग और शत्रु तथा राजपीडा आदि भयसे और बडे पापसे बचाता है ॥ ९८ ॥

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ॥ अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥ शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः ॥ सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥ १०० ॥

भाषा-आपसे आये हुए अतिथिके लिये आसन और पैर धोनेके लिये जल और शक्तिके अनुसार व्यंजन आदि युक्त अन्न आगे कही हुई विधिसे दे ॥९९॥ कटे हुए खेतमें जो पडा हुआ बाकी रह जाता है उसको शिल कहते उस शिलसे जीविका करनेवाले और दक्षिणाग्नि १ गार्हपत्य २ आहवनीय ३ तीनि ये और आवसथ्य ४ तथा सभ्य ५ इन पांचों अग्नियोंमें होम करते हुए पुरुषके संपूर्ण पंचाग्निमें होम आदि करनेसे जोडे हुए पुण्योंको विना पूजा हुआ अतिथि वसते हुए ले लेता है ॥ १०० ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ॥ एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ १ ॥ एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ॥ अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ २ ॥

भाषा-अन्न न होय तो तृण १ बिछानेके लिये विश्रामके भूमि २ पैर धोने आदिके लिये जल ३ प्यारे वचन ४ ये सब अतिथिके लिये धर्मात्मा गृहस्थके घरमें कभी नहीं दूर होते हैं अर्थात् अवश्य देने पडते हैं ॥ १॥ अतिथिका लक्षण कहते हैं. केवल एक राति पराये घरमें वसता हुआ ब्राह्मण सदा न रहनेसे अतिथि होता है नहीं है दूसरी तिथि जिसकी वह अतिथि कहा जाता है ॥ २ ॥

नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकं तथा ॥ उपस्थितं गृहे विद्याद्भार्या यत्राग्नयोऽपि वा ॥ ३ ॥ उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ॥ तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ ४ ॥

भाषा–एक गांवका रहनेवाला होय और लोकमें विचित्र हँसीकी कथा आदिसे संगती करि जीविका चाहनेवाला जो भार्या और अग्नियुक्त घरमें वैश्वदेवके समयमेंभी आवे तो उसको अतिथि न जानिये ॥ ३ ॥ निषिद्ध पराये अन्नके दोषको न जाननेवाले जे गृहस्थ आतिथ्यके लोभसे दूसरे ग्रामोंमें जाके पराये अन्नका सेवन करते हैं वे उस पराये अन्नके भोजनसे दूसरे जन्ममें अन्न आदि देनेवालोंके पशु होते हैं तिससे इसको न करे ॥ ४ ॥

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना ॥ काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥५॥ न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वातिथिपूजनम् ॥ ६ ॥

भाषा–सूर्यके अस्त होनेपर आये हुए अतिथिको निषेध न करे क्योंकि सूर्य करि पहुँचाया गया वह रात्रिमें अपने घरको नहीं जा सक्ता है द्वितीय वैश्वदेवके समय आया होय अथवा कुसमयमें सायंकालका भोजन हो चुकनेपर आया होय तौभी अतिथि इस गृहस्थके घरमें विना भोजनके न वसे अर्थात् उसके कुछ भोजन अवश्य देना चाहिये ॥ ५ ॥ जो घी, दही आदि उत्तम भोजन अतिथिको न दे वह उसको विना दिये आपभी न खाय क्योंकि अतिथिका भोजन धन्य कहिये धनके लिये हित है और यशका देनेवाला तथा आयुष्यका वढानेवाला है और स्वर्गको देता है ॥ ६ ॥

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ॥ उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥ ७ ॥ वैश्वदेवे तु निवृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत् ॥ तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न बलिं हरेत् ॥ ८ ॥

भाषा–आसन अथवा मृगचर्म और सोनेकी शय्या तथा खटिया आदि और जानेके समय पहुँचानेको साथ जाना और सेवा ये सव जो वहुतसे अतिथि एकही समय आवें तो उनमें आपसकी अपेक्षा उत्तम मध्यम और निकृष्ट खातिरी अर्थात् जो जैसा होय उसकी वैसीही करे सवोंकी एकसी न करे ॥ ७ ॥ अतिथि भोजनतक वैश्वदेव करनेपर जो और अतिथि आवे तो उसके लिये फिर रसोई करके अन्न दे और उसमेंसे वलि न निकाले ॥ ८ ॥

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् ॥ भोजनार्थं हि ते शं-सन्वान्ताशीत्युच्यते बुधैः ॥ ९ ॥ न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते ॥ वैश्यशूद्रौ सखा चैव ज्ञातयो गुरुरेव च ॥११०॥

भाषा—ब्राह्मण अपने कुल तथा गोत्रको भोजनके लिये न कहे जिससे भोजनके लिये उनको कहता हुआ वह पण्डितोंकरके वांताशी कहा गया है ॥ ९ ॥ ब्राह्मणके घरमें क्षत्रिय आदि अतिथि नहीं होते हैं क्योंकि क्षत्रिय आदि ब्राह्मणसे हीनजाति हैं और मित्र तथा ज्ञातिको अपने संबंधसे तथा गुरु प्रभु होनेसे अतिथि नहीं होता इस न्यायसे क्षत्रियके ऊंची ज्ञाति ब्राह्मण और अपनी जातिका क्षत्रिय अतिथि होता है और हीन वैश्य शूद्र नहीं ऐसेही वैश्यके द्विजाति अतिथि होते हैं शूद्र नहीं ॥ ११० ॥

यदि त्वतिथिधर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत् ॥ भुक्तवत्सु च विप्रेषु कामं तमपि भोजयेत् ॥ ११ ॥ वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ ॥ भोजयेत्सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजनम् ॥ १२ ॥

भाषा—जो दूसरे ग्रामसे आने और अतिथिके कालमें प्राप्त होनेसे क्षत्रिय अतिथि धर्मसे ब्राह्मणके घर आवे तो ब्राह्मणके घर आये हुए ब्राह्मणोंके भोजन करके बैठनेपर इच्छासे उसकोभी भोजन करावे ॥ ११ ॥ जो वैश्य शूद्रभी ब्राह्मणके घरमें आवे और दूसरे ग्रामसे आनेके कारण अतिथि धर्मकारि युक्त होय तो उनकोभी क्षत्रियके भोजनके पीछे स्त्रीपुरुषके भोजनसे पहले सेवकोंके भोजन समय दयाकरके भोजन करावे ॥ १२ ॥

इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान् ॥ संस्कृत्यान्नं यथाशक्ति भोजयेत्सह भार्यया ॥ १३ ॥ सुवासिनीः कुमारांश्च रोगिणो गर्भिणीस्तथा ॥ अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥१४॥

भाषा—कहे हुए भोजनके समय क्षत्रिय आदिकोंके विना प्रीतिसे घरमें आये हुए अतिथि धर्मसे नहीं ऐसे मित्र सहपाठी आदिकोंको शक्तिके अनुसार अच्छा अन्नकरके भार्याके भोजन समयमें भोजन करावे ॥ १३ ॥ सुवासिनी कहिये नवीन व्याही हुई स्त्री वहू बेटीको बालकोंको रोगियोंको और गर्भवाली स्त्रियोंको अतिथि-भोजनसे पहलेही विना विचारके भोजन करावे ॥ १४ ॥

अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुंक्ते विचक्षणः ॥ स भुञ्जानो न जानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः ॥ १५ ॥ भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु

भृत्येषु चैव हि ॥ भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥ १६ ॥

भाषा-व्यतिक्रम भोजनके दोषको न जानता हुआ जो इन अतिथिको आदि ले भृत्यांतकको भोजन न देकर पहले आप भोजन करता है वह मरनेके पीछे कुत्ता गीध करके अपना भक्षण नहीं जानता है ॥ १५ ॥ ब्राह्मण अतिथि ज्ञाति सेवक इन सबोंके भोजन करनेपर बचे हुए अन्नको पीछे स्त्रीपुरुष भोजन करे ॥ १६ ॥

देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् गृह्याश्च देवताः ॥ पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ॥ १७ ॥ अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् ॥ यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥ १८ ॥

भाषा-देवता ऋषि मनुष्य पितृ और गृह्यदेवता इन सबोंका पूजन करके तिस पीछे गृहस्थ बाकी रहे हुए अन्नका भोजन करे ॥ १७ ॥ जो अपनेही लिये अन्नका पाक करके भोजन करता है वह केवल पापहीको खाता है अन्नको नहीं, पाकयज्ञसे शेष रहे अन्नको अन्न कहते हैं और इसीको सज्जनोंका अन्न कहते हैं ॥ १८ ॥

राजर्त्विक्स्नातकगुरून्प्रियश्वशुरमातुलान् ॥ अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरात्पुनः ॥ १९ ॥ राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ ॥ मधुपर्केण संपूज्यौ न त्वयज्ञ इति स्थितिः ॥ १२० ॥

भाषा-अतिथिकी पूजाके प्रसंगसे घरमें आये हुए राजा आदिकोंकीभी पूजा कहते हैं. राजा, ऋत्विक्, स्नातक गुरु, जामाता श्वशुर और मामा घरमें आये हुए इन सातोंका एक वर्ष पीछे आनेपर गृह्यमें कहे हुए मधुपर्कसे पूजन करे॥१९॥ जो राजा और स्नातक एक वर्षके उपरांतभी यज्ञकर्ममें आवें तो मधुपर्कसे पूजने योग्य हैं यज्ञके विना नहीं यह मर्यादा है और जामाता आदि तो वर्षके उपरांत यज्ञके विनाभी मधुपर्कके योग्य है और संवत्सरके मध्यमें तो सबको यज्ञ और विवाहहीमें मधुपर्क दिया जाता है अन्यत्र नहीं ॥ १२० ॥

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ॥ वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातर्विधीयते ॥ २१ ॥ पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान् ॥ पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥ २२ ॥

भाषा-संध्यासमय सिद्ध किये हुए अन्नसे पत्नी विना मंत्रके बलि निकाले जिससे अन्नसे करने योग्य होम बलिदान अतिथिभोजनरूप वैश्वदेवनाम कर्म सायंकाल प्रातःकाल गृहस्थके लिये कहा गया है ॥ २१ ॥ अग्निहोत्री द्विज अमावास्याके दिन पिंडपितृयज्ञ नाम कर्म करके श्राद्ध करे पितृयज्ञ और पिंडोंके पीछे

जो किया जाय उसको पिंडान्वाहार्यक श्राद्ध कहते हैं वह प्रतिमास कहिये महीने २ में करना, चाहिये ॥ २२ ॥

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः ॥ तच्चामिषेण कर्त्तव्यं प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः ॥ यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २४ ॥

भाषा–पितरोंके मासिक श्राद्धको पंडित अन्वाहार्य कहते हैं वह श्राद्ध आगे कहे हुए अच्छे मनोहर दुर्गंध आदि करकेरहित मांससे यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ २३ ॥ उस श्राद्धमें जो भोजन कराने योग्य हैं और जो छोडने योग्य हैं जितने तथा जिन अन्नोंकरके सो सब कहते हैं ॥ २४ ॥

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥ २५ ॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदः ॥ पंचैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥ २६ ॥

भाषा–देवश्राद्धमें दो ब्राह्मण और पिता पितामह तथा प्रपितामहके श्राद्धमें तीनि ब्राह्मण अथवा दैवमें एक और पित्र्यमें एक ब्राह्मणको भोजन करावे धन-धान्य युक्त होनेपरभी कहे हुए ब्राह्मणोंसे अधिकको भोजन न करावे अर्थात् विस्तार न करे ॥ २५ ॥ सत्क्रिया कहिये ब्राह्मणकी पूजा और देश कहिये दाक्षिण प्रवणत्व आदि जो आगे कहेंगे काल अपराह्ण और शौच कहिये शुद्धता और ब्राह्मणसंपत्ति कहिये गुणवान् ब्राह्मणका लाभ इन पांचोंका विस्तार नाश करता है इस कारण ब्राह्मणोंका विस्तार न करे ॥ २६ ॥

प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्यं नाम विधुक्षये ॥ तस्मिन्युक्तस्यैति नित्यं प्रेतकृत्यैव लौकिकी ॥२७॥ श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः ॥ अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥ २८ ॥

भाषा–जो यह श्राद्धरूप पितरोंका कर्म है सो प्रेतकृत्य अर्थात् पितरोंके उपकारके लिये क्रिया प्रसिद्ध है सो विधुक्षये कहिये अमावास्याको करनी चाहिये उस पितरोंके कर्ममें लगे हुए पुरुषकी लौकिक तथा स्मार्तकी प्रेतकृत्या अर्थात् पितरोंके उपकारार्थ क्रिया गुणवान् पुत्र पौत्र और धन आदि फलके प्रबंधरूपसे कर्त्ताको प्राप्त होती है तिससे यह कर्म करना चाहिये ॥ २७ ॥ दाताओंको दैव पित्र्यन्न अर्थात् हव्य कव्य अन्न श्रोत्रिय जो वेदपाठी है तिसको यत्नसे देने चाहिये, क्योंकि वेद आचार और कुटुंबसे अति योग्य ब्राह्मणको दिया हुआ बडे फलका देनेवाला होता है ॥ २८ ॥

एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् ॥ पुष्कलं फलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान्बहूनपि ॥ २९ ॥ दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम्॥ तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥ १३० ॥

भाषा-दैव और पित्र्यकर्ममें एक एक वेदके तत्व जाननेवाले ब्राह्मणको भोजन करावे तौभी अधिक श्राद्धके फलको प्राप्त होय बहुतसे मूर्ख ब्राह्मणोंको न भोजन करावे ॥ २९ ॥ पहले वेदकी संपूर्ण शाखा पढनेवाले ब्राह्मणकी परीक्षा करे जिससे वह उस प्रकारका ब्राह्मण हव्य कव्योंका तीर्थ कहिये पात्र है देनेमें वह अतिथिके समान बडे फलकी प्राप्तिका कारण है ॥ १३० ॥

सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते ॥ एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः॥ ३१ ॥ ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च ॥ न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुद्ध्यतः ॥ ३२ ॥

भाषा-जिस श्राद्धमें वेदके न जाननेवाले ब्राह्मण दश लाख भोजन करे वहां वेदका जाननेवाला भोजनसे संतुष्ट हुआ एक ब्राह्मण धर्मसे उन सबोंकी बराबर है अर्थात् जो फल दश हजार मूर्खोंके भोजन करानेसे होता है वह एक वेदपाठीके भोजन करानेसे मिलता है ॥ ३१ ॥ विद्यासे बडे ब्राह्मणोंको हव्यकव्य देने चाहिये मूर्खोंको नहीं क्योंकि रुधिरके भरे हुए हाथ रुधिरहीसे शुद्ध नहीं होते हैं किंतु निर्मल जलसे ऐसे मूर्खके भोजनसे उत्पन्न हुआ दोष मूर्खके भोजनसे नहीं दूर होता है किंतु विद्वान्के ॥ ३२ ॥

यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ॥ तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान् ॥ ३३ ॥ ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथापरे ॥ तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥ ३४ ॥

भाषा-वेदका न जाननेवाला ब्राह्मण हव्यकव्योंमें जितने ग्रासोंको खाता है उतनेही जलते हुए शूलों और ऋष्टि नाम शस्त्रोंको और लोहके पिंडोंको श्राद्ध करनेवाला मरके यमलोकमें खाता है ॥ ३३ ॥ कोई आत्मज्ञानमें तत्पर होते हैं और कोई प्राजापत्य आदि तपमें और कोई तप तथा वेदाध्ययनमें लगे रहते हैं और कोई यज्ञ आदि कर्मोंमें तत्पर होते हैं ॥ ३४ ॥

ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः॥ हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥ ३५ ॥ अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः ॥ अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ॥ ३६ ॥

भाषा–पितरोंका अन्न यत्नसे ज्ञानप्रधान ब्राह्मणको देना चाहिये और देवताओंका अन्न तो न्यायसे अर्थशास्त्रके अनुसार चारोंको देना योग्य है ॥ ३५ ॥ जिसका पिता वेद नहीं पढा है और आप पुत्र वेदका पारगामी है अथवा पुत्र वेद नहीं पढाहै पिता वेदका पारगामी है ॥ ३६ ॥

ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता ॥ मन्त्रसंपूजनार्थं तु संस्कारमितरोऽर्हति ॥३७॥ न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः॥ नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्द्विजम् ॥३८॥

भाषा–इन दोनोंमेंसे जिसका पिता वेदपाठी है उसको चाहे आप वेद न पढा हो परन्तु श्रेष्ठ जानिये और जिसका पिता वेदपाठी नहीं है और आप वेदपाठी है वह वेदमंत्रोंकी पूजाके लिये सत्कारके योग्य है ॥ ३७ ॥ श्राद्धमें मित्रको न भोजन करावे अन्य धनोंसे उसकी मित्रता पूरी करनी चाहिये जिसको शत्रु और मित्र न जाने अर्थात् उदासीन वृत्ति होय उस ब्राह्मणको भोजन करावे ॥ ३८ ॥

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च ॥ तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविःषु च ॥ ३९ ॥ यः संगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानवः॥स स्वर्गाच्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विजाधमः॥१४०॥

भाषा–जिसके श्राद्ध और हविमें अर्थात् देवपित्र्य कर्ममें मित्रोंकी प्रधानता होती है उस श्राद्ध और हविका फल परलोकमें नहीं मिलता है ॥३९॥ जो मनुष्य शास्त्रके न जाननेसे श्राद्धके द्वारा संगत जो मित्रभाव है ताहि कर्ता है वह श्राद्ध मित्रद्विजोंमें अधम स्वर्गलोकसे पतित होता है अर्थात् स्वर्गको नहीं पाता है ॥१४०॥

संभोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः॥ इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैकवेश्मनि ॥४१॥ यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम् ॥ तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम् ॥ ४२ ॥

भाषा–जिसमें बहुतसे मनुष्य मिलके साथ भोजन करें वह सहभोजिनी दक्षिणापिशाचका धर्म होनेसे द्विजों कर पैशाची कही गई है उसका फल मैत्री है इस कारणसे वह इसी लोकमें है परलोकमें ऐसे फल देनेवाली नहीं होती है, जैसे एक घरमें स्थित अंधी गौ दूसरे घरमें नहीं जा सकती ॥ ४१ ॥ जैसे ऊषरमें बीज बोयके बोनेवाला फलको नहीं पाता है ऐसे मूर्खको भोजन कराके दाता श्राद्धके फलको नहीं प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

दातॄन्प्रतिग्रहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः ॥ विदुषे दक्षिणां दत्त्वा

विधिवत्प्रेत्य चेह च ॥ ४३ ॥ कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ॥ द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥४४॥

भाषा-वेदतत्वके जाननेवाले ब्राह्मणको शास्त्रके अनुसार दिया हुआ दान देनेवाले और लेनेवाले दोनोंको इस लोक तथा परलोकमें फल देता है ॥ ४३ ॥ विद्वान् ब्राह्मणके न मिलनेपर बडे गुणवान् मित्रको भोजन करावे और शत्रु विद्वान्भी होय तो उसको भोजन न करावे क्योंकि शत्रु करि खाया श्राद्ध परलोकमें निष्फल होता है ॥ ४४ ॥

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगम् ॥ शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥४५॥ एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः ॥ पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी ॥४६॥

भाषा-मंत्रब्राह्मणरूप शाखा पढनेवाले ऋग्वेदीको श्राद्धमें यत्नसे भोजन करावे और वैसेही अर्थात् समस्त वेदके पढनेवाले यजुर्वेदीको भोजन करावे और समाप्ति पर्यन्त वेद पढनेवाले ब्राह्मणको भोजन करावे ॥ ४५ ॥ इन संपूर्ण शाखा पढनेवाले बहुत आदिमेंसे जिसके यहां सत्कारपूर्वक भोजन करता है उसकी पुत्र आदिमे सात पुरुषोंकी सदा बरोबर सात पुरुषोंतक पितरोंकी तृप्ति होती है ॥ ४६ ॥

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ॥ अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥ ४७ ॥ मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् ॥ दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥ ४८ ॥

भाषा-हव्यकव्य दोनोंके देनेमें जो संबंधरहित श्रोत्रिय आदिकोंको दिया जाता है यह मुख्य कल्प है और मुख्यके न होनेसे आगे कहा हुआ अनुकल्प जानिये जो सदा सज्जनोंकरके किया गया है ॥ ४७ ॥ नाना, मामा, भानजा, श्वशुर, गुरु, दौहित्र, जमाई और बंधु कहिये मौसी तथा बुआका पुत्र आदि ऋत्विक् तथा याज्य इन दशको मुख्य श्रोत्रिय आदिके न होनेमें भोजन करावे ॥४८॥

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ॥ पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ ४९ ॥ ये स्तेनपतितक्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ॥ तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ १५० ॥

भाषा-धर्मका जाननेवाला दैवश्राद्धमें ब्राह्मणकी भोजनके लिये यत्नसे परीक्षा न करे लोककी प्रसिद्धिहीसे यह साधुतासे भोजन कराने योग्य है और फिर पितृसंबंधी कार्यके आनेपर पिता पितामह आदिकी परीक्षा करनी योग्य है ॥ ४९ ॥

चोर पतित कहिये महापातकी नपुंसक नास्तिक कहिये जो परलोकको न माने इन सबोंको दैव पित्र्यकर्ममें मनुने अयोग्य कहा है ॥ १५० ॥

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा ॥ याजयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत् ॥ ५१ ॥ चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ॥ विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥ ५२ ॥

भाषा–जटाधारी होय अथवा मूंड मुडाये होय ऐसा ब्रह्मचारी और वेद पढनेरहित अर्थात् जिसका यज्ञोपवीतही हुआ है वेद नहीं पढाया गया और बुरी चमडीवाला और जुआरी और जो वहुतसे मनुष्योंको यजन करता है जैसे ग्रामयाजक इन सबोंको श्राद्धमें भोजन न करावे ॥ ५१ ॥ वैद्योंको मंदिरधारियोंको मांस बेचनेवालोंको वणिज करनेवालोंको दैवपित्र्यकर्ममें भोजन न करावे ॥ ५२ ॥

प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः ॥ प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्धुषिस्तथा ॥ ५३ ॥ यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः ॥ ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ॥ ५४ ॥

भाषा–गांवकी और राजाकी आज्ञा करनेवाला जैसे हलकारा कुनखी कहिये जिसके नख रोगसे विगडे होंय और काले दांतवाला गुरुकी आज्ञा न माननेवाला और जिसने श्रौत स्मार्त अग्नि छोड दी है और ब्याज खानेवाला ये सब दैवपित्र्यकर्ममें वर्जित हैं ॥ ५३ ॥ क्षयरोगवाला और पशुपाल जो जीविकाके लिये वकरी भेड आदिका चरानेवाला और परिवेत्ता परिवित्ति जिनके लक्षण आगे कहेंगे और निराकृति कहिये पंचयज्ञोंका न करनेवाला और ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाला और गणाऽभ्यंतर कहिये गणके लिये त्याग किये हुए धन आदिसे जीविका करनेवाला ये दैव पित्र्यकर्ममें त्याग करने योग्य हैं ॥ ५४ ॥

कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च ॥ पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ ५५ ॥ भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा ॥ शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ ॥ ५६ ॥

भाषा–कुशीलव कहिये नाचनेवाला स्वांग आदिसे जीविका करनेवाला और अवकीर्णी जिसका व्रत स्त्रीके योगसे विगड गया होय चाहे ब्रह्मचारी हो वा संन्यासी और वृषलीपति कहिये जिसने सवर्णा न ब्याही शूद्रासे ब्याह किया होय और पुनर्भू पुत्र जो आगे कहेंगे और काना जिसके घरमें उपपति कहिये जार है ये सब दैवपित्र्यकर्ममें त्याग करने योग्य हैं ॥ ५५ ॥ नौकरी लेकर पढानेवाला

तथा नौकरी लेकर पढनेवाला और व्याकरण आदिमें शूद्रका शिष्य और तैसेही शूद्रका गुरु और कठोर वाणी बोलनेवाला और कुंड जो पतिके जीते हुए जारसे उत्पन्न होय और गोलक जो पतिके मरने पीछे जारसे उत्पन्न होय ये सदैव पित्र्यकर्ममें वर्जित हैं ॥ ५६ ॥

अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा ॥ ब्राह्मैर्यौनैश्च संबन्धैः संयोगं पतितैर्गतः ॥ ५७ ॥ अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ॥ समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥ ५८ ॥

भाषा-कारण विना माता पिता और गुरुका त्याग करनेवाला अर्थात् उनकी सेवा आदि न करनेवाला और पढना तथा कन्यादान आदिसे जिसका पतितोंसे मेल है ये सब दैवपित्र्यकर्ममें त्याग करने योग्य हैं॥५७॥ घर जलानेवाला और विष देनेवाला कुंडका अन्न खानेवाला और सोमलताका बेंचनेवाला और समुद्रमें जो जहाजपर चढके द्वीपांतरोंको जाय और राजा आदिकोंकी स्तुति पढनेवाला और तेलके लिये तिल आदि बीजोंका पीसनेवाला और झूंठी गवाही देनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ५८ ॥

पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा ॥ पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी ॥ ५९ ॥ धनुःशराणां कर्ता च यश्चाग्रेदिधिषूपतिः ॥ मित्रध्रुक् द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ १६० ॥

भाषा-पिताके साथ शास्त्रार्थमें अथवा लोकमें जो व्यर्थ विवाद करता है और कितव जो आप जुआ खेलना नहीं जानता है परंतु अपने लिये औरोंको खेलानेवाला तथा मद्य पीनेवाला और कोढी और निर्णय न होनेपरभी जिसको महापातक आदि लगी रहे हैं और छलसे धर्म करनेवाला और ईख आदिके रसका बेंचनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ५९ ॥ धनुष और बाणका बनानेवाला और जेठी बहिनका व्याह न होनेपर जो व्याही जाय उसको " अग्रेदिधिषू " कहते हैं उसका पति और जो मित्रकी बुराई करे और जो जुआ खेलनेवाला और पुत्र करि पढाया हुआ पिता येभी सब वर्जित हैं ॥ १६० ॥

भ्रामरी गण्डमाली च श्वित्र्यथो पिशुनस्तथा ॥ उन्मत्तोऽन्धश्च वर्ज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥ ६१ ॥ हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ॥ पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ॥ ६२ ॥

भाषा-मिरगी रोगवाला कंठमाला रोगवाला और श्वेतकुष्ठयुक्त और दुर्जन और

उन्माद रोगवाला और अंधा वेदकी निंदा करनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ६१ ॥ हाथी बैल घोडा और ऊंट इन सबोंको सिखानेवाला और ज्योतिषसे जीविका करनेवाला और खेलके लिये पिंजरेमें रखकर पक्षियोंका पालनेवाला और शस्त्रविद्याका सिखानेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ६२ ॥

स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः ॥ गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एव च ॥ ६३ ॥ श्वक्रीडी श्येनजीवी च कन्यादूषक एव च ॥ हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः ॥ ६४ ॥

भाषा—बहते हुए प्रवाहोंके पुल आदिको तोडके दूसरे देशमें ले जानेवाला और उन्हीं जलोंकी निज गतिका रोकनेवाला और वास्तुविद्या जो घर आदि बनानेकी विद्या है उससे जीविका करनेवाला और हलकारा और नौकरी लेकर वृक्षोंको लगानेवाला धर्मके लिये नहीं क्योंकि लिखा है कि, " पञ्चाम्ररोपी नरकं न याति " अर्थात् धर्मके निमित्त पांच आमके पेडोंको लगानेवाला नरकको नहीं जाता है इति. ये सब ऊपर कहे हुए वर्जित हैं ॥ ६३ ॥ खेलके लिये कुत्तोंको पालनेवाला और बाजोंके बेंचने खरीदनेसे जीविका करनेवाला और कन्यासे गमन करनेवाला और हिंसा करनेवाला और शूद्रोंकी वृत्ति करनेवाला और विनायकादि गणोंका यज्ञ करनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ६४ ॥

आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा ॥ कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च ॥ ६५ ॥ औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा ॥ प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ ६६ ॥

भाषा—गुरु और अतिथिके अभ्युत्थान आदि आचारसे रहित और क्लीब कहिये जो धर्मकार्यमें उत्साहरहित होय वह नपुंसक पहले कह चुके हैं और नित्य मांगनेसे दूसरेको दिक करनेवाला और जो आप खेती करके खाता है वह श्लीपदरोगसे मोटे पैरवाला और किसी कारण साधुओंने जिसकी निंदा की है वह ये सब वर्जित हैं ॥६५॥ मेढा भैंसी आदिसे जीविका करनेवाला पर और पूर्वा पुनर्भूका पति और धर्मार्थ नहीं किंतु धन लेकर प्रेतका ले जानेवाला ये सब यत्नसे वर्जनीय हैं ॥ ६६ ॥

एतान्विगर्हिताचारानपाङ्क्तेयान्द्विजाधमान् ॥ द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् ॥ ६७ ॥ ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ॥ तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥ ६८ ॥

भाषा-इस जन्ममें निंदित हैं आचार जिनके ऐसे स्तेन अर्थात् चोर आदिकोंको और पूर्व जन्ममें इकट्ठे किये हुए निंदित कर्मोंसे हुआ है काणापन जिनको ऐसे मनुष्योंको और अपांक्तेय जो सज्जनोंके साथ एक स्थानमें बैठकर भोजनके योग्य न होय ऐसे नीच ब्राह्मणोंका शास्त्रका जाननेवाला ब्राह्मण दैवपित्र्यकर्ममें त्याग करे ॥ ६७ ॥ जैसे तृणकी अग्नि हवि जलानेको नहीं समर्थ होती हवि डालनेसे आप बुझ जाती है तो उससें होम निष्फल है ऐसेही वेदाध्ययनशून्य ब्राह्मण तृणकी अग्निके समान है उसको देवताके नामसे छोडा हवि न देना चाहिये क्योंकि भस्ममें होम नहीं किया जाता है ॥ ६८ ॥

अपाङ्क्तदाने यो दातुर्भवत्यूर्ध्वं फलोदयः ॥ दैवे हविषि पित्र्ये वा तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ६९ ॥ अव्रतैर्यद्द्विजैर्भुक्तं परिवेत्रादिभिस्तथा ॥ अपाङ्क्तेयैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ १७० ॥

भाषा-पंक्तिमें भोजन योग्य नहीं ऐसे ब्राह्मणको दैव तथा पित्र्य हवि देनेसे दाताको देनेके पीछे जो फल होता है उनको संपूर्णतासे कहेंगे ॥ ६९ ॥ वेदके ग्रहणके अर्थ जो व्रत है उससे रहित तैसेही परिवेत्ता आदिकों करके तथा अन्य अपांक्तेय स्तेन आदिकों करके जो हव्यकव्य खाया गया उसको राक्षस खाते हैं अर्थात् वह श्राद्ध निष्फल होता है ॥ १७० ॥

दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ॥ परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ ७१ ॥ परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते ॥ सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ ७२ ॥

भाषा-परिवेत्ता आदिका लक्षण कहते हैं. जो सहोदर वडे भाईका न व्याह होनेपर और अग्निहोत्ररहित होनेपर विवाह और स्मार्त्त अग्निका ग्रहण करता है वह परिवेत्ता और उसका जेठा भाई परिवित्ति होता है ॥ ७१ ॥ प्रसंगसे परिवेदन संबंधी पांचोंका अनिष्टफल कहते हैं. परिवित्ति और परिवेत्ता जिस कन्यासे विवाह करता है उस कन्याका देनेवाला और विवाह करानेवाला याजक अर्थात् उस विवाहका होम करनेवाला पांचवें समेत सब वे नरकको जाते हैं ॥ ७२ ॥

भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः ॥ धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः ॥ ७३ ॥ परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ ॥ पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः ॥ ७४ ॥

भाषा-मरे हुए भाईकी आगे कहे हुए नियोग धर्मसेभी नियोग की गई स्त्रीमें

एक एक वार ऋतुमें गमन करे इत्यादि विधिको छोडकर कामसे आलिंगन चुंबन आदि जो करता है अथवा वारंवार प्रवृत्त होता है उसको दिधिषूपति कहते हैं ॥७३॥ पराई स्त्रियोंमें कुंड और गोलक नाम दोनों पुत्र उत्पन्न होते हैं पतिके जीवते हुए जारसे उत्पन्न कुंड होता है और पतिके मरने पीछे उसी भांति गोलक होता है ७४

तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च ॥ दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् ॥७५॥ अपाङ्क्त्यो यावतः पाङ्क्त्यान् भुञ्जानाननुपश्यति ॥ तावतां न फलं प्रेत्य दाता प्राप्नोति बालिशः ॥७६॥

भाषा-पराई स्त्रीमें उत्पन्न हुए वे कुंड और गोलक दोनों प्राणी इस लोकमें कीर्ति आदिको और परलोकमें देनेवालेके हव्यका नाश करते हैं अर्थात् देनेवालों करके दिये हुए हव्यकव्योंको निष्फल करते हैं ॥ ७५ ॥ सज्जनोंके साथ एक पंक्तिमें भोजनके योग्य नहीं ऐसे स्तेन आदि जितने पंक्तिमें भोजन योग्योंको देखता है उतनोंके भोजनका फल उस श्राद्धमें मूर्ख दाता नहीं पाता है इससे जैसे स्तेन आदि न देखे ऐसे करना चाहिये ॥ ७६ ॥

वीक्ष्यान्धो नवतेः काणः षष्टेः श्वित्री शतस्य तु ॥ पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ॥ ७७ ॥ यावतः संस्पृशेदङ्गैर्ब्राह्मणाञ्छूद्रयाजकः ॥ तावतां न भवेद्दातुः फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥७८॥

भाषा-अंधा देख नहीं सकता परंतु देखने योग्य स्थानमें जानेसे पंक्तियोग्य नव्वे ब्राह्मणोंके भोजनफलको नाश करता है ऐसेही काणा साठिका और श्वेतकुष्ठी सौका और पापरोगी हजारका फल नाश करता है ॥ ७७ ॥ शूद्रके यज्ञ आदिमें ऋत्विक् जितने ब्राह्मणोंको अंगोंसे छूता है अर्थात् जितने श्राद्धमें भोजन करनेवालोंकी पंक्तिमें बैठता है उन सबोंकी पूर्तिका फल देनेवालेको नहीं मिलता है ॥ ७८ ॥

वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ॥ विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि ॥ ७९ ॥ सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम् ॥ नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषे ॥ १८० ॥

भाषा-वेदका जाननेवालाभी जो ब्राह्मण लोभसे शूद्रयाजकका दान लेता है वह पानीमें कच्चे मट्टीपात्रके समान शीघ्रही शरीर आदिसे नाशको प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ सोमलता बेंचनेवालेके लिये जो दिया जाता है वह देनेवालेके भोजनके लिये विष्ठा हो जाती है अर्थात् देनेवाला दूसरे जन्ममें विष्ठा खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होता है ऐसेही वैद्यके देनेसे पीव और रक्त होता है अर्थात् दाता दूसरे जन्ममें पीव रक्त खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होता है और देवलकको दिया हुआ

नष्ट हो जाता है अर्थात् निष्फल होता है और व्याज खानेवालेको दिया हुआ अप्रतिष्ठित आश्रयरहित होनेसे निष्फलही है ॥ १८० ॥

यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत् ॥ भस्मनीव हुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ॥ ८१ ॥ इतरेषु त्वपाङ्क्त्येषु यथोद्दिष्टेष्वसाधुषु ॥ मेदोसृङ्मांसमज्जास्थि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ ८२ ॥

भाषा-श्राद्धमें जो वणिज करनेवालेके लिये दिया जाता है वह इस लोक तथा परलोकमें फलका देनेवाला नहीं होता है और जो पुनर्भूपुत्रके लिये दिया हुआ है वह भस्ममें होमी हुई हविके समान निष्फल होता है ॥ ८१ ॥ विशेष कर जिनका फल नहीं कहा है ऐसे पंक्तिमें भोजनके योग्य पहले कहे हुए स्तेन आदिकोंके लिये दिया हुआ जो अन्न वह देनेवालेके भोजनके मेद रुधिर मांस मज्जा और हाड हो जाता है यह पण्डित कहते हैं यहांभी दूसरे जन्ममें मेद रुधिर आदि खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होते हैं ॥ ८२ ॥

अपाङ्क्त्योपहता पंक्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः ॥ तान्निबोधत कार्त्स्न्येन द्विजाग्र्यान्पंक्तिपावनान् ॥८३॥ अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ॥ श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ॥८४॥

भाषा-एक पंक्तिमें बैठे हुए स्तेन आदिकों करि दूषित की हुई पंक्ति जिन ब्राह्मणों-करके पवित्र की जाती है उन पवित्र करनेवाले ब्राह्मणोंको संपूर्णतासे आप सुनियो ॥ ८३ ॥ चारों वेदोंमें अग्र्य कहिये श्रेष्ठ अर्थात् जिन्होंने अच्छी तरहसे चारों वेद पढे हैं वे ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं और प्रकर्षकरके जो वेदके अर्थको कहें वे प्रवचन कहाते हैं अर्थात् अंग उनमें अग्र्य कहिये श्रेष्ठ अर्थात् छहों अंगोंके जानने-वाले चारों वेदोंके ज्ञाता ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं और श्रोत्रियान्वयजा कहिये दश पीढीसे वेद पढनेवालोंके वंशमें उत्पन्न ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं ॥ ८४ ॥

त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥ ब्रह्मदेयात्मसंतानो ज्येष्ठसामग एव च ॥ ८५ ॥ वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ॥ शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः ॥ ८६ ॥

भाषा-त्रिणाचिकेत यजुर्वेदका एक भाग है उसका व्रत करनेवाला ब्राह्मण त्रि-णाचिकेत होता है १ वह और पंचाग्निहोत्री २ और त्रिसुपर्ण ऋग्वेदका एक भाग है उसका पढनेवाला ब्राह्मण त्रिसुपर्ण कहा जाता है वह ३ और जो शिक्षा आदि छः अंगोंको पढा होय वह षडंगवित् ४ ब्राह्मविवाहमें विवाही हुईसे उत्पन्न पुत्र ५ ज्येष्ठ

साम अरण्यमें गाये जाते हैं उनका गानेवाला ६ ये छः पंक्तिपावन जानने योग्य हैं ॥ ८५ ॥ वेदके अर्थका जाननेवाला १ और वेदके अर्थका कहनेवाला २ ब्रह्मचारी ३ हजार गौओंका वा अधिकका देनेवाला ४ और सौ वर्षकी अवस्थाका श्रोत्रिय ५ ब्राह्मण पंक्तिके पवित्र करनेवाले जानिये ॥ ८६ ॥

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ॥ निमन्त्रयेत त्र्यवरान्सम्यग्विप्रान्यथोदितान् ॥ ८७ ॥ निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत्सदा ॥ न च छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत् ॥८८॥

भाषा—श्राद्धकर्मके प्राप्त होनेपर श्राद्धके दिनसे एक दिन पहले जो न होसके तो उसी दिन जिनके लक्षण कह चुके हैं ऐसे तीनि अथवा एक ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक निमंत्रण करे ॥ ८७ ॥ श्राद्धमें न्योता दिया गया ब्राह्मण न्योतेके दिनसे श्राद्धके दिन राततक संयम नियमसे रहे अर्थात् स्त्रीसंग आदि न करे और अवश्य करनेयोग्य जप आदिको छोडकर वेदके अध्ययनकोभी न करे और श्राद्ध करनेवालाभी इसी नियमसे रहे ॥ ८८ ॥

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान् ॥ वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥ ८९ ॥ केतितस्तु यथान्यायं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः ॥ कथंचिदप्यतिक्रामन्पापः सूकरतां व्रजेत् ॥ १९० ॥

भाषा—न्योते गये ब्राह्मणोंमें पितर अदृश्यरूपसे स्थित होते हैं और प्राण पवनके समान चलते हुएके साथ चलते हैं और बैठनेपर समीप बैठते हैं तिससे उनको नियमसे रहना चाहिये ॥८९॥ हव्यकव्यमें शास्त्रके अनुसार निमंत्रण किया गया ब्राह्मण न्योतेको अंगीकार करके किसी प्रकारसे भोजन न करता हुआ उस पापसे दूसरे जन्ममें शूकर होता है ॥ १९० ॥

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते ॥ दातुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९१ ॥ अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ॥ न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ ९२ ॥

भाषा—श्राद्धमें निमंत्रण किया हुआ जो ब्राह्मण वृषलीके साथ भोग करता है वह देनेवालेके पापको प्राप्त होता है वृषलीका अर्थ यह है कि वृषस्यन्ती कहिये कामुकी इच्छासे जो पतिको चंचल करती है वह वृषली कहाती है इस व्युत्पत्तिसे श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणकी व्याही हुई ब्राह्मणीभी वृषली हो सकती है॥९१॥ क्रोधरहित और शौचपरा कहिये बाहरी शौच मिट्टी पानी आदिसे भीतरी रागद्वेष

आदिका त्याग तिस करके युक्त और सदा ब्रह्मचारी अर्थात् सर्वदा स्त्रीसंयोग आदिसे रहित और युद्धके छोडनेवाले और महाभाग कहिये दया आदि आठ गुणोंकरके युक्त अनादि देवतारूप पितर हैं जिसमें भोजन करनेवालेको तथा श्राद्ध करनेवालेको क्रोध आदिसे रहित होना चाहिये ॥ ९२ ॥

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ॥ ये च यैरुपचर्याः स्युर्नियमैस्तान्निबोधत ॥ ९३ ॥ मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ॥ तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥ ९४ ॥

भाषा-इन सब पितरोंकी जिससे उत्पत्ति हुई है और जे पितर जिन ब्राह्मण आदिकों करि जिन नियमोंसे शास्त्रोक्त कर्मोंकरि उपचार करने योग्य होते हैं उन सबोंको सुनिये॥९३॥ हिरण्यगर्भके पुत्र मनुके जे मरीचि आदि पुत्र पहले कहे गये हैं उन सब ऋषियोंके पुत्र सोमपा आदि पितृगण मनु आदिकोंने कहे हैं ॥ ९४ ॥

विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ॥ अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोकविश्रुताः ॥ ९५ ॥ दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः ॥ ९६ ॥

भाषा-विराट्के पुत्र सोमसद नाम साध्योंके पितर हैं और मरीचिके पुत्र अग्निष्वात्ता लोकमें विख्यात देवताओंके पितर कहे गये हैं ॥९५॥ दैत्य दानव यक्ष गंधर्व उरग राक्षस सुपर्ण और किन्नरोंके वर्हिषद नाम पितर कहे गये हैं ॥ ९६ ॥

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः ॥ वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः॥ ९७ ॥ सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः ॥ पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥९८॥

भाषा-ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके सोमपा आदि चारों पितर कहे गये हैं अर्थात् ब्राह्मणोंके सोमपा क्षत्रियोंके हविर्भुज वैश्योंके आज्यपा और शूद्रोंके सुकालिन ॥९७॥ कवि जे भृगु हैं तिनके सोमपा नाम पुत्र हैं और अंगिराके हविर्भुज पुत्र हैं पुलस्त्यके आज्यपा नाम हैं और वसिष्ठके सुकालिन हैं ॥ ९८ ॥

अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा ॥ अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेव निर्दिशेत् ॥ ९९ ॥ य एते तु गणा मुख्याः पितॄणां परिकीर्तिताः ॥ तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥२००॥

भाषा-अग्निदग्ध अनग्निदग्ध काव्य वर्हिषद अग्निष्वात्त और सौम्य इनको

ब्राह्मणोंहीके पितर जानिये॥९९॥जो ये प्रधानभूत पितरोंके गण कहे गये हैं तिनसेभी इस जगत्में पुत्र पौत्र आदि अनंत पितर जानने योग्य हैं इस श्लोकमें सूचितही वरवरेण्य इत्यादि औरभी मार्कंडेय आदि पुराणोंमें सुने जाते हैं ॥ २०० ॥

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः ॥ देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥ १ ॥ राजतैर्भाजनैरेषामथो वा राजतान्वितैः ॥ वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥ २ ॥

भाषा–मरीचि आदि ऋषियोंसे कहे हुए क्रमके अनुसार पितर हुए और पितरोंसे देवता तथा दानव उत्पन्न हुए और देवताओंसे जंगम स्थावर जगत् क्रमसे उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ चांदीके पात्रोंसे अथवा चांदीयुक्त पात्रोंसे अथवा तामे आदिके पात्रोंसे श्रद्धापूर्वक पितरोंको दिया हुआ जलभी अक्षय सुखका कारण होता है फिर अच्छी खीर आदिको तो क्या कहना है ॥ २ ॥

देवकार्याद्द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते ॥ दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं श्रुतम् ॥ ३ ॥ तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं दैवं नियोजयेत् ॥ रक्षांसि हि विलुम्पंति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥ ४ ॥

भाषा–देवताओंके लिये जो कार्य किया जाता है वह देवकार्य कहाता है उसे पितरोंका कार्य द्विजातियोंको अवश्य कर्त्तव्य कहा है इससे पितृश्राद्धकी मुख्यता और दैव अंग है जिससे देवकर्म पितृकृत्यका परिपूर्ण करनेवाला कहा गया है ॥ ३ ॥ उन पितरोंका रक्षारूप अर्थात् रक्षा करनेवाले विश्वेदेव ब्राह्मणोंका निमंत्रण करे क्योंकि रक्षारहित श्राद्धको राक्षस छीन लेते हैं ॥ ४ ॥

दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्र्याद्यन्तं न तद्भवेत् ॥ पित्र्याद्यन्तं त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ॥ ५ ॥ शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत् ॥ दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥ ६ ॥

भाषा–इसीसे वह पित्र्यश्राद्ध दैवकर्म है आदि और अंतमें जिसके दैव है ऐसा करे पित्र्य जिसके आदि अंतमें होय ऐसा न करे और पित्र्य जिसकी आदि अंतमें होता है ऐसे श्राद्धको करता हुआ पुरुष कुटुंबसहित शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥ शुद्ध तथा एकांत देशको गोवरसे लिपावे और यत्नसे दक्षिणकी ओर झुका हुआ रक्खे ॥ ६ ॥

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैव हि ॥ विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ॥ ७ ॥ आसनेषूपक्लृप्तेषु बर्हिष्मत्सु पृथक्पृ-

थक् ॥ उपस्पृष्टोदकान् सम्यग्विप्रांस्तानुपवेशयेत् ॥ ८ ॥

भाषा-अवकाशोंमें और चोक्ष कहिये स्वभावसे सुवन आदि स्थानोंमें और नदी आदिके किनारोंमें और शून्यस्थानोंमें किये हुए श्राद्ध आदिसे पितर सदा सन्तुष्ट होते हैं ॥ ७ ॥ उस स्थानमें कुशोंसमेत जुदे २ बिछाये हुए आसनोंपर पहले निमंत्रित स्नान आचमन किये हुए ब्राह्मणोंको अच्छी तरह बैठावे यहां देव ब्राह्मणके आसनपर दो कुश रक्खे और पितृब्राह्मणके आसनोंमें प्रत्येकपर दक्षिणको जिसका अग्र है ऐसा एक एक कुश रखना चाहिये ॥ ८ ॥

उपवेश्य तु तान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् ॥ गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्चयेद्देवपूर्वकम् ॥ ९ ॥ तेषामुदकमानीय सपवित्रांस्तिलानपि ॥ अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ॥ २१० ॥

भाषा-उन अनिंदित ब्राह्मणोंको आसनोंपर बैठायके केशर आदि सुगन्ध और माला धूप आदिसे पहले देवपूजन करके पूजे ॥ ९ ॥ उन ब्राह्मणोंके अर्घ जलसे पवित्र तिलोंको मिलाकर उन ब्राह्मणोंके साथ आज्ञा लेकर अग्निमें आगे कहा हुआ होम करे ॥ २१० ॥

अग्नेः सोमयमाभ्यां च कृत्वाप्यायनमादितः ॥ हविर्दानेन विधिवत्पश्चात्संतर्पयेत्पितॄन् ॥ ११ ॥ अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ॥ यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥ १२ ॥

भाषा-पहले विधिपूर्वक पर्य्युक्षण आदिको करके हविके देनेसे अग्नि सोम और यमको प्रसन्न करके पीछे अन्न आदिसे पितरोंको तृप्त करे ॥ ११ ॥ अग्निके न होनेमें फिर ब्राह्मणोंके हाथहीमें पहले कही हुई तीन आहुति दे जिससे जो अग्नि है वही ब्राह्मण हैं यह वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंने कहा है ॥ १२ ॥

अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदन्त्येतान्पुरातनान् ॥ लोकस्याप्यायने युक्ताञ्छ्राद्धदेवान्द्विजोत्तमान् ॥ १३ ॥ अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्य विक्रमम् ॥ अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ॥ १४ ॥

भाषा-क्रोधरहित प्रसन्न मुख और प्रवाहकी अनादितासे पुराने और लोककी वृद्धिके लिये उपाय करनेवाले ऐसे उत्तम ब्राह्मणोंको मनु आदि आचार्य श्राद्धका पात्र कहते हैं ॥ १३ ॥ अग्नौकरण और होम करनेके क्रमको अपसव्य कहिये दाहिनी ओर धरके तिस पीछे अपसव्य हो दाहिनी हाथसे पिंड धरनेकी भूमिमें जल छिडके ॥ १४ ॥

त्रींस्तु तस्माद्धविःशेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः ॥ औदकेनैव विधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः ॥१५॥ न्युप्य पिण्डांस्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् । तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम् ॥ १६ ॥

भाषा–उस अग्नि आदिके होमसे बचे हुए अर्थात् निकालनेसे शेष रहे अन्नसे तीन पिंड बनाके जलदानहीकी विधिसे दाहिने हाथसे सावधान एकाग्र चित्त हो दक्षिणको मुख कर कुशोंके ऊपर रक्खे ॥ १५ ॥ अपने गृह्यमें कही हुई विधिसे उन पिंडोंको कुशोंके ऊपर स्थापित कर उन कुशोंके मूलमें लेपभुजस्तृप्यन्तु ऐसे कहके लेपके भोजन करनेवाले प्रपितामहके पिता आदि तीन पुरुषोंकी तृप्तिके लिये एक कुशसे हाथको पोंछि दे ॥ १६ ॥

आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् ॥ षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात्पितॄनेव च मन्त्रवित् ॥१७॥ उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ॥ अवजिघ्रेच्च तान्पिण्डान्यथान्युप्तान्समाहितः ॥ १८ ॥

भाषा–इस पीछे आचमन कर उत्तराभिमुख हो शक्तिके अनुसार तीन प्राणायाम करके वसंताय नमस्तुभ्यम् ऐसे कहि छः ऋतुओंको नमस्कार करे फिर "नमो वः पितर" इत्यादि मंत्रको पढि दक्षिणाभिमुख हो नमस्कार करे ॥ १७ ॥ पिंड देनेके पहले पिंड धरनेके स्थानमें धरे हुए जलके पात्रमें शेष रहे जलको प्रत्येक पिंडकी समीप भूमिमें क्रमसे फिर छोड दे फिर उन पिंडोंको जिस क्रमसे रक्खा था उसी क्रमसे उठाके सावधान हो सूंघे ॥ १८ ॥

पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रां समादायानुपूर्वशः ॥ तानेव विप्रानासीनान्विधिवत्पूर्वमाशयेत् ॥ १९ ॥ ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् ॥ विप्रवद्वापि तं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥ २२० ॥

भाषा–पिंडोंमेंसे लिये हुए छोटे २ भागोंको पिताके पिंडके क्रमहीसे लेकर उन्हीं पिता आदि ब्राह्मणोंको भोजनकालमें भोजनसे पहले जिमावे और विधिपूर्वक पिंड करनेके अनुसार पिताका नाम लेकर जो पिंड दिया गया है उसके अवयवरूप पितृब्राह्मणको भोजन करावे ऐसेही पितामह प्रपितामहके पिंडोंकाभी करें ॥ १९ ॥ पिताके जीवते हुए मरे हुए पितामह आदि तीनोंका श्राद्ध करे अथवा पिताके स्थानमें उसी निज पिताको भोजन करावे और पितामह प्रपितामहके ब्राह्मण भोजन करावे और दो पिंड दे ॥ २२० ॥

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः ॥ पितुः स नाम

संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥ २१ ॥ पितामहो वा तच्छ्राद्धं भु-
ञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः ॥ कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् ॥२२॥

भाषा-जिसका पिता तौ मर गया होय और पितामह जीवता होय वह पिता और पितामहका श्राद्ध करे और गोविंदराजका यह मत है कि, जिसके पिता और प्रपितामह मर गये होंय वह पिताके लिये पिंड देकर पितामहसे परे दोके लिये पिंड दे इस विष्णुके वचनसे प्रपितामह और उसके पिताको पिंड दे ऐसा व्याख्यान किया है ॥ २१ ॥ जैसे जीवता हुआ पिता भोजन कराने योग्य है ऐसेही पितामहभी पितामहब्राह्मणके स्थानमें भोजन कराने योग्य है पिता और पितामहके ब्राह्मण भोजन करावे और पिंडदान करे अथवा जीवते हुए पितामहसे तुम्हीं अपनी रुचिके अनुसार करो ऐसी आज्ञा पाके अपने पितामहको भोजन करावे अथवा पिता और प्रपितामहके दो श्राद्ध करे और विष्णुके वचनसे पिता प्रपितामह और वृद्ध प्रपितामहके तीनि श्राद्ध करे ॥ २२ ॥

तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकम् ॥ तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत
स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् ॥ २३ ॥ पाणिभ्यां तूपसंगृह्य स्वयमन्न-
स्य वर्धितम् ॥ विप्रान्तिके पितॄन्ध्यायञ्छनकैरुपनिक्षिपेत् ॥ २४ ॥

भाषा-उन ब्राह्मणोंके हाथोंमें कुशोंसमेत तिलोदक देके वह पहले कहा हुआ पिंडका अल्प भाग पित्रे स्वधा अस्तु इत्यादि मंत्रको पढता हुआ पिता आदि तीनि ब्राह्मणोंके लिये क्रमसे दे ॥ २३ ॥ अन्नका वर्धित कहिये भरा हुआ वह लोही आदि पात्र अपने हाथोंमें लेकर पितरोंका चिंतवन करता हुआ पापके स्थानसे लाकर ब्राह्मणोंके समीप परोसनेके लिये हौलेसे धर दे ॥ २४ ॥

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते ॥ तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः स-
हसा दुष्टचेतसः ॥ २५ ॥ गुणांश्च सूपशाकाद्यान्पयो दधि
घृतं मधु ॥ विन्यसेत्प्रयतः पूर्वं भूमावेव समाहितः ॥ २६ ॥

भाषा-दोनों हाथोंमें नहीं स्थित अर्थात् एक हाथसे लाया गया अन्न जो ब्राह्मणोंके समीप पहुँचाया जाता है वह दुष्टबुद्धि असुर छीन लेते हैं तिससे एक हाथसे लाके न परोसना चाहिये ॥ २५ ॥ व्यंजन कहिये चटनी आदिको अथवा दाल शाक आदि और दूध दही मीठा आदि शुद्ध सावधान और एकाग्रचित्त हो अच्छी भांति जैसे फैले नहीं ऐसे अपने पात्रमें स्थित सब पदार्थोंको भूमिहीमें रक्खे पट्टे आदिपर न रक्खे ॥ २६ ॥

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च ॥ हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च ॥ २७ ॥ उपनीय तु तत्सर्वं शनकैः सुसमाहितः ॥ परिवेषयेत प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ॥ २८ ॥

भाषा–भक्ष्य सुंदर अच्छे लड्डू आदिको और भोज्य खीर आदिको तथा नाना प्रकारके फल मूलोंको और हृदयके प्यारे मांसों तथा सुगंधित जलको भूमिहीमें रक्खे ॥ २७ ॥ इन सब अन्न आदिको ब्राह्मणके समीप लाय सावधान शुद्ध और एकाग्रचित्त हो क्रमसे परोसे यह मीठा है यह खट्टा है ऐसे मधुर आदि गुणोंको कहता जाय ॥ २८ ॥

नास्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ॥ न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत् ॥ २९ ॥ अस्रं गमयति प्रेतान्कोपोऽरीननृतं शुनः ॥ पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ॥ २३० ॥

भाषा–परोसनेके समय कभी आंसू न डाले न क्रोध करे न झूंठ वोले और अन्नको पैरसे न छूवे और न इसको पात्रमें उछाले ॥ २९ ॥ निकाला हुआ आंसू श्राद्धके अन्नको भूतोंको पहुँचाता है पितरोंको नहीं पहुँचाता है और क्रोध शत्रुओंको और झूठ बोलना कुत्तोंको और पैरसे छूना राक्षसोंको और उछाला हुआ पाप करनेवालोंको तिससे रोना आदि न करे ॥ २३० ॥

यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः ॥ ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्यात्पितॄणामेतदीप्सितम् ॥ ३१ ॥ स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥ आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ॥ ३२ ॥

भाषा–जो जो अन्न व्यंजन आदि ब्राह्मणोंको रुचे उसको मत्सररहित होके दे और परमात्माके निरूपणकी वार्त्ता करे इसलिये कि, पितरोंको यह अपेक्षित है ॥ ३१ ॥ वेद मानव आदि धर्मशास्त्र सौपर्ण मैत्रावरुणादिक आख्यान 'महाभारत' आदि इतिहास 'ब्रह्मपुराण' आदि पुराण और श्रीसूक्त शिवसूक्त आदि अखिल श्राद्धमें ब्राह्मणोंको सुनावे ॥ ३२ ॥

हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैः शनैः ॥ अन्नाद्येनासकृच्चैतान्गुणैश्च परिचोदयेत् ॥ ३३ ॥ व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् ॥ कुतपं चासने दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ॥ ३४ ॥

भाषा–आप प्रसन्न होके प्यारे वचनोंसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न करे और अन्नको पीछे तथा खीर आदिसे हौले २ भोजन करावे यह खीर वडी स्वादिष्ट है यह ल-

इदूं बहुत अच्छा है लीजिये ऐसे गुणोंको कहकर वारंवार लेनेके लिये ब्राह्मणोंकी प्रेरणा करे ॥ ३३ ॥ ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थितभी दौहित्रको श्राद्धमें यत्नसे भोजन करावे और आसनमें नेपालका कंवल दे और श्राद्धकी भूमिमें तिलोंको विखेर दे ३४

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ॥ त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥३५॥ अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्भुञ्जीरंस्ते च वाग्यताः॥ न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणान्॥३६॥

भाषा-श्राद्धमें दौहित्र कुतप और तिल ये तीनि पवित्र हैं और यहां श्राद्धमें शौच क्रोध न करना और जल्दी न करना इन तीनोंकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३५ ॥ जिस अन्नका भोजन उष्ण उचित है वह उष्ण परोसे फल आदि उष्ण दे और ब्राह्मण मौन होके भोजन करे वह अन्न स्वादु है अथवा नहीं स्वादु है ऐसे अन्न आदिके गुण दाता करके पूंछे गये ब्राह्मण मुख आदिकी चेष्टासेभी न कहे ॥ ३६ ॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः ॥ पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ ३७ ॥ यद्वेष्टितशिरा भुंक्ते यद्भुंक्ते दक्षिणामुखः ॥ सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ ३८ ॥

भाषा-जवतक अन्नमें उष्णता रहती है और जवतक ब्राह्मण मौन भोजन करते हैं और जवतक ब्राह्मणसे हविके गुण नहीं कहे जाते हैं तवतक पितर भोजन करते हैं ॥ ३७ ॥ वस्त्र आदि शिरमें लपेटके तथा दक्षिणको मुख करके और जूता पहिरे हुए जो भोजन करता है उसको राक्षस खाते हैं पितर नहीं खाते हैं तिससे ऐसा न करना चाहिये ॥ ३८ ॥

चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च॥रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् ॥ ३९ ॥ होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते ॥ दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम् ॥ २४० ॥

भाषा-चांडाल, गांवका सूअर, मुरगा, कुत्ता, रजस्वला स्त्री और नपुंसक ये जैसे ब्राह्मण भोजनके समय न देखें ऐसा करना चाहिये ॥३९॥ अग्निहोत्र आदिमें गौ सुवर्ण आदिके दानमें अपने अभ्युदयके लिये ब्राह्मण भोजनमें दर्श पौर्णमास आदि दैव कर्ममें और श्राद्ध आदि पितृकर्ममें जो इन करके देखा जाय तो जिसके लिये वह किया जाता है वह सिद्ध नहीं होता है अर्थात् निष्फल हो जाता है ॥२४०॥

घ्राणेन सूकरो हन्ति पक्षवातेन कुक्कुटः॥ श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेनावरवर्णजः ॥४१॥ खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि

वा भवेत् ॥ हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः ॥ ४२ ॥

भाषा–सूकर उस अन्न आदिकी गंधको सूंघकर कर्मको निष्फल कर देता है तिससे सूंघके योग्य स्थानसें उसको न आने दे और मुरगा परोंकी पवनसे इस लिये वहभी पैरोंकी पवन लगनेके स्थानसें दूरि करने योग्य है और कुत्ता देखनेसें और शूद्र छूनेसे द्विजातिके श्राद्धको निष्फल कर देता है॥४१॥ खंजा कहिये पँगुला होय अथवा काणा होय दाताका दास होय अथवा अन्य शूद्र होय और हीन वा अधिक अंगका मनुष्य होय उसकोभी उस श्राद्धके स्थानसे निकाल दे ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम् ॥ ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ॥ ४३ ॥ सार्ववर्णिकमन्नाद्यं संनीयाप्लाव्य वारिणा ॥ समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन्भुवि ॥ ४४ ॥

भाषा–अतिथिरूप ब्राह्मण होय अथवा और कोई भोजनके लिये भिक्षुक उस काल आया होय तो उसकाभी श्राद्धके पात्रभूत ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर यथा शक्ति अन्नके भोजनसे वा भिक्षा देनेसे संस्कार करे ॥ ४३ ॥ सब प्रकारके अन्न आदिको व्यंजन आदिकोंमें मिला एक कर जलमें भिगोके भोजन किये हुए ब्राह्मणोंके आगे भूमिमें कुशोंके ऊपर फैलाके डाल दे ॥ ४४ ॥

असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् ॥ उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः ॥ ४५ ॥ उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्य शठस्य च ॥ दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥ ४६ ॥

भाषा–संस्कारके अयोग्य बालकोंका तथा विना दोषके कुलकी स्त्रियोंके त्याग करनेवालोंका पात्रमें स्थित उच्छिष्ट अन्न जो कुशोंपर विखेरा जाता है वह भाग होता है अर्थात् उनको वही मिलता है॥४५॥ जो उच्छिष्ट भूमिमें गिरता है वह आलस्य और कुटिलतारहित दासोंके समूहका भाग पित्र्यकर्ममें मनु आदि कहते हैं॥४६॥

असपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु ॥ अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥४७॥ सहपिण्डक्रियायां तु कृतायामस्य धर्मतः ॥ अनयैवावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणं सुतैः ॥ ४८ ॥

भाषा–सपिंडीकरण श्राद्ध पर्यंत शीघ्र मरे हुए द्विजातिका वैश्वदेव ब्राह्मण भोजनरहित श्राद्ध निमित्तका अन्नसे ब्राह्मणको भोजन करावे और एक पिंड दे ॥ ४७ ॥ जिसका यह एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया है उसका धर्मसे निज गृह्यमें कही हुई विधिसे सपिंडीकरण श्राद्ध करनेपर इसी परिपाटीसे कहे हुए अमावास्या श्राद्धकी

पद्धतिसे पिंडोंका निर्वपण कहिये श्राद्ध पुत्रोंकर सर्वत्र मृताह कहिये मरनेके दिन आदिमें करना चाहिये ॥ ४८ ॥

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति ॥ स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ॥४९॥ श्राद्धभुग्वृषलीतल्पं तदहर्योऽधिगच्छति ॥ तस्याः पुरीषे तन्मासं पितरस्तस्य शेरते ॥२५०॥

भाषा–श्राद्ध भोजनका उच्छिष्ट अन्न जो शूद्रको देता है वह मूर्ख अधोमुख होके कालसूत्र नाम नरकमें जाता है ॥ ४९ ॥ श्राद्धका भोजन करनेवाला जो ब्राह्मण उसी दिन रात्रिमें स्त्रीसंग करता है उसके पितर उस स्त्रीकी विष्ठामें एक महीनेतक पडे रहते हैं ॥ २५० ॥

पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ॥ आचान्तांश्चानुजानीयादभितो रम्यतामिति ॥ ५१ ॥ स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥ स्वधाकारः परा ह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥ ५२ ॥

भाषा–ब्राह्मणोंको तृप्त जानि भोजन कर लिया ऐसे पूंछकर आचमन करावे आचमन किये उनकाभी ऐसा संबोधन दे जाइये ऐसे कहे ॥ ५१ ॥ आज्ञा देनेके पीछे ब्राह्मण श्राद्ध करनेवालेसे स्वधाऽस्तु ऐसे कहे जिससे सब श्राद्ध तर्पण आदि पितृकर्ममें स्वधाशब्दका बोलना सबसे बडा आशीर्वाद है ॥ ५२ ॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ॥ यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्ततो द्विजैः ॥ ५३ ॥ पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यं गोष्ठे तु सुश्रुतम् ॥ संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यपि ॥ ५४ ॥

भाषा–स्वधाशब्द कहनेके पीछे ब्राह्मणोंके भोजन करनेसे बचे हुए अन्नको अन्नशेषभी है ऐसे कहके उन ब्राह्मणोंके आगे धर दे इस अन्नसे यह करो ऐसी आज्ञा लेकर जैसा वे कहें वैसे शेष अन्नका खर्च करे ॥ ५३ ॥ पितृश्राद्धमें स्वदित अर्थात् अच्छा भोजन हुआ ऐसे बोले. श्राद्धमें सुश्रुत अर्थात् अच्छा श्रवण किया ऐसे कहे और अभ्युदय श्राद्धमें संपन्नं अच्छा हुवा ऐसे कहे और दैवकर्ममें रुचित ऐसे करना ॥ ५४ ॥

अपराह्णस्तथा दर्भा वास्तुसंपादनं तिलाः ॥ सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याः श्राद्धकर्मसु संपदः ॥ ५५ ॥ दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च सर्वशः ॥ पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसंपदः ॥ ५६ ॥

भाषा–अमावास्या श्राद्धका कहना यहां मुख्य है तिससे अमावास्याके मध्य यह अपराह्ण काल अर्थात् मध्याह्न कहा है " प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् " इस वचनसे वृद्धिश्राद्ध आदिमें प्रातःकाल आदि काल दूसरी स्मृतियोंमें कहनेसे आसन आदिके लिये कुशा और गोबर आदिसे श्राद्धके स्थानका शुद्ध करना और विकिरण आदिके लिये तिल और सृष्टि कहिये उदारतासे अन्न आदिका देना और मृष्टि कहिये अन्न आदिकोंका शुद्ध करना और पंक्तिपावन ब्राह्मण ये श्राद्धमें संपत्ति है इससे और अंगोंसे उनकी उत्कृष्टता सूचित हुई कि, इनका श्राद्धमें होना आवश्यक है यह सूचित किया ॥ ५५ ॥ कुश और पवित्र कहिये मंत्र और पूर्वाह्णकाल कहिये पहला पहर और सब हविष्य कहिये मुनि अन्न आदि सब और पहले कहा हुआ पवित्र कहिये वास्तुसंपादन आदि ये सब हव्य कहिये दैवकर्मकी समृद्धि है ॥ ५६ ॥

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ॥ अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥ ५७ ॥ विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वाग्यतः शुचिः ॥ दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्याचेतेमान्वरान्पितॄन् ॥ ५८ ॥

भाषा–मुनि कहिये वानप्रस्थके अन्न नीवार आदि और दूध और सोमलताका रस अनुपस्कृत कहिये बिगडा न होय ऐसा दुर्गंध आदिसे रहित मांस और अक्षार लवण कहिये विना बनाया हुआ सैंधव आदि ये स्वाभाविक हवि मनु आदिकोंने कहे हैं ॥ ५७ ॥ उन ब्राह्मणोंका विसर्जन करके एकाग्रचित्त मौनी और शुद्ध हो दक्षिण दिशाको देखता हुआ आगे कहे हुए इन चाहे हुए वरोंको पितरोंसे मांगे ॥ ५८ ॥

दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः संततिरेव च ॥ श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥ ५९ ॥ एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदनन्तरम् ॥ गां विप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् ॥ २६० ॥

भाषा–हमारे कुलमें दाता पुरुष बढें और पढने पढाने तथा अर्थके ज्ञानसे वेद, वृद्धिको प्राप्त होय और पुत्र पौत्र आदि बढें और हमारे कुलमें वेदके अर्थोंसे श्राद्ध न जाय और देने योग्य धन आदि बहुतसा होय ॥ ५९ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे पिंडदान करके वांछित वर मांगने पीछे गौ ब्राह्मण अथवा बकरेको वह पिंड खिला दे अथवा अग्निमें वा जलमें डाल दे ॥ २६० ॥

पिण्डनिर्वपणं केचित्परस्तादेव कुर्वते ॥ वयोभिः खादयन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वा ॥ ६१ ॥ पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ॥ मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी ॥ ६२ ॥

भाषा-कोई आचार्य ब्राह्मणभोजनके पीछे पिंडदान करते हैं और कोई पक्षियों-को पिंड खिलाते हैं अथवा आगिमें जलमें डाल देते हैं ॥ ६१ ॥ धर्म अर्थ काममें मन वाणी काय कर्मसे पतिही मुझे सेवा करने योग्य हैं यह व्रत जिसके होय वह पतिव्रताधर्मसे व्याही सवर्णा और प्रथम विवाही स्त्री श्राद्धकी क्रियामें श्रद्धायुक्त पुत्रकी चाहनेवाली उन पिंडोंमेंसे वीचके पितामहके पिंडका भोजन करे ॥ ६२ ॥

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ॥ धनवन्तं प्रजावन्तं सात्त्विकं धार्मिकं तथा ॥६३॥ प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायं प्रकल्पयेत् ॥ ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्त्वा बान्धवानपि भोजयेत् ॥६४॥

भाषा-उस पिंडके खानेसे वह स्त्री वडी उमरवाले कीर्ति और धारणा करने-वाले बुद्धियुक्त और धनपुत्र आदि युक्त गुणी पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ ६३ ॥ तिस पीछे हाथोंको धोके अपनी ज्ञाति जिमावे उनके लिये पूजापूर्वक अन्न दे मातोके पक्षवालोंकोभी सत्कारपूर्वक जिमावे ॥ ६४ ॥

उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ॥ ततो गृहबलिं कुर्या-दिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ६५ ॥ हविर्यच्चिररात्राय यच्चानन्त्या-य कल्प्यते ॥ पितृभ्यो विधिवद्दत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ६६ ॥

भाषा-वह ब्राह्मणोंका उच्छिष्ट उस समयतक रहे जबतक ब्राह्मणोंका विस-र्जन होय और ब्राह्मणोंके निकल जानेपर स्थान शुद्ध करना चाहिये तिस पीछे श्राद्धकर्म संपन्न होनेपर वैश्वदेव बलि होमकर्म नित्यश्राद्ध और अतिथिभोजन करने चाहिये ॥ ६५ ॥ जो हवि पितरोंके लिये विधिसे दिया जाता है वह बहुत कालकी तृप्तिके लिये होता है सो मैं संपूर्णतासे कहूंगा ॥ ६६ ॥

तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा ॥ दत्तेन मासं तृप्यन्ति विधि-वत्पितरो नृणाम् ॥ ६७ ॥ द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हा-रिणेन तु ॥ औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै ॥ ६८ ॥

भाषा-तिल, धान, जव, काले उडद, जल, मूल और फल इनमेंसे कोई एक शास्त्रके अनुसार श्राद्धमें दिया जाय उससे मनुष्योंको पितर एक महीनेतक तृप्त रहते हैं ॥ ६७ ॥ पढीन आदि मछलियोंके मांससे दो महीनेतक पितर तृप्त रहते हैं और हरिणके मांससे तीनि महीनेतक और मेंढेके मांससे चार महीनेतक द्विजा-तिके भक्ष्य पक्षियोंके मांससे पांच महीने तक तृप्त रहते हैं ॥ ६८ ॥

षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै ॥ अष्टावेणस्य मांसेन

रौरवेण नवैव तु ॥ ६९ ॥ दश मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः ॥ शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु ॥ २७० ॥

भाषा-बकरेके मांससे छः महीने तृप्त रहते हैं और पृषतनाम चित्रमृगके मांससे सात महीनेतक और हरिणके मांससे आठ महीनेतक और रुरुनाम मृगके मांससे नौ महीनेतक तृप्त रहते हैं ॥ ६९ ॥ जंगली सूअर और भैंसेके मांससे १० महीनेतक तृप्त रहते हैं और खरगोश तथा कछुएके मांससे ग्यारह महीनेतक तृप्त रहते हैं ॥ २७० ॥

संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च ॥ वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ७१ ॥ कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु ॥ आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥ ७२ ॥

भाषा-एक वर्षतक गौके दूधसे अथवा उसमें की हुई खीरसे संतुष्ट रहते हैं और नदी आदिमें पानी पीनेसे जिसके दोनों कान और जीभ जलको छुवे ऐसे सपेद बूढे बकरेको त्रिपिब और वार्ध्रीणस कहते हैं उस बकरेके मांससे बारह वर्षकी तृप्ति होती है ॥७१॥ कालशाकनाम एक प्रकार शाक और महाशल्क कहिये एक प्रकारकी मछली खड्ग कहिये गेंडा और लोहामिष कहिये लाल बकरा इनके मांस और शहत और मुनियोंके अन्न अर्थात् नीवार आदि वनके अन्न ये सब अनन्त तृप्तिके लिये होते हैं ॥ ७२ ॥

यत्किंचिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् ॥ तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च ॥७३॥ अपि नः स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ॥ पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥ ७४ ॥

भाषा-वर्षाऋतुकी मघा नक्षत्रयुक्त भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशीके दिन जो कुछ मधुके साथ दिया जाता है वहभी अक्षय तृप्तिके लिये होता है ॥ ७३ ॥ पितर निश्चय करके ऐसा चाहते हैं कि हमारे कुलमें कोई ऐसा उत्पन्न होय जो हमारे लिये वर्षाऋतुकी मघायुक्त भाद्रकृष्ण त्रयोदशीमें अथवा और किसी तिथिमेंभी हस्तीकी छायामें पूर्वदिशामें जानेपर मधु घृतयुक्त खीर दे ॥ ७४ ॥

यद्यद्ददाति विधिवत्सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः ॥ तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् ॥ ७५ ॥ कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥ श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः ॥ ७६ ॥

भाषा-अच्छे प्रकारसे श्रद्धायुक्त जो जो पितरोंके लिये देता है वह सब अन्न परलोकमें पितरोंकी तृप्तिके लिये अनंत और अक्षय होता है ॥ ७५ ॥ कृष्णपक्षमें दशमी १ एकादशी २ द्वादशी ३ त्रयोदशी ४ अमावास्या ५ ये पांच तिथि श्राद्ध करनेके लिये प्रशस्त हैं ऐसी अन्य तिथि नहीं ॥ ७६ ॥

युक्षु कुर्वन् दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ आयुक्षु तु पितॄन्सर्वान् प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ ७७ ॥ यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ॥ तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥ ७८ ॥

भाषा-द्वितीया चतुर्थी आदि युग्म तिथियोंमें और भरणी रोहिणी आदि युग्म नक्षत्रोंमें श्राद्ध करता हुआ पुरुष सब वांछित कामोंको प्राप्त होता है और प्रतिपदा तृतीया आदि अयुग्म तिथियोंमें और अश्विनी कृत्तिका आदि अयुग्म नक्षत्रोंमें श्राद्धसे पितरोंको पूजता हुआ पुष्कल धन विद्यासे पुष्ट पुत्र आदि संततिको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ ज्योतिषकी रीतिसे महीनोंका आरम्भ शुक्लपक्षसे होता है जैसे अपरपक्ष कहिये कृष्णपक्ष परपक्ष कहिये शुक्लपक्षसे श्राद्धका अधिक फल देनेवाला होता है ऐसे पहले आधे दिनसे दूसरा आधा दिन श्राद्धमें अधिक फल देनेवाला है ॥ ७८ ॥

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा ॥ पित्र्यमानिधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ॥ ७९ ॥ रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा ॥ संध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ॥ २८० ॥

भाषा-दाहिने कंधेपर यज्ञोपवीत रख आलस्यरहित कुश हाथमें ले अपसव्यही शास्त्रके अनुसार सब पितृकर्म अंततक करे ॥ ७९ ॥ रात्रिमें श्राद्ध न करे कारण यह है कि, श्राद्ध नाश करनेका गुण होनेसे मनु आदिकोंने इसको राक्षसी कहा है और दोनों संध्याओंमें न करे और सूर्यके शीघ्र उदय होनेपर न करे ॥२८०॥

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ॥ हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पाञ्चयज्ञिकमन्वहम् ॥ ८१ ॥ न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते ॥ न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ॥ ८२ ॥

भाषा-इस कही हुई विधिसे संवत्सरके मध्यमें तीनवार अर्थात् हेमंत ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें श्राद्ध करना चाहिये सो तौ समयाचारसे कुंभ वृष और कन्याके सूर्य होनेपर करे और पंचयज्ञोंमें जो " एकमप्याशयेद्विप्रं " अर्थात् एक ब्राह्मणकोभी भोजन करावे इस वचनसे कहे हुए श्राद्धको तो प्रतिदिन करे ॥ ८१ ॥ " अग्नेः

"सोमयमाभ्यां च" इस मंत्रसे विधान किया हुआ पितृयज्ञका अंगभूत होम श्रौत स्मार्त अग्निसे भिन्न लौकिक अग्निमें शास्त्रने नहीं कहा है तिससे लौकिक अग्निमें अग्नौकरण होम न करना चाहिये किंतु ब्राह्मणके हाथमें करना चाहिये और अग्निहोत्री ब्राह्मणको अमावास्याके विना कृष्णपक्षकी दशमी आदिमें श्राद्ध कहा है और मृताहश्राद्ध तो नियत होनेसे कृष्णपक्षमेंभी और तिथिमें नहीं निषेध किया जाता है ॥ ८२ ॥

एवं तर्पयत्यद्भिः पितॄन्स्नात्वा द्विजोत्तमः ॥ तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥८३॥ वसून्वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् ॥ प्रपितामहांस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषा सनातनी ॥ ८४ ॥

भाषा–पांच यज्ञिक श्राद्ध न होनेमें यह विधि है. जो उत्तम द्विज स्नान करके जलसे पितरोंका तर्पण करता है उसीसे संपूर्ण पितृयज्ञकी क्रियाके फलको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ जिससे पिता आदि वसु आदि हैं यह अनादि श्रुति है इसीसे पिताओंको वसु नाम देव और पितामहोंको रुद्र और प्रपितामहोंको आदित्य मनु आदि कहते हैं तिसे श्राद्धमें पिता आदि रूपसे ध्यान करने योग्य हैं ॥ ८४ ॥

विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं वामृतभोजनः ॥ विघसो भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथामृतम् ॥८५॥ एतद्वोऽभिहितं सर्वं विधानं पाञ्चयज्ञिकम् ॥ द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं श्रूयतामिति ॥ २८६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

भाषा–सदा विघसका भोजन करनेवाला होय और सदा अमृतका भोजन करनेवाला होय विघस और अमृत शब्दोंका अर्थ करते हैं ब्राह्मण आदिकोंके भोजनसे बचे हुएको विघस कहते हैं और दर्श पौर्णमास आदि यज्ञोंसे बचा हुआ पुरोडाश अमृत कहा जाता है ॥ ८५ ॥ यह पंचयज्ञोंके करनेकी विधि तुमसे सब कही अब द्विजोंमें मुख्य जो ब्राह्मण हैं उसकी वृत्तियें जो मृत आदि हैं उनका अनुष्ठान सुनिये यह भृगुजी सब महर्षियोंसे कहते हैं ॥ २८६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः।

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः ॥ द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥ अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ॥ या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥ २ ॥

भाषा-पहला चौथाई जो आयुष्यका भाग है तिसमें यथाशक्ति गुरुकुलमें वास करके दूसरे आयुष्यके चौथाई भागमें विवाह करके घरमें वास करे ॥ १ ॥ जीवोंसे द्रोहको न करे जो इसका असंभव होय तो थोडेसे द्रोहको करके जो वृत्ति कहिये जीवनका उपाय है उसके आश्रयसे भार्या भृत्य और पंचयज्ञोंके करनेसे युक्त हो ब्राह्मण आपत्तिरहित कालमें जीवे क्षत्रिय आदि नहीं ॥ २ ॥

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ॥ अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम् ॥ ३ ॥ ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा ॥ सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥ ४ ॥

भाषा-प्राणोंकी रक्षा और शास्त्रिय कुटुंबको वढाता हुआ तथा नित्य कर्मोंको करता हुआ केवल शरीरनिर्वाहके भोगके लिये नहीं शास्त्रमें कहे हुए ऋत आदि अर्जनरूप कर्मोंसे शरीरके क्लेश विना धनका संग्रह करे ॥ ३ ॥ आपत्तिरहित समयमें ब्राह्मण ऋत और अनृतसे मृत और अमृतसे तथा सत्य और अनृतसे जीविका करे और विना आपत्तिके सेवासे कभी जीविका न करे ॥ ४ ॥

ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् ॥ मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥ सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ॥ सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

भाषा-खेत आदिमें पडे हुए एक एक अन्नके दानेके चुटकीसे वीननेको उंछ कहते हैं और अनेक धान्योंकी वलिछुटिया फली आदिके वीननेको शिल कहते हैं उन दोनोंका सत्य समान फल है इससे उनको ऋत कहते हैं विना मांगे प्राप्त हुआ अमृतके समान सुखका कारण होनेसे अमृत है और मांगा हुआ भिक्षासमूह मरनेके समान पीडा उत्पन्न करनेसे मृत कहाता है अग्निहोत्री गृहस्थको भिक्षामें कच्चे चावल आदि लेने चाहिये पके हुए नहीं, क्योंकि पराई अग्निमें पकाये हुएका अग्निमें होम नहीं हो सकता है और कर्षण जो भूमिका जोतना है वह भूमिमें स्थित

अनेक जीवोंके मरनेका कारण होनेसे बहुत दुःखरूप फलका देनेवाला होनेसे जो प्रकर्ष कहिये अधिकतासे मृतके समान होय सो प्रमृत कहा जाता है ॥ ५ ॥ बहुधा सच्चे झूठे व्यवहारसे होता है इससे वाणिज्यको सत्यानृत कहते हैं परंतु वाणिज्यमें शास्त्रसे झूठ सच्चकी आज्ञा नहीं है तिसपरभी इसका सत्याऽनृतही नाम है उस वाणिज्यसेभी जीविका करे और इस श्लोकमें जो च शब्द है इससे व्याजभी जाना गया अर्थात् आपत्तिमें व्याजसेभी जीविका करे और सेवा तौ दीनदृष्टिसे देखना और स्वामीके धमकाना नीच कामोंका करना आदि सेवा कुत्ताकीसी वृत्ति कही गई है इससे ब्राह्मण उसका त्याग करे अर्थात् सेवासे कभी जीविका न करे ॥ ६ ॥

कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा ॥ त्र्यैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥ ७ ॥ चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ॥ ज्यायान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ॥८॥

भाषा-ईंट आदिसे बने हुए अन्न रखनेके घरको कुशूल कहते हैं उसमें भरे हुए धान्यका संचय करनेवाला होय अथवा एक वर्षके निर्वाह योग्य धान्यका संग्रह करनेवाला कुंभी धान्य कहा जाता है वह होय अथवा त्र्यैहिक उसको कहते हैं जिसके तीन दिनको निर्वाहके योग्य अन्न होय ऐसा होय अथवा जो कल्ह होय उसको श्वस्तन कहते हैं ऐसा अन्न जिसके होय वह श्वस्तानिक कहाता है सो न होय उसको अश्वस्तानिक कहते हैं ऐसा होय अर्थात् रोज उत्पन्न करके निर्वाह करनेवाला होय ॥ ७ ॥ इन चारि कुशूल धान्य आदि गृहस्थ ब्राह्मणोंमें जो शेषमें बढा है अर्थात् पहलेसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा इस क्रमसे श्रेष्ठ जानिये जिससे वह जीविकाके संकोचसे स्वर्ग आदि लोकोंका जीतनेवाला होता है ॥ ८ ॥

षट्कर्मको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते ॥ द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥ ९ ॥ वर्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ॥ इष्टीः पार्वायनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥ १० ॥

भाषा-इन चारों कुशूल धान आदि गृहस्थोंमें जिसके बहुतसे पोष्यवर्ग कहिये पालन करने योग्य बहुतसा कुटुंब है वह ऋत अयाचित भिक्षा खेती वाणिज्य इन पांचसे और छठे कुसीद अर्थात् व्याज इन छः कर्मोंसे जीविका करे और अन्य जिसके थोडा कुटुंब है वह याजन प्रतिग्रह और अध्यापन इन तीनोंसे जीविका करे और उससे अन्य याजन तथा अध्यापनसे जीविका करे और कहे हुए तीनोंकी अपेक्षा चौथा फिर ब्रह्मसूत्र जो पढाना तिससे जीविका करे ॥ ९ ॥ शिल और उंछसे जीनेवाला ब्राह्मण धनसे करने योग्य दूसरे कर्मोंमें असमर्थ होनेसे अग्नि-

होत्रहीमें लगा रहे पर्व और अयनके अंतकी इष्टि अर्थात् दर्श पौर्णमास और आग्रयणात्मिक सदा करे ॥ १० ॥

न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन ॥ अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥ ११ ॥ संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ॥ संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ १२ ॥

भाषा-जीविकाके लिये लोकवृत्त कहिये झूठी प्यारी बातके कहनेको और विचित्र हँसीकी कथा आदिको न करे और अजिह्मा कहिये झूंठे अपने गुणोंके कहने आदि पापसे रहित और अशठा कहिये दंभ आदि कपटसे रहित और शुद्ध कहिये वैश्य आदिकी वृत्तियोंसे नहीं मिली हुई ब्राह्मणकी जीविका करे ॥ ११ ॥ संभवके अनुसार भृत्योंके तथा अपने प्राणोंके निर्वाहके लिये आवश्यक और पंचयज्ञोंके करनेहीके योग्य धनसे अधिक चाहना न करनेको संतोष कहते हैं उस संतोषका भली भांति आश्रय ले बहुतसे धनके जोडनेमें संयम करे जिससे इस संसारमें संतोषही सुखका कारण है और परलोकमें स्वर्ग आदिके सुखका कारण है इससे विपर्यय कहिये उलटा असंतोष है सो दुःखका कारण है क्योंकि बहुत धन जोडनेके श्रमसे बहुल दुःख उत्पन्न होनेके कारण संपत्ति तथा विपत्तिमें क्लेश होता है ॥ १२ ॥

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः ॥ स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥ १३ ॥ वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥ तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १४ ॥

भाषा-इन कही हुई वृत्तियोंमेंसे किसी एक वृत्तिसे जीवता हुआ स्नातक ब्राह्मण स्वर्ग आयु और यशके हितकारी आगे कहे हुए व्रतोंको यथासंभव करे यह मुझको करना चाहिये यह न करना चाहिये इस प्रकारका जो संकल्प है उसको व्रत कहते हैं ॥ १३ ॥ वेदमें तथा स्मृतिमें कहा हुआ अपने आश्रमका कहा हुआ कर्म जीवने पर्यंत आलस्यरहित होके करे जिस कारणसे सामर्थ्यके अनुसार करता हुआ परम गति कहिये मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

नेहेतार्थान्प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा ॥ न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ॥ १५ ॥ इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ॥ अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिवर्तयेत् ॥ १६ ॥

भाषा-प्रसंग जो गाना बजाना है तिससे द्रव्यको न जोडे और शास्त्रविरुद्ध

कर्म जो अयाज्य याजनादिक है तिससेभी न जोडे और धन होनेपरभी न जोडे और धनके न होनेपरभी जो और प्रकार होय तो इधर उधर पतित आदिकोंसेभी न ले ॥ १५ ॥ इंद्रियोंके अर्थ कहिये विषय जे रूप रस गंध स्पर्श आदि निषिद्ध नहीं हैं उनमें अर्थात् अपनी स्त्री आदिके भोगमें कामसे अत्यंत सक्त न होय क्योंकि विषय अस्थिर हैं और स्वर्ग तथा मोक्षरूप कल्याणविरोधी हैं यह जानके इनसे मनसे निवृत्त होय ॥ १६ ॥

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ॥ यथातथाध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥१७॥ वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ॥ वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥ १८ ॥

भाषा—वेदाभ्यासके विरोधी जो धनवान्के समीप बहुत जाना खेती लोकयात्रा आदि हैं उन सबको त्याग करे तो कहिये कि भृत्योंका और अपना पालन कैसे होय यह शंका करके कहते हैं जैसे तसे स्वाध्यायके अविरोधी किसी उपायसे भृत्योंका और अपना पोषण करे जिससे नित्य वेदाभ्यासमें लगा रहना यही स्नातककी कृतार्थता है ॥ १७ ॥ अवस्था क्रिया धन वेद और कुल इनके अनुरूप वेष बोल चाल और बुद्धि करता हुआ इस लोकमें विचरे जैसे तरुण अवस्थामें माला गंध लेपन आदिका धारण करना और त्रिवर्गकी अनुसरण करनेवाली वाणी और बुद्धि ऐसेही कर्म आदिकोंमें जानिये ॥ १८ ॥

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ॥ नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ १९ ॥ यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ॥ तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥२०॥

भाषा—वेदके विरोधी नहीं और शीघ्रही बुद्धिके बढानेवाले व्याकरण मीमांसा स्मृति पुराण न्याय आदि शास्त्रोंको तथा धन्य कहिये धनके लिये हित बार्हस्पत्य औशनस आदि अर्थशास्त्रोंको और हित कहिये जिनका उपकार देखा गया है ऐसे वैद्यक ज्योतिष आदिको तैसेही वेदार्थके बोध करानेवाले निगमनाम ग्रंथोंको विचार करे ॥ १९ ॥ जैसे जैसे पुरुष शास्त्रको अच्छी तरहसे पढता है वैसे वैसे विशेष कर जानता है और अन्य शास्त्रोंके विषयकोभी विशेष ज्ञान इसको रुचता है अर्थात् उज्ज्वल होता है ॥ २० ॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ॥ नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥ २१ ॥ एतानेके महायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदो जनाः ॥ अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति ॥ २२ ॥

भाषा-ऋषियज्ञ १ देवयज्ञ २ भूतयज्ञ ३ पितृयज्ञ ४ नृयज्ञ ५ इन पांच यज्ञोंको यथाशक्ति कभी न छोडे ॥ २१ ॥ गृहस्थके बाहरी तथा भीतरी यज्ञ करनेके शास्त्र जाननेवाले कोई गृहस्थ ब्रह्मयज्ञ आदि नाम इन पांच महायज्ञोंको ब्रह्मज्ञानकी अधिकतासे बाहरी चेष्टाओंकर रहित हो पांच बुद्धींद्रियोंहीमें पांच जो रूप ज्ञान आदि हैं तिनका संयम करते हुए संपादन करते हैं यहां हु धातुका संपादन अर्थ है ॥ २२ ॥

वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा ॥ वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम् ॥ २३ ॥ ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येतैर्मखैः सदा ॥ ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा ॥ २४ ॥

भाषा-कोई ब्रह्मज्ञानी गृहस्थ वाचिक कहिये प्राणवायुमें यज्ञ करनेके अक्षय फलको जानते हुए सदा वाणीमें प्राणको होमते हैं और वाणीको प्राणमें अर्थात् बोलता हुआ वाणीको प्राणमें होमता है और नहीं बोलनेसे श्वास लेता हुआ प्राणमें वाणीको होमता है इससे ध्यान करना चाहिये यह विधान किया जाता है इससे अनंत अमृतरूप आहुतियोंको जागते सोते सदा होम करता है निश्चय बाहरी हुई और आहुतियां कर्ममयी होती हैं ॥ २३ ॥ ब्रह्मनिष्ठ और ब्राह्मण सब भांति ब्रह्मज्ञानहीसे इन यज्ञोंकरके यजन करते हैं अर्थात् इन यज्ञोंको करते हैं कैसे करते हैं इसपर कहते हैं ज्ञान है मूल जिसका ऐसी इन यज्ञोंकी क्रियाकी उत्पत्तिको जानते हुए ॥ २४ ॥

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा ॥ दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥ २५ ॥ सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः ॥ पशुना त्वयनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्मखैः ॥ २६ ॥

भाषा-उदित होमपक्षमें दिन आदिमें और रातिकी आदिमें और अनुदिन तथा होमपक्षमें दिनके अंतमें और रातिके अंतमें अथवा उदित होमपक्षमें दिनकी आदिमें और दिनके अंतमें और अनुदित होमपक्षमें रातिकी आदिमें और रातिके अंतमें अग्निहोत्र करे और कृष्णपक्षरूप आधे महीनेके अंतमें दर्शनाम कर्मसे और शुक्लपक्षरूप आधे महीनेके अंतमें पौर्णमास नाम कर्मसे यजन करे ॥ २५ ॥ पहले जोरे हुए धान्य आदि सस्यके समाप्त होनेपर अथवा न समाप्त होनेपरभी नवीन धान्यकी उत्पत्तिमें आग्रयण जो नवीन सस्यकी इष्टि है तिससे यजन करे तथा ऋतुके अंतमें चातुर्मास्य यज्ञसे यजन करे और अयनोंकी आदिमें अर्थात् उत्तर तथा दक्षिण अयनके आरंभमें पशुसे यजन करे अर्थात् पशुबंधनाम यज्ञ करे और

शिशिर ऋतु करि वर्षके समाप्त होनेपर वसंत ऋतुमें सोमरससे करने योग्य ज्योति-
ष्टोम आदि यज्ञोंसे यजन करे ॥ २६ ॥

**नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना चाग्निमान्द्विजः ॥ नवान्नमद्यान्मां-
सं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥२७॥ नवेनानर्चिता ह्यस्य पशुहव्ये-
न चाग्नयः ॥ प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्द्धिनः ॥ २८ ॥**

भाषा-बडी आयुकी चाहनेवाला अग्निहोत्री द्विज नवीन सस्यकी इष्टि किये
विना नवीन अन्नको न खाय और पशुयाग किये विना मांस न खाय ॥ २७ ॥
जिससे नवीन अन्नसे और पशु हव्य से नहीं पूजे हुए नवीन अन्न और मांसके चाह-
नेवाले अग्नि अग्निहोत्रीहीके प्राणोंके खानेकी इच्छा करते हैं ॥ २८ ॥

**आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा ॥ नास्य कश्चिद्वसेद्गेहे
शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ॥२९॥ पाषण्डिनो विकर्मस्थान्बैडालव्र-
तिकाञ्छठान् ॥ हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥३०॥**

भाषा-शक्तिके अनुसार आसन, भोजन, शय्या, जल, कंद, फल आदिसे नहीं
पूजा गया अतिथि इस गृहस्थके घरमें न वसे ॥२९॥ पाषंडी कहिये वेदसे बाहरी
व्रत तथा जिन्होंके धारण करनेवाले शाक्य भिक्षु क्षपणक आदि और विकर्मस्थ
कहिये निषेध की हुई वृत्तिसे जीवनेवाले और बैडालव्रतिक कहिये बकवृत्ति जिनके
लक्षण आगे कहेंगे और शठ कहिये जो वेदमें श्रद्धा न रखते होंय और हैतुक क-
हिये वेदके विरोधी तर्कोंसे व्यवहार करनेवाले इनमेंसे जो कोई अतिथिके समयमेंभी
आवे तो उसका वाणीमात्रसेभी सत्कार न करे ॥ ३० ॥

**वेदविद्याव्रतस्नाताञ्छ्रोत्रियान्गृहमेधिनः ॥ पूजयेद्धव्यकव्येन विपरी-
तांश्च वर्जयेत् ॥ ३१ ॥ शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधि-
ना ॥ संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ॥ ३२ ॥**

भाषा-जो वेदोंको समाप्त करि और व्रतोंको नहीं समाप्त करि घरको लौटता है
वह विद्यास्नातक होता है और जो व्रतोंको समाप्त करि वेदोंको नहीं समाप्त करि जो
घरको लौटता है वह व्रतस्नातक कहा जाता है और जो दोनोंको समाप्त करि लौटता
है वह विद्याव्रतस्नातक कहा जाता है इन श्रोत्रिय तीनों स्नातकोंको गृहस्थ हव्यसे
पूजे ॥३१॥ गृहस्थ अपचमान कहिये जो अपने हाथसे पाक नहीं करते ऐसे ब्रह्म-
चारी संन्यासी और पाषंडीको शक्तिके अनुसार अन्नका भोजन दे और अपने कुटुं-
बके अनुरोधसे वृक्ष आदि पर्यंत प्राणियोंको जल आदिसेभी संविभाग कर्तव्य है ३२

राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा ॥ याज्यान्तेवासिनोर्वापि न त्वन्यत इति स्थितिः ॥ ३३ ॥ न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन ॥ न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥ ३४ ॥

भाषा-क्षुधासे पीडित स्नातक द्विजातिसे प्रतिग्रहका संभव होनेपरभी शास्त्रके अनुसार चलनेवाले क्षत्रिय अर्थात् राजासे अथवा यजमानसे और शिष्योंसे पहले धनकी इच्छा करें वे न होय तौ अन्यभी द्विजातिसे धन ग्रहण करे उसके अभावमें तौ सबसे ले यह आपत्तिका धर्म कहेंगे औरसे न ले यह मर्यादा है सो आपत्ति छोडके है ॥ ३३ ॥ विद्या आदिके योगसे दान लेनेमें समर्थभी स्नातक ब्राह्मण कहे हुए राजा आदिके प्रतिग्रहके मिलनेपर क्षुधासे दुःखी न होय और धन होनेपर पुराने और मैले वस्त्र धारण न करे ॥ ३४ ॥

कृतकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ॥ स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥ ३५ ॥ वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम् ॥ यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥ ३६ ॥

भाषा-कटे हैं केश नख दाढी और मूछ जिसके ऐसा होय और दान्त कहिये तपके क्लेशका सहनेवाला होय सपेद वस्त्र रक्खे और बाहरी भीतरी शुद्धतासे युक्त रहे और वेदके अभ्यासमें लगा रहे और औषध आदिके सेवनसे अपने हितमें सदा तत्पर रहे ॥ ३५ ॥ बांसकी लाठी लिये रहे और जलसे भरा हुआ कमंडलु रक्खे और यज्ञोपवीत कुशकी मुठी तथा सुंदर सोनेके दोनों कुंडल ब्रह्मचारी धारण करे ॥ ३६ ॥

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन ॥ नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥ ३७ ॥ न लङ्घयेद्वत्सतंत्रीं न प्रधावेच्च वर्षति ॥ न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा ॥ ३८ ॥

भाषा-उदय होते हुए और अस्त होते हुए सूर्यके मंडलको संपूर्ण न देखे तथा राहु ग्रहसे ग्रसे हुए और जलमें प्रतिबिंब पडे हुए तथा आकाशके मध्यमें अर्थात् मध्यान्हके सूर्यको न देखे ॥ ३७ ॥ बछडा बांधनेकी रस्सीको न उलंघे और मेघ वर्षनेके समय नहीं दौरे और अपनी देहकी परछाहींको जलमें न देखे ॥ ३८ ॥

मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् ॥ प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥ ३९ ॥ नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने ॥ समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥ ४० ॥

भाषा-मट्टीका ढेर, गौ, पाषाण आदिके बने हुए देवता, ब्राह्मण, घी, सहत, चौराहा और बडे प्रमाणसे जाते हुए वट पीपल आदि वृक्ष इन सबोंको मार्गमें दाहिने देकर चले ॥ ३९ ॥ कामसे पीडितभी पुरुष रजोदर्शनमें निषिद्ध छूनेके तीनि दिन स्त्रीसे भोग न करे और गमन न करते हुएभी उसके साथ एक पलंगपर न सोवे ॥ ४० ॥

रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ॥ प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥ ४१ ॥ तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम् ॥ प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते ॥ ४२ ॥

भाषा-रजस्वला स्त्रीसे भोग करनेवाले पुरुषके प्रज्ञा, तेज, बल आंखि ये सब नष्ट हो जाते हैं तिससे उसका त्याग करे ॥४१॥ रजस्वला स्त्रीमें न गमन करनेवाले मनुष्यके प्रज्ञा, तेज, नेत्र, आयु ये सब बढते हैं तिससे उसको बचावे ॥ ४२ ॥

नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् ॥ क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम् ॥४३॥ नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम् ॥ न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥४४॥

भाषा-स्त्रीके साथ एक पात्रमें न खाय और खाती हुई छींकती हुई जम्हाती हुई और बेपर्द बैठी हुईको न देखे ॥ ४३ ॥ तेजकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य अपनी आंखोंको आंजती हुई और तेल लगाती हुई तथा स्तन ढकनेके वस्त्रसे रहित और बालकको जन्मती हुई स्त्रीको न देखे ॥ ४४ ॥

नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ॥ न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥ ४५ ॥ न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते ॥ न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥ ४६ ॥

भाषा-एक वस्त्र पहिरे हुए भोजन न करे अर्थात् कंधेपर अँगोछा डार ले और नंगा होके स्नान न करे और मार्गमें लघुबाधा न करे और भस्ममें तथा गौओंके स्थानमें मूत्र तथा मलका त्याग न करे ॥ ४५ ॥ हलसे जुते हुए खेतमें जलमें ईंट आदिसे बनाये हुए अग्निके स्थानमें पर्वतपर पुराने देवताके स्थानमें और बांवीमें कभी मूत्रका त्याग न करे ॥ ४६ ॥

न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नपि च स्थितः ॥ न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥ ४७ ॥ वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः ॥ न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥ ४८ ॥

भाषा-जीवोंसमेत गढ्ढोंमें चलता हुआ खडा हुआ नदीके किनारे और पर्वतके शिखरपर कभी मलमूत्रका त्याग न करे ॥४७॥ पवन, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल और गौको देखता हुआ कभी मलमूत्रका त्याग न करे ॥ ४८ ॥

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना ॥ नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥ ४९ ॥ मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ॥ दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च यथा दिवा ॥ ५० ॥

भाषा-काठ, ढेला, फूस और सूखे पत्तों आदिसे भूमिको ढकके मौन हो शरीरको वस्त्र आदिसे लपेटे हुए शिरमें वस्त्र बांधके मलका त्याग करे अर्थात् दिशा जाय ॥ ४९ ॥ दिनमें तथा दोनों संध्याओंमें उत्तरको मुख करके और रात्रिमें दक्षिणको मुख करके मलमूत्रका त्याग करे ॥ ५० ॥

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ॥ यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥ ५१ ॥ प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान् ॥ प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥ ५२ ॥

भाषा-रात्रिके समय छायामें अथवा अंधकारमें और दिनमें छाया तथा कुहिर आदिके अंधकारमें दिशाविशेषका ज्ञान न होनेपर और चोर व्याघ्र आदिसे उत्पन्न प्राणोंके नाश होनेके भयमें इच्छापूर्वक मुखको करके मलमूत्रका त्याग करे ॥ ५१ ॥ अग्नि सूर्य चंद्रमा जल ब्राह्मण गौ पवन इनके सन्मुख मलमूत्र त्याग करनेवाले मनुष्यकी बुद्धिका नाश होता है ॥ ५२ ॥

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम् ॥ नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ५३ ॥ अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलंघयेत् ॥ न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणाबाधमाचरेत् ॥ ५४ ॥

भाषा-अग्निको मुखसे न फूंके पंखा आदिसे जगा ले और नंगी स्त्रीको मैथुनके विना कभी न देखे और अपवित्र मूत्र विष्ठा आदि अग्निमें न डाले और अग्निमें पैरोंको न तपावे ॥ ५३ ॥ खटिया आदिके नीचे अग्निकी अंगीठी न रक्खे और अग्निको न उलांघे और सोया हुआ पैरोंकी ओर अग्निको न रक्खे और प्राणोंको पीडा देनेवाला काम न करे ॥ ५४ ॥

नाश्नीयात्संधिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् ॥ न चैव प्रलिखेद्भूमिं नात्मनोपहरेत्स्रजम् ॥ ५५ ॥ नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ॥ अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥ ५६ ॥

भाषा-संध्याके समय भोजन दूसरे ग्राममें जाना और सोना इनको न करे और रेखा आदिसे भूमिको न लिखे और धारण की हुई मालाको आप न उतारे किंतु दूसरेसे उतरवा दे ॥ ५५ ॥ जलमें मूत्र विष्ठा और कफ आदि अपवित्र वस्तुओंसे भरे हुए वस्त्र अथवा और कुछ खानेसे बचा हुआ अपवित्र रुधिर और कृत्रिम अकृत्रिम भेदसे दो प्रकारके विष जलमें न डाले ॥ ५६ ॥

नैकः स्वपेच्छून्यगेहे शयानं न प्रबोधयेत् ॥ नोदक्ययाभिभाषेत यज्ञं गच्छेन्न चावृतः ॥ ५७ ॥ अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥ स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

भाषा-सूने घरमें अकेला न सोवे और सोते हुए धन विद्या आदि कर अपनेसे अधिकको न जगावे और रजस्वला स्त्रीसे बातचीत न करे और बिना वरण किया हुआ अर्थात् ऋत्विक् न होकर यज्ञमें न जाय देखनेको तो जाय ॥ ५७ ॥ अग्निके घरमें गौओंके निवासमें बहुतसे ब्राह्मणोंके समीप और वेदपाठ तथा भोजनके समयमें बांह समेत दाहिने हाथको वस्त्रसे बाहर निकाले ॥ ५८ ॥

न वारयेद्गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित् ॥ न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः ॥ ५९ ॥ नाधार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् ॥ नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥ ६० ॥

भाषा-जल पीती हुई गौको मने न करे और दूसरेके जल आदि पीती हुईको उससे न कहे और निषिद्ध दर्शनके दोषका जाननेवाला आकाशमें इंद्रधनुषको देखिके और किसीको न दिखावे ॥ ५९ ॥ जिस ग्राममें बहुतसे अधर्मी रहते होंय और जिसमें बहुतसे मनुष्य कठिन रोगोंसे पीडित होंय उस ग्राममें अत्यंत वसना योग्य नहीं है और मार्गमें अकेला कभी न चले और बहुतकालतक पर्वतपर न वसे ॥ ६० ॥

न शूद्रराजे निवसेन्नाधार्मिकजनावृते ॥ न पाषण्डिगणाक्रान्ते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥ ६१ ॥ न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत् ॥ नातिप्रगे नातिसायं न सायं प्रातराशितः ॥ ६२ ॥

भाषा-जिस देशमें शूद्रराजा होय वहां न वसे और अधर्मी मनुष्यों करि बाहरसे घेरे हुए ग्राम आदिमें न वसे और वेदसे बाहरी चिन्होंके धारण करनेवालों करि वश किये हुए तथा चांडाल आदि अंत्यजों करि उपद्रव किये हुए ग्राममें न वसे ॥ ६१ ॥ चिकनाई निकाले हुए पीना आदिको न खाय और दो वारमेंभी अति तृप्ति न करे अर्थात् बहुत पेट भरके न खाय और सूर्यके उदयकाल तथा अस्त-

कालमें भोजन न करे और जो प्रातःकाल बहुत पेट भरके खा ले तो संध्यामें भोजन न करे ॥ ६२ ॥

न कुर्वीत वृथाचेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत् ॥ नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान्न जातु स्यात्कुतूहली ॥ ६३ ॥ न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ॥ नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडेन्न च रक्तो विरावयेत् ॥ ६४ ॥

भाषा-वृथा चेष्टा न करे और अंजलीसे जल न पीवे और गोदीमें रखके लड्डू आदि न खाय और विना प्रयोजनके यह क्या है ऐसे जाननेकी इच्छा की कुतूहल न करे ॥ ६३ ॥ शास्त्रसे भिन्न नाचना गाना बजाना न करे ताल न ठोके तोतली बोली न बोले और प्रसन्नतामें भरके गधा आदिका शब्द न करे ॥ ६४ ॥

न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने ॥ न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते ॥ ६५ ॥ उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥ उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च ॥ ६६ ॥

भाषा-कांसेके पात्रमें पैर न धोवे और तांबा चांदी सोना इनको छोडकर और धातुओंके फुटे पात्रमें भोजन न करे और जिससे मनको घिना होय ऐसे भावदूषित पात्रमें न खाय ॥ ६५ ॥ जूता कपडा यज्ञोपवीत अलंकार फूलोंकी माला और कमंडलु दूसरेके जूंठे किये हुए इनको न धारण करे ॥ ६६ ॥

नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैर्न च क्षुद्व्याधिपीडितैः ॥ न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैर्न वालधिविरूपितैः ॥ ६७ ॥ विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः ॥ वर्णरूपोपसंपन्नैः प्रतोदेनातुदन्भृशम् ॥ ६८ ॥

भाषा-विना सिखाये हुए हाथी घोडा आदि वाहनोंमें और भुख तथा रोगसे दुःखी और जिनके सींग आंखें और खुर टूटि फूटि गये हैं और बडी पूछके वाहनोंमें चढकर न चले ॥ ६७ ॥ सिखाये हुए जलदी चलनेवाले शुभ सूचक लक्षणोंकरके युक्त सुंदर रंग और मनोहर सूरतिके वाहनोंमें चाबुक आदिसे बहुत पीडा न देता हुआ गमन करे ॥ ६८ ॥

बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम् ॥ न छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् ॥ ६९ ॥ न मृल्लोष्टं च मृद्नीयान्न छिन्द्यात्करजैस्तृणम् ॥ न कर्म निष्फलं कुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् ॥ ७० ॥

भाषा-बालातप कहिये पहले उदय हुए सूर्यका घाम अथवा कन्याकी संक्रांतिका घाम और जलते हुए मुरदेका धुआं तथा टूटा फूटा आसन ये वर्जित हैं

नहीं बढे हुए नख तथा रोमोंको न काटे और दांतोंसे नखोंको न चाबे ॥ ६९ ॥ विना कारण मट्टी तथा ढेलोंको मर्दन न करे और नखोंसे तिनके न तोडे और दृष्ट अदृष्ट तथा फलरहित कर्म न करे और आगे दुःख देनेवाला कर्म न करे जैसे अजीर्णमें भोजन ७०

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ॥ स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ॥ ७१ ॥ न विगर्ह्य कथां कुर्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत् ॥ गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ॥ ७२ ॥

भाषा-ढेलोंको मर्दन करनेवाला और तिनकोंका छेदन करनेवाला तथा नखोंका चबानेवाला मनुष्य और सूचक कहिये खल जो पराये दोषोंके न होनेपर उनको कहे और अशुचि कहिये जो बाहरी शौचसे रहित होय ये शीघ्रही देह धन आदिसे नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ७१ ॥ शास्त्रके तथा लोकके व्यवहारमें हठसे बातचीत न करे और केशोंके समूहसे बाह्य मालाको न धारण करे और पीठपर चढके बैलोंकी सवारी सब प्रकारसे निषिद्ध है पीठिके कहनेसे उन करि खींचे हुए रथ आदिमें चढनेका निषेध नहीं है ॥ ७२ ॥

अद्वारेण च नातीयाद्ग्रामं वा वेश्म वा व्रतम् ॥ रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ७३ ॥ नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नोपानहौ हरेत् ॥ शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चासने ॥ ७४ ॥

भाषा-परकोटा आदिसे घिरे हुए ग्राममें अथवा घरमें द्वारको छोडके दूसरे मार्गसे अर्थात् परकोटको फलांग कर न जाय और रात्रिमें वृक्षके मूलके पास न बैठे उनको दूरहीसे त्याग करे ॥ ७३ ॥ दांव लगाये विना कभीभी अर्थात् हँसीमेंभी पांसे न खेले और पैरोंमें पहिरनेके सिवाय आप अपने जूते हाथसे दूसरे देशको कभी न ले जाय और शय्यापर बैठके न खाय और बहुतसा अन्न हाथमें रखके क्रमसे न खाय और आसनपर भोजनके पात्रको रखके भोजन न करे ॥ ७४ ॥

सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ॥ न च नग्नः शयीतेह न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥ ७५ ॥ आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ॥ आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥

भाषा-जो कुछ तिलोंसे मिला हुआ पदार्थ लड्डू आदि हैं उनको रात्रिमें न खाय और इस लोकमें नंगा होके न सोवे और जूंठा होके कहीं न जाय ॥ ७५ ॥ जलसे गीले पैर होनेपर भोजन करे और गीले पैरोंसे सोवे नहीं और गीले पैरोंसे भोजन कर्त्ता हुआ पुरुष बडी आयुको प्राप्त होता है अर्थात् शतायु होता है ॥ ७६ ॥

अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥ ७७ ॥ अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थिकपालिकाः ॥ न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ ७८ ॥

भाषा—जहां नेत्रोंसे नहीं देख सकते ऐसे वृक्ष वेली गुल्म आदिसे घन वन आदि दुर्ग कहिये कठिन स्थानमें कभी न जाय क्योंकि वहां सांप चोर आदिके छुप रहनेका संभव है और विष्ठा तथा मूत्रको न देखे और बाहोंसे नदीको न उतरे अर्थात् पैर कर नदीके पार न जाय ॥ ७७ ॥ जो बहुत दिनोंतक जीवना चाहे तो बाल, भस्म, हाड, खपरा, विनौला, भूसी इनपर न बैठे ॥ ७८ ॥

न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुल्कसैः ॥ न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥ ७९ ॥ न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ॥ न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ ८० ॥

भाषा—पतित चांडाल पुल्कस मूर्ख धन आदिके मदसे गर्वित और अंत्य कहिये अंत्यज धोबी आदि और अंत्य कहिये अंत्यावसायी जो निषादकी स्त्रीमें चांडालसे उत्पन्न है ये दूसरे ग्रामकेभी रहनेवाले होंय तोभी इनके साथ एक वृक्षकी छायामें समीप न बसे ॥ ७९ ॥ शूद्रको मति न दे अर्थात् दृष्ट अर्थका उपदेश न करे और दाससे भिन्न शूद्रको जूंठा न दे और हविष्कृत कहिये हविका शेष न दे और धर्मका उपदेश न करे और प्रायश्चित्तरूप व्रतभी इसको साक्षात् उपदेश न करे किन्तु ब्राह्मणको बीचमें करके उसको उपदेश करे ॥ ८० ॥

यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम् ॥ सोऽसंवृतं नाम तमः सह तेनैव मज्जति ॥ ८१ ॥ न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ॥ न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ॥ ८२ ॥

भाषा—जिससे जो शूद्रको धर्म कहता है और जो प्रायश्चित्तका उपदेश करता है वह उस शूद्रसमेत जिसमें अंधकार बहुत है ऐसे असंवृत नाम नरकमें डूबता है ॥ ८१ ॥ मिले हुए दोनों हाथोंसे अपने शिरको न खुजावे और जूठे हाथोंसे अपने शिरको न छुवे और शिरके विना नित्य नैमित्तिक स्नान न करे ॥ ८२ ॥

केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ॥ शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किंचिदपि स्पृशेत् ॥ ८३ ॥ न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः ॥ सूनाचक्रध्वजवतां वेशेनैव च जीवताम् ॥ ८४ ॥

भाषा—क्रोधसे बाल पकडना और चोंट मारना ये दोनों बातें शिरमें न करे

और अपने शिरसे न्हाये हुएके किसी अंगको तैलसे न छुवे ॥ ८३ ॥ जो क्षत्रियसे उत्पन्न नहीं है ऐसे राजासे धनको न ग्रहण करे और सूनावाले चक्रवाले तथा ध्वजवालोंसे सूना कहते हैं प्राणीके वधके स्थानको सो जिसके होय उसको सूनावाला कहते हैं अर्थात् पशुको मारके मांस वेचनेवाला कसाई आदि और बीजोंका वध कर वेचके जीवनेवाला चक्रवाला कहाता है जैसे तेली और मद्यको वेचकर जीवनेवालेको ध्वजवान् कहते हैं जैसे कलाल और वेशसे जीविका करनेवाले जैसे वेश्या बहुरूपिया आदि इनके धनको न ग्रहण करे ॥ ८४ ॥

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ॥ दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥ ८५ ॥ दश सूनासहस्राणि यो वाहयति सौनिकः ॥ तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥ ८६ ॥

भाषा–दश सूनावालोंमें जितना दोष होता है उतना एक तेलीमें होता है और दश तेलियोंमें जितना दोष होता है उतना एक कलालमें होता है और दश कलालोंमें जितना दोष होता है उतना एक वेश्या वा बहुरूपियामें होता है और जितना दश वेश्या वा बहुरूपियोंमें होता है उतना एक राजामें मनु आदिकोंने कहा है ॥ ८५ ॥ जो सूनावाला दश हजार जीवोंका वध करता है उसकी बराबर राजा मनु आदिकोंने कहा है तिससे राजाका धन लेना नरकका कारण होनेसे भयानक है ॥ ८६ ॥

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥
स पर्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् ॥ ८७ ॥

भाषा–जो राजाका और शास्त्रका उल्लंघन करनेवाले कृपणका धन लेता है वह क्रमसे आगे कहे हुए इक्कीस नरकोंमें जाता है ॥ ८७ ॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ॥ नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥८८॥ संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम् ॥ संहातं च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ॥ ८९ ॥ लोहशंकुमृजीषं च पन्थानं शाल्मलीं नदीम्॥असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च॥९०॥

भाषा–नरक गिनाते हैं. जैसे तामिस्र १ अंधतामिस्र २ महारौरव ३ रौरव ४ कालसूत्र ५ महानरक ६ इन नरकोंका स्वरूप मार्कंडेय आदि पुराणोंमें विस्तारसे कहा है वहांसे जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ संजीवन ७ महावीचि ८ तपन ९ संप्रतापन १० संहात ११ सकाकोल १२ कुड्मल १३ पूतिमृत्तिका १४ ॥८९॥ लोहशंकु १५ ऋजीष १६ पंथान १७ शाल्मली १८ नदी १९ असिपत्रवन २० लोहदारक २१॥९०॥

एतद्विदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोऽभिकांक्षिणः ॥९१॥ ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ॥ कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥ ९२ ॥

भाषा–प्रतिग्रह नाना प्रकारके नरकोंका कारण है इस बातके जाननेवाले धर्मशास्त्र और पुराण आदिके जाननेवाले दूसरे लोकमें कल्याणके चाहनेवाले ब्राह्मण राजाका दान नहीं लेते हैं ॥ ९१ ॥ ब्राह्ममुहूर्त्त जो रातिका पिछला पहर है उसमें जागे फिर धर्म तथा अर्थका आपसमें विना विरोधके करनेके लिये चिंतवन करे और धर्म अर्थके इकठे करनेमें जो शरीरके क्लेश हैं उनकोभी विचारे अर्थात् जिसमें शरीरको अधिक क्लेश होय और धर्म तथा अर्थ थोडा होय तो उसको छोड दे और ब्रह्मकरूप वेदके तत्त्वका निश्चय करे क्योंकि उस समयमें बुद्धिका प्रकाश होता है ॥ ९२ ॥

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ॥ पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ॥ ९३ ॥ ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ॥ प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥ ९४ ॥

भाषा–तिस पीछे प्रातःकाल शय्यासे उठकर वेग होनेपर दिशाबाधा होके आगे कहे हुए शौचको करि एकाग्रचित्त हो प्रातःकालकी संध्या वहुत देरतक गायत्री जपता हुआ करे जबतक सूर्यका उदय होय तबतक यह संध्याकी विधि कही है आयु आदि कामनावाला पुरुष उदयके उपरांतभी जप करे सायंकालकी संध्याकोभी अपने समयमें प्रारंभ कर ताराओंके उदयके उपरांतभी जपता हुआ स्थित रहे ॥ ९३ ॥ जिससे ऋषि वडी देरतक संध्या करनेसे वडी आयु प्रज्ञा वडी कीर्ति और वेदाध्ययन आदिसे संपन्न यशको प्राप्त हुए तिससे आयु आदिका चाहनेवाला पुरुष वडी देरतक संध्योपासन करे ॥ ९४ ॥

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि ॥ युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपञ्चमान् ॥ ९५ ॥ पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः ॥ माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥ ९६॥

भाषा–श्रावणीमें अथवा भाद्रपदकी पूर्णमासीमें अपने गृह्यके अनुसार उपाकर्मनाम कर्मको करके साढे चार महीनोंतक उनमें तत्पर हो वेदोंको पढे ॥ ९५ ॥ तिस पीछे साढेचार महीनोंमें जब पुष्यनक्षत्र आवे तब ग्रामसे वाहर जाके अपने गृह्यके अनुसार उत्सर्गनाम कर्म करे अथवा माघशुक्लके पहले दिन पूर्वाह्ण समयमें करे॥९६॥

यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः ॥ विरमेत् पक्षिणीं रात्रिं तदेवैकमहर्निशम् ॥ ९७ ॥ अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् ॥ वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥ ९८ ॥

भाषा-ऐसे कहे हुए शास्त्रके अनुसार ग्रामसे बाहर वेदोंका उत्सर्ग नाम कर्म करके पक्षिणी रातिमें ठहर जाय पढे नहीं. पहले और पिछले दो दिन जिसके पक्षोंके समान होय उनके बीचकी रात्रिको पक्षिणी कहते हैं इस पक्षमें तो उत्सर्गके रातिदिन और दूसरे दिनभी दिनमें न पढना चाहिये दूसरी रात्रिमें तो पढना चाहिये अथवा उसी उत्सर्गके दिन रातिमें अनध्याय करे ॥ ९७ ॥ उत्सर्गके पढनेके उपरांत मंत्र ब्राह्मणरूप वेदको शुक्लपक्षमें पढे और शिक्षा व्याकरण आदि वेदके अंगोंको कृष्णपक्षमें पढे ॥ ९८ ॥

नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ ॥ न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ॥ ९९ ॥ यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत् ॥ ब्रह्म छन्दस्कृतं चैव द्विजो युक्तो ह्यनापदि ॥१००॥

भाषा-स्वरवर्ण आदिके स्पष्ट उच्चारणके विना और शूद्रके समीप न पढे और रातिके पिछले पहर सोनेसे उठकर वेदको पढि थका हुआ फिर न सोवे ॥ ९९ ॥ यथोक्त विधिसे नित्य छंदस्कृत कहिये गायत्री आदि छंदोंकरि युक्त मंत्रसमूहको पढे आपत्तिरहित समयमें सामर्थ्य होनेपर वेद ब्राह्मण और मंत्रसमूहको कही हुई विधिसे युक्त हो द्विज पढे ॥ १०० ॥

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् ॥ अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥ १ ॥ कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसुसमूहने ॥ एतौ वर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥ २ ॥

भाषा-इन आगे कहे हुए सभी अनध्यायोंको उक्त विधिसे पढता हुआ शिष्य और पढाता हुआ गुरु वर्जित करे ॥ १ ॥ रातिमें कानोंसे सुनने योग्य शब्द करनेवाले पवनके चलनेपर और दिनमें धूलि उडानेवाले पवनके चलनेपर न पढे वर्षाकालमें इन अनध्यायोंको तत्कालके अनध्यायोंके जाननेवाले मनु आदि कहते हैं ॥२॥

विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे ॥ अकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् ॥ ३ ॥ एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु ॥ तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥ ४ ॥

भाषा-बिजलीका चमकना गर्जना और इन सबोंके एक साथ होनेपर और इधर बहुतसे उल्कापात अर्थात् तारोंके टूटनेपर उस समयसे लगाके दूसरे दिन उसी समयतक मनुने अकालिक अनध्याय कहा है ॥ ३ ॥ जो अग्निहोत्रके समय बिजली आदि इन सब उत्पातोंको एक साथ प्रकट हुए जाने तो वर्षाऋतुमें अनध्याय करे सदा नहीं और ऋतुमें अग्निहोत्रके समय मेघके देखनेहीसे अनध्याय होता है वर्षाऋतुमें नहीं होता है ॥ ४ ॥

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ॥ एतानकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ॥ ५ ॥ प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिःस्वने ॥ सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषरात्रौ यथा दिवा ॥ ६ ॥

भाषा-आकाशमें उत्पन्न हुए उत्पात शब्दके होनेपर भूमिकंप होनेपर और ज्योति जे हैं सूर्य चंद्र तारागण तिनके उपद्रव होनेपर इन अनध्यायोंको अकालके जाने और ऋतुमेंभी वर्षाके विषे भूकंप आदि दोषके लिये नहीं होते हैं इस अभिप्रायसे ऋतौ अपि यह कहा ॥ ५ ॥ होमके अग्निके प्रकाशित करनेपर संध्यासमय जो बिजली और गर्जना होय वर्षा न होय तो सज्योति अनध्याय होता है अकालका नहीं है उनमें जो प्रातःकालकी संध्यामें बिजली और गर्जना होय तो जब सूर्यज्योति है तबतक एक दिनका अनध्याय होता है और जो सायंकालकी संध्यामें होवे तो जब नक्षत्र ज्योति है तबतक रातिभरका अनध्याय होता है और बिजली गर्जना तथा वर्षा तीनोंमेंसे जो वर्षानाम तीसराही होय तो जैसे दिनमें अनध्याय होता है ऐसेही रात्रिमेंभी अर्थात् दिन रातिका अनध्याय होता है ॥ ६ ॥

नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च ॥ धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वदा ॥ ७ ॥ अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च संनिधौ ॥ अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥ ८ ॥

भाषा-धर्मकी अधिकता चाहनेवालोंको तथा ग्राम तथा नगरमें सदा अनध्याय होता है और दुर्गंधके आनेमें सदा अनध्याय होता है ॥ ७ ॥ जिस ग्रामके भीतर स्थित मुर्दा जाना जाय उसमें और वृषल जहां अधर्मी होय उसके समीप और रोनेका शब्द होनेपर और किसी कामके लिये बहुत मनुष्योंका मेल होनेपर अनध्याय होता है ॥ ८ ॥

उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य विसर्जने ॥ उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत् ॥ ९ ॥ प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् ॥ त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥ ११

भाषा—जलमें और आधी रात्रिमें चार मुहूर्ततक और मूत्र तथा पुरीषके त्यागनेके समय और अन्नके भोजन आदिसे जूठा होनेपर और निमंत्रणके समयसे श्राद्ध भोजनके दिन राततक मनसेभी वेदका चिंतवन न करे ॥ ९ ॥ जो एकहीके लिये किया जाय वह एकोद्दिष्ट कहिये नवश्राद्ध उसमें न्योता मानिके निमंत्रण समयसे और क्षत्रिय जो देशका स्वामी है उसके पुत्रजन्म आदिके सूतकमें तथा राहुके सूतक अर्थात् सूर्यचंद्रके ग्रहणमें तीनि रात्रितक विद्वान् वेद न पढे ॥११०॥

यावदेकानुदिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति ॥ विप्रस्य विदुषो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्तयेत् ॥११॥ शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् ॥ नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥ १२ ॥

भाषा—एकोद्दिष्ट श्राद्धका उच्छिष्ट कुंकुम चंदन आदिका लेप विद्वान् ब्राह्मणके देहमें रहे तबतक तीनि दिनसे उपरांतभी वेद न पढे ॥ ११ ॥ शय्यापर पडा हुआ आसनपर पैर रक्खे हुए और दोनों घोंटुओंको मोडके और मांस खायके और जनन तथा मरणके सूतकका अन्न खायके वेदको न पढे ॥ १२ ॥

नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरेव चोभयोः ॥ अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च ॥ १३ ॥ अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी ॥ ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥ १४ ॥

भाषा—कुहिरमें और बाणके शब्दमें और दोनों संध्याओंमें और अमावास्या तथा चतुर्दशी पूर्णमासी और अष्टमीको वेद न पढे ॥ १३ ॥ अमावास्या गुरुको मारती है और चतुर्दशी शिष्यको और अष्टमी तथा पूंर्णमासी वेदको भुलाती है तिससे ये सब वेदके पढनेमें वर्जित हैं ॥ १४ ॥

पांशुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा ॥ श्वखरोष्ट्रे च रुवति पंक्तौ च न पठेद्द्विजः ॥ १५ ॥ नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ॥ वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ १६ ॥

भाषा—धूलिके बरसनेमें दिशाओंके दाहमें और स्यार कुत्ता गधा ऊंट इनके शब्द करनेपर और पंक्तिमें बैठकर ब्राह्मण वेदको न पढे ॥ १५ ॥ श्मशानके तथा ग्रामके समीप और गौओंके स्थानमें और मैथुनके समयके वस्त्र पहिरके और श्राद्धका अन्न लेकर वेदको न पढे ॥ १६ ॥

प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किंचिच्छ्राद्धिकं भवेत् ॥ तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः ॥ १७ ॥ चोरैरुपप्लुते ग्रामे

संभ्रमे चाग्निकारिते ॥ अकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ॥१८॥

भाषा-प्राणी गौ अश्व आदि अथवा अप्राणी वस्त्र माला आदि इनको दानके समय हाथसे पकडकर अनध्याय होता है क्योंकि पाण्यास्यः अर्थात् हाथही हैं मुख जिसके ऐसा ब्राह्मण कहा गया है ॥ १७ ॥ चोरों करि उपद्रव किये हुए ग्राममें और अग्निसे घर जलाने आदिके समयमें और दिव्य अंतरिक्ष तथा भूमिके अद्भुत उत्पातोंमें अकालका अनध्याय जानिये ॥ १८ ॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् ॥ अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥ १९ ॥ नाधीयीताश्वमारूढो न वृक्षं न च हस्तिनम् ॥ न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः ॥ १२० ॥

भाषा-उपाकर्म और उत्सर्गमें तीनि रात्रिका अनध्याय कहा है और तैसेही अगहनकी पूर्णिमाके उपरांत कृष्णपक्षकी तीनि अष्टमियोंमें रात्रि दिनका अनध्याय होता है और ऋतुओंके अंतका राति दिनका अनध्याय होता है ॥ १९ ॥ घोडा, वृक्ष, हाथी, नाव, गधा और ऊंट इनपर चढा हुआ और ऊषर देशमें तथा गाडी आदि सवारीमें चलता हुआ वेदको न पढे ॥ १२० ॥

न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे ॥ न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूक्तके ॥ २१ ॥ अतिथिं चाननुज्ञाप्य मारुते वाति वा भृशम् ॥ रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥ २२ ॥

भाषा-विवाद कहिये वातोंकी लडाईमें और कलह कहिये लाठी डंडा आदिके चलनेमें और जिसमें युद्ध नहीं होने लगा है ऐसी सेनामें और युद्धमें और भोजनके पीछे जबतक हाथ पैर गीले रहे तबतक और अन्नके न पचनेमें और वमन करके और खट्टी डकार आनेपर वेदको न पढे ॥ २१ ॥ अध्ययन करता हौं यह आज्ञा जबतक अतिथिको नहीं दी जाती है तबतक और आंधी चलनेपर और शरीरसे रुधिर निकलनेपर और रुधिर न निकलनेपरभी शस्त्रसे घाव होनेपर वेदको न पढे ॥२२॥

सामध्वनावृग्यजुषी नाधीयीत कदाचन ॥ वेदस्याधीत्य वाप्यन्तमारण्यकमधीत्य च ॥ २३ ॥ ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः ॥ सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥ २४ ॥

भाषा-सामकी ध्वनि सुनि जानेपर ऋक् और यजुको कभी न पढे और वेदको समाप्त कर आरण्यक नाम वेदके एक देशको पढके उस राति दिन दूसरा वेद न पढे ॥२३॥ ऋग्वेद देवदैवत्य है अर्थात् देवताही इसके देवता हैं और यजुर्वेद मनु-

ष्यदेवता होनेसे अथवा बहुधा मनुष्योंके कर्म उपदेश करनेसे मानुष है और सामवेद पितृदेवता होनेसे पित्र्य है पितृकर्म करके आचमन करना कहा है तिससे उसकी ध्वनि अशुचिसीही है शुचि नहीं है इससे उसके सुननेपर ऋक् और यजु न पढे ॥ २४ ॥

एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ॥ क्रमशः पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते ॥ २५ ॥ पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः ॥ अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम् ॥ २६ ॥

भाषा–तीनों वेदोंके देव मनुष्य पितृ देवता हैं इस बातको जानते हुए विद्वान् त्रयीनिष्कर्ष कहिये तीनों वेदोंका निकाला हुआ सार प्रणवव्याहृति सावित्रीरूप अर्थात् पहले प्रणव व्याहृति और सावित्रीको पढकर पीछे वेदका अध्ययन करते हैं ॥ २५ ॥ गौ आदि पशु मेढक बिलाव कुत्ता साप न्योला और मूसा ये जो गुरु शिष्यके बीचमें होके निकल जांय तौ दिन रातिका अनध्याय जानिये ॥ २६ ॥

द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः ॥ स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धामात्मानं चाशुचिं द्विजः ॥ २७ ॥ अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ॥ ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥ २८ ॥

भाषा–जूंठनि आदिसे बिगडी हुई वेदपाठकी भूमिको और कहे हुए शौचसे रहित आपको इन दोनों अनध्यायोंको द्विज यत्नसे वार्जित करे ॥ २७ ॥ अमावास्या अष्टमी पूर्णमासी और चतुर्दशीको स्नातक द्विज ऋतुकालमेंभी स्त्रीसे भोग न करे सदा ब्रह्मचारी रहे ॥ २८ ॥

न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ॥ न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥ २९ ॥ देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा ॥ नाक्रामेत् कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥ १३० ॥

भाषा–भोजन करके अपनी इच्छासे स्नान न करे और रोगी होके स्नान न करे और महानिशा जो बीचके रातिके दो पहर हैं उनमें और वस्त्रोंसमेत और विना जाने हुए जलाशय अर्थात् नदी तालाव आदिमें स्नान न करे ॥ २९ ॥ पत्थर आदिके बने हुए देवताओंकी गुरुकी राजाकी स्नातककी आचार्यकी कपिलकी और दीक्षितकी छायाको न उलांघे ॥ १३० ॥

मध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम् ॥ सन्ध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् ॥ ३१ ॥ उद्वर्त्तनमपस्नानं विण्मूत्रे

रक्तमेव च ॥ श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः ॥ ३२ ॥

भाषा–दिनके मध्यमें आदि रातिमें और मांससमेत श्राद्धको खायके और दोनों संध्याओंमें चौराहेमें न जाय ॥ ३१ ॥ उबटनेका उतरा हुआ चून आदि स्नानका जल विष्ठा मूत्र थूका हुआ कफ और वमन किया हुआ इन सबोंमें जानके किसीके ऊपर न बैठे ॥ ३२ ॥

वैरिणं नोपसेवेत साहाय्यं चैव वैरिणः ॥ अधार्मिकं तस्करं च परस्यैव च योषितम् ॥ ३३ ॥ न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते ॥ यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ३४ ॥

भाषा–वैरीका और उसके मित्रका और अधर्मी चोरका तथा पराई स्त्रीका कभी सेवन न करे ॥ ३३ ॥ इस लोकमें पुरुषकी आयु घटानेवाला ऐसा कुछ नहीं है जैसा पराई स्त्रीका सेवन ॥ ३४ ॥

क्षत्रियश्चैव सर्पश्च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम् ॥ नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन ॥ ३५ ॥ एतत्त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम् ॥ तस्मादेतत्त्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥ ३६ ॥

भाषा–धन आयु आदिकी वृद्धि चाहनेवाला मनुष्य क्षत्रिय सर्प बहुश्रुत ब्राह्मण और दुर्बलोंका कभी अपमान न करे ॥ ३५ ॥ तिरस्कार किये हुए ये क्षत्रिय आदि तीनों पुरुषको जलाय देते हैं तिससे बुद्धिमान् इन तीनोंका कभी अपमान न करे ॥ ३६ ॥

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ॥ आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥ ३७ ॥ सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ॥ प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ ३८ ॥

भाषा–धनके लिये उद्यम करनेपर जो धन न मिले तो मैं मंदभाग्य हैं ऐसे कहकर अपनी निंदा न करे किंतु मरनेतक लक्ष्मीकी सिद्धिके लिये यत्न करे इसको दुर्लभ न माने ॥ ३७ ॥ देखा और सुना हुआ सत्य कहे और जैसे तुम्हारे पुत्र हुआ है ऐसी प्यारी बात कहे और देखा सुनाभी अप्रिय जैसे तुम्हारा पुत्र मर गया ऐसा अप्रिय न कहे और प्यारीभी बात झूठ न कहे यह वेदमूलक सनातन धर्म है ॥ ३८ ॥

भद्रंभद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत् ॥ शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित् सह ॥ ३९ ॥ नातिकल्यं नातिसायं नातिमध्यं-

न्दिने स्थिते ॥ नाज्ञातेन समं गच्छेन्नैको न वृषलैः सह ॥१४०॥

भाषा-भद्रं भद्रं अर्थात् बहुत अच्छा २ ऐसे कहे अथवा भद्र ऐसाही अर्थात् अच्छा ऐसे कहे सूखा वैर तथा विवाद किसीसे न करे ॥ ३९ ॥ न बहुत सबेरे न बहुत संध्याको न ठीक दुपहरमें और विना पहचानके साथ न अकेला न और वृषलोंके साथ गमन करे ॥ १४० ॥

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान् ॥
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत्॥ ४१ ॥
न स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ॥
न चापि पश्येदशुचिः सुस्थो ज्योतिर्गणान् दिवि ॥ ४२ ॥

भाषा-हीन अंगवालोंका अधिक अंगवालोंका मूर्खोंका वूढोंका और रूप तथा द्रव्यसे हीन अर्थात् कुरूप और कंगालोंकी और हीन जातिका कभी काना आदि शब्द करकर पुकारनेसे निंदा न करे ॥ ४१ ॥ भोजन करके वा मलमूत्रका त्याग करके ब्राह्मण विना शौच और आचमनके और ब्राह्मण तथा अग्निको न छुवे॥४२॥

स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत् ॥ गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु ॥ ४३ ॥ अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः॥रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत् ॥ ४४ ॥

भाषा-अशुद्धतामें इन गौ आदिको छूकर आचमन कर हाथमें लिये हुए जलसे प्राणोंको और नेत्र आदि इंद्रियोंको और शिर कंधा जानु पैर और नाभिको हथेलीसे छुवे ॥ ४३ ॥ अच्छे भलेमें अपनी इंद्रियोंके नाक, कान आदि छेदोंको विना कारण न छुवे और छुपानेके योग्य लिंगके समीपके तथा कांख आदिके बालोंकोभी विना कारण न छुवे ॥ ४४ ॥

मङ्गलाचारयुक्तः स्यात् प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ॥ जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः॥ ४५ ॥ मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम् ॥ जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ॥ ४६ ॥

भाषा-चाहे हुए अर्थकी सिद्धिको मंगल कहते हैं उसका कारणके होनेसे गोरोचना आदिका लगाना मंगल है और गुरुसेवा आदि आचार है उसमें लगा रहे अर्थात् सदा आचार करता रहे और बाहरी तथा भीतरी शौचसे युक्त जितेंद्रिय रहे और गायत्री आदिका जप और विहित होमको आलस्यरहित हो नित्य

करे ॥ ४५ ॥ मंगल तथा आचारसे नित्य शुद्ध और जप तथा होममें लगे हुए पुरुषोंको दैवी तथा मानुषी उपद्रव नहीं होते हैं ॥ ४६ ॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः॥ तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥ ४७ ॥ वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ॥ अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥ ४८ ॥

भाषा–नित्यकर्मके समयमें कल्याणका कारण होनेसे प्रणवरहित गायत्री आदि वेदको आलस्य छोडके जपे जिससे उस श्रेष्ठ ब्राह्मण धर्म मनु आदि कहते हैं और धर्म तौ मुनियोंकरि उससे नीचा कहा गया है ॥ ४७ ॥ सदा वेदके अभ्याससे और शौच तप तथा अहिंसा आदिसे पूर्व जन्मकी जातिका स्मरण करनेवाला होता है ॥ ४८ ॥

पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः ॥ ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते ॥ ४९ ॥ सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात् पर्वसु नित्यशः ॥ पितॄंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च ॥१५०॥

भाषा–पूर्व जन्मकी जातिको स्मरण करता हुआ अर्थात् वहुतसे जन्मोंका स्मरण करता हुवा उनमें गर्भ जन्म जरा मरणके दुःखोंकोभी स्मरण करता हुआ संसारसे विरक्त हो सदा ब्रह्महीका अभ्यास करता है अर्थात् श्रवण मनन और ध्यानसे साक्षात् करता है उससे अनंत अविनाशी परम आनंदका प्रकट होनाही है लक्षण जिसका ऐसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ सूर्य है देवता जिनके ऐसे होमोंको और अनिष्ट दूर होनेके लिये शांति होमोंको पूर्णमासी और अमावास्याको सदा करे तैसे अगहनकी पूर्णिमाके उपरांत तीनि कृष्णपक्षकी अष्टमियोंमें अष्टका नाम कर्मसे और श्राद्धसे और उसके भीतर कृष्णपक्षकी नवमी तिथियोंमें अन्वष्टका कर्मसे परलोकमें गये हुए पितरोंका यजन करे ॥ १५० ॥

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात् पादावसेचनम् ॥ उच्छिष्टान्नं निषेकञ्च दूरादेव समाचरेत् ॥ ५१ ॥ मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ॥ पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ॥ ५२ ॥

भाषा–अग्निगृहसे एक वाण चलानेकी भूमिसे कुछ आगे वढकर दूर मूत्र पुरीषका त्याग पैरोंका धोना और जलसमेत जूंठ अन्नका तथा वीर्यका त्याग करे ॥ ५१ ॥ मैत्र कहिये दिशावाधा जाना और देहका प्रसाधन कहिये प्रातःकालका स्नान दँतून करना अंजन लगाना इन सव वातोंको पूर्वाह्ण कहिये दिनके पहलेही भागमें करे ॥ ५२ ॥

दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ॥ ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु ॥ ५३ ॥ अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ॥ कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ ५४ ॥

भाषा—पाषाण आदिके बने हुए देवताओंके मंदिरमें और धर्मात्मा ब्राह्मणोंके समीप और राजा तथा गुरु कहिये पिता आदिके समीप अपनी रक्षाके लिये अमावास्या आदि पर्वोंमें उनके दर्शनको जाया करे ॥ ५३ ॥ घरमें आये हुए गुरुओंको नमस्कार करे और उनके बैठनेको अपना आसन दे और हाथ जोरके उनके समीप बैठे और जब वे चलें तौ उनके पीछे पहुँचानेको चले ॥ ५४ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ॥ धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥ ५५ ॥ आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ॥ आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ५६ ॥

भाषा—वेद और स्मृतियों करके अच्छी भांति कहा गया और अध्ययन आदि अपने कर्मोंसे संबंध रखनेवाले और धर्मका कारण ऐसे साधुओंके आचारको आलस्यरहित हो सदा सेवन करे ॥ ५५ ॥ आचारसे वेदमें कही हुई आयुको प्राप्त होता है और चाही हुई पुत्र पौत्र और पुत्रीरूप सन्तानको तथा बहुतसे धनको प्राप्त होता है आचारही अशुभ फलके सूचित करनेवाले देहमें स्थित कुलक्षणको निष्फल कर देता है ॥ ५६ ॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥ दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ ५७ ॥ सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ॥ श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ५८ ॥

भाषा—दुराचारी पुरुष लोकमें निंदित होता है और सदा दुःखका भोगनेवाला रोगी और अल्पायु होता है तिससे सदा आचारयुक्त रहे ॥ ५७ ॥ जो सदा आचारवान् है और श्रद्धायुक्त है और पराये दोषोंको नहीं कहता है वह अपने शुभसूचक लक्षणोंसे शून्यभी सौ वर्षकी आयुको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ॥ यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ ५९ ॥ सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ॥ एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १६० ॥

भाषा—जो जो कर्म पराये आधीन हैं अर्थात् दूसरेके कहनेपर हो सकता है

उसको यत्नसे त्याग करे और जो स्वाधीन है अर्थात् अपनी देहसे हो सकता है उसको यत्नसे त्याग करे ॥ ५९ ॥ सब पराये आधीन काम अर्थात् दूसरेके कहनेसे जो हो सके वह दुःखका कारण है और सब अपने आधीन सुखका कारण है यही सुख दुःखका कारण जाने ॥ १६० ॥

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः ॥ तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥ ६१ ॥ आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् ॥ न हिंस्याद्ब्राह्मणान्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥ ६२ ॥

भाषा-जिस कामके करते हुए करनेवालेका आत्मा संतुष्ट होय उसको यत्नसे करे और तिससे संतुष्ट न होय उसको न करे ॥ ६१ ॥ आचार्य जो यज्ञोपवीत कराके वेद पढानेवाला होय उसको और प्रवक्ता कहिये वेदके अर्थके व्याख्यान करनेवालेको और पिता माता तथा गुरुको और ब्राह्मण गौ तथा सब तपस्वियोंको न मारे अर्थात् उनसे प्रतिकूल न वर्ते यहां हिंसाशब्दका प्रतिकूल वर्त्तना अर्थ है ॥ ६२ ॥

नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ॥ द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत् ॥ ६३ ॥ परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैनं निपातयेत् ॥ अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्ट्यर्थं ताडयेत्तु तौ ॥ ६४ ॥

भाषा-नास्तिकता अर्थात् परलोक नहीं है ऐसे बुद्धिको वेदकी निंदाको तथा देवताओंकी बुराई करनेको द्वेष दंभ अहंकार क्रोध और क्रूरताको छोड दे ॥ ६३ ॥ क्रोधित हो दूसरेके मारनेको लाठी आदि न उठावे और न दूसरेके शरीरमें मारे पुत्र, शिष्य, स्त्री और दास इनको छोडके अर्थात् अपराध करनेपर इनको शिक्षाके लिये आगे कहे हुए प्रकारसे ताडना करे ॥ ६४ ॥

ब्राह्मणायावगुर्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया ॥ शतं वर्षाणि तामिस्रे नरके परिवर्त्तते ॥ ६५ ॥ ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् ॥ एकविंशतिमाजातीः पापयोनिषु जायते ॥ ६६ ॥

भाषा-द्विजातिभी ब्राह्मणके मारनेके लिये लाठी आदिके उठानेही पर मारके नहीं सौ वर्षतक तामिस्र नाम नरकमें भ्रमता है ॥ ६५ ॥ क्रोधसे जानकर तिनकेसेभी ब्राह्मणको मारके इक्कीस जन्मोंतक कुत्ता आदिकी पापयोनियोंमें उत्पन्न होता है ॥ ६६ ॥

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगङ्गतः ॥ दुःखं सुमहदाप्नोति

प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ ६७ ॥ शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतलात् ॥ तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते ॥ ६८ ॥

भाषा-युद्ध न करते हुए ब्राह्मणको अंगमें मूर्खतासे रुधिर उत्पन्न करके परलोकमें बडे दुःखको पाता है ॥ ६७ ॥ खड्ग आदिसे मारे हुए ब्राह्मणके अंगसे निकला हुआ रुधिर भूमिमें गिरके जितने धूलिके द्व्यणुकोंको समेटाता है उतनी वर्षोंतक परलोकमें मरनेवाला स्यार आदिकोंकरि खाया जाता है ॥ ६८ ॥

न कदाचिद्द्विजे तस्माद्विद्वानवगुरेदपि ॥ न ताडयेत्तृणेनापि न गात्रात्स्रावयेदसृक् ॥ ६९ ॥ अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ॥ हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥१७०॥

भाषा-तिससे विद्वान् कभी ब्राह्मणके ऊपर लाठी आदि उठावेभी नहीं और तिनकेसेभी ताडना न करे और न शरीरसे रुधिर निकाले ॥ ६९ ॥ जो नर अधर्मी अर्थात् शास्त्रमें मने किये हुए अगम्यागमन आदिका करनेवाला और जिसके गवाहीसे व्यवहारके निर्णय आदिमें झूंठ बोलनाही धनका उपाय है अर्थात् झूंठी गवाही देकर धन लेता है और जो पराई हिंसाको करता है वह इस लोकमें सुखी नहीं रहता है ॥ १७० ॥

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ॥ अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ॥ ७१ ॥ नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ॥ शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ ७२ ॥

भाषा-शास्त्रमें कहे हुए धर्मको करता हुआ मनुष्य धन आदिके न होनेसे दुःख पानेपरभी कभी अधर्ममें बुद्धि न करे यद्यपि अधर्मसे व्यवहार करनेवाले धन आदि संपत्तियोंकरि युक्तभी दिखाई देते हैं तिसपरभी उन अधर्म चोरी आदि व्यवहारके करनेवाले पापियोंको उससे उत्पन्न हुए पापसे शीघ्रही धन आदिका नाशभी दीखता है इससे अधर्ममें कभी बुद्धिको न लगावे ॥ ७१ ॥ किया हुआ अधर्म लोकमें गौ जो भूमि है तिसके समान शीघ्रही फल देनेवाला नहीं होता है जैसे भूमिमें बीजोंके बोतेही सुंदरवालि भुट्टे आदि नहीं उत्पन्न होता है किन्तु जब ऋतु आती है तभी होते हैं ऐसेही जब अधर्म फलके सन्मुख होता है तब करनेवालेको जडसे उखाड देता है अर्थात् देह धन आदि समेत नष्ट हो जाता है ॥ ७२ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु ॥ न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥ ७३ ॥ अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि

पश्यति ॥ ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ ७४ ॥

भाषा-जो अधर्म करनेवालेके देह धनके नाश आदि फलको नहीं करता है तो उसके पुत्रोंमें नहीं तो पौत्रोंमें करता है निष्फल नहीं जाता है ॥ ७३ ॥ अधर्मसे उसके फल होनेतक ग्राम धन आदिमें वढता है तिस पीछे वहुतसे सेवकों और गौ घोडे आदि इतवस्तुओंको पाता है तिस पीछे आपसे निर्वल शत्रुओंको जीतता है पीछे कुछ कालमें अधर्मका फल होनेके कारण देह धन पुत्रों आदि समेत नाशको प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ॥ शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥ ७५ ॥ परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ॥ धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ ७६ ॥

भाषा-सत्यधर्म और सज्जनोंके आचार तथा शौचमें सदा प्रीति करे और धर्मसे शिष्योंको शिक्षा दे और वाणी वाहु तथा उदर इनका संयम करे वाणीका संयम सत्य वोलना वाहुका संयम वाहुवलसे किसीको पीडा न देना उदरका संयम जैसा मिले वैसा थोडा भोजन करना ॥७५॥ जो अर्थ और काम धर्मको विरोधी होंय तो उनको त्याग करे जैसे चोरी आदिसे द्रव्यका इकट्ठे करना और दीक्षाके दिन यजमानकी स्त्रीसे भोग करना और जिस धर्ममें आगे दुःख उत्पन्न होय उसकाभी त्याग करे जैसे पुत्र आदि वहुतसे पालने योग्य होनेपर सर्वस्वका दान करना और लोकमें निंदित जैसे कलियुगमें मध्यमाष्टकादि श्राद्धोंमें गोवध आदिका करना ॥७६॥

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः ॥ न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः ॥ ७७ ॥ येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ॥ तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥ ७८ ॥

भाषा-हाथ पैर आदिकी चपलताको न करे हाथकी चपलता जैसे विना प्रयोजनके वस्तुओंका उठाना धरना और पैरोंकी चपलता जैसे विना प्रयोजनके भ्रमण आदि करना और नेत्रचापल्य जैसे पराई स्त्रीका देखने आदिका स्वाद और वाणीकी चपलता जैसे वहुत निंदाकी वातें वकना इन सवोंका त्याग करे और अनृजु कहिये कुटिल न होय और परद्रोह जो पराई हिंसा है तिसकी वुद्धि न करे ॥ ७७ ॥ वहुत प्रकारका शास्त्रका अर्थ होनेपर जिस धर्म मार्गसे इसके पिता चले और जिससे इसके पितामह चले उसी मार्गसे चले वही सज्जनोंका मार्ग है उसमें चलता हुआ अधर्मकरके नहीं मारा जाता है ॥ ७८ ॥

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ॥ बालवृद्धातुरैर्वैद्यै-

ज्ञातिसंबन्धिबान्धवैः ॥ ७९ ॥ मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुं-
त्रेण भार्यया ॥ दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥ १८० ॥

भाषा–ऋत्विक् पुरोहित कहिये शांति आदिका करनेवाला और आचार्य मामा अतिथि तथा संश्रित कहिये अनुजीवी और ज्ञाति कहिये पिताके पक्षके और संबंधी कहिये जमाई शाला आदि और बांधव कहिये माताके पक्षके और यामी कहिये बहिनि, पुत्रवधू आदि इन सबोंसे वाणीका कलह अर्थात् बातोंका झगडा न करे ॥ ७९ ॥ माता पिता और यामी कहिये बहिनि पुत्रवधू आदि भाई पुत्र स्त्री बेटी और नौकरोंके समूहके साथ विवाद न करे ॥ १८० ॥

एतैर्विवादान्संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ एभिर्जितैश्च जयति स-
र्वांल्लोकानिमान्गृही ॥ ८१ ॥ आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता
प्रभुः ॥ अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः ॥ ८२ ॥

भाषा–इन ऋत्विक् आदिकोंके साथ विवादोंको छोडकर अज्ञानसे किये हुए सब पापोंसे छूट जाता है और इनके साथ विवादकी उपेक्षा करनेसे गृहस्थ आगे कहे हुए इन सब लोकोंको जीति लेता है ॥ ८१ ॥ आचार्य ब्रह्मलोकका स्वामी है और प्राजापत्य लोकका पिता स्वामी है और इंद्रलोकका अतिथि तथा देवलोकके ऋत्विज् स्वामी हैं विवाद छोडनेसे इन सबोंके संतुष्ट होनेसे ब्रह्मलोक आदिकी प्राप्ति होती है ॥ ८२ ॥

यामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः ॥ संबन्धिनो ह्यपां लोके
पृथिव्यां मातृमातुलौ ॥ ८३ ॥ आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्ध-
कृशातुराः ॥ भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः ॥ ८४ ॥

भाषा–बहिनि तथा पुत्रवधू अप्सराओंके लोककी अधिष्ठात्री है और बांधव वैश्वदेव लोकके और संबंधि वरुण लोकके और माता तथा मामा पृथिवीके स्वामी हैं इनकी प्रसन्नतासे अप्सराओंके लोक आदिकी प्राप्ति होती है ॥ ८३ ॥ बालक वृद्ध कृश कहिये धनहीन और आश्रित आतुर ज्येष्ठ भाई पिताके समान है तिससे वहभी प्रजापतिलोकका स्वामी है और भार्या तथा पुत्र अपनाही शरीर है इससे अपने साथ कैसे विवाद हो सकता है ॥ ८४ ॥

छाया स्वो दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम् ॥ तस्मादेतैरधिक्षिप्तः
सहेतासंज्वरः सदा ॥ ८५ ॥ प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्ज-
येत् ॥ प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ ८६ ॥

भाषा-अपने दासोंका समूह सदा अनुगामी होनेसे अपनी छायाहीके समान है विवादके योग्य नहीं है और पुत्री तो वहुतही कृपाका पात्र है तिससे इन करके तिरस्कार किया हुआभी संताप न करके सह ले विवाद न करे ॥ ८५ ॥ विद्या तप और आचारयुक्त होनेसे दान लेनेका अधिकारी होनेपरभी उसमें वारंवार प्रवृत्तिको छोड दे अर्थात् दान न ले कारण यह है कि, दान लेनेसे वेदपठन आदिसे उत्पन्न इसका ब्राह्मणतेज अर्थात् प्रभाव शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ८६ ॥

न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे ॥ प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा ॥ ८७ ॥ हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम् ॥ प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत् ॥ ८८ ॥

भाषा-वस्तुओंका दान लेनेमें धर्मके लिये हितकारी विधानके विना जाने बुद्धिमान् क्षुधासे पीडित होनेपरभी दान न ले आपत्तिके विना तो फिर क्या कहना है ॥ ८७ ॥ सोना भूमी घोडा गौ अन्न वस्त्र तिल और घी इनका दान लेता हुआ मूर्ख दानरूपी अग्निसे काष्ठके समान उसी समय भस्म हो जाता है फिर उत्पत्तिको नहीं प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥

हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ॥ अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः ॥ ८९ ॥ अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥ अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥१९०॥

भाषा-सुवर्ण और अन्नका दान लेनेवाले मूर्खकी आयुको जलाते हैं और भूमि तथा गौ शरीरको जलाते हैं घोडा नेत्रोंको वस्त्र त्वचाको घी तेजको और तिल संतानको जलाते हैं ॥ ८९ ॥ तप और विद्यासे शून्य और दानकी इच्छा करनेवाला ब्राह्मण दानका अधिकारी न होनेसे मनमें विचारेही हुए उस दानसे अयोग्य दानरूप पापयुक्त दातासमेत नरकमें ऐसे डूबता है जैसे पत्थरकी नावसे जलको उतरता हुआ उस नावसमेत जलमें डूबि जाता है ॥ १९० ॥

तस्मादविद्वान्बिभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात् ॥ स्वल्पकेनाप्यविद्वान्हि पङ्के गौरिव सीदति ॥ ९१ ॥ न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजे ॥ न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥ ९२ ॥

भाषा-तिससे मूर्ख पुरुष जिस किसी छोटी वस्तुकेभी दानसे डरे क्योंकि सुवर्णका तो क्या कहना थोडे दामके सीसा आदिके लेनेसे कीचमें फँसके गौके समान नष्ट हो जाता है ॥९१॥ लेनेवालेका धर्म कहिके अब देनेवालेका धर्म कहते हैं. कौआ कुत्ता आदिको जो दिया जाता है वहभी धर्मज्ञ विडालव्रति ब्राह्मणको न

दे इस अधिकताके कहनेसे दूसरी चीजोंका दान मना किया जाता है केवल जलहीका दान नहीं " पाखंडिनो विकर्मस्थान् " इससे बैडालव्रतीके लिये अतिथिपनसे सत्कार करके द्रव्यदान आदिका निषेध किया यहां तो धनका दान मना किया जाता है इसीसे " विधिनाप्यर्जितं धनं " यह आगे कहेंगे और अवेदविद् कहनेसे यह जाना गया कि, जबतक पढा लिखा मिले तबतक मूर्खको न दे ॥ ९२ ॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ॥ दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ ९३ ॥ यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ॥ तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ ९४ ॥

भाषा—इन तीनि बिडालवृत्ति आदिकोंमें न्यायसे जोडा हुआभी धन देनेसे देनेवाले और लेनेवालेको परलोकमें नरकका कारण होनेसे अनर्थके लिये होता है ॥ ९३ ॥ जैसे पत्थरकी बनी हुई नाव आदिसे जलमें तिरता हुआ उसके साथही नीचे जाता है ऐसेही दान और प्रतिग्रहके शास्त्रके न जाननेवाले दाता और लेनेवाला दोनों नरकको जाते हैं ॥ ९४ ॥

धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ॥ बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसंधकः ॥ ९५ ॥ अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ॥ शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ ९६ ॥

भाषा—जो बहुतसे मनुष्योंके सामने धर्म करता ह और लोकमें आप कहता है तथा औरोंसे कहाता है उसका धर्मही चिन्हहीसा है इस कारण वह धर्मध्वजी कहा जाता है और लोभी कहिये पराये धनकी इच्छा रखनेवाला और छाद्मिक कहिये छल करनेवाला और लोकदंभक कहिये धरोहड आदिके पचा जानेसे लोगोंका ठगानेवाला और हिंस्र कहिये दूसरेकी हिंसाका स्वभाववाला और सर्वाभिसंधक कहिये पराये गुणोंको न सहकर सबकी निंदा करनेवाला और बिडालव्रती कहिये जैसे बिलाव बहुधा मूसा आदिके मारनेकी रुचिसे ध्यानमें लगासा नम्र होके बैठता है ऐसेही उसको जानिये ॥ ९५ ॥ अधोदृष्टि कहिये जो अपनी नम्रता दिखानेके लिये सदा नीचेहीको देखता है और नैष्कृतिक कहिये जो निष्ठुरतायुक्त हो पराये अर्थको बिगाडकर अपने स्वार्थमें लगा रहे और शठ कहिये कुटिल और मिथ्याविनीत कहिये कपटसे नम्रतायुक्त और बकव्रतचर बगलेकासा व्रत करनेवाला जैसे बगुला मछलियोंके मारनेके लिये झूठ मूठको नम्रतासे बैठता है ॥ ९६ ॥

ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ॥ ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥ ९७ ॥ न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा

व्रतं चरेत् ॥ व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम् ॥ ९८ ॥

भाषा-जे ब्राह्मण वकवृत्तिवाले हैं और जे विडालव्रती हैं वे उस पापकर्मसे अंधतामिस्र नाम नरकमें गिरते हैं ॥ ९७ ॥ पाप करके प्रायश्चित्तरूप प्राजापत्य आदि व्रत करता हुआ ऐसा न कहे कि, मैं धर्मके अर्थ करता हूं स्त्री शूद्र मूर्ख आदि जनोंको मोहित करता हुआ ऐसा न करे ॥ ९८ ॥

प्रेत्येह चेदृशा विप्रा गर्ह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ छद्मनाचरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति ॥ ९९ ॥ अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति ॥ स लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते ॥ २०० ॥

भाषा-परलोकमें तथा इस लोकमें ऐसे ब्राह्मण ब्रह्मवादियों करि निंदा किये जाते हैं और जो व्रत छलसे किया जाता है वह राक्षसोंको प्राप्त होता है ॥ ९९ ॥ जो ब्रह्मचारी आदि नहीं है और ब्रह्मचारी आदिकोंके चिन्ह मेखला मृगचर्म दंड आदि वेष जाना जाता उनकी वृत्तिसे भिक्षाभ्रमण आदि करि जीविका करता है वह ब्रह्मचारी आदिकोंका जो पाप है उसको अपनेमें खींचि लेता है और कूकुर आदिकी योनिमें उत्पन्न होता है ॥ २०० ॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ॥ निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥ १ ॥ यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च ॥ अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥ २ ॥

भाषा-पराये वनाये हुए ताल आदिमें कभी स्नान न करे उनमें नहायके उनके वनावनेवालेके पापसे चौथाई भागका पानेवाला होता है विना वनाई हुई नदी आदि न होय तो पराये वनाये हुए ताल आदिमें प्रदानसे पहले पांच पिंडोंका उद्धार करि नहाना चाहिये ॥ १ ॥ पराया यान आसन कुआ वाग और घर जो विना दिये इनका भोग करे तो वनवानेवालेके पापके चतुर्थ अंशका भागी होता है ॥२॥

नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च ॥ स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च ॥ ३ ॥ यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ॥ यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥ ४ ॥

भाषा-नदीमें देवताओंके नामसे प्रसिद्ध तडागोंमें और प्रसिद्ध सरोगर्तोंमें अर्थात् जिनकी गति आठ हजार धनुषसे कम नहीं है उनमें चारि हाथका एक धनुष होता है और झरनोंमें स्नान करे ॥ ३ ॥ पंडित जनोंका सदा सेवन करे और नित्य नियमोंका सेवन न करे यम जैसे ब्रह्मचर्य १ दया २ क्षमा ३ ध्यान ४ सत्य

५ कपट न करना ६ अहिंसा ७ चोरी न करना ८ मधुर बोलना ९ इंद्रियोंका वश करना और नियम जैसा स्नान १ मौन २ उपवास ३ यज्ञ करना ४ वेद पढना ५ शिश्न इंद्रियका रोकना ६ निगम ७ गुरुकी सेवा ८ शौच ९ क्रोध न करना १० प्रमाद न करना ११ यमोंको न करता हुआ केवल नियमोंको करता हुआ पुरुष पतित होता है ॥ ४ ॥

नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिहुते तथा ॥ स्त्रियां क्लीबेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित् ॥५॥ अश्लीकमेतत् साधूनां यत्र जुह्वत्यमी हविः ॥ प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

भाषा–जो वेदपाठी नहीं है ऐसे मनुष्यकरि आरंभ किये हुए और बहुतोंके यजन करानेवाले करि होमे हुए और स्त्री तथा नपुंसक करि होम किये हुए यज्ञमें ब्राह्मण कभी न भोजन करे ॥ ५ ॥ पहले कहे हुए वह याजक आदि जिसमें होम करते हैं वह कभी शिष्टोंको अश्लीक कहिये अलक्ष्मी देनेवाला है अर्थात् देवताओंको प्रतिकूल है तिससे इसको न करावे ॥ ६ ॥

मत्तक्रुद्धातुराणाञ्च न भुञ्जीत कदाचन ॥ केशकीटावपन्नञ्च पदा स्पृष्टञ्च कामतः ॥ ७ ॥ भ्रूणघ्नावेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्चाप्युदक्यया ॥ पतत्रिणावलीढञ्च शुना संस्पृष्टमेव च ॥ ८ ॥

भाषा–सीडी क्रोधी तथा रोगीका अन्न और वालों तथा कीडोंके योगसे विगडा हुआ और जानकर पैरसे छुआ हुआ अन्न कभी न खाय ॥ ७ ॥ गर्भहत्या गोहत्या आदिसे पतितोंकरि देखा हुआ अन्न और रजस्वला स्त्रीकर छुआ हुआ तथा पक्षियोंकर खाया हुआ और कुत्तेकर छुआ हुआ अन्न न खाय ॥ ८ ॥

गवा चान्नमुपघ्रातं घुष्टान्नञ्च विशेषतः ॥ गणान्नं गणिकान्नञ्च विदुषां च जुगुप्सितम् ॥ ९ ॥ स्तेनगायकयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्द्धुषिकस्य च ॥ दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च ॥ २१० ॥

भाषा–गौका सूंघा हुआ और घुष्टान्न कहिये कौन खानेवाला है ऐसे कहिके जो अन्न यज्ञ आदिमें दिया जाय और गणान्न कहिये मठ तथा ब्राह्मणोंके समूहका अन्न और वेश्याका अन्न और विद्वान् कर दुष्ट है ऐसे कहि कर निंदा किया गया अन्न विशेष कर कहिये बहुत दोषयुक्त होनेसे उस अन्नको कभी न खाय ॥ ९ ॥ चोरी तथा गानेकी जीविकावालेका और बढाई तथा व्याज लेनेवालेका और दीक्षित तथा कृपणका और वैरियोंसे बंधे हुएका अन्न कभी न खाय ॥ २१० ॥

अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च ॥ शुक्तं पर्युषित-

चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ॥११॥ चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः ॥ उग्रान्नं सूतिकान्नञ्च पर्य्याचान्तमनिर्दशम् ॥ १२ ॥

भाषा-अभिशस्त कहिये जिसको लोकमें महापातक लग रहा है उसका, नपुंसकका, व्यभिचारिणी स्त्रीका और दांभिक कहिये छलसे धर्म करनेवाले विडालव्रती आदिका अन्न न खाय और शुक्त जो स्वभावसे मीठा दही आदि,जल आदिके मिलनेसे खट्टा हुआ और पर्युषित कहिये रातिका बचा हुआ और शूद्रका अन्न कभी न खाय और उच्छिष्ट कहिये भोजनसे बचा हुआ अन्न किसीका न खाय और गुरुका जूठा तो विहित है इससे खाय ॥ ११ ॥ चिकित्सामें जीविका करनेवालेका अर्थात् वैद्यका और मांस वेचनेके लिये पशुओंके मारनेवालेका और क्रूर कहिये कुटिल प्रकृतिका और जूठा खानेवालेका अन्न न खाय और उग्रान्न कहिये शूद्रामें क्षत्रियसे उत्पन्नका और सूतिका स्त्रीके लिये जो अन्न किया जाय उसका उसके कुलकेभी न खांय एक पंक्तिमें स्थित औरोंका अपमान कर जहां अन्न खाते हुए किसीकरि आचमन किया जाय वह पर्याचान्त कहा जाता है उस अन्नको और दश दिनके भीतर सूतिकाका अन्न न खाय ॥ १२ ॥

अनर्चितं वृथामांसमवीरायाश्च योषितः ॥ द्विषदन्नं नगर्य्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम् ॥ १३ ॥ पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा ॥ शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ १४ ॥

भाषा-पूजाके योग्यको जो अनादरसे दिया जाय और वृथा मांस जो देवताके लिये न किया जाय उसका और पतिपुत्ररहित स्त्रीका और शत्रुका अन्न और नगरका तथा पतितोंका अन्न और जिसके ऊपर छींक हुई ऐसा अन्न न खाय ॥ १३ ॥ पिशुन कहिये जो पीठि पीछे दूसरेकी बुराई करता है उसका और बहुत झूठ बोलनेवाला जैसे झूठा गवाही आदि उसका और क्रतुविक्रयी कहिये मेरे यज्ञका फल तुम्हारा हो ऐसे कहकर जो धन लेता है उसका और नटका तथा दरजीका और कृतघ्न जो उपकार करनेवालेकीभी बुराई करे उसका अन्न न खाय॥१४॥

कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च ॥ सुवर्णकर्त्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा ॥ १५ ॥ श्ववतां शौण्डिकानाञ्च चैलनिर्णेजकस्य च ॥ रञ्जकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ १६ ॥

भाषा-लोहारका तथा निषादका और नट तथा गवैयासे भिन्न जो तमाशा आदि करके जीविका करते हैं उनका और स्वनारका और बांसकी चीजें बनाकर बेचनेवालेका और शस्त्र बेचनेवालेका अन्न न खाय ॥ १५ ॥ आखेटके लिये कुत्ते

पालनेवालेका और मद्य बेचनेवालेका तथा धोबीका रंगरेजका निर्दयीका और जिसके घरमें अज्ञानसे जार रहता है उनका अन्न न खाय ॥ १६ ॥

मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः ॥ अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च ॥ १७ ॥ राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥ आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः ॥ १८ ॥

भाषा–जो घरमें जाने हुए स्त्रीके जारको सहते हैं उनके अन्नको न खाय और जो सब कामोंमें स्त्रीके आधीन रहते हैं उसका और दश दिन भीतर प्रेतका अन्न और जिससे संतोष न होय ऐसा अन्न न खाय ॥ १७ ॥ राजाका अन्न तेजका नाश करता है और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजका नाश करता है और स्वनारका अन्न आयुका नाश करता है और चमारका अन्न यशका नाश करता है ॥ १८ ॥

कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च ॥ गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥१९॥ पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् ॥ विष्ठां वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् ॥२०॥

भाषा–कारुक जो सूपकार आदि हैं उनका अन्न संततिका नाश करता है और धोबीका बलको तथा गण और गणिकाका अन्न और शुभ कर्मोंसे प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोकोंको दूर करता है॥१९॥चिकित्सकके अन्नमें पीवके खानेके समान दोष है और व्यभिचारिणीका अन्न वीर्यके समान है और व्याज खानेवालेका अन्न विष्ठाके समान है और शस्त्र बेचनेवालेका अन्न विष्ठासे भिन्न कफ आदि मलके समान है॥२०॥

य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्त्तिताः ॥ तेषां त्वगस्थिरोमाणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ २१ ॥ भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम्॥मत्या भुक्त्वाचरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च॥२२॥

भाषा–यहां कहे हुओंसे अन्य जो अभोज्यान्न इस प्रकरणमें पढे हैं उनका अन्न त्वचा हाड और रोमोंके समान है अर्थात् त्वचा हाड और रोमोंके खानेमें जो दोष होता है वही उनके अन्नके खानेमें जानना चाहिये ॥ २१ ॥ इनमेंसे किसीका अन्न विना जाने खाय तो तीनि दिन उपवास करे और जानकर खाय तो कृच्छ्र करे और वीर्य मूत्र विष्ठाके खानेमेंभी यही कृच्छ्रव्रत जानिये ॥ २२ ॥

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः ॥ आददीतामेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् ॥ २३ ॥ श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः ॥ मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥ २४ ॥

भाषा-विद्वान् द्विज श्राद्ध आदि पंच यज्ञों कारि शून्य शूद्रका पक्वान्न खाय परन्तु जो और कहींसे न मिल सके तो एक रात्रिके योग्य कच्चाही अन्न इससे ले पक्वान्न नहीं ॥ २३ ॥ एक वेद पढा हुआ कृपण और दूसरा दाता वृद्धिजीवी इन दोनोंका अन्न देवताओंने गुण दोषोंको विचारि समान कहा है क्योंकि दोनोंके गुण तथा दोष समान हैं ॥ २४ ॥

तान्प्रजापतिराहैत्य मा कृध्वं विषमं समम् ॥ श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ॥ २५ ॥ श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥ श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥ २६ ॥

भाषा-देवताओंसे आकर ब्रह्मा बोले कि विषम अन्नको सम मत करो विषमका सम करना अनुचित है फिर उन दोनोंमें क्या विशेष है यह अपेक्षा होनेपर वही बोले कि दान देनेवाले वार्धुषिकका अन्न श्रद्धासे पवित्र होता है और कृपणका अन्न श्रद्धा न होनेके कारण हत कहिये दूषित तथा अधम होता है ॥ २५ ॥ वेदिके मध्यमें जो यज्ञ आदि कर्म किया जाता है उसको इष्ट कहते हैं उससे अन्य तलाव कुआ प्याउ बाग आदिको पूर्त्त कहते हैं इन दोनों कर्मोंको सदा आलस्यरहित हो फलकी इच्छा छोड श्रद्धासे करे जिससे न्यायसे इकट्ठे किये हुए धनसे श्रद्धापूर्वक किये गये वे दोनों कर्म अक्षय मोक्षरूप फलके देनेवाले होते हैं ॥२६॥

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम् ॥ परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ॥ २७ ॥ यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया ॥ उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥ २८ ॥

भाषा-विद्या तथा तपोयुक्त ब्राह्मणको प्राप्त होके ऐष्टिक पौर्तिक कहिये अंतर्वेदि वहिर्वेदि दान धर्मको परितोष नाम अंतःकरणके धर्मसे शक्तिके अनुसार करे ॥ २७ ॥ याचना किये गये ईर्षारहित पुरुष करके थोडाभी शक्तिके अनुसार होना चाहिये जिससे सदा देनेवालेको कभी न कभी ऐसाभी पात्र मिल जायगा जो नरकमें डारनेवाले सब पापसे छुडा देगा ॥ २८ ॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥ तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ २९ ॥ भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ॥ गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥ २३० ॥

भाषा-जलका देनेवाला क्षुधापिपासा दूर होनेसे तृप्तिको प्राप्त होता है और अन्नका देनेवाला अक्षय सुखको और तिलका देनेवाला चाही हुई संततिको और दीपका देनेवाला उत्तम नेत्रोंको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ भूमिका देनेवाला भूमिको

भाषा–धर्ममें लगे हुए पुरुषको दैवयोगसे पाप हो जानेपर प्राजापत्य आदि तपरूप प्रायश्चित्तसे पापके नाश होनेपर प्रकाशमान उस पुरुषको धर्मही शीघ्र स्वर्ग आदि परलोकको पहुँचाता है खशरीरिण कहिये ब्रह्मस्वरूप यद्यपि लिंग शरीरमें बैठा हुआ जीवही जाता है तिसपरभी ब्रह्मका अंश होनेसे ब्रह्मस्वरूपत्व हो सकता है जो धर्मही परलोकको ले जाता है तौ धर्मको करे न अच्छी रीतिसे पढे हुए वेद और न नाना प्रकारके पढे हुए शास्त्र वहां जाते हैं जहां एक धर्म इसके साथ जाता है ॥ ४३ ॥ कुलकी उन्नति चाहनेवाला पुरुष विद्या आचार जन्म आदिसे उत्कृष्ट पुरुषोंके साथ सदा कन्यादान आदि संबंधोंको करे और हीन संबंधोंको छोड दे और जो उत्तम न मिले तो अपनी बराबरीमें करे ॥ ४४ ॥

उत्तमानुत्तमान्गच्छन्हीनान्हीनांश्च वर्जयन् ॥ ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥ ४५ ॥ दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ॥ अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥ ४६ ॥

भाषा–उत्तमोंके साथ संबंध करता हुआ और हीनोंको छोडता हुआ ब्राह्मण श्रेष्ठताको प्राप्त होता है और उलटे आचारसे शूद्रताको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ दृढकारी कहिये आरम्भ कियेका पूरा करनेवाला और मृदु कहिये कठोर नहीं और दांत कहिये शीत घाम आदिके द्वंद्वका सहनेवाला पुरुष क्रूर आचारवाले पुरुषोंके साथ मेलको छोडता हुआ पराई हिंसासे निवृत्त और वैसाही व्रत करनेवाला दम कहिये इंद्रियोंके संयमसे तथा दानसे स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम् ॥ ४७ ॥ आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् ॥ मेने प्रजापतिर्ग्राह्यामपि दुष्कृतकर्मणः ॥ ४८ ॥

भाषा–काष्ठ जल फल मूल मधु और विना मांगा हुआ अन्न कुलटा पाषण्डी और पतित आदिकोंको छोड सर्वतः कहिये शूद्र आदिकोंसेभी कचाही ग्रहण करे और अपनी रक्षारूप अभयको चांडालादिकोंसेभी अंगीकार करे ॥ ४७ ॥ देनेके स्थानमें लाई गई और आगे रखी गई और लेनेवाले कारि आप तथा दूसरेके मुँहसे पहले नहीं मांगी गई और देनेवालेनेभी पहले नहीं कहा कि मैं तुमको देता हूं ऐसी सुवर्ण आदि रूप भिक्षाको सिद्ध अन्नको नहीं पतित आदिकोंको छोड पाप करनेवालेसेभी लेनेयोग्य ब्रह्माने कही है ॥ ४८ ॥

नाश्नन्ति पितरस्तस्य दश वर्षाणि पञ्च च ॥ न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥ ४९ ॥ शय्यां गृहान्कुशान्गन्धानपः पुष्पं

मणीन्दधि॥धाना मत्स्यान्पयो मांसं शाकं चैव न निर्णुदेत् ॥२५०॥

भाषा-उस पुरुष करि श्राद्धमें दिये हुए कव्यको पितर पंद्रह वर्षोंतक नहीं खाते हैं और यज्ञोंमें उस करके दिये हुए पुरोडाश आदि हव्यको अग्नि देवताओंके लिये नहीं पहुँचाता है जो उस भिक्षाको अंगीकार नहीं करता है ॥ ४९ ॥ शय्या, घर, कुश और गंध कहिये गंधयुक्त कपूर आदि और जल फूल मणि दही तथा धान कहिये भूंजे हुए जव और चावल मछली दूध मांस और शाक इन वस्तुओंके लेनेमें निषेध न करे ॥ २५० ॥

गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन् ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥ ५१ ॥ गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तैर्गृहे वसन्॥आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृह्णीयात्साधुतः सदा ॥ ५२॥

भाषा-क्षुधासे पीडित माता पिता आदि गुरुओंको और स्त्री आदि सेवकोंको उससे बचानेके लिये पतित आदिकोंको छोडि सर्वतः कहिये शूद्र आदि असाधुओंसेभी ग्रहण करे परन्तु उसको आप न खाय ॥ ५१ ॥ माता पिता आदिके मरनेपर अथवा उनके जीवते हुए उनसे पृथक् घरमें वसता हुआ अपनी जीविकाकी इच्छासे सदा सज्जनोंसे भिक्षाको ग्रहण करे ॥ ५२ ॥

आर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ॥ एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ ५३ ॥ यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृशं च चिकीर्षितम् ॥ यथा चोपचरेदेनं तथात्मानं निवेदयेत् ॥ ५४ ॥

भाषा-आर्धिक कहिये खेती करनेवाला और जो जिसकी खेती करता है वह उसका भोज्यान्न है ऐसेही अपने कुलका मित्र और जो जिसका गोपाल है और जो जिसका दास है और जो जिसका नाई है काम करता है और जो मैं दुर्गतिमें हूं तुम्हारी सेवा करता हुआ तुम्हारेही समीप वसता हूं ऐसे कहकर अपना निवेदन करे ऐसा शूद्र उसका भोज्यान्न है ॥ ५३ ॥ शूद्रको जैसे अपना निवेदन करना चाहिये सो कहते हैं इस शूद्रका कुल शील आदिसे जैसा इसका आत्मा कहिये स्वरूप है और इसको जो काम करना वांछित है और जैसे इसको सेवा करनी है उस प्रकार आपको कहे ॥ ५४ ॥

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते ॥ स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ॥ ५५ ॥ वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ॥ तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥५६॥

भाषा—जो कोई कुल आदिमें और है और आपको औरही सज्जनोंमें कहता है वह लोकमें बडाही पापी है और आपका चुरानेवाला चोर है और चोर दूसरी वस्तुओंको चुराता है यह तौ सबमें प्रधान आपहीको चुराता है ॥ ५५ ॥ सब अर्थ शब्दोंहीमें वाच्यभावसे नियत हैं और शब्दोंका मूल वाणी है क्योंकि सब बातें शब्दोंहीसे जानकर की जाती हैं इससे वाणीसे निकले कहे जाते हैं इससे जो उस वाणीको चुराता है अर्थात् अन्यथा कहता है वह मनुष्य सब भांति चोरी करनेवाला होता है ॥ ५६ ॥

महर्षिपितृदेवानां गत्वानृण्यं यथाविधि ॥ पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थमाश्रितः ॥५७॥ एकाकी चिंतयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः ॥ एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति॥ ५८ ॥

भाषा—गृहस्थहीका यह संन्यास प्रकार कहते हैं वेद पढनेसे महर्षियोंका और पुत्रके उत्पन्न करनेसे पितरोंका और यज्ञसे देवताओंका ऋण शास्त्रके अनुसार दूर करि सब कुटुंबके भारको योग्य पुत्रमें स्थापित कर मध्यस्थताका आश्रय ले पुत्र, स्त्री, धन आदिमें ममताको छोड ब्रह्मबुद्धिसे सर्वत्र समदृष्टि हो घरहीमें रहे ॥५७॥ कामके कर्मोंका और धनके जोडनेका त्याग कर पुत्र करि करी हुई जीविकासे शरीर निर्वाह करता हुआ अकेला एकान्त स्थानमें अपने हितकारी वेदान्तमें कहे हुए जीवके ब्रह्मभावका सदा ध्यान करे जिससे उसका ध्यान करता हुआ ब्रह्मके साक्षात्कारसे मोक्षरूप उत्कृष्ट श्रेयको प्राप्त होता है ॥५८ ॥

एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती ॥ स्नातकव्रतकल्पश्च सत्त्ववृद्धिकरः शुभः ॥ ५९ ॥ अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन्वेदशास्त्रवित् ॥ व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ॥ २६० ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

भाषा—यह ऋत आदि वृत्ति गृहस्थ ब्राह्मणकी शाश्वती कहिये नित्य कही गई, आपत्तिमें तो अनित्य कहेंगे और सतोगुणका बढानेवाला अच्छा स्नातकके व्रतका कल्प कहिये विधि कहा गया ॥ ५९ ॥ इन शास्त्रमें कहे हुए आचारसे वेदका वेत्ता ब्राह्मण नित्यकर्मसे क्षीणपाप हो ब्रह्मज्ञानकी अधिकतासे ब्रह्महो लोक हुआ उसमें लीन हो सबसे अधिक महिमाको प्राप्त होता है ॥ २६० ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिकृतायां
कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः।

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्स्नातकस्य यथोचितान् ॥ इदमूचुर्महात्मान-
मनलप्रभवं भृगुम् ॥ १ ॥ एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठ-
ताम् ॥ कथं मृत्युः प्रभवंति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥ २ ॥

भाषा–ऋषियोंने स्नातकके कहे हुए धर्मोंको सुनकर महात्मा और परमार्थमें तत्पर और अग्निसे उत्पन्न ऐसे भृगुजीसे वचन बोले यद्यपि पहले अध्यायमें दश प्रजापतियोंमें "भृगुं नारदमेव च" इस वचनसे भृगुकीभी सृष्टि मनुहीसे कही तिसपरभी कल्पके भेदसे अग्निसे उत्पन्न कहे जाते हैं इसमें श्रुति प्रमाण है जैसे "तस्य यद्रेतसः प्रथमसुददीप्यत तदसावादित्योऽभवद्यद्द्वितीयमासीत्तद्भृगुरिति" इसीसे यह व्युत्पत्ति की गई कि "भ्रष्टात् रेतसः उत्पन्नत्वाद्भृगुः" अर्थात् गिरे हुए वीर्यसे उत्पन्न होनेसे भृगु कहिये ॥ १ ॥ ऐसे यथोक्त अपने धर्मके करनेवाले और श्रुति तथा शास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मणोंकी वेदमें कही हुई आयुसे पहले कैसे मृत्यु होती है क्योंकि आयुके कम होनेका कारण जो अधर्म है उसका अभाव है संपूर्ण संदेहोंके दूर करनेमें समर्थ होनेसे प्रभो यह संबोधन दिया ॥ २ ॥

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ॥ श्रूयतां येन दोषेण
मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥३॥ अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्ज-
नात् ॥ आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ४ ॥

भाषा–वे मनुके पुत्र धर्मात्मा भृगु जिस दोषसे थोडे कालमें ब्राह्मणोंको मृत्यु मारनेकी इच्छा करता है उस दोषको कहते हैं सुनिये इस भांति उन महर्षियोंसे बोले ॥३॥ वेदोंका अभ्यास न करनेसे और अपने आचारके छोडनेसे और सामर्थ्य होनेपर अवश्य करनेयोग्य कामोंमें नहीं उत्साहरूप आलस्यसे और खाने योग्य वस्तुओंके दोषसे मृत्यु ब्राह्मणोंको मारता है ॥ ४ ॥

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ॥ अभक्ष्याणि द्विजातीना-
ममेध्यप्रभवानि च ॥ ५ ॥ लोहितान्वृक्षनिर्यासान्वृश्चनप्रभवांस्त-
था ॥ शेलुं गव्यं च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

भाषा–वेदका अनभ्यास आदि तो कह चुके अब अन्नके दोष कहते हैं. लशुन, गृंजन, प्याज, धरतीके फूल और अशुद्ध विष्ठा आदिमें उत्पन्न चौलाई आदि ये द्विजातियोंको अभक्ष्य हैं शूद्रोंको नहीं ॥ ५ ॥ लाल रंगके वृक्षोंके गोंद और

काटनेसे उत्पन्न रस और शेलु कहिये बहुवारकफल और नवीन व्याई हुई गौके दूधकी पेउसी इन सबोंको यत्नसे वर्जित करे ॥ ६ ॥

वृथा कृसरसंयावं पायसापूपमेव च ॥ अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च ॥ ७ ॥ अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा ॥ आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः ॥ ८ ॥

भाषा—वृथा कर कहिये देवताके निमित्त नहीं केवल अपने लिये कृसर कहिये तिल चावल मिलाके किया हुआ भात और संयाव कहिये घी, दूध, गुड और गहूंके चूनसे बनी लपसी और दूध तथा चावलोंकी खीर और पुआ वृथा पक्व इन सबोंको वर्जित करे और यज्ञ आदिमें जो अभिमंत्रित नहीं हैं ऐसे पशुका मांस और देवताओंके लिये किये अन्नोंको नैवेद्य लगानेके पहले और हवींषि कहिये पुरोडाश आदि होमसे पहले वर्जित करे ॥ ७ ॥ दश दिनके भीतर व्याई हुई गौका दूध गौके कहनेसे जिनका दूध पिया जाता है वे सब पशु जानने चाहिये तिससे बकरी और भैंसकाभी दूध व्यानेसे दश दिनतक वर्जित है तथा ऊंटका और एक खुरवाले घोडा आदिका और भेडका और संधिनी कहिये उठी हुई गौका दूध न पीवे और विवत्सा कहिये जिसका बछरा मर गया है ऐसी गौका और जिसका बछरा पास नहीं है उसकाभी न पीवे और बच्चाके मरनेपर बकरी तथा भैंसका मना नहीं है ॥ ८ ॥

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना ॥ स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि ॥ ९ ॥ दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च दधिसंभवम् ॥ यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ १० ॥

भाषा—भैंसको छोडके हाथी आदि सब जंगली पशुओंका दूध और स्त्रीका दूध और संशुक्त वर्जित हैं शुक्त उसको कहते हैं जो स्वभावसे मीठा आदि रसका लवलेशके जल आदिके योगसे खट्टे हो जाते हैं ॥ ९ ॥ शुक्तोंमें दही भक्ष्य कहिये खाने योग्य है और दहीसे उत्पन्न सब मट्ठा आदि भक्ष्य हैं शुभ कहिये अच्छे पुष्प मूल फल तथा जलसे जो संधाने किये जाते हैं वेभी भक्ष्य हैं शुभ इस विशेषणसे यह जाना गया कि जिन वस्तुओंके संधानेमें नसा होता है वे मनें की गई हैं ॥ १० ॥

क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वांस्तथा ग्रामनिवासिनः ॥ अनिर्दिष्टांश्चैकशफांष्टिट्टिभं च विवर्जयेत् ॥ ११ ॥ कलविंकं प्लवं हंसं चक्राङ्गं ग्रामकुक्कुटम् ॥ सारसं रज्जुवालं च दात्यूहं शुकसारिके ॥ १२ ॥

भाषा-क्रव्याद कहिये कच्चे मांसके खानेवाले गीध आदि सब पक्षियोंका तथा कबूतर आदि ग्रामके पक्षियोंका और नहीं कहे हुए एक खुरवाले पशुओंका तथा टटहरी पक्षीका मांस वर्जित करे अर्थात् न खाय ॥११॥ ग्रामके तथा जंगली चिरोटा तथा प्लवनाम पक्षी, हंस, चकवा, गांवका मुरगा, सारस, रज्जुवाल, पपैया, तोता और मैना ये सब पक्षी अभक्ष्य हैं अर्थात् इनका मांस न खाय ॥ १२ ॥

प्रतुदाञ्जालपादांश्च कोयष्टिनखविष्किरान् ॥ निमज्जतश्च मत्स्यादान् शौनं वल्लूरमेव च ॥ १३ ॥ बकं चैव बलाकांश्च काकोलं खञ्जरीटकम् ॥ मत्स्यादान्विड्वराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः ॥ १४ ॥

भाषा-प्रतुद कहिये जो चोंचसे फोडकर खाते हैं जैसे कठफोरा आदि और जालपाद कहिये जिनके पंजोंमें महीन खालका जाल होता है जैसे वतक आदि और कोयष्टिकनाम पक्षी और नखविष्किर कहिये जो पंजोंसे कुरेदि २ खाते हैं और आज्ञा दिये हुए जंगली कुक्कुट आदिकोंसे जुदे बाज आदि और जो जलमें डूबक मारके मछलियोंको पकडते हैं जैसे मद्गू आदि और सूना जो मारनेका स्थान है उसमें स्थित मांस और वल्लूर कहिये सूखा मांस ये सब वर्जित हैं ॥ १३ ॥ बगला तथा बलाका द्रोणकाक खंजन और मछलियोंके खानेवाले औरभी पक्षियोंसे भिन्न मगर आदि तथा विड्वराह कहिये विष्ठा खानेवाले सूअर और सब प्रकारकी मछलियोंको वर्जित करे अर्थात् इनका मांस न खाय ॥ १४ ॥

यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते ॥ मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत् ॥ १५ ॥ पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः ॥ राजीवान्सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः ॥ १६ ॥

भाषा-जो जिसके मांसको खाता है वह उसके मांसका खानेवाला कहा जाता है, जैसे बिलाव मूषकका खानेवाला कहाता है ऐसेही मत्स्याद कहनेसे वह सब प्रकारके मांसका खानेवाला कहने योग्य है तिससे मछलियोंको न खाय ॥ १५ ॥ पाठीन मछली और रोहू मछली आद्य कहिये खाने योग्य कही हैं और हव्यकव्यमें नियुक्त हैं और आगे कहे हुए लक्षणोंकरि युक्त राजीव सिंहतुंड और शल्कसमेत सब आद्य कहिये भक्षण करने योग्य हैं अर्थात् ये सब हव्यकव्यके विनाभी खाने योग्य हैं ॥ १६ ॥

न भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ॥ भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टान्सर्वान्पञ्चनखांस्तथा ॥ १७ ॥ श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा ॥ भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥ १८ ॥

भाषा–जो बहुधा अकेले विचरते हैं जैसे सर्प आदि उनको न खाय और नाम तथा जातिके भेदसे जिनको नहीं जानते हैं ऐसे मृगों और पक्षियोंको न खाय और भक्ष्यत्व करके कहे हुए सब पंचनखों अर्थात् वानर आदिको न खाय ॥ १७ ॥ श्वाविध कहि सेधानाम जीवभेद और शल्यक कहिये ऐसेही और गोह तथा गैंडा कछुआ और शशा इनको पंच नखोंमें मनु आदि भक्ष्य कहते हैं और एक ओर दांतोंकी पंक्तिवालोंमें ऊंटको वर्जित करते हैं ॥ १८ ॥

छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ॥ पलांडुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेद्द्विजः ॥ १९ ॥ अमत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ यतिचान्द्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः ॥ २० ॥

भाषा–धरतीका फूल विष्ठा खानेवाला सुअर लहसन गांवका मुरगा प्याज गाजर इनमें किसीको जानके खाय तो द्विजाति पतित होय तिस पीछे पतितका प्रायश्चित्त करे ॥ १९ ॥ इन छत्राक आदि छः चीजोंको जानि बूझि खायके ग्यारहवें अध्यायमें कहे हुए सात दिनोंमें होने योग्य कृच्छ्रसांतपन नाम व्रत अथवा यतिचांद्रायण करे और इनसे भिन्न लाल वृक्षोंके गोंद आदिके खानेमें दिनरात्रिका उपवास करे ॥ २० ॥

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥ २१ ॥ यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः ॥ भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा ॥ २२ ॥

भाषा–द्विजाति विना जाने खाये हुएको शुद्धिके लिये एक वर्षमें एकभी कृच्छ्र प्राजापत्यनाम करे और फिर जाने हुए अभक्ष्य भक्षण दोषकी शुद्धिके लिये जो कहा है उसी प्रायश्चित्तको करे ॥ २१ ॥ ब्राह्मण आदिकोंकरके यज्ञके लिये प्रशस्त कहिये शास्त्रमें कहे हुए मृग तथा पक्षी मारने योग्य हैं और अवश्य पालने योग्य भृत्यों तथा वृद्ध माता पिता आदि पोषणके लिये करे ॥ २२ ॥

बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम् ॥ पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च ॥ २३ ॥ यत्किंचित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् ॥ तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद्भवेत् ॥ २४ ॥

भाषा–जिससे पुराने यज्ञोंमें और ऋषियोंके यज्ञोंमें भक्ष्य कहिये खाने योग्य मृगों और पक्षियोंके मांसका पुरोडाश कहिये यज्ञभाग कहा है ॥ २३ ॥ जो कुछ भोज्य वस्तु घी तेल आदि स्नेहसे पकी हुई लड्डू आदि तथा खीर आदि भोज्य वस्तु किसी वस्तुके पड़नेसे बिगडी न होय और बासीभी होय तो उसको घी तेल

आदि मिलाके खाय तथा पुरोडाश आदि वासीभी भोजनकालमें स्नेहसंयोगशू-न्यभी भोजन करे ॥ २४ ॥

चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः ॥ यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया ॥ २५ ॥ एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यमशेषतः ॥ मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने ॥ २६ ॥

भाषा-अनेक रात्रिसे वसेभी जव गेहूं और दूधके पदार्थोंको चिकनाई मिलानेके विनाभी द्विजाति भक्षण करे ॥ २५ ॥ द्विजातियोंका यह संपूर्ण भक्ष्य अभक्ष्य कहा इस पीछे मांसके खाने और छोडनेकी विधि कहेंगे ॥ २६ ॥

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया ॥ यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये ॥ २७ ॥ प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत् ॥ स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥ २८ ॥

भाषा-प्रोक्षणनाम संस्कारसे शुद्ध किये हुए और यज्ञसे बचे हुए मांसको ब्राह्मण भक्षण करे और जो ब्राह्मणोंकी मांस खानेकी इच्छा होय तौभी नियमहीसे एकवार खाय तथा श्राद्धमें और मधुपर्कमें गृह्य वचनके अनुसार नियमसे मांस खाना चाहिये और दूसरा आहार न मिलनेसे प्राणोंका नाश होता होय और रोगका कारण होय तो नियमसे मांस खाय ॥ २७ ॥ प्रजापतिने यह सब प्राणका अन्न बनाया तौ कौन है सो कहते हैं जैसे जंगम पशु आदि और स्थावर धान आदि यह सब उसको भोजन है तिससे प्राणोंकी रक्षाके लिये जीव मांसको खाय ॥ २८ ॥

चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः ॥ अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः ॥ २९ ॥ नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहन्यपि ॥ धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तार एव च ॥ ३० ॥

भाषा-चर कहिये चलनेवाले जो हरिण आदि हैं उनके अचर कहिये तृण घास भक्ष्य है और डाढवाले बाघ आदिकोंके विना डाढवाले हरिण आदि भक्ष्य हैं और हाथोंवाले जो मनुष्य आदि हैं उनके विना हाथोंकी मछली आदि भक्ष्य हैं और शूर जो सिंह आदि हैं उनको भीरु कहिये डरपोकने हाथी आदि भक्ष्य कहिये खाने योग्य हैं ॥ २९ ॥ खाने योग्य प्राणियोंको प्रति दिन खाता हुआभी खानेवाला दोषयुक्त नहीं होता है जिसे विधाताहीने खाने योग्य और खानेवाले बनाये इन कहे हुए तीनि श्लोकोंमें प्राणोंके नाशका संभव होनेपर मांस खानेकी प्रशंसा की है ॥ ३० ॥

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येषे दैवो विधिः स्मृतः ॥ अतोऽन्यथा प्रवृ-

त्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते॥३१॥ क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य परो-
पकृतमेवं वा ॥ देवान्पितृंश्चार्चयित्वा खादन्मांसं न दुष्यति ॥ ३२ ॥

भाषा–यज्ञके लिये उसके अंगभूत मांसका खाना यह दैवविधि कही है और इसे अन्यथा अर्थात् विना यज्ञके मांस खाना राक्षसविधि कही जाती है ॥ ३१ ॥ मोल लेकर अथवा आप उत्पन्न करके अथवा और किसी करि लायके दिये हुए मांसको देवता तथा पितरोंको देकर शेषको खाता हुआ पुरुष पापको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदि द्विजः ॥ जग्ध्वा ह्यविधिना
मांसं प्रेत्य तैरद्यतेऽवशः॥३३॥ न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्ध-
नार्थिनः ॥ यादृशं भवति प्रेत्य वृथा मांसानि खादतः ॥ ३४ ॥

भाषा–मांस खानेकी विधिका जाननेवाला द्विज विना आपत्तिकालके देवादिकी पूजन विधिके विना मांस न खाय जिससे विना विधिके मांसको खायके जिनका मांस वह खाता है उन करके परलोकमें वह परवश होके उन पशुओंकरके खाया जाता है ॥ ३३ ॥ धनके लिये मृगोंको मारकर जीविका करनेवाले बहेलिया आदिकोंको वैसा पाप नहीं होता है जैसा देवता तथा पितरोंके विना दिये हुए मांसके खाने-वालेको परलोकमें होता है ॥ ३४ ॥

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः॥स प्रेत्य पशुतां याति
संभवानेकविंशतिम् ॥ ३५ ॥ असंस्कृतान्पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः
कदाचन ॥ मन्त्रैस्तु संस्कृतानद्याच्छाश्वतं विधिमास्थितः ॥३६॥

भाषा–श्राद्धमें तथा मधुपर्कमें शास्त्रके अनुसार नियुक्त हो जो पुरुष मांसको नहीं खाता है वह मरके इक्कीस जन्मोंतक पशु होता है ॥ ३५ ॥ वेदमें कहे हुए मंत्रोंसे प्रोक्षण आदि संस्कार न किये हुए पशुओंको ब्राह्मण आदि कभी न खाय और शाश्वत कहिये प्रवाहकी अनादितासे नित्य जो पशुयाग आदि विधि है तिसमें स्थित संस्कार किये हुए मांसोंको खाय ॥ ३६ ॥

कुर्याद् घृतपशुं संगे कुर्यात्पिष्टपशुं तथा॥ न त्वेव तु वृथा हन्तुं
पशुमिच्छेत्कदाचन ॥ ३७ ॥ यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वो
ह मारणम् ॥ वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥ ३८ ॥

भाषा–जो बहुतही खानेकी इच्छा होय तौ घीका अथवा चूनका पशु बनाके खाय और देवताओंके निमित्त विना कभी पशुओंके मारनेकी इच्छा न करे॥ ३७ ॥

देवताके उद्देश विना अपने लिये जो पशुओंको मारता है वह वृथा पशु मारनेवाला मरके जितने पशुके रोम हैं उतनेही जन्मोंमें मारा जाता है तिससे पशुको वृथा न मारे ॥ ३८ ॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ ३९ ॥ ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा ॥ यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥ ४० ॥

भाषा-यज्ञके लिये पशुके मारनेमें दोष नहीं यह कहते हैं यज्ञकी सिद्धिके लिये प्रजापतिने आपही पशु उत्पन्न किये और यज्ञ कहिये अग्निमें डाली हुई आहुति इस सब जगत्की वृद्धिके लिये होती है तिससे यज्ञमें जो वध है वह अवध है अर्थात् वध नहीं है ॥ ३९ ॥ औषधी कहिये धान जव आदि और पशु कहिये छाग आदि और वृक्ष यज्ञस्तंभ आदिके लिये और तिर्यंच कहिये कछुआ आदि और पक्षी चिरोटा आदि यज्ञके लिये नाशको प्राप्त हुए फिर दूसरा जन्म होनेपर ऊंची जातिमें उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ॥ अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥ एष्वर्थेषु पशून् हिंसन्वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः ॥ आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४२ ॥

भाषा-"समांसो मधुपर्कः" अर्थात् मांससमेत मधुपर्क होता है इस वचनसे मधुपर्कमें और यज्ञकर्ममें और ज्योतिष्टोम आदि पित्र्य तथा दैवकर्ममें पशु मारने योग्य हैं अन्यत्र नहीं यह मनुजीने कहा ॥ ४१ ॥ इन मधुपर्क आदि पदार्थोंमें पशुओंको मारता हुआ वेदके तत्व अर्थका जाननेवाला द्विज आपको तथा पशुको उत्तम गति जो स्वर्ग आदिके भोग योग्य अद्भुत देह तथा देशमें पहुँचाय देता है ॥ ४२ ॥

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः ॥ नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत् ॥ ४३ ॥ या वेदविहिता हिंसा नियताऽस्मिंश्चराचरे ॥ अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ ४४ ॥

भाषा-गृहस्थाश्रममें तथा ब्रह्मचर्य आश्रममें और वानप्रस्थ आश्रममें वसता हुआ प्रशस्त आत्मावाला द्विज अशास्त्रीय कहिये शास्त्रमें नहीं कही हुई हिंसाको न करे ॥ ४३ ॥ वेदमें कही हुई कर्मविशेषमें तथा देशकाल आदिमें नियत हिंसाको इस स्थावर जंगमरूप जगत्में अहिंसा जाने जिससे और प्रमाणोंकाभी धर्म वेदहीसे सब निकला है ॥ ४४ ॥

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ॥ स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥४५॥ यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति ॥ स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥

भाषा-जो अपने सुखकी इच्छासे हिंसा न करनेवाले जीवोंको मारता है वह इस लोकमें तथा परलोकमें सुख नहीं पाता है ॥ ४५ ॥ जो प्राणियोंके बांधने तथा मारनेके क्लेशको नहीं किया चाहता है और सबके सुखका चाहनेवाला है वह अनंत सुखको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च ॥ तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किंचन ॥४७॥ नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ॥ न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥४८॥

भाषा-धर्म आदि मेरे होय यह जो चिंतवन करता है और जो कल्याण करनेवाले धर्मको करता है और जिस परमार्थके ध्यान आदिमें धीरजको बांधता है उन सबको सहजहीमें प्राप्त होता है जो दुःख देनेवाले डांस मच्छड आदिकोंको भी नहीं मारता है ॥ ४७ ॥ प्राणियोंके मारने विना कहीं मांस नहीं उत्पन्न होता है और प्राणियोंका मारना स्वर्गका कारण नहीं है किन्तु नरकहीका कारण है तिससे मांसको छोड दे ॥ ४८ ॥

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ॥ प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥४९॥ न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत् ॥ स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते ॥५०॥

भाषा-शुक्र और शोणित अर्थात् वीर्य और रुधिररूप घिन उपजानेवाली मांसकी उत्पत्तिको जानि और प्राणियोंके मारने तथा बांधनेको क्रूरकर्म जानि सर्व प्रकारके मांसको अर्थात् कहे हुएभी मांसको न खाय तो विना कहेका क्या कहना है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य कही हुई विधिको छोड पिशाचके समान मांसको नहीं खाता है वह लोकका प्यारा होता है और रोगोंसेभी नहीं पीडित होता है॥५०॥

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ॥ संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ ५१ ॥ स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ॥ अनभ्यर्च्य पितॄन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥ ५२ ॥

भाषा-अनुमंता कहिये जिसकी आज्ञा विना मार न सके और विशसिता जो अंगोंको काटकर जुदा २ करे और क्रयविक्रयी जो मोल ले और बेंचे और संस्कर्ता

जो पाक करे और उपहर्त्ता कहिये परोसनेवाला और खादक कहिये खानेवाला ये सब घातक कहिये मारनेवाले हैं ॥ ५१ ॥ अपने शरीरके मांसको दूसरेके शरीरके मांससे देवता पितरोंकी पूजाके विना जो बढाना चाहता है उससे और पापी नहीं है ॥ ५२ ॥

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ॥ मांसानि च न खादेद्य-स्तयोः पुण्यफलं समम् ॥ ५३ ॥ फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः ॥ न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ ५४ ॥

भाषा-जो सौ वर्षतक प्रत्येक वर्षमें अश्वमेधसे यजन करता है और जो जन्मभर मांसको नहीं खाता उन दोनोंके पुण्यका फल स्वर्ग आदिके समान है ॥ ५३ ॥ पवित्र फलमूलोंके खानेसे और वानप्रस्थोंकरि खाने योग्य तृण धान्य समा आदिके खानेसेही वह फल नहीं मिलता है जो शास्त्रमें नियम किये हुए मांसके न खानेवालेको मिलता है ॥ ५४ ॥

मां स भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५५॥ न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ ५६ ॥

भाषा-इस लोकमें जिसके मांसको मैं खाता हूं परलोकमें वह मुझको खा गया पंडितोंने मांसशब्दका यही अर्थ किया है ॥ ५५ ॥ मांस और मदिरा इनके भक्षणमें दोष नहीं है जिससे खाने पीने और मैथुन आदिमें प्रवृत्ति यह प्राणियोंका स्वाभाविक धर्म है और छोडनेका तो वडा फल है अब इसका अभिप्राय यह है कि मांसभक्षण मदिरापान मैथुन इन तीनोंके विधान करनेवाले जो वाक्य हैं वे प्रवृत्ति करानेवाले नहीं है क्योंकि अप्रवृत्ति तो इच्छाहीसे होती है तव ये सब वाक्य व्यर्थ होके यज्ञमें मांसभक्षण विवाहमें मैथुन और सौत्रामणी यज्ञमें मद्य पीना इन सवोंके करनेसे दोषका न होना सूचित करते हैं और इन सब वचनोंका अभिप्राय इन तीनोंके न करनेमेंही है ॥ ५६ ॥

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च ॥ चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥ ५७ ॥ दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते ॥ अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते ॥ ५८ ॥

भाषा-ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंकी प्रेतशुद्धि कहिये पिता आदिके मरनेपर पुत्र आदिकी शुद्धिको ब्राह्मण आदिके क्रमसे जो जिस वर्णका है उसकी और

द्रव्य जो तैजस अर्थात् धातु आदिकी शुद्धिको आगे कहेंगे ॥ ५७ ॥ दांतोंके उत्पन्न होनेपर और दांत होनेके पीछे और मुंडन तथा यज्ञोपवीतके होनेपर जो लडका मर जाय तौ सपिंड और समानोदक बांधव अशुद्ध होते हैं तैसे लडका लडकीके उत्पन्न होनेमें अशुद्ध होते हैं यह कहते हैं ॥ ५८ ॥

दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥ अर्वाक् संचयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव च ॥ ५९ ॥ सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते ॥ समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥ ६० ॥

भाषा-सात पुरुषोंतक सपिंडता कहेंगे सपिंडोंमें मरनेका आशौच कहिये सूतक ब्राह्मणोंमें दश राति दिनका कहा है और अस्थिसंचयनके पीछे तीनि दिनरातिका अथवा एक दिनरातिका होता है इसकी व्यवस्था यह है कि वेदके मंत्र ब्राह्मण दोनों भागोंको जाननेवाला होय और अग्निहोत्र करता होय उसको एक दिनरातिका तथा जो केवल वेदहीको पढा होय और अग्निहोत्र न करता होय उसको तीनि रात्रिदिनतक और जो वेद पढना तथा अग्निहोत्र दोनोंसे रहित है परंतु स्मृतिमें कही हुई अग्निसे युक्त है तौ उसको चारि दिनराततक और सब गुणोंसे हीन होय तो उसको दश दिन राततक आशौच होता है ॥ ५९ ॥ सातवें पुरुषमें सपिंडता दूरि हो जाती है और समानोदक भाव तो फिर हमारे कुलमें अमुक नामका हुआ इस प्रकार जन और नाम दोनोंके ज्ञान न होनेमें दूर होता है ॥ ६० ॥

यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥ जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणं शुद्धिमिच्छताम् ॥ ६१ ॥ सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ॥ सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ ६२ ॥

भाषा-जैसे यह दश दिन आदिका आशौच मरनेमें कहा है ऐसेही अच्छी भांति शुद्धि चाहनेवाला सपिंडोंके जन्ममेंभी दशही दिनका सूतक होता है॥ ६१ ॥ मरनेके कारण नहीं छूनेरूप आशौच सब सपिंडोंको समान होता है और जन्मके कारणसे तौ मातापिताहीको दश दिनतक न छूनेरूप सूतक होता है उसमेंभी यह विशेष है कि जननानिमित्त सूतक माताको दश दिनतक होता है पिता तौ स्नानसे छूनेयोग्य होता है ॥ ६२ ॥

निरस्य तु पुमान् शुक्रमुपस्पृश्यैव शुद्ध्यति ॥ बैजिकादभिसंबन्धादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहम् ॥ ६३ ॥ अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः ॥ शवस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्यहादुदकदायिनः ॥ ६४ ॥

भाषा-मैथुनके विनाभी कामसे वीर्यस्खलन होने अर्थात् निकलनेमें स्नान करनेसे पुरुष शुद्ध होता है और विना कामके स्वप्न आदिमें मूत्रके समान वीर्यके स्खलित होनेपर स्नानके विनाभी गृहस्थकी शुद्धि होती है और ब्रह्मचारीकी तो कामके विनाभी स्वप्नमें स्खलित होनेसे स्नानसे शुद्धि कही है और पहले पतिको छोडकर जिस स्त्रीने दूसरा पति किया है उस स्त्रीमें दूसरे पतिसे संतति उत्पन्न होनेपर पतिको तीन दिनरातिका आशौच होता है ॥ ६३ ॥ सपिंड तीनि दिनरातिमें शुद्ध होते हैं और जो सपिंड पहले कहे हुए गुणोंकरके युक्त होय तो वह एक दिनरातमें शुद्ध होय वे जो स्नेह आदिसे मृतक छुवें तौ दशही दिनमें शुद्ध होते हैं और समानोदक तीनि दिनमें शुद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ॥ प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥ ६५ ॥ रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति ॥ रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ६६ ॥

भाषा-गुरु कहिये आचार्य आदि असपिंडका दाह करके शिष्यभी प्रेतके ले जानेवाले गुरुके सपिंडोंके समान दश दिनरातिमें शुद्ध होता है ॥ ६५ ॥ तीसरे महीनेसे लगाके जितने महीनेके गर्भका पात होता है उतनेही दिनरातिमें चारों वर्णकी स्त्रियां शुद्ध होती हैं यह छः महीनेतक जानिये, इसके उपरांत अपनी जातिका कहा हुआ आशौच उनमें जानिये और रजस्वला स्त्री रजके वंद होनेपर पाचवें दिन स्नानसे कर्म योग्य होती है और छूने योग्य तौ चौथे दिन स्नान करनेसेही शुद्ध होती है॥६६॥

नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ॥ निवृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६७ ॥ ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः ॥ अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते ॥ ६८ ॥

भाषा-विना मुंडन किये हुए वालकोंके मरनेपर सपिंडोंकी रातदिनमें शुद्धि होती है और मुंडन हो जानेके पीछे यज्ञोपवीतसे पहले मरनेमें तीनि रात्रिमें शुद्धि होती है ॥ ६७ ॥ दो वर्षसे कम विना मुंडन किया हुआ वालक मरे तो उसको माला आदिसे शोभित करि ग्रामके वाहर ले जाके शुद्ध भूमिमें गाड दे अस्थिसंचयन न करे ॥ ६८ ॥

नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया ॥ अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव च ॥६९॥ नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया॥जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥ ७०॥

भाषा-इस दो वर्षके मरे हुए वालकका न अग्निसंस्कार करे और न जलदान

करे किंतु वनमें काठके समान छोडके तीनि रातिदिनका आशौच माने ॥ ६९ ॥ तीनि वर्षसे कम अवस्थाके बालकको उसके सपिंड जलदान न करे और दांत उत्पन्न होनेपर तथा नामकरण हो जानेपर जलदान तथा अग्निसंस्कार करना चाहिये और प्रेतका पिंडश्राद्ध आदि बनि सके तो करे क्योंकि करनेसे प्रेतको आनंद होता है और जो न करे तौ कुछ दोष नहीं है ॥ ७० ॥

सब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं स्मृतम् ॥ जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ७१ ॥ स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ॥ यथोक्तेनैव कल्पेन शुध्यन्ति तु सनाभयः ॥७२॥

भाषा-साथ पढनेवालेके मरनेमें एक दिनका आशौच होता है और समानोदकोंके पुत्रका जन्म होनेपर तीनि रात्रिमें शुद्धि होती है ॥ ७१ ॥ विना व्याही हुई वाग्दत्ता कहिये जिनका वातोंसे संवंध हुआ है उन लडकियोंके मरनेमें बांधव कहिये पति आदि तीनि दिनमें शुद्ध होते हैं और विवाह होनेके पीछे मरनेमें पिता भाई आदि तीनि दिनमें शुद्ध होते हैं ॥ ७२ ॥

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहम् ॥ मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ ॥७३॥ संनिधावेष वै कल्पः शावाशौचस्य कीर्तितः ॥ असंनिधावयं ज्ञेयो विधिः संबंधिबान्धवैः ॥ ७४ ॥

भाषा-क्षारलवण कहिये वना हुआ नोनका न खाना तथा नदी आदिमें तीनि दिनतक स्नान करना और मांस न खाना तथा जुदे २ भूमिमें सोना चाहिये॥७३॥ मृतकके समीप रहनेमें यह शावाशौच कहिये मरणनिमित्तक आशौच कहा है और समीप न होनेमें संबंधी तथा बांधवोंको जो आगे कहेंगे वह आशौच जानना चाहिये सपिंडोंको संवंधी कहते हैं और समानोदकोंको बांधव कहते हैं ॥ ७४ ॥

विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ ७५ ॥ अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति ॥ ७६ ॥

भाषा-विदेशमें मरे हुए समाचार दश दिनके भीतर सुननेमें आवे तो दश दिनमें जितने दिन बाकी रहे होंय उतने दिनतक आशौच मानना चाहिये ॥ ७५॥ दश दिनके उपरांत सुननेमें आवे तो तीनि दिनराति आशौच जानना और एक वर्षके उपरान्त सुने तो जलका स्पर्श करके अर्थात् स्नान करके शुद्ध होय ॥ ७६ ॥

निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ॥ सवासा जलमाप्लुत्य

शुद्धो भवति मानवः ॥ ७७ ॥ बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते ॥ सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुध्यति ॥ ७८ ॥

भाषा-दश दिनके उपरान्त जातिका मरना और पुत्रका जन्म सुननेमें आवे तो वस्त्रोंसमेत स्नान करके शुद्ध होय ॥ ७७ ॥ परदेशमें समानोदक बालकका मरना सुनिके वस्त्रोंसमेत स्नान करनेसे उसी समय शुद्ध होता है ॥ ७८ ॥

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ॥ तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥ ७९ ॥ त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ॥ तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥ ८० ॥

भाषा-एकका जन्म होनेपर दश दिनके भीतर दूसरेका जन्म होय और एकके मरनेसे दश दिनके भीतर दूसरा मरे तो पहले आशौचके दूर होनेमें दूसराभी दूर हो जाता है ॥ ७९ ॥ आचार्य्यके मरनेमें शिष्योंको तीनि रातिका आशौच होता है और आचार्यके पुत्र तथा स्त्रीके मरनेमें एक दिनरातिका आशौच होता है यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ८० ॥

श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ मातुले पक्षिणीरात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥ ८१ ॥ प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः ॥ अश्रोत्रिये त्वहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ ॥ ८२ ॥

भाषा-वेदशास्त्रका पढनेवाला मरे तो प्रीतिसे उसके समीप रहनेवालेको अथवा उसके घरमें रहनेवालेको तीनि रात्रिका आशौच होता है और मामा शिष्य ऋत्विक् तथा बांधवके मरनेमें पक्षिणी अर्थात् पहले और पिछले दिनसमेत रात्रिका आशौच होता है ॥ ८१ ॥ जिस देशमें ब्राह्मण आदि वसते होंय उस देशके राजा अर्थात् अभिषेकयुक्त क्षत्रिय आदिके मरनेमें सज्योति कहिये दिन होय तो जबतक सूर्य रहे तबतक और राति होय तौ जबतक तारा रहे तबतकका आशौच होता है और श्रोत्रिय मरे तो तीनि रात्रिका कहा है रातिमेंमी नहीं और जो रातिमें मरे तौ रातिहीमरिका यह जानना चाहिये और अंगोंसमेत वेदके पढनेवाले तथा गुरुके मरनेपर एकही दिनका आशौच मानना चाहिये ॥ ८२ ॥

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥ वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥ ८३ ॥ न वर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः ॥ न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ ८४ ॥

भाषा-यज्ञोपवीत किये हुए सपिंडके मरनेमें तथा पूरे दिनोंमें जन्म होनेपर

वेदपाठरहित ब्राह्मण दश दिनमें शुद्ध होता है और क्षत्रिय बारह दिनमें तथा वैश्य पंद्रह दिनमें और शूद्र एक महीनेमें. शूद्रके यज्ञोपवीतके स्थानमें विवाह जानना जाहिये ॥ ८३ ॥ आशौचके दिनोंको न बढावे और उन दिनोंमेंभी श्रौत अग्निहोत्रके होममें बाधा न करे जो असमर्थ होय तो पुत्रादिकोंसे करावे इसमें कारण कहते हैं कि जिससे उस अग्निहोत्ररूप कर्मको करता हुआ पुत्र आदि सपिंड अशुद्ध नहीं होता है ॥ ८४ ॥

दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा॥ शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति ॥८५॥ आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने ॥ सौरान्मंत्रान्यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तितः ॥ ८६ ॥

भाषा–चांडालको रजस्वलाको ब्रह्महत्यारे आदिको और दश दिनके भीतर प्रसूता स्त्रीको मुर्देको तथा मुर्दे छूनेवालेको छूकर स्नानसे शुद्ध होता है ॥ ८५ ॥ चांडाल आदि अशुद्धके दर्शन होनेपर श्राद्ध तथा देवपूजा आदिको किया चाहता पुरुष स्नान तथा आचमन कर सूर्य जिनका देवता ऐसे "उदुत्यं जातवेदसं" इत्यादि मंत्रोंको और पावमानी ऋचाओंको शक्तिके अनुसार जपे ॥ ८६ ॥

नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति॥आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥८७॥ आदिष्टी नोदकं कुर्यादा व्रतस्य समापनात् ॥ समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥८८॥

भाषा–चिकनाई युक्त मनुष्यकी हड्डीको छूके ब्राह्मण आदि स्नानसे शुद्ध होते हैं और स्नेहरहित हड्डीको छूके आचमन करके अथवा गौको छूके अथवा सूर्यका दर्शन करके शुद्ध होता है ॥ ८७ ॥ ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तिपर्यंत प्रेतोदक अर्थात् पूरक पिंडश्राद्ध आदि प्रेतके कृत्य न करे फिर ब्रह्मचर्यके समाप्त होनेपर प्रेतोदक करके तीनि राततक आशौच मानके शुद्ध होता है ॥ ८८ ॥

वृथा संकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ॥ आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदकक्रिया ॥ ८९ ॥ पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां च कामतः ॥ गर्भभर्तृद्रुहां चैव सुरापीनां च योषिताम् ॥ ९० ॥

भाषा–अपने धर्मका छोडनेवाला और हीन जातिके पुरुषसे ऊंची जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न तथा झूठे संन्यासका धारण करनेवाला और व्यर्थ कहिये शास्त्रसे मने किये हुए विष आदिमें जानकर मरनेवाला इन सबोंके मरनेमें जलदान न करे ॥ ८९ ॥ वेदसे बाहर गेरुआ कपडे और मूंड मुंडाना आदि व्रतोंसे पाषंड करनेवाली और अपनी

इच्छासे जहां तहां फिरनेवाली और गर्भपात तथा पतिका वध करनेवाली और मद्य पीनेवाली द्विजातिकी स्त्रीको इन सवोंके मरनेमें जलदान न करना चाहिये ॥ ९० ॥

आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् ॥ निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते ॥ ९१ ॥ दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् ॥ पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥ ९२ ॥

भाषा-आचार्य कहिये जो यज्ञोपवीत कराके संपूर्ण शाखाओंको पढावे और उपाध्याय जो वेदका एक देश अथवा अंग शिक्षा आदि पढावे पिता माता और गुरु जो एक वेदका अथवा सब वेदोंके एक देशका व्याख्यान करे इन सवोंकी दाह आदि प्रेतक्रिया करनेसे ब्रह्मचारीके व्रतका लोप नहीं होता है ॥ ९१ ॥ मरे हुए शूद्रको पुरके दक्षिणद्वारमें होकर निकाले और द्विजातियोंको यथायोग्य कहिये युक्तिसे हीन वैश्य क्षत्रियके क्रमसे पश्चिम उत्तर पूर्वके द्वारोंमें होकर निकाले॥ ९२॥

न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम् ॥ ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा ॥ ९३ ॥ राज्ञो माहात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते ॥ प्रजानां परिरक्षार्थमासनं चात्र कारणम् ॥ ९४ ॥

भाषा-राजा व्रती कहिये ब्रह्मचारी चांद्रायण आदि व्रतोंका करनेवाला तथा सत्री कहिये यज्ञ करनेवाला इन तीनोंको सपिंडके मरने आदिमें आशौच दोष नहीं लगता है क्योंकि राजा तौ इंद्रके स्थानमें स्थित है और ब्रह्मचारी व्रती तथा यज्ञ करनेवाला ये सदा ब्रह्मका स्वरूप हैं ॥ ९३ ॥ राज्यपदमें बैठे हुए राजाकीसी शुद्धि कही है प्रजाओंकी रक्षाके लिये राज्यपदमें बैठनाही आशौच न लगनेका कारण है ॥ ९४ ॥

डिंबाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च ॥ गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ ९५ ॥ सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च ॥ अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥ ९६ ॥

भाषा-जिसमें राजा नहीं है उस युद्धमें जो मारे गये हैं और विजली अर्थात् वज्रसे जो मारे गये हैं मारनेके योग्य अपराध करनेमें राजा करि जो मारे गये और गौ तथा ब्राह्मणके लिये ये युद्धके विनाभी जल अग्नि तथा व्याघ्र आदि करि मारे गये और जिस पुरोहित आदिका राजा अपने कामके लिये शुद्धि चाहे उन सवोंकी शीघ्रही शुद्धि होती है ॥ ९५ ॥ चन्द्रमा अग्नि सूर्य वायु इंद्र कुबेर वरुण यम इन आठों लोकपालोंके शरीरको राजा धारण करता है ॥ ९६ ॥

लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्याशौचं विधीयते ॥ शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ॥ ९७ ॥ उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च ॥ सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥ ९८ ॥

भाषा-राजा ऊपरके श्लोकमें कहे हुए इंद्र आदि लोकपालोंके अंशोंसे युक्त होता है इसलिये राजाको आशौच नहीं लगता है कारण यह है कि मनुष्योंका जो शौच और आशौच है सो लोकपालोंसे उत्पन्न होता है तथा दूर होता है ॥ ९७ ॥ संग्राममें उठे हुए खड्ग आदि शस्त्रोंसे लाठी पत्थर आदिसे नहीं किंतु क्षत्रियधर्मसे सन्मुख मारे गये पुरुषका उसी समय ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ समाप्त होता है अर्थात् यज्ञफलसे वह युक्त होता है और आशौचभी उसी समय समाप्त हो जाता है यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ९८ ॥

विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम् ॥ वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥ ९९ ॥ एतद्वोऽभिहितं शौचं सपिण्डेषु द्विजोत्तमाः ॥ असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधत ॥ १०० ॥

भाषा-आशौचके अंतमें श्राद्ध आदि कृत्य करके ब्राह्मण दाहिने हाथसे जलको छूकर शुद्ध होता है और क्षत्रिय हाथी आदि वाहनोंको तथा खड्ग आदि शस्त्रोंको और वैश्य अग्रभागमें लोह लगे हुए बैलोंके हांकनेकी लकडीको अथवा जोतेको और शूद्र बांसकी दंडिकाको छूकर शुद्ध होता है ॥ ९९ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! मैंने तुमसे यह आशौच सपिंडोंके मरनेमें कहा अथ असपिंडोंके मरनेमें प्रेतशुद्धिको सुनो ॥ १०० ॥

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ॥ विशुध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् ॥ १ ॥ यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव शुध्यति ॥ अनदन्नन्नमह्नैव न चेत्तस्मिन्गृहे वसेत् ॥ २ ॥

भाषा-असपिंड मरे हुए ब्राह्मणको मित्रतासे श्मशानमें ले जायकर तथा माताके सगे भाई बहिनी आदि बांधवोंको पहुँचायके ब्राह्मण तीन रात्रमें शुद्ध होता है ॥ १ ॥ जो ले जानेवाला आशौचयुक्त मरे हुएके सपिंडोंको अन्न न खाय तौ दशही दिनमें शुद्ध होय और उनका अन्न न खाय और उनके घरमें न वसे तौ तीन दिनरातहीमें शुद्ध हो जाय और उसके घरमें तौ वसे परंतु उसके सपिंडोंका अन्न न खाय तो पहले कही हुई तीन रात्रमें शुद्ध हो ॥ २ ॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च ॥ स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वा-

**ग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥३॥ न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शू-
द्रेण नाययेत् ॥ अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता ॥४॥**

भाषा-अपनी जातिके तथा और जातिके मृतकके साथ अपनी इच्छासे जायके वस्त्रोंसमेत स्नान कर और अग्निको छू घी खायके शुद्ध होता है ॥ ३ ॥ समान जातिके स्थित होनेपर पुत्र आदि मृतकको शूद्रसे न उठवावे क्योंकि उसकी आहुति शूद्रके स्पर्शसे दूषित हो स्वर्गके लिये हित नहीं होती है अर्थात् स्वर्गमें नहीं पहुँचाती है अपनोंके होनेपर इसके कहनेसे यह जान गया कि ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय और क्षत्रियके न होनेमें वैश्य वैश्यकेभी न होनेमें शूद्रसभी उठवाके मृतकको लिवाय जाय ॥ ४ ॥

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्युपांजनम् ॥ वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ॥ ५ ॥ सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ॥ योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥६॥

भाषा-ज्ञान, तप, अग्नि, आहार, मृत्तिका, मन, जल, लेप, पवन, कर्म, सूर्य और काल ये देहियोंकी शुद्धि करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ सब शौचोंमें अर्थात् मट्टी पानी आदिसे देहकी शुद्धि और मनकी शुद्धि इन सबोंमें अर्थशुद्धि कहिये अन्यायसे पराये धनके लेनेकी इच्छाको छोडकर धनका इकट्ठा करना सबसे अधिक शौच मनु आदिकोंने कहा है क्योंकि जो धनमें शुद्ध है वह शुद्ध है और जो मृत्तिका तथा जलसे शुद्ध है और धनमें अशुद्ध है वह अशुद्धही है ॥ ६ ॥

क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ॥ प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥ ७ ॥ मृत्तोयैः शुद्ध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥ रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥ ८ ॥

भाषा-दूसरेके अपकार करनेपर उसके बदलेके अपकार करनेमें बुद्धि न करने रूप क्षमासे पंडित शुद्ध होते हैं और नहीं करने योग्य कामके करनेवाले दानसे और जिनके पाप छुपे हुए हैं वे जपसे और वेदका अर्थ तथा चांद्रायण आदि तपके जाननेवाले एकादश अध्यायमें कहेंगे उस तपसे शुद्ध होते हैं ॥ ७ ॥ मल आदिसे दूषित शोधने योग्य मृत्तिका तथा जलसे शोधे जाते हैं और श्लेष्मा आदि अशुद्धसे दूषित नदीका प्रवाह वेगसे शुद्ध होता है और परपुरुषसे मैथुनके संकल्पसे दूषित है मन जिसका ऐसी स्त्री प्रतिमासमें रजोधर्मसे उस पापसे शुद्ध होती है और ब्राह्मण छठे अध्यायमें जो कहेंगे उस संन्याससे शुद्ध होता है ॥ ८ ॥

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ॥ विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥९॥ एष शौचस्य वः प्रोक्तः शारीरस्य विनिर्णयः ॥ नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम् ११०

भाषा–पसीना आदिसे दूषित अंग जलके धोनेसे शुद्ध होते हैं और निषिद्ध चिंता आदिसे दूषित मन सत्यसे शुद्ध होता है और सूक्ष्म आदि लिंगशरीरमें अवच्छिन्न जीव आत्मा ब्रह्मविद्या तथा पापके नाश करनेवाले तपसे शुद्ध होता है और अन्यथा ज्ञानसे दूषित बुद्धि यथार्थ विषयके ज्ञानसे शुद्ध होती है ॥ ९ ॥ मैंने शरीरके शौचका यह निश्चय तुमसे कहा अब नाना प्रकारके द्रव्योंमें जो जिससे शुद्ध होता है उसके निर्णयको सुनो ॥ ११० ॥

तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥ ११ ॥ निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुध्यति ॥ अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥ १२ ॥

भाषा–तैजस कहिये सुवर्ण आदिकोंकी और मरकत आदि मणियोंकी और सब पत्थरकी वस्तुओंकी भस्म जल तथा मट्टीसे मनु आदिकोंने शुद्धि कही है ॥ ११ ॥ उच्छिष्ट आदिके लेपसे रहित सुवर्णका पात्र और जलसे उत्पन्न शंख सीप आदि और पत्थरका पात्र तथा रेखारहित चांदीका पात्र भस्म आदिसे रहित केवल जलसे शुद्ध होता है ॥ १२ ॥

अपामग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्बभौ ॥ तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः ॥१३॥ ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च ॥ शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥ १४ ॥

भाषा–जल और अग्निके संयोगसे सोना और रूपा उत्पन्न हुआ है तिससे उनके कारण अर्थात् उत्पन्न करनेवाला जल और अग्निहीसे शुद्धि सबसे उत्तम है ॥ १३ ॥ तांबा लोहा कांसा पीतल रांगा और सीसा इनका भस्म तथा खटाईके पानीसे यथायोग्य अर्थात् जो जिसके योग्य होय उससे उसका शोधन करना चाहिये ॥ १४ ॥

द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिराप्लवनं स्मृतम् ॥ प्रोक्षणं संहतानां च दारवाणां च तक्षणम् ॥१५॥ मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥ चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ १६ ॥

भाषा–कौआ कीडा आदि करि दूषित किये गये एक पसेभर घी तेल आदिकी

प्रादेशप्रमाण दो कुशके पत्रोंको उसमें डालकर उछालनेसे और शय्या आदि उच्छिष्ट आदिसे दूषित होय तो जलके छिडकनेसे और काष्ठका कठोता आदि उच्छिष्ट आदिसे अत्यंत दूषित होय तो उनकी छीलनेसे शुद्धि होती है ॥ १५ यज्ञमें चमस ग्रह तथा अन्य यज्ञके पात्रोंकी शुद्धि पहले हाथसे मलके ७ धोनेसे होती है ॥ १६ ॥

चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥ स्फ्यशूर्पशकटानां च मुसलोलूखलस्य च ॥ १७ ॥ अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं वहूनां धान्यवाससाम् ॥ प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥ १८ ॥

भाषा-चिकनाई करि युक्त चरु स्रुक् आदिकी शुद्धि उष्ण जलके धोनेसे है और जिनमें चिकनाई नहीं है उनकी यज्ञके लिये केवल जलसे शुद्धि होती और स्फ्य सूप गाडी मूसल और ओखलीकी शुद्धि उष्ण जलसे होती है ॥ १७ वहुतसे धान्य और वस्त्र जो चांडाल आदि करि दूषित होंय तौ जलके उनकी शुद्धि होती है वहुत उसको कहते हैं जो एक पुरुषके ले चलनेसे अधिक ह उससे थोडेकी शुद्धि मनु आदिने धोनेसे कही है ॥ १८ ॥

चैलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च ॥ शाकमूलफलानां च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥ १९ ॥ कौशेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः ॥ श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥ १२० ॥

भाषा-छूने योग्य पशुके चर्मके पात्र और वांसके पात्रकी शुद्धि वस्त्रकी शुद्धि समान जानिये और शाक मूल फल इनकी शुद्धि धान्यकी शुद्धिके समान ॥१९॥ रेशमी और ऊनी वस्त्रकी शुद्धि खारी मट्टीसे होती है और नेपालके रीठेके चूर्णसे और पट्टवस्त्रकी वेलके फलसे और अलसीकी छालिका वस्त्र सरसोंसे शुद्ध होता है ॥ १२० ॥

क्षौमवच्छङ्खशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च ॥ शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणोदकेन वा ॥ २१ ॥ प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पलालं चैव शुध्यति ॥ मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्म पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ २२ ॥

भाषा-शंखका पात्र तथा छूने योग्य पशु हाथी आदि तिनके दांत सींग हाडके पात्रकी शुद्धि अलसीके वस्त्रकी शुद्धिके समान जानिये अर्थात् सपेद सरसोंके कल्कसे अथवा गोमूत्रसे शुद्धि होती है ॥ २१ ॥ चांडाल आदिके दूषित तृण काठ और पयार जलके छिडकनेसे शुद्ध होते हैं और रजस्वला

वसनेसे दूषित घर झाडने और लीपनेसे शुद्ध होता है और उच्छिष्ट आदिसे दूषित मट्टीका बासन फिरि पकानेसे शुद्ध होता है ॥ २२ ॥

मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः ॥ संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ २३ ॥ संमार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च ॥ गवां च परिवासेन भूमिः शुध्यति पञ्चभिः ॥ २४ ॥

भाषा–मद्य मूत्र विष्ठा थूक पीव तथा रुधिरसे बिगडा हुआ मट्टीका पात्र फिर पकानेसे शुद्ध नहीं होता है ॥ २३ ॥ झाडने लीपने छिडकने खोदने अर्थात् कुछ मट्टीके छीलनेसे तथा गौओंके रहनेसे इन पांच बातोंसे भूमि शुद्ध होती है ॥२४॥

पक्षिजग्धं गवाघ्रातमवधूतमवक्षुतम् ॥ दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुद्ध्यति ॥ २५ ॥ यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धो लेपश्च तत्कृतः ॥ तावन्मृद्वारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥ २६ ॥

भाषा–कौआ गीध आदिको छोडके अन्य पक्षियोंकरि कुछ खाया हुआ और गौ करि सूंघा हुआ तथा पैरसे छुआ हुआ और जिसके ऊपर छींक हुई और बाल तथा कीडोंसे दूषित थोडी मट्टीके डालनेसे शुद्ध होता है ॥ २५ ॥ अपवित्र विष्ठा आदिसे लीपी वस्तुसे जबतक उसका गंध तथा लेप शेष रहे तबतक सब वस्तुओंको शुद्धिके लिये मट्टी और जलसे मांजे ॥ २६ ॥

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ॥ अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥२७॥ आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासु गोर्भवेत् ॥ अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥ २८ ॥

भाषा–देवताओंने ब्राह्मणोंके लिये तीनि वस्तु पवित्र की हैं एक तौ अदृष्ट अर्थात् जिसका दूषित होना आंखिसे नहीं देखा गया है और दूसरा दूषित होनेकी शंका होनेपर जलसे धोना और तीसरा दूषित होनेकी शंका होतेही पवित्र होय इस ब्राह्मणकी बाणीसे जो प्रशस्त है ॥ २७ ॥ जितने जलमें एक गौकी प्यास दूर होय गंध वर्ण और स्वाद जिसका न बिगडा हो और अपवित्र वस्तुसे युक्त न होय शुद्ध भूमिमें स्थित होय ऐसा जल शुद्ध कहा है ॥ २८ ॥

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् ॥ ब्रह्मचारिगतं भक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥२९॥ नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने ॥ प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥१३०॥

भाषा-देवता तथा ब्राह्मण आदिके लियेभी माला आदिके वनानेमें माली आदि कारीगरोंके हाथ शुद्धि विशेषके न करनेपरभी स्वभावहीसे सदा शुद्ध हैं तैसेही जन्म मरणमें अपने काममें शुद्ध है और ब्रह्मचारीकी भिक्षा विना न्हाई स्त्रीके देने और गली आदिमें चलनेपरभी सदा शुद्ध है यह शास्त्रकी मर्यादा है॥२९॥ स्त्रियोंका मुख सदा पवित्र है और कौआ आदि पक्षियोंकी चोंचके लगानेसे गिरा हुआ फल शुद्ध है और गौके दुहनेके समय दूधके पन्हुआनेमें वछडेका मुख शुद्ध है और कुत्ता जब मृग आदिकोंके मारनेको पकडे तब उस काममें वहभी शुद्ध होता है ॥१३०॥

श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत् ॥ क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ॥३१॥ ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः ॥ यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः ॥३२॥

भाषा-कुत्तों करि मारे हुए मृग आदिका मांस मनुजीने शुद्ध कहा है तथा और कच्चे मांसके खानेवाले वाघ वाज आदिकों करि और मृगोंको मारकर जीविका करनेवाले वहेलिया आदि करि मारे हुए मृग आदिका मांस पवित्र है ॥ ३१ ॥ नाभिके ऊपर जो इंद्रियां हैं वे सब पवित्र हैं इससे उनके छूनेमें अपवित्रता नहीं होती है और जो नाभिके नीचे हैं वे अशुद्ध हैं और देहसे निकले हुए देहके मलसे अशुद्ध होते हैं ॥ ३२ ॥

मक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः ॥ रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥३३॥ विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत् ॥ दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ॥ ३४ ॥

भाषा-अपवित्र वस्तुकी छूनेवालीभी मक्खियां और मुखसे निकले हुए छोटे २ जलके कण और पतित आदि न छूने योग्यकी छाया और गौ घोडा सूर्यके किरण रज भूमि पवन अग्नि ये सब चांडाल आदिके छूनेपरभी छूनेमें अशुद्ध नहीं होते हैं ॥ ३३ ॥ विष्ठा तथा मूत्रका जिनसे त्याग किया जाता है उन गुदा आदिकी शुद्धिके लिये प्रयोजन मात्र कहिये जितनेसे वारहों छिद्रोंके वसा आदि मलोंके गंध तथा लेपकी शुद्धि हो जाय उतनी मट्टी तथा जल लेना चाहिये अन्य स्मृतियोंसे जाना गया कि, पहिली छः इंद्रियोंकी शुद्धिके लिये मट्टी और जल लेना चाहिये और दूसरे छःकी शुद्धिके लिये केवल जल लेना चाहिये ॥ ३४ ॥

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रं विट् घ्राणकर्णविट् ॥ श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥३५॥ एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ॥ उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥३६॥

भाषा-वसा कहिये देहकी चिकनाई और वीर्य रुधिर मज्जा कहिये शिरके भीतर इकट्ठा हुआ स्नेह मूत्र विष्ठा नाक तथा कानका मैल कफ आंसू आंखोंका कीचड तथा पसीना ये बारह मनुष्योंके शरीरके मैल हैं ॥ ३५ ॥ मूत्र तथा पुरीषके त्याग करनेके पीछे शुद्धता चाहनेवाला पुरुष लिंगमें एकवार जलसमेत मट्टी लगावे और गुदामें तीनि वार और एक बांये हाथमें दश वार लगावे और सात वार दोनों हाथ मिलायके मट्टी लगावे ॥ ३६ ॥

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत् ॥ वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्नंश्च सर्वदा ॥ ३८ ॥

भाषा-यह शौच गृहस्थोंका कहा गया और ब्रह्मचारियोंको इससे दूना करना चाहिये और वानप्रस्थोंको तिगुना और संन्यासियोंको चौगुना करना चाहिये ॥३७॥ मूत्र तथा पुरीषका त्याग करना कहे हुए शौचके पीछे तीन वार आचमन करके इंद्रियोंको अर्थात् नाभिसे ऊपरके छिद्रोंको छुवे और वेदका अध्ययन किया चाहे अथवा अन्न खाना चाहे तो सदा यह विधि करे ॥ ३८ ॥

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥ शारीरं शौचमिच्छन्हि स्त्री शूद्रस्तु सकृत्सकृत् ॥ ३९ ॥ शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम् ॥ वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ॥ १४० ॥

भाषा-देहकी शुद्धिका चाहनेवाला पुरुष पहले तीन वार जलका आचमन करे तिस पीछे दो वार मुख धोवे और स्त्री तथा शूद्र एक वार आचमन करे ॥ ३९ ॥ शास्त्रके अनुसार चलनेवाले और ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले शूद्रोंको महीने महीनेमें मुंडन करना चाहिये और मृतक सूतक आदिमें वैश्यके समान आशौच मानना चाहिये और ब्राह्मणोंका उच्छिष्ट भोजन करना चाहिये ॥ १४० ॥

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गं पतन्ति याः ॥ न श्मश्रूणि गतान्यास्यं न दन्तान्तरधिष्ठितम् ॥ ४१ ॥ स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ॥ भौमिकैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ॥ ४२ ॥

भाषा-मुखमेंसे निकले हुए थूकके छोटे २ बूंद शरीरपर गिरनेसे तथा मुखमें गये हुए मूछोंके बाल और दांतोंकी संधिमें अटका हुआ अन्न अशुद्धताको नहीं करता है ॥ ४१ ॥ औरोंको आचमन करनेके लिये जल देते हुए मनुष्यके पैरोंपर जलके बूंद गिरते हैं वे शुद्ध भूमिमें भरे हुए जलके समान हैं उनसे अशुद्ध नहीं होता है ॥ ४२ ॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथञ्चन ॥ अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ॥४३॥ वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत्॥आचामेदेवं भुक्त्वान्नं स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥४४॥

भाषा-कंधे आदिपर स्थित किसी वस्तुको लिये हुए जो उच्छिष्ट कर छुआ जाय तौ उस वस्तुको लियेही हुए आचमन करनेसे शुद्ध होता है और वह वस्तुभी शुद्ध होती है ॥ ४३ ॥ वमन हुआ होय अथवा विरेचन हुआ होय तो स्नान कर घी खाय और जो भोजनके पीछेही वमन करे तो केवल आचमन करे स्नान तथा घृत भक्षण न करे और मैथुन करके स्नान करे ॥ ४४ ॥

सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वानृतानि च ॥
पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोऽपि सन् ॥४५॥
एष शौचविधिः कृत्स्नो द्रव्यशुद्धिस्तथैव च ॥
उक्तो वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां धर्मान्निबोधत ॥ ४६ ॥

भाषा-सोयके छींकके थूकके झूठ बोलके और जल पीके जो वेद पढा चाहे तो शुद्धभी होनेपर आचमन करे ॥ ४५ ॥ यह ब्राह्मण आदि वर्णोंके जन्म मरण आदिमें दशरात्र आदिकी सब आशौच विधि तथा सब द्रव्योंकी अर्थात् धातु वस्त्र जल आदिकी शुद्धि तुमसे कही अब स्त्रियोंके करने योग्य धर्मोंको सुनिये ॥४६॥

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ॥ न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि ॥ ४७ ॥ बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने॥ पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥४८॥

भाषा-बालकपनमें तरुण अवस्थामें अथवा वृद्ध अवस्थामें स्थित स्त्रीको घरमेंभी कुछ काम स्वाधीन होके न करना चाहिये ॥ ४७ ॥ बालकपनमें पिताके वशमें रहे और तरुण अवस्थामें पतिके आधीन रहे और पतिके मरनेपर पुत्रोंके और जो पुत्र न होंय तो उनके सपिंडोंके और सपिंडभी न होंय तो पिताके पक्षके और जो दोनों पक्ष न होंय तो जाति तथा राजा आदिके आधीन रहे कभी स्त्री स्वतंत्र न होय ॥ ४८ ॥

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः ॥ एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले ॥ ४९ ॥ सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ॥ सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ १५० ॥

भाषा–पिता पति तथा पुत्रोंसे स्त्री कभी पृथक् न होय क्योंकि इनसे अलग रहनेसे कुलटापनको प्राप्त हो पिता तथा पतिके दोनों कुलोंको निंदित करती है ॥ ४९ ॥ सदा प्रसन्न मुख घरके कामोंमें चतुर और कम खरच करनेवाली स्त्रीको होना चाहिये ॥ १५० ॥

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ॥ तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लंघयेत् ॥ ५१ ॥ मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः ॥ प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥ ५२ ॥

भाषा–पिता अथवा पिताकी आज्ञासे उसका भाई जिसको देवे जीवते हुए उस पतिकी सेवा करे और मरे हुएका उल्लंघन न करे अर्थात् अन्य पतिकी इच्छा न करे ॥ ५१ ॥ विवाहमें स्वस्त्ययन कहिये शांतिके मंत्रोंका पढना और ब्रह्माके लिये जो योग होता है सो इन स्त्रियोंके मंगलके लिये होता है अर्थात् इष्टकी प्राप्तिके निमित्त कर्म है और जो प्रथम प्रदान कहिये वाग्दानरूप कर्म है वही पतिके स्वामी होनेका कारण है ॥ ५२ ॥

अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः ॥ सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः ॥ ५३ ॥ विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ॥ उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥ ५४ ॥

भाषा–ऋतुकालमें अथवा ऋतुभिन्नकालमें मंत्रसंस्कार करनेवाला पति इस लोकमें तथा परलोकमें सुख देनेवाला है ॥ ५३ ॥ शीलकरके रहित होय अथवा दूसरी स्त्रीसे प्रीति करनेवाला होय अथवा विद्या आदि गुणों कारि हीन होय तिसपरभी पतिव्रता स्त्रीको पति देवताके समान सेवा करने योग्य है ॥ ५४ ॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ॥ पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ ५५ ॥ पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ॥ पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिदप्रियम् ॥ ५६ ॥

भाषा–जैसे पतिकी किसी स्त्रीके रजोधर्म आदिके योग्यसे उपस्थित न होनेपर दूसरी स्त्रीसे यज्ञकी सिद्धि हो जाती है ऐसे स्त्रियोंकी भर्त्ताके विना यज्ञसिद्धि नहीं होती है और भर्त्ताकी आज्ञा विना व्रत तथा उपवासभी नहीं है किंतु भर्त्ताकी सेवाहीसे स्त्री स्वर्गलोकमें पूजित होती है ॥ ५५ ॥ पतिकी सेवासे प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोककी इच्छा करनेवाली पतिव्रता स्त्री जीवते हुए अथवा मरे हुए पतिका कुछभी अप्रिय न करे मरे हुएका अप्रिय व्यभिचारसे तथा कहे हुए श्राद्धके न करनेसे होता है ॥ ५६ ॥

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ न तु नामापि गृह्णीया-त्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥ ५७ ॥ आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ॥ यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥ ५८ ॥

भाषा-पतिके मरनेपर व्यभिचारकी बुद्धिसे दूसरे पतिका नामभी न ले किन्तु पवित्र फूल मूल फलोंसे थोडा आहार करके देहको क्षीण करे ॥ ५७ ॥ क्षमा-युक्त नियमवाली और पतिव्रताओंके उत्तम धर्मको चाहनेवाली तथा मधु मांस मैथुनके त्यागरूप ब्रह्मचर्यसे शोभित मरणपर्यंत रहे और जो पुत्ररहितभी होय तो पुत्रके लिये परपुरुषकी सेवा न करे ॥ ५८ ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ॥ दिवं गतानि विप्राणा-मकृत्वा कुलसंततिम् ॥ ५९ ॥ मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ॥ स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ १६० ॥

भाषा-बालकपनसे ब्रह्मचारी जिन्होंने विवाह नहीं किये ऐसे सनक वालखिल्य आदि हजारों ब्राह्मण कुलकी वृद्धिके लिये संततिके उत्पन्न किये विनाभी स्वर्गको गये ॥ ५९ ॥ अच्छा है आचार जिसका ऐसी स्त्री भर्ताके मरनेपर परपुरुषसे मैथुनको न करके पुत्ररहितभी स्वर्गको जाती है जैसे वे सनक वालखिल्य पुत्र न होनेपरभी स्वर्गको गये ॥ १६० ॥

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ॥ सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥ ६१ ॥ नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्य-न्यपरिग्रहे ॥ न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ॥ ६२ ॥

भाषा-मेरे पुत्र उत्पन्न होय उससे मैं स्वर्गको जाऊंगी इस लोभसे जो स्त्री भर्ताका उल्लंघन करती है अर्थात् व्यभिचार करती है वह इस लोकमें निंदाको प्राप्त होती है और उस पुत्रसे स्वर्गको नहीं प्राप्त होती है ॥ ६१ ॥ जिससे भर्तासे भिन्न पुरुषसे उत्पन्न वह संतति शास्त्रीय नहीं होती है दूसरी स्त्रीमें उत्पन्न की हुई प्रजा उत्पन्न करनेवालेकी नहीं होती है और अच्छे आचारवाली स्त्रियोंका शास्त्रमें कहीं दूसरा पति नहीं कहा है ॥ ६२ ॥

पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते ॥ निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते ॥ ६३ ॥ व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ॥ सृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥ ६४ ॥

भाषा-अपकृष्ट कहिये क्षत्रिय आदि अपने पतिको छोडकर उत्कृष्ट कहिये

ब्राह्मण आदिका आश्रय लेती है वह लोकमें निंदित होती है और इसका दूसरा भर्ता है ऐसे कही जाती है ॥ ६३ ॥ पराये पुरुषके साथ भोग करनेसे स्त्री लोकमें निंदाको प्राप्त होती है और मरके सृगाली (स्यारी) होती है और कुष्ठ आदि पापरोगों करि पीडित होती है ॥ ६४ ॥

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥ ६५ ॥ अनेन नारी वृत्तेन मनोवाग्देहसंयता ॥ इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥ ६६ ॥

भाषा–जो स्त्री मन वाणी और देहसे संयत हो पतिका उल्लंघन नहीं करती है वह भर्ताके साथ उत्पन्न किये हुए लोकोंको जाती है और सज्जनोंकरि पतिव्रताभी कही जाती है ॥ ६५ ॥ इस स्त्रीधर्मके प्रकारसे कहे हुए आचारसे मन वाणी और कायसे सावधान स्त्री इस लोकमें उत्तम कीर्त्तिको प्राप्त होती है और परलोकमें पतिके साथ प्राप्त किये हुए स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होती है ॥ ६६ ॥

एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् ॥ दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ ६७ ॥ भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि ॥ पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ ६८ ॥

भाषा–दाहके धर्मका जाननेवाला द्विजाति कहे हुए आचार कर युक्त आपसे पहले मरी हुई सवर्णा स्त्रीको श्रौत तथा स्मार्त अग्निसे और यज्ञपात्रोंसे दाह करे॥६७॥ पहले मरी हुई भार्याके लिये अन्त्यकर्ममें दाहके निमित्त अग्नि देके गृहस्थाश्रमकी इच्छा करता हुआ पुत्रके होते वा अनहोते दूसरा विवाह करे और श्रौत तथा स्मार्त अग्नियोंका आधान करे अग्निहोत्रको ग्रहण करे ॥ ६८ ॥

अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ॥
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १६९ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

भाषा–इस तीसरे अध्यायमें कही हुई विधिसे प्रतिदिन पंचयज्ञोंको न छोडे और दूसरे आयुष्यके भागमें विवाह करके गृहस्थके कहे हुए धर्मोंको करता हुआ घरमें वसे ॥ १६९ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ शौचविधिकथनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ॥ वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥ गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥ अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

भाषा-जिसका समावर्त्तन कहिये गृहस्थाश्रमका ग्रहण हुआ है ऐसा स्नातक द्विज कहे हुए प्रकारसे शास्त्रके अनुसार गृहस्थाश्रमको करके निश्चयपूर्वक यथाविधि आगे कहे हुए धर्मसे विशेष कर जितेंद्रिय हो वानप्रस्थ आश्रमको ग्रहण करे ॥ १ ॥ गृहस्थ जब अपनी देहकी त्वचाको शिथिल देखे और वालोंको सपेद देखे और पुत्रके पुत्र उत्पन्न हुआ देखे तब विषयोंमें वैराग्ययुक्त हो वानप्रस्थ आश्रमके लिये वनका आश्रय ले ॥ २ ॥

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ॥ पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥ अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ॥ ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

भाषा-ग्राम्य जो धान जव आदि हैं तिनके आहारको और गौ, घोडा, शय्या, आसन आदि उपकरणोंको छोडि भार्याके रहते साथ जानेकी इच्छा न होय तो पुत्रोंमें राखि और जो साथ जाना चाहें तो उसके साथही वनको जाय ॥ ३ ॥ श्रौत अग्निको तथा उसके उपकरण स्रुक् स्रुवा आदिको लेकर ग्रामसे वनमें निकल जितेंद्रिय हो वनमें वसे ॥ ४ ॥

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ॥ एतान्येव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥ वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा ॥ जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥ ६ ॥

भाषा-मुनियोंके अन्न कहिये नाना प्रकारके नीवार आदि अन्नोंसे और वनमें उत्पन्न हुए पवित्र शाक मूल फलोंसे गृहस्थ कहे हुए इन पंचमहायज्ञोंको शास्त्रके अनुसार करे ॥ ५ ॥ मृगचर्मको अथवा वस्त्रखंडको धारण करे और हारीतने तौ वल्कल आदिकीभी आज्ञा दी है और सायंकाल तथा प्रातःकाल स्नान करे और शिरमें जटा डाढी मूछ तथा नखोंको सदा धारण करे ॥ ६ ॥

यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः ॥ अम्मूलफलभि-

क्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥ ७ ॥ स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ॥ दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥

भाषा–जो भोजन करे उसमेंसे शक्तिके अनुसार बलि तथा भिक्षाको देवे और जल मूल फल तथा भिक्षा देकर आश्रममें आये हुए अभ्यागतोंका पूजन करे ॥७॥ वेदके अभ्यासमें सदा लगा रहे और शीत घाम आदिके दुःखका सहनेवाला और सबोंका उपकार करनेवाला और सावधान मन सदा देनेवाला और सदा दान लेनेकी इच्छाका न रखनेवाला और सब जीवोंपर दया करनेवाला होय ॥ ८ ॥

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ॥ दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥ ९ ॥ ऋक्षेष्ट्याग्रायणं चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत् ॥ उत्तरायणं च क्रमशो दाक्षस्यायनमेव च ॥ १० ॥

भाषा–शास्त्रके अनुसार वैतानिक अग्निहोत्र करे और अमावास्या तथा पूर्णिमा इन पर्वोंमें श्रुति स्मृतिमें कहे हुए दर्शपौर्णमाससे यज्ञोंको न छोडे ॥ ९ ॥ नक्षत्र-इष्टि तथा आग्रयण कहिये नवसस्यकी इष्टि और चातुर्मास्य तथा उत्तरायण और दक्षिणायन श्रौतकर्मोंको क्रमसे करे ॥ १० ॥

वासंतशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ॥ पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥ ११ ॥ देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः ॥ शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयंकृतम् ॥ १२ ॥

भाषा–वसंतऋतुमें तथा शरद् ऋतुमें उत्पन्न हुए और अपने हाथसे लाये हुए पवित्र मुनियोंके अन्नोंसे पुरोडाशचरुको शास्त्रके अनुसार उन २ यज्ञोंकी सिद्धिके लिये करे ॥ ११ ॥ उस वनमें उत्पन्न हुए नीवार आदिसे बने हुए अत्यन्ततासे यज्ञके योग्य हविको देवताओंके लिये देकर बाकी आप खाय और अपने बनाये हुए खारी नोन आदि खाय ॥ १२ ॥

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च ॥ मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्स्नेहांश्च फलसंभवान् ॥१३॥ वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कवकानि च ॥ भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥ १४ ॥

भाषा–स्थल तथा जलमें उत्पन्न हुए शाकोंको और जंगली यज्ञियवृक्षोंके पुष्प मूल फलोंको तथा हिंगोट आदिके फलोंसे निकले हुए स्नेहोंको खाय ॥१३॥ शहत मांस तथा भूमिमें उत्पन्न हुए धरतीके फूलोंको और मालवदेशमें भूस्तृण नाम

शाकको तथा शिग्रुक कहिये सहिजनेको और श्लेष्मातक कहिये लभेरेके फलोंको वर्जित करे ॥ १४ ॥

त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसंचितम् ॥ जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥ १५ ॥ न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित् ॥ न ग्रामजातान्यार्तोऽपि मूलानि च फलानि च ॥ १६ ॥

भाषा-पहले इकट्टे किये हुए नीवार आदि धान्योंको और जीर्ण वस्त्रोंको और शाक मूल फ़लोंको आश्विनमासमें त्याग दे ॥ १५ ॥ वनमेंभी हलसे जुते हुए खेतमें उत्पन्न स्वामी करके छोडे हुएभी धान आदिको न खाय तैसेही ग्राममें विना जूति भूमिमेंभी उत्पन्न लता वृक्षोंके मूल फलोंको भूखाभी वानप्रस्थ न खाय ॥ १६ ॥

अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा ॥ अश्मकुट्टो भवेद्वापि दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥ १७ ॥ सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्माससंचयिकोऽपि वा ॥ षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा ॥ १८ ॥

भाषा-अग्निमें पका हुआ जंगली अन्न और कालमें पके हुए फल आदि अथवा ओखली मूसलको छोडके पत्थरोंसे कूटके कच्चाही खाय अथवा दांतही हैं ओखलीके स्थानमें जिसके ऐसा होय अर्थात् दांतोंहीसे चाविले ॥ १७ ॥ एक दिनके खाने योग्य अथवा एक मासके योग्य अथवा छः महीनेके योग्य अथवा एक वर्षके निर्वाह योग्य नीवार आदि इकट्टा करे ॥ १८ ॥

नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तितः ॥ चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥ १९ ॥ चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्तयेत् ॥ पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीयाद्यवागूं क्वथितां सकृत् ॥ २० ॥

भाषा-सामर्थ्यके अनुसार अन्नको लायके सायंकाल भोजन करे अथवा दिनहीमें अथवा चौथे कालमें भोजन करनेवाला होय सायंकाल प्रातःकालका भोजन मनुष्योंका देवताओंका बनाया हुआ है वहां एक दिन व्रत करके दूसरे दिन संध्याको भोजन करे अथवा अष्टमकालिक कहिये तीनि राति व्रत करके चौथे दिनकी रातिमें भोजन करे ॥ १९ ॥ कृष्णपक्षमें एक २ पिंड घटावे और शुक्लपक्षमें एक एक बढावे इत्यादि ग्यारहवें अध्यायमें वक्ष्यमाण चांद्रायण व्रतोंसे जीवे ॥ २० ॥

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा ॥ कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥ २१ ॥ भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् ॥ स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः ॥ २२ ॥

भाषा-अथवा कालमें पके हुए अग्निसे नहीं पके वृक्षसे आप गिरे हुए फलोंसे जीवे और वैखानस जो वानप्रस्थ है उसके धर्मके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रके मतमें स्थित रहे ॥ २१ ॥ विना बिछौने भूमिमें लोटता हुआ आवे जाय अथवा स्थान आसन आदिमें बैठा रहे और उठे अर्थात् घूमे आवश्यक भोजन आदिको छोडके यह नियम है ऐसेही आगेभी जानिये अथवा पैरोंके अग्रभागसे दिनभर खडा रहे और कुछ काल ठहरा रहे वा कुछ काल बैठा रहे बीचमें फिरे नहीं और सवनोंमें अर्थात् संध्यासमय प्रातःकाल तथा मध्याह्नमें स्नान करे ॥ २२ ॥

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः ॥ आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः ॥ २३ ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितॄन्देवांश्च तर्पयेत् ॥ तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः ॥ २४ ॥

भाषा-अपना तप बढानेके लिये ग्रीष्म कहिये गरमीकी ऋतुमें चारों ओर रक्खी हुई चार अग्नियोंके और ऊपर सूर्यके तेजसे अपने शरीरको तपावे और वर्षाऋतुमें मेघ वर्षनेके समय खुले स्थानमें छाता आदिके विना स्थित होय और हेमंत ऋतुमें गीले वस्त्र पहिरे एक वर्षकी गर्मी जाडा चौमासा ये तीनि ऋतु करके यह एक वर्षका नियममें है ॥२३॥ प्रातःकाल मध्याह्न तथा सायंकालके तीनों स्नानोंमें देवता ऋषि और पितरोंके तर्पणको करता हुआ तथा औरभी पक्ष तथा मासके व्रत आदि तीव्र तप करता हुआ अपने शरीरको सुखावे ॥ २४ ॥

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि ॥ अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥ २५ ॥ अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ॥ शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥ २६ ॥

भाषा-वैखानस शास्त्रके विधानसे भस्म आदिको पीकर श्रौत अग्नियोंको अपने भीतर स्थापित करके लौकिक अग्नि और घरसे रहित हो मौनव्रतको धारण कर फल मूल खाय नीवार आदि न खाय ॥ २५ ॥ सुखके प्रयोजनोंमें अर्थात् स्वादिष्ठ फलोंके खाने और शीत तथा घामके बचानेमें उपाय न करे स्त्रीसे भोग न करे भूमिमें सोवे और रहनेके स्थानोंमें ममता न करे वृक्षोंके नीचे रहे ॥ २६ ॥

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ॥ गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ २७ ॥ ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन् ॥ प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ॥ २८ ॥

भाषा-वानप्रस्थ ब्राह्मणोंसे प्राणोंकी रक्षाके योग्य भिक्षा लावे और उनके न होनेमें अन्य वनके वसनेवाले गृहस्थ ब्राह्मणोंसे लावे ॥ २७ ॥ ग्रामसे लाके ग्रामके

अन्नके आठ ग्रास पत्तोंके दोनेमें अथवा सरवा आदिके खंडमें अथवा हाथोंहीमें लेकर वानप्रस्थ भोजन करे ॥ २८ ॥

एतांश्चान्यांश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ॥ विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ २९ ॥ ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः ॥ विद्यातपोविवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥ ३० ॥

भाषा-वानप्रस्थ इन नियमोंका तथा वानप्रस्थके शास्त्रमें कहे हुए अन्य नियमोंका अभ्यास करे और उपनिषदोंमें पढी हुई ब्राह्मणका प्रतिपादन करनेवाली अनेक श्रुतियोंका अपनी ब्रह्मत्व सिद्धिके लिये ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करे ॥२९॥ जिससे ये उपनिषद् ऋषियों और संन्यासियों तथा वानप्रस्थों करके अद्वैत ब्रह्मके ज्ञान तथा धर्मकी वृद्धिके लिये सेवन किये गये हैं तिससे इनका सेवन करे ॥३०॥

अपराजितां वास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः ॥ आ निपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः ॥ ३१ ॥ आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम् ॥ वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३२ ॥

भाषा-जिसकी चिकित्सा न हो सकती होय ऐसे रोग आदिके उत्पन्न होनेमें अपराजिता जो ईशान्य दिशा है तिसका आश्रय लेके योगमें निष्ठ हो जल तथा पवनका आहार करता हुआ शरीरके गिरनेतक सीधा चला जाय महाप्रस्थान नाम यह मरण शास्त्रमें कहा है इससे विधिके विना मरनेका निषेध है शास्त्रमें कहे हुए-का नहीं ॥ ३१ ॥ इन पहले कहे हुए अनुष्ठानोंमेंसे किसी एकसे शरीरको छोडि दुःखके भयसे रहित हो ब्रह्मलोकमें पूजाको प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष पाता है॥३२॥

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ॥ चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत् ॥ ३३ ॥ आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः ॥ भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥ ३४ ॥

भाषा-जो मरता नहीं है उसके लिये कहते हैं इस भांति वनमें विहार करके अर्थात् नाना प्रकारके कठिन तपोंके करनेसे विषयोंके रागकी शांतिके लिये आयुके तीसरे भागमें कुछ कालतक वानप्रस्थोंके आश्रममें रहके आयुके चौथे भागमें अर्थात् वाकी आयुके समयमें सव भांति विषयोंके संगको छोडि संन्यासाश्रमको धारण करे ॥ ३३ ॥ पहले पहले आश्रमसें आगे आगेके आश्रमसे जायके अर्थात् ब्रह्मचर्यसे गृहस्थाश्रममें और गृहस्थाश्रमसे वानप्रस्थाश्रममें जायके शक्तिके अनुसार गये हुए आश्रमोंका किया है होम जिसने ऐसा भिक्षा तथा वलिदानके वहुत दिनों-

तक करनेसे थका हुआ संन्यासको करता हुआ परलोकमें मोक्षके लाभसे ब्रह्मभूत वडी भारी ऋद्धिको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ अनपाकृत्य मो-
क्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ ३५ ॥ अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चो-
त्पाद्य धर्मतः ॥ इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ ३६ ॥

भाषा–आगेके श्लोकमें कहे हुए तीनि ऋणोंको दूर करके ब्राह्मण मोक्षके अंगरूप संन्यासमें मनको लगावे उन ऋणोंके विना दूर किये जो मोक्ष कहिये चौथे आश्रमको धारण करता है वह नरकमें जाता है ॥३५॥ उन्हीं ऋणोंको दिखाता है उत्पन्न होता हुआ ब्राह्मण तीनि ऋणोंसे ऋणी होता है अर्थात् यज्ञसे देवताओंको और संततिसे पितरोंका तथा वेदके पढनेसे ऋषियोंका यह श्रुतिमें लिखा है इसीसे शास्त्रके अनुसार वेदोंको पढके और पर्वोंमें गमन न करना इत्यादिक धर्मोंसे पुत्रोंको उत्पन्न करके और सामर्थ्यके अनुसार ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंकोभी करके मोक्षके अंगरूप चौथे आश्रममें मनको लगावे ॥ ३६ ॥

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ॥ अनिष्ट्वा चैव यज्ञै-
श्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ ३७ ॥ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेद-
सदक्षिणाम् ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥ ३८ ॥

भाषा–द्विज वेदोंको न पढके और पुत्रोंको न उत्पन्न करके और यज्ञोंसे यजन न करके मोक्षको चाहता हुआ नरकमें जाता है ॥ ३७ ॥ यजुर्वेदके उपाख्यान ग्रंथोंमें कहा हुआ और सर्वस्व है दक्षिणा जिसमें और प्रजापति जिसका देवता ऐसे यज्ञको करके उसकी कही हुई विधिसे अपनेमें अग्निको स्थापित करके वानप्रस्थाश्रमको करके चौथे आश्रममें वास करे ॥ ३८ ॥

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ॥ तस्य तेजोमया लोका
भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३९ ॥ यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्प-
द्यते भयम् ॥ तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ ४० ॥

भाषा–जो सब स्थावर जंगम प्राणियोंको अभय देकर गृहस्थाश्रमसे संन्यासको लेता है ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले उपनिषद्में निष्ठावाले उस पुरुषके तेजसे सूर्य आदिके प्रकाशरहित हिरण्यगर्भ आदिकोंके लोक प्रकाशित होते हैं उनको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ जिस द्विजसे भूतोंको थोडाभी भय नहीं होता है उसके वर्तमानदेहके नाश होनेपर किसीसेभी भय नहीं होता है ॥ ४० ॥

आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ॥ समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ४१ ॥ एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ॥ सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ॥ ४२ ॥

भाषा-घरसे निकला हुआ पवित्र दंड कमंडलु आदि करि युक्त तथा मौनी और प्राप्त हुए कामोंमें अर्थात् किसी करि पहुँचाये हुए स्वादिष्ठ अन्न आदिमें इच्छारहित हो संन्यास धारण करे ॥ ४१ ॥ सब संगरहित एक पुरुषको मोक्षकी प्राप्ति होती है इस बातको अकेलाही सदा मोक्षके लिये विचरे एकही इसके कहनेसे पहले पहिंचाने हुए पुत्र आदिका त्याग कहा गया और असहायवान् कहिये सहायक कोई न होय जो एकाकी विचरता है वह किसीको नहीं छोडता है और न किसीके छोडनेका दुःख पाता है न किसी करि वह छोडा जाता है और न कोई इस करके छोडनेके दुःखको अनुभव कराया जाता है तिससे सर्वत्र ममतारहित सुखके मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ॥ उपेक्षकोऽसंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ ४३ ॥ कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ॥ समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४४ ॥

भाषा-लौकिक अग्निके छूनेसे तथा घरसे रहित और उपेक्षाकारि कहिये शरीरमें रोग आदिके उत्पन्न होनेपर उसके दूर होनेका उपाय न करे और असंकुसुक कहिये स्थिर बुद्धि रहे और मुनि कहिये मौनी हो भाव जो ब्रह्म है तिसमें मनको एकाग्र लगाके वनमें दिनराति वसता हुआ केवल भिक्षाहीके लिये ग्राममें आवे॥४३॥ मट्टीका खपरा आदि भिक्षाका पात्र और वसनेके लिये वृक्षोंके मूल और मोटा फटा वस्त्र कहिये कौपीन कंथा आदि और सर्वोंमें ब्रह्मबुद्धि होनेसे शत्रु मित्रका न होना यह मुक्तिका साधन होनेसे मुक्तका चिह्न है ॥ ४४ ॥

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ॥ कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ ४५ ॥ दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ४६ ॥

भाषा-जीवने और मरनेकी इच्छा न करे किंतु अपने कर्मके आधीन जो मरण काल है तिसकी प्रतीक्षा करे जैसे सेवक अपने सेवनकालके शोधनेकी प्रतीक्षा करता है ॥ ४५ ॥ वाल तथा हाड आदि वचानेके लिये आंखोंसे देखकर भूमिमें पैर रक्खे और वस्त्रसे छानके जल पीवे तथा सत्यसे पवित्र वाणी वोले और निषिद्ध संकल्पोंसे रहित मनसे सदा पवित्रात्मा होय ॥ ४६ ॥

**अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ॥ न चेमं देहमाश्रित्य वै-
रं कुर्वीत केनचित् ॥ ४७ ॥ क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कु-
शलं वदेत् ॥ सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥ ४८ ॥**

भाषा–दूसरेकी कही कठोर बातोंको सहि ले किसीका अपमान न करे और रोग आदिकोंके स्थानमें इस चंचल देहका आश्रय लेकर इसके लिये किसीसे वैर न करे ॥ ४७ ॥ क्रोध करनेवालेके ऊपर क्रोध न करे और दूसरा निंदा करे तौ मधुर वाणी बोले आपभी निंदा न करे और सप्तद्वारावकीर्णा अर्थात् चक्षु आदि पांच बुद्धींद्रिय और मन तथा बुद्धि इन सातों करके ग्रहण किये हुए पदार्थोंके मध्य कुछ वचन न कहे किंतु ब्रह्मही विषयक कहे अनृत कहिये नाश होनेवाले कार्योंके मध्ये वाणीको न उच्चारण करे किंतु अविनाशी ब्रह्मके मध्ये प्रणव तथा उपनिषद्-रूप वाणीका उच्चारण करे ॥ ४८ ॥

**अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ॥ आत्मनैव सहायेन सु-
खार्थी विचरेदिह ॥ ४९ ॥ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गवि-
द्यया ॥ नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ ५० ॥**

भाषा–सदा ब्रह्मके ध्यानमें लगा हुआ और स्वस्तिक आदि योगके आसनमें बैठा हुआ दंड कमंडलु आदिमेंभी विशेषकर अपेक्षारहित और निरामिष कहिये विषयोंकी इच्छारहित अपने देहहीके सहायसे मोक्षके सुखको चाहनेवाला संसारमें विचरे ॥ ४९ ॥ भूकंप आदि उत्पातोंका और नेत्रोंके फडकने आदि निमित्तोंके और अश्विनी आदि नक्षत्रोंके तथा सामुद्रिकसे हाथोंकी रेखाओंके फल कहनेसे और नीतिमार्गके उपदेशसे और शास्त्रका अर्थ कहनेसे कभी भिक्षा पानेकी इच्छा न करे ॥ ५० ॥

**न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः ॥ आकीर्णं भिक्षुकैर्वा-
न्यैरागारमुपसंव्रजेत् ॥ ५१ ॥ क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कु-
सुम्भवान् ॥ विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ५२ ॥**

भाषा–वानप्रस्थोंकरके तथा अन्य खानेवाले ब्राह्मणोंकरके और पक्षियों तथा कुत्तों कारि युक्त घरमें भिक्षाके लिये न जाय ॥ ५१ ॥ केश नख तथा डाढी मूछोंको रखाये हुए और भिक्षापात्र दंड तथा कमंडलुको लिये हुए सब प्राणियोंको पीडा न देता हुआ सदा विचरे ॥ ५२ ॥

अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च ॥ तेषामद्भिः स्मृतं

शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥ ५३ ॥ अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा ॥ एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥

भाषा-सुवर्ण आदि धातुओंको छोडके छेदों करि रहित संन्यासीके भिक्षापात्र होय उन पात्रोंकी यज्ञमें चमसोंके समान जलसे शुद्धि होती है ॥ ५३ ॥ तूंबी काठ मृत्तिका तथा बांस आदिके खंडसे बने हुए संन्यासियोंके भिक्षापात्र होते हैं यह स्वायंभू मनुने कहा है ॥ ५४ ॥

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे ॥ भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥ ५५ ॥ विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ॥ वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ ५६ ॥

भाषा-एक वार प्राण धारणके लिये भिक्षा करे अधिक न करे क्योंकि बहुत भिक्षाके भोजन करनेवाले यतिकी प्रधान धातुके बढनेसे स्त्री आदि विषयोंकी इच्छा होगी ॥ ५५ ॥ रसोईकी धुआँ दूरि होनेपर और मूसलके कूटनेका शब्द बंद होनेपर तथा रसोईकी आगि बुझी होनेपर और गृहस्थतक सबोंके भोजन कर लेनेपर त्याग किये हुए सरावोंमें यति सदा भिक्षाको करे ॥ ५६ ॥

अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् ॥ प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ॥ ५७ ॥ अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः ॥ अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥ ५८ ॥

भाषा-भिक्षा आदिके न मिलनेमें दुःखी न होय और मिलनेमें सुखी न होय प्राणोंके निर्वाह योग्य भोजन किया करे और दंड कमंडलु आदि मात्राओंसेभी यह बुरा है इसको छोडता हूं यह अच्छा है इसको लेता हूं ऐसी बातोंको छोड दे॥५७॥ आदरसमेत भिक्षाके लाभकी सदा निंदा करे अर्थात् ग्रहण न करे जिसे सत्कारपूर्वक भिक्षा लेनेसे देनेवालोंसें स्नेह ममता आदिसे आसन्नमुक्तभी यति जन्मरूप बंधनको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च ॥ ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत् ॥ ५९ ॥ इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ॥ अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ६० ॥

भाषा-थोडे आहारके खानेसे और एकांत स्थानमें रहनेसे रूप आदि विषयोंकारि खींची गई इंद्रियोंको निवृत्त करे अर्थात् विषयोंसे हटावे ॥ ५९ ॥ इंद्रियोंके

रोकनेसे और रागद्वेषके दूर होनेसे और प्राणियोंकी हिंसा न करनेसे मोक्षके योग्य होता है ॥ ६० ॥

अवेक्षेत गतीर्नॄणां कर्मदोषसमुद्भवाः ॥ निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥ ६१ ॥ विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तथाप्रियैः ॥ जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ ६२ ॥

भाषा-शास्त्रमें कहे हुएके न करने और निंदितके करनेरूप कर्मके दोषसे उत्पन्न हुई मनुष्योंकी पशु आदि योनिकी प्राप्तिका और नरकमें गिरनेका और यमलोकमें स्थितका तीव्र खड्गसे काटने आदिसे उत्पन्न श्रुति पुराण आदिमें कही हुई तीव्र पीडाओंका चिंतवन करे ॥ ६१ ॥ प्यारे पुत्र आदिके वियोगको और अनिष्ट कहिये न चाहे हुए हिंसक आदिके मिलनेको और बुढापे करि दबाय लेनेको तथा रोग आदिसे पीडित होने आदिको कर्मके दोषोंसे उत्पन्न चिंतवन करे ॥ ६२ ॥

देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च संभवम् ॥ योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥ ६३ ॥ अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ॥ धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥ ६४ ॥

भाषा-इस देहसे जीवात्माका निकलना अर्थात् मर्मके भेदन करनेवाले बडे रोगोंकरि घिरे हुए और कफ आदि दोषों करि घिरे हुए कंठसे बडे व्यथाका तथा गर्भमें उत्पन्न होनेके बडे दुःखयुक्त कुत्ता स्यार आदिकी नीच करोडों योनियोंमें जानेको अपने कर्मके बंधन चिंतवन करे ॥६३॥ जीवात्माओंको अधर्म कारण दुःख होनेका और धर्म जिस कारण ऐसा अर्थ ब्रह्मका साक्षात् होना तिससे उत्पन्न मोक्षरूप अक्षय ब्रह्मसुखके मिलनेका चिंतवन करे ॥ ६४ ॥

सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ॥ देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ ६५ ॥ दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ॥ समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ६६ ॥

भाषा-योगसे अर्थात् विषयोंसे चित्तकी वृत्तिके रोकनेसे परमात्माके स्थूल शरीर आदिकी अपेक्षासे सबके अंतर्यामी भावसे सूक्ष्मता कहिये अवयवरहित होनेका उसके त्यागसे ऊंच नीच देव पशु आदि शरीरोंमें जीवोंके शुभ अशुभ फल भोगनेके लिये उत्पन्न होनेका चिंतवन करे ॥ ६५ ॥ जिस किसी आश्रममें स्थित उस आश्रमके विरुद्ध आचारसे दूषित होनेपरभी और आश्रमके चिह्नोंसे रहितभी सब भूतोंमें ब्रह्मबुद्धिसे समान दृष्टि होता हुआ धर्मको करे दंड आदि चिह्नोंका धारण

करनाही धर्मका कारण नहीं है किंतु शास्त्रमें कहे हुएका करना यह धर्मकी मुख्यता दिखानेके लिये कहा है कुछ दंड आदि चिह्नोंके त्यागके लिये नहीं कहा है॥ ६६॥

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ॥ न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ ६७ ॥ संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा ॥ शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥ ६८ ॥

भाषा—यद्यपि रीठेके वृक्षका फल जलका निर्मल करनेवाला है तबभी उसके नाम लेनेसे जल निर्मल नहीं होता है किंतु फलके डारनेसे ऐसेही केवल चिह्न धारण करनाही धर्मका कारण नहीं है किंतु कहे हुएका करना ॥ ६७ ॥ शरीरको दुःख होनेपरभी छोटी चींटी आदिकी रक्षाके लिये रातिमें अथवा दिनमें सदा भूमिको देखके विचरे ॥ ६८ ॥

अह्ना रात्र्या च याञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतो यतिः॥ तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान्षडाचरेत् ॥६९॥ प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः॥ व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥७०॥

भाषा—यती रातिदिनमें अज्ञानसे जिन प्राणियोंको मारता है उनके मारनेसे उत्पन्न पाप दूर होनेके लिये स्नान करके छः प्राणायामोंको करे ॥ ६९ ॥ सात व्याहृति और प्रणव करके युक्त पूरक कुंभक रेचक विधिसे किये गये तीनिभी प्राणायाम ब्राह्मणका श्रेष्ठ तप जानना चाहिये ॥ ७० ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ॥ तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥७१॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम्॥ प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान्॥ ७२ ॥

भाषा—जैसे घरियामें रखके तपानेसे सुवर्ण आदि सब धातुओंके मल जल जाते हैं ऐसेही प्राणायामके करनेसे इन्द्रियोंके सब दोष भस्म हो जाते हैं॥ ७१ ॥ प्राणायामोंसे राग आदि द्वेषोंको जलावे और अपेक्षित देशमें परब्रह्म आदिमें मनकी धारणासे पापका नाश करे और प्रत्याहार कहिये विषयोंसे इंद्रियोंके खींचनेसे विषयोंके योगका निवारण करे और ब्रह्मके ध्यानसे जो ईश्वरविषयक नहीं है ऐसे क्रोध लोभ असूया आदि गुणोंको निवारण करे ॥ ७२ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ॥ ध्यानयोगेन संपश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ ७३ ॥ सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ॥ दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ७४ ॥

भाषा-शास्त्रसे जिनका अंतःकरण संस्कारयुक्त नहीं है ऐसे पुरुषोंकरि दुःखसे जानने योग्य ऐसी इस जीवकी ऊंच नीच देव पशु आदिमें जन्मकी प्राप्तिको ध्यानके योगसे कारणसहित भली भांति जाने तिस पीछे ब्रह्मज्ञानमें निष्ठ होय ॥७३॥ तत्वसे ब्रह्मका साक्षात् करनेवाला पुरुष कर्मोंसे नहीं बंधता है और कर्म उसके फिर जन्मके लिये नहीं समर्थ होते हैं कारण यह है कि पहले इकट्ठे किये हुए पाप पुण्यका ब्रह्मज्ञानसे नाश हो जाता है और दर्शन जो ब्रह्मका साक्षात् करना है तिससे रहित संसार कहिये जन्ममरणके प्रबंधको प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥

अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ॥ तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥ ७५ ॥ अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ॥ चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ७६ ॥

भाषा-निषिद्ध हिंसाके बचानेसे और विषयोंके संगसे इंद्रियोंके रोकनेसे और वेदमें कहे हुए नित्य कर्मोंके करनेसे और तप जो हैं उपवास चांद्रायण आदि तिनके करनेसे इस लोकमें उसके पद अर्थात् ब्रह्ममें अत्यन्त लयको प्राप्त होते हैं ॥ ७५ ॥ हड्डीही जिसमें थूनीके समान हैं और स्नायुरूपी रस्सियोंसे बंधा हुआ है मांस तथा रुधिरसे लिपा हुआ है और चर्मसे मढा हुआ मूत्र तथा विष्ठासे भरा हुआ है इससे दुर्गंधयुक्त है ॥ ७६ ॥

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ॥ रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥ ७७ ॥ नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा ॥ तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद् ग्राहाद्विमुच्यते ॥ ७८ ॥

भाषा-बुढापा तथा शोक करि युक्त और नाना प्रकारके रोगोंका स्थान और आतुर कहिये क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदिमें घबरानेवाला तथा रजोगुण करके युक्त और अनित्य कहिये नाश होनेवाले और पृथिवी आदि पांच भूतोंसे बने हुए इस आवास कहिये जीवके घररूप देहको छोड दे जैसे फिर देह न धारण करने पडे सो करे ॥ ७७ ॥ जो कर्माधीन देहके पातको देखता है वह नदीके किनारेको जैसे वृक्ष छोड देता है अर्थात् अपने गिरनेको नहीं जानता हुआ नदीके वेग कर गिराया जाता है तैसे देहको छोडता हुआ ज्ञान तथा कर्मकी अधिकतासे भीष्म आदिकोंके समान स्वाधीन मृत्यु हो वह जैसे पक्षी अपनी इच्छासे वृक्षको छोडि देता है तैसे इस देहको छोडता हुआ ग्राहसे मानों ऐसे संसारके कष्टसे छूटि जाता है ॥ ७८ ॥

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ॥ विसृज्य ध्यानयोगेन

ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥ ७९ ॥ यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ॥ तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ ८० ॥

भाषा-ब्रह्मके जानने रूप अपने प्रियके हित करनेवालेंमें सुकृतको और अप्रिय कहिये अनहित करनेवालेंमें दुष्कृत जो पाप है ताहि राखिके ध्यानके योगसे नित्य ब्रह्ममें लीन होता है ॥ ७९ ॥ जब परमार्थसे विषयोंमें दोषोंकी भावना करके सब विषयोंमें अभिलाषरहित होता है तब इस लोकमें संतोषसे उत्पन्न सुख होता है और परलोकमें अविनाशी मोक्षसुखको प्राप्त होता है ॥८० ॥

अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगान् शनैः शनैः ॥ सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ८१ ॥ ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम् ॥ न ह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते ॥ ८२ ॥

भाषा-पुत्र स्त्री वित्त आदिमें ममतारूप सब संगोंको छोडके द्वंद्व जो मान अपमान आदि हैं तिनसे छूटि कर इस कहे हुए ज्ञानकर्मके करनेसे ब्रह्ममें आत्यंतिक लयको प्राप्त होता है अर्थात् तद्रूप हो जाता है ॥ ८१ ॥ जो यह पुत्र पौत्र आदिकी ममताका त्याग और मान अपमान आदिकी हानि कही सो सब यह ध्यानिक है अर्थात् आत्माका परमात्मरूपसे ध्यान करने करके होता है जब आत्माको परमात्मा यह जानता है तब सब सत्वोंसे विशेष नहीं होता है अर्थात् उसका कहीं ममत्व और मान अपमान आदि नहीं होता है और जो जीवका परमात्मापन कहा है उसको जो नहीं जानता है वह ममताका त्याग तथा मान अपमान आदिकी हानिका और मोक्षरूप ध्यानके फलको नहीं प्राप्त होता है ॥ ८२ ॥

अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च ॥ आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ॥ ८३ ॥ इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् ॥ इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ ८४ ॥

भाषा-यज्ञके मध्ये जो वेद प्रवृत्त है तथा देवताओंके मध्ये जो प्रवृत्त है तथा जीवके मध्ये जो वेदांतमें " सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म " इत्यादिक ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले वेद हैं उसको सदा जपे ॥ ८३ ॥ यह वेदनाम ब्रह्म उसका अर्थ न जाननेवालोंकीभी शरण कहिये गति है अर्थात् पाठमात्रभी पापके क्षयका कारण है तौ स्वर्ग तथा मोक्षके चाहनेवाले जो उसके अर्थकेज्ञाता हैं उनका उनके उपायका उपदेश करने और प्राप्तिका कारण होनेसे यही शरण कहिये गति है ॥ ८४ ॥

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ॥ स विधूयेह पाप्मानं

परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ८५ ॥ एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मनाम् ॥ वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत ॥ ८६ ॥

भाषा–इस क्रमसे कहे हुए अनुष्ठानसे जो संन्यासको धारण करता है वह इस लोकमें पापको छोडकर परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ कुटीचक बहूदक हंस और परमहंस है संज्ञा जिनकी ऐसे चारों यती कहिये संन्यासियोंका साधारण धर्म तुमसे कहा अब यतिविशेष जे कुटीचक नाम है जो वेदमें कहे हुए अग्निहोत्र आदि कर्मके त्यागी हैं उनके मुख्य वक्ष्यमाण कर्मसंबंधको सुनिये ॥ ८६ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥८७॥ सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः ॥ यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥ ८८ ॥

भाषा–ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी ये पृथक् आश्रम कहे ये चारों गृहस्थसे उत्पन्न हैं ॥८७॥ शास्त्रके अनुसार सेवन किये हुए ये चारों आश्रम कहे हुएके अनुसार करनेवाले ब्राह्मणको मोक्षरूप गतिको पहुँचाते हैं ॥ ८८ ॥

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः॥गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्त्ति हि ॥ ८९ ॥ यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ॥ तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥९०॥

भाषा–इन सब ब्रह्मचारी आदिकोंमें गृहस्थ अग्निहोत्र आदिके करनेसे मनु आदिकोंने श्रेष्ठ कहा है जिससे यह गृहस्थ ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और यती इन तीनोंको भिक्षा देनेसे पालन करता है इससेभी यह श्रेष्ठ है॥८९॥जैसे सब नदी नद गंगा शोण आदि समुद्रमें अवस्थितिको प्राप्त होते हैं ऐसे गृहस्थसे अन्य सब आश्रमी गृहस्थके आधीन जीवन होनेसे उसके समीप अवस्थितिको प्राप्त होते हैं ॥ ९० ॥

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ॥ दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥९१॥ धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ९२ ॥

भाषा–इन ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमी द्विजों करिके दश प्रकारका है स्वरूप जिसका ऐसा धर्म यत्नसे सदा करने योग्य है ॥ ९१ ॥ धृति कहिये संतोष और क्षमा कहिये दूसरे कारि अपकार करनेपरभी उसका बदलेका अपकार न करना और दम कहिये विकारके कारण विषयके निकट होनेपरभी मनका नहीं बिगडना और अस्तेय कहिये अन्यायसे पराये धनका न लेना और शौच कहिये मट्टी तथा जलसे

देहका शुद्ध करना और इंद्रियनिग्रह कहिये विषयोंसे चक्षु आदिका रोकना और धी कहिये शास्त्र आदिके तत्त्वका ज्ञान और विद्या कहिये आत्मज्ञान और सत्य कहिये यथार्थ कहना और अक्रोध कहिये क्रोधका कारण होनेपरभी क्रोध न होना यह दश प्रकारका धर्मका स्वरूप है ॥ ९२ ॥

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ॥ अधीत्य चानुवर्त्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ९३ ॥ दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः ॥ वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥ ९४ ॥

भाषा-जो ब्राह्मण ये दश प्रकारके धर्मस्वरूपोंको पढते हैं और पढकर आत्मज्ञानकी सहायतासे अनुष्ठान करते हैं वे ब्रह्मज्ञानके उत्कर्षसे मोक्षरूप परमगतिको प्राप्त होते हैं ॥९३॥ कहे हैं लक्षण जिसके ऐसे दश प्रकारके धर्मको सावधान मनसे करता हुआ गृहस्थकी अवस्थामें उपनिषद् आदिके अर्थके अध्ययन धर्मोंको गुरुके मुखसे सुनिके देव आदि तीनि ऋणोंका शोधन कर संन्यासको करे ॥ ९४ ॥

संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन् ॥ नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् ॥ ९५ ॥ एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमोऽस्पृहः ॥ संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ९६ ॥

भाषा-गृहस्थ करि करने योग्य अग्निहोत्र आदि कर्मोंको छोडकर विना जाने हुए जीवोंके वध आदिसे उत्पन्न हुए पापोंको प्राणायाम आदिसे नाश करता हुआ जितेंद्रिय हो उपनिषदोंका ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करि पुत्रके घरमें पुत्र कर दिये हुए भोजन वस्त्रसे जीविकाकी चिंतारहित हो सुखसे वसे कुटीचकका यही मुख्य धर्म कहा है ॥ ९५ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे वर्तमान अग्निहोत्र आदि गृहस्थके कर्मोंका त्याग कर आत्माका साक्षात्कार स्वरूप कार्य है प्रधान जिसके ऐसा और बंधका कारण होनेसे स्वर्ग आदिकीभी इच्छारहित संन्यास धर्मसे पापोंको नाश कर ब्रह्मके साक्षात्कारसे मोक्षरूप परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ॥
पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्मं निबोधत ॥ ९७ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

भाषा-ऋषियोंको संबोधन देकर भृगुजी कहते हैं कि, तुमसे यह ब्राह्मणका क्रियाकलाप धर्म कहा उसीका ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ आदिके भेदसे परलोकमें अक्षय चार प्रकारका फल कहा, अब राजसंबंधी धर्मोंको सुनिये इस श्लोकमें तो

ब्राह्मणको चारों आश्रमोंका उपदेश होनेसे और " ब्राह्मणः प्रव्रजेत् " यह पहले कहा है तिससे ब्राह्मणहीका संन्यासमें अधिकार है ॥ ९७ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ॥ संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥१॥ ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि ॥ सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥ २ ॥

भाषा-राजा शब्द यहां क्षत्रिय जातिहीका कहनेवाला नहीं है किंतु जिसको राज्यमें अभिषेक हुआ है और जो पुरका पालन करनेवाला है उसका वाची है इसीसे "यथावृत्तो भवेन्नृपः" अर्थात् जैसे आचारवाला राजा होय उसके करने योग्य धर्मोंको कहेंगे और जिस प्रकारसे राजाको प्रभुने उत्पन्न किया इत्यादिसे उसकी उत्पत्ति और जैसे दृष्ट अदृष्ट फलकी संपत्ति है उस सबको कहेंगे ॥ १ ॥ ब्रह्म जो वेद है तिसकी प्राप्तिके लिये शास्त्रके अनुसार उपनयन संस्कारको प्राप्त जो क्षत्रिय है उसको शास्त्रके अनुसार अपने सब देशकी रक्षा नियमसे करनी चाहिये इससे यह दिखाया गया कि, क्षत्रियही मुख्य राज्यका अधिकारी है ॥ २ ॥

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् ॥ रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥ ३ ॥ इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ॥ चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥ ४ ॥

भाषा-जिससे राजा रहित जगत्को भयसे सब ओरोंमें चलायमान होनेपर इस सब चर अचरकी रक्षाके लिये राजाको उत्पन्न किया तिससे राजाको रक्षा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ इंद्र, पवन, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चंद्र और कुबेर इन सबोंके सारभूत अंशोंको खींचिकरि प्रभुने राजाको बनाया ॥ ४ ॥

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ॥ तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा॥ ५ ॥ तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च ॥ न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥ ६ ॥

भाषा-जिससे इंद्र आदि श्रेष्ठ देवताओंके अंशसे राजा उत्पन्न किया गया है

तिससेही राजा सब प्राणियोंसे पराक्रममें अधिक होता है ॥ ५ ॥ यह राजा अपने तेजसे सूर्यके समान देखनेवालोंकी आखों और मनको तपाता है पृथ्वीमें इस राजाको कोई सामनेसे नहीं देख सकता है ॥ ६ ॥

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् ॥ स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥ ७ ॥ बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ॥ महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ ८ ॥

भाषा-ऐसे अग्नि आदि पहले कहे हुए देवताओंके अंशसे उत्पन्न होने और उनका कर्म करनेसे वह राजा शक्तिकी अधिकतासे अग्नि आदिका रूप होता है ॥ ७ ॥ मनुष्य ऐसा समझके बालकभी राजा अपमानके योग्य नहीं है जिससे यह कोई बडी देवता मनुष्यके रूपसे स्थित है ॥ ८ ॥

एकमेव दहत्यग्निर्नरं दुरुपसर्पिणम् ॥ कुलं दहति राजाग्निः सपशुद्रव्यसंचयम् ॥ ९ ॥ कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः ॥ कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः ॥ १० ॥

भाषा-जो असावधानीसे अग्निके समीप जाता है वह दुरुपसर्पी कहाता है उस एकको अग्नि जलाता है उसके पुत्र आदिको नहीं और क्रोधित हुआ राजारूप अग्नि पुत्र, स्त्री, भाई आदि सब कुलको और गौ घोडा आदिको सुवर्ण आदि धनसंचयसमेत दोषीको मारता है ॥ ९ ॥ वह राजा प्रयोजनकी अपेक्षासे देश काल तथा अपनी शक्तिको देखि कार्यकी सिद्धिके लिये तत्त्वसे वारंवार वहुतसे रूपोंको करता है और शक्तिके न होनेपर क्षमा करता है और शक्तिको पाके उखाड देता है ॥ १० ॥

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे ॥ मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः ॥ ११ ॥ तं यस्तु द्वेष्टि संमोहात्स विनश्यत्यसंशयम् ॥ तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः ॥ १२ ॥

भाषा-जिसकी प्रसन्नतामें वहुतसी लक्ष्मी होती है इससे लक्ष्मीकी इच्छावालेको राजा सेवन करने योग्य है और जिसके पराक्रममें विजय होता है और जिसके क्रोधमें मृत्यु वसता है अर्थात् जिसपर क्रोध करता है उसको मारता है तिससे जो पुरुष जीवना चाहे वह राजाको क्रोधित न करे जिससे वह राजा सूर्य अग्नि और चंद्रमा आदिके तेजको धारण करता है ॥ ११ ॥ मूर्खतासे जो उस राजासे द्वेष करता है अर्थात् उसको अप्रसन्न करता है वह राजाके क्रोधसे निश्चय नाशको प्राप्त होता है जिसे राजा उसके नाशमें मन लगाता है ॥ १२ ॥

तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नराधिपः ॥ अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ॥ १३ ॥ तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ॥ ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः ॥ १४ ॥

भाषा-जिससे राजा सर्व तेजोमय है तिससे अपेक्षितोंमें जिस यज्ञको शास्त्रसे करने योग्य निश्चय करता है उसको स्थापित करता है उस धर्मका उल्लंघन न करे ॥ १३ ॥ उस राजाकी प्रयोजन सिद्धिके लिये सब प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले धर्मस्वरूप पुत्र दंडको ब्रह्मके केवल तेजसे बनाया ब्रह्माने पहले पंचभूतोंसे बने हुए देहको नहीं बनाया ॥ १४ ॥

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥ १५ ॥ तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः ॥ यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु ॥ १६ ॥

भाषा-उस दंडके भयसे स्थावर जंगम सब प्राणी भोग करनेको समर्थ होते हैं और जो दंड न होता तो बलवान् दुर्बलके धन दारा आदिके लेनेमें और उससे बलवान्को उसके तो किसीकाभी भोग सिद्ध न होता और वृक्ष आदि स्थावरोंके काटनेमें भोगकी सिद्धि न होती तैसेही सज्जनोंकोभी नित्य नैमित्तिक अपने धर्मका करना योग्य हुआ न करनेमें यमयातना कहिये दंडके भयसेही ॥ १५ ॥ उस दंड तथा देश काल शक्ति और विद्या आदिको और जिस अपराधमें जो दंड योग्य होय इत्यादिको शास्त्रके अनुसार तत्वसे समझके अपराधियोंको दंड दे ॥ १६ ॥

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः ॥ चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥ १७ ॥ दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ॥ दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ १८ ॥

भाषा-वही दंड वास्तवमें राजा है और वही पुरुष है और सब स्त्रियां हैं और वही नेता कहिये सबके कार्योंका प्राप्त करनेवाला और वही शासिता कहिये आज्ञा देनेवाला और वही चारों आश्रमोंका जो धर्म है उसके प्रतिपादन करनेमें प्रतिभू जो जमानत करनेवाला है उसके समान मुनियोंने कहा है ॥ १७ ॥ दंड सब प्रजाओंका शासन करता है और दंडही सब प्रजाओंकी रक्षा करता है और सबोंके सोनेपर दंडही जागता है अर्थात् उसके भयसे चोर आदि नहीं आते हैं और दंडहीको धर्मका कारण होनेसे दंडहीको धर्म जानते हैं यहां कार्यमें कारणका उपचार और इस लोक तथा परलोकके धर्म दंडहीके भयसे किये जाते हैं ॥ १८ ॥

समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः ॥ असमीक्ष्य प्रणी-
तस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ १९ ॥ यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं द-
ण्ड्येष्वतन्द्रितः ॥ शूले मत्स्यानिवाभक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तराः ॥२०॥

भाषा-शास्त्रकी रीति भली भांति विचारके अपराधके अनुसार देह धन आदिमें किया गया दंड सब प्रजाओंको प्रीतियुक्त करता है और विना विचारके लोभ आदिसे किया हुआ सब देश धन पुत्र आदिकोंका नाश कर देता है ॥१९॥ जो राजा आलस्यरहित होके दंड न दे तो बलवान् दुर्बलोंको ऐसे मारे जैसे शूलमें छेदिके मछलियोंको भूंजते हैं ॥ २० ॥

अद्यात्काकः पुरोडाशं श्वा च लिह्याद्धविस्तथा ॥ स्वाम्यं च न स्या-
त्कस्मिंश्चित्प्रवर्त्तेताधरोत्तरम् ॥२१॥ सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो
हि शुचिर्नरः ॥ दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते ॥ २२ ॥

भाषा-जो राजा दंड न दे तो यज्ञोंमें सब प्रकारसे हविके अयोग्य कौआ पुरोडाश जो यज्ञभाग है तिसे खाय जाय तैसेही कुत्ता खीर आदि हविको चाटि जाय और किसीका कहीं अधिकार न होय क्योंकि बलवान् उसको छीन ले और ब्राह्मण आदि वर्णोंमें जो नीच शूद्र आदि हैं वेही मुख्य हो जांय ॥ २१ ॥ दंड करि नियममें स्थापित किया गया सब लोक सन्मार्गमें स्थित रहता है स्वभावसे शुद्ध मनुष्य कठिनतासे मिलता है तैसेही यह सब जगत् दंडहीके भयसे आवश्यक भोजन आदिके भोगमें समर्थ होता है ॥ २२ ॥

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतगोरगाः ॥ तेऽपि भोगाय कल्पन्ते
दण्डेनैव निपीडिताः ॥ २३ ॥ दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसे-
तवः ॥ सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥ २४ ॥

भाषा-इंद्र, अग्नि, सूर्य, वायु आदि देवता तथा दानव गंधर्व राक्षस पक्षी और सर्पभी जगदीश्वरके परमार्थ भयसे पीडितही बरसने आदिके उपकारके लिये प्रवृत्त होते हैं ॥२३॥ दंडके न करनेसे अथवा अनुचित करनेसे ब्राह्मण आदि वर्ण आपसमें स्त्रीगमन करनेसे वर्णसंकर हो जाय और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष है फल जिनका ऐसे सब शास्त्रोंके नियम नष्ट हो जांय और चोरी तथा साहस आदिसे दूसरेका अपकार करनेसे सब लोकमें उपद्रव उत्पन्न हो जाय ॥ २४ ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ॥ प्रजास्तत्र न मुह्यं-
ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥२५॥ तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्य-

वादिनम् ॥ समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ २६ ॥

भाषा–जिस देशमें शास्त्रके प्रमाणसे जाना हुआ श्यामवर्ण लाल जिसके नेत्र ऐसी है देवता जिसकी ऐसा दंड विचरता है वहां प्रजा व्याकुल नहीं होती है जो दंड देनेवाला विषयके अनुरूप दंडको भली भांति जानता होय ॥ २५ ॥ सत्य बोलनेवाले और विचारके करनेवाले तथा तत्त्व अतत्त्वके विचारमें उचित बुद्धिसे शोभायमान और धर्म अर्थ कामके जाननेवाले अभिषेक आदि गुणोंकारि युक्त राजाको मनु आदि दंडका प्रवर्त्तक अर्थात् चलानेवाला कहते हैं ॥ २६ ॥

तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते ॥ कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥ २७ ॥ दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चा-कृतात्मभिः ॥ धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥ २८ ॥

भाषा–उस दंडको भली भांति प्रवृत्त करता हुआ राजा धर्म अर्थ और कामसे वृद्धिको प्राप्त होता है और जो विषयकी इच्छा रखनेवाला तथा विषम क्रोध करनेवाला क्षुद्र तथा छलका ढूंढनेवाला राजा होता है वह अपनेही किये हुए दंड करके मंत्री आदिके कोपसे अथवा अधर्मसे नष्ट किया जाता है ॥२७॥ दंड अति उत्कृष्ट तेजस्वरूप है और अपने शास्त्र कहिये राजनीति करि जिसके आत्माका संस्कार नहीं है ऐसे पुरुष करि दुःखसे धारण किया जाता है इससे राजधर्म रहित राजाहीको पुत्रबंधुसमेत नाश करता है ॥ २८ ॥

ततो दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् ॥ अंतरिक्षगतांश्चैव मुनीन् देवांश्च पीडयेत् ॥२९॥ सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृत-बुद्धिना ॥ न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ३० ॥

भाषा–दोष आदिकोंकी अपेक्षा विना जो दंड किया जाता है वह बंधुसमेत राजाके नाशके पीछे धन्व आदि दुर्गको और राष्ट्र कहिये देशको तथा स्थावरजंगम समेत पृथ्वी लोकको और हविके न देनेके कारण आकाशमें स्थित ऋषियों तथा देवताओंको पीडित करता है ॥ २९ ॥ मंत्री सेनापति और पुरोहित आदिकी सहायतासे हीन मूर्ख लोभी और जिसकी बुद्धिका शास्त्रसे संस्कार नहीं हुआ है अर्थात् जिसने नीतिशास्त्र नहीं पढा है और जो विषयोंमें लगा हुआ है ऐसे राजा करि न्यायसे दंड नहीं दिया जा सक्ता है ॥ ३० ॥

शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा ॥ प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३१ ॥ स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्भृशदण्ड-

श्च शत्रुषु ॥ सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥ ३२ ॥

भाषा-द्रव्य आदिकी शुद्धतासे जो युक्त है और जिसकी प्रतिज्ञा सत्य है और जो शास्त्रसे व्यवहारको करता है और जिसके सहायक मंत्री आदि अच्छे हैं और जो तत्वको जानता है ऐसा राजा दंड कर सकता है ॥ ३१॥ अपने देशमें शास्त्रकी रीतिसे व्यवहार करनेवाला होय और शत्रुओंमें तेज दंड देनेवाला होय और स्वभावसे स्नेहके स्थान मित्रोंमें कुटिल न होय और थोडा अपराध करनेपरभी ब्राह्मणोंमें क्षमायुक्त होय ॥ ३२ ॥

एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेनापि जीवतः ॥ विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥ ३३ ॥ अतस्तु विपरीतस्य नृपतेरजितात्मनः॥ संक्षिप्यते यशो लोके घृतबिन्दुरिवाम्भसि ॥ ३४ ॥

भाषा-शिलोंच्छवृत्तिसेभी जीविका करनेवाला अर्थात् जिसके द्रव्यका भंडार खाली हो गया है ऐसेभी उक्त प्रकारसे चलनेवाले राजाकी कीर्ति जलमें तेलकी बूंदके समान लोकमें फैल जाती है ॥३३॥ कहे हुए आचारसे विपरीत आचारवाले अजितेंद्रिय राजाकी कीर्ति जलमें घीकी बूंदके समान लोकमें सकुडि जाती है ॥ ३४ ॥

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ॥ वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ॥ ३५ ॥ तेन यदसभृत्येन कर्तव्यं रक्षता प्रजाः ॥ तत्तद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ३६ ॥

भाषा-क्रमसे अपने २ धर्मोंको करनेवाले ब्राह्मण आदि सब वर्णों तथा ब्रह्मचारी आदि आश्रमोंकी रक्षा करनेवाला राजा विधाताने उत्पन्न किया है तिससे उनकी रक्षा न करता हुआ राजा प्रायश्चित्ती होता है इससे यह सूचित हुआ कि, अपने धर्मके त्यागियोंकी न रक्षा करनेमेंभी राजा प्रायश्चित्ती नहीं होता है ॥ ३५ ॥ प्रजाओंकी रक्षा करते हुए मंत्रीसमेत राजाको जो जो कर्त्तव्य है वह सब तुमसे कहेंगे ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः ॥ त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषां च शासने ॥ ३७ ॥ वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन् ॥ वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते ॥ ३८ ॥

भाषा-प्रतिदिन प्रातःकाल उठके ऋक्, यजु, साम नाम तीनों विद्याओंके ग्रंथोंके अर्थ जाननेवाले और नीतिशास्त्रके ज्ञाता ब्राह्मणोंका सेवन करे अर्थात्

उनकी आज्ञासे काम करे ॥ ३७ ॥ अवस्था तथा तपस्या आदिसे वृद्ध और अर्थ तथा ग्रंथसे वेदके जाननेवाले और बाहर भीतर द्रव्य आदिसे शुद्ध ऐसे ब्राह्मणोंको सदा सेवन करे जिससे वृद्धका सेवन करनेवाला सदा हिंसा करनेवाले राक्षसों कर-केभी पूजा जाता है अर्थात् वेभी उसका हित करते हैं और मनुष्य तो बहुतही हित करते हैं ॥ ३८ ॥

तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयं विनीतात्मापि नित्यशः ॥ विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित् ॥३९॥ बहवोऽविनयान्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः ॥ वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ॥४०॥

भाषा–स्वाभाविक बुद्धि तथा अर्थशास्त्र आदिके ज्ञानसे नम्रभी अधिक नम्रताके लिये उनसे विनयका अभ्यास करे जिससे नम्र राजाका कभी नाश नहीं होता है ॥ ३९ ॥ हाथी घोडा धनके भंडार आदि सामग्री करि युक्तभी राजा विनयरहित होनेसे नष्ट हो गये और सामग्रीहीन वनके रहनेवालेभी बहुतसे विनय कर राज्यको प्राप्त हुए ॥ ४० ॥

वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः ॥ सुदासो यवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥ ४१ ॥ पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव च ॥ कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥ ४२ ॥

भाषा–वेन तथा नहुष राजाभी और यवनका पुत्र सुदास नाम तथा सुमुख और निमि ये अविनयसे नाशको प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ पृथु तथा मनुने विनयसे राज्य पाया और कुबेर विनयसे धनके स्वामी हुए और गाधिके पुत्र विश्वामित्रने क्षत्रिय होनेपरभी उसी शरीरसे ब्राह्मणत्व पाया ॥ ४२ ॥

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥ आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ॥४३॥ इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्॥जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः॥४४

भाषा–त्रिवेदीरूप विद्याके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे तीनों वेदोंको ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करे और शाश्वती कहिये सदासे चली आई हुई नीतिविद्या जो अर्थशास्त्र है तिसको उसके जाननेवालोंसे सीखे तथा युक्ति और प्रत्युत्तरमें सहायता देनेवाली आन्वीक्षिकी कहिये तर्कविद्याको तथा उदय और दुःखमें हर्ष विषादकी शांत करनेवाली ब्रह्मविद्याको सीखे और वाणिज्य पशुपालन आदि वार्त्ताको और उसके आरंभ धनके उपायार्थोंको उनके जाननेवाले कर्षक आदिकोंसे सीखे ॥४३॥

चक्षु आदि इंद्रियोंको विषयोंमें आसक्त होनेसे रोकनेमें सदा यत्न करे क्योंकि जितेंद्रिय राजा सदा प्रजाओंको वशमें रखनेके लिये समर्थ होता है ॥ ४४ ॥

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ॥ व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥ कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ॥ वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥ ४६ ॥

भाषा—आदिमें सुख और अंतमें दुःख देनेवाले दश कामके और आठ क्रोधके व्यसनोंको यत्नसे त्याग करे ॥ ४५ ॥ जिससे कामके व्यसनोंमें प्रसक्त कहिये लगा हुआ राजा धर्म तथा अर्थसे हीन हो जाता है और क्रोधके व्यसनोंमें प्रसक्त प्रकृति कोपसे देहके नाशको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ॥ तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥४७॥ पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ॥ वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ ४८ ॥

भाषा—उन व्यसनोंको नामसे दिखाते हैं मृगया कहिये अहेर और अक्ष कहिये जुआ खेलना और सब कामोंकी नाश करनेवाली दिनकी नींद और पराये दोषका कहना तथा स्त्रीका भोग और मद्यपानसे उत्पन्न मद और तौर्यत्रिक कहिये नाचना गाना वजाना आदि और वृथा भ्रमण करना यह दशका गण काम जो सुखकी इच्छा है उससे उत्पन्न है ॥४७॥ पैशुन्य कहिये अज्ञात दोषका प्रगट करना और साहस कहिये बंधन आदिसे दंड देना और द्रोह कहिये छलसे मारना और ईर्षा कहिये दूसरेके गुणोंका न सहना और असूया कहिये पराये गुणोंमें दोषोंका प्रगट करना और अर्थदूषण कहिये द्रव्यका ले लेना तथा देनेयोग्यको न देना और वाग्दंड कहिये गाली देना और पारुष्य कहिये ताडन आदि यह आठका गण क्रोधसे उत्पन्न जानिये ॥ ४८ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ॥ तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ४९ ॥ पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ॥ एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ ५० ॥

भाषा—जिसको कामसे तथा क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोंके गणका कारण स्मृतियोंके वनानेवाले जानते हैं उस व्यसनके कारणरूप लोभको यत्नसे त्याग करे जिससे ये दोनों गण लोभसे उत्पन्न होते हैं कहीं धनके लोभसे और कहीं दूसरे प्रकारके लोभसे ॥ ४९ ॥ मद्यका पीना फांसोंसे खेलना स्त्रीका भोग और मृगया

काहिये अहेर क्रमसे पढे हुए ये चारि कामसे उत्पन्न व्यसनोंमेंसे बहुत दोषयुक्त होनेसे इन चारोंको अतिशय करके दुःखका कारण जाने ॥ ५० ॥

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ॥ क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥ ५१ ॥ सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः ॥ पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥ ५२ ॥

भाषा-क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोंके गणमें दंड देना वाणीकी कठोरता तथा अर्थ दूषण इन तीनोंको बहुत दोषयुक्त होनेसे सदा अधिक दुःख देनेवाले जाने ॥ ५१ ॥ काम तथा क्रोधसे उत्पन्न इस मद्यपान आदि सात व्यसनोंके गण जो सब राजमंडलमें बहुधा स्थित हैं उसमेंसे प्रशस्त चित्तवाला राजा पहले पहलेको अगले अगलेसे अति कठिन जाने सोई कहते हैं जैसे जुवासे मद्यका पीना अतिकष्ट देनेवाला है क्योंकि मद्य पीनेसे संज्ञा न रहनेके कारण इच्छापूर्वक चेष्टा करनेसे देह धन आदिके बिगाडनेवाले दोष होते हैं और जुआमें तो धन आता है अथवा जाता है और स्त्रीव्यसनसे जुआ अति कष्टका देनेवाला है जुआमें वैरका उत्पन्न होना आदि नीतिशास्त्रके कहे हुए दोष होते हैं और मूत्रपुरीष आदि वेगोंके रोकनेसे रोगकी उत्पत्ति होती है और स्त्रीव्यसनमें फिर संतानकी उत्पत्ति आदि गुणोंका योगभी है और मृगया तथा स्त्रीका व्यसन इन दोनोंमें स्त्रीव्यसन दुष्ट है उसमें कार्योंका नहीं देखना और कालके उल्लंघन करनेसे धर्मलोप आदि दोष होते हैं और मृगयामें तो श्रम करनेसे आरोग्य आदि गुणोंकाभी योग है इस प्रकार कामसे उत्पन्न चारि व्यसनोंके गणमें पहला पहला भारी दोषयुक्त है और क्रोधसे उत्पन्न वाक्पारुष्य आदि तीनिमें वाक्पारुष्यसे दंडपारुष्य दुष्ट है क्योंकि अंगच्छेद आदिका समाधान नहीं हो सकता है और वाक्पारुष्यमें तो दान मान और पानीके छिडकनेसे क्रोधरूप अग्निकी शांति हो सकती है और अर्थदूषणसे वाक्पारुष्य दोषयुक्त तथा मर्मस्थानको पीडा देनेवाला है क्योंकि वाक्पारुष्यकी चिकित्सा अति कठिन है सोई कहा है कि, " न प्ररोहति वाक्क्षतं " अर्थात् वाणीका किया हुआ फिर नहीं उगता है अर्थदूषणका तो बहुतसा धन देनेसे समाधान हो सकता है इस भांति क्रोधज तीनि व्यसनोंमें पहला पहला अति दुष्ट है इससे इसको यत्नसे त्याग दे ॥ ५२ ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ॥ व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥ ५३ ॥ मौलाञ्छास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षान्कुलोद्गतान् ॥ सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ ५४ ॥

भाषा-ऊपर कहे हुए व्यसन और मृत्यु उनमेंसे व्यसन बहुत दुःखद है कारण व्यसनी मनुष्य व्यसनसे नीचे नीचे बहुत नरकमें जाता है और निर्व्यसनी मरा हुआ ऊपर स्वर्गमें जाता है ॥ ५३ ॥ मौल कहिये बापदादेके क्रमसे सेवक होंय वेभी लोभ आदिके क्रमसे अन्यथा कर सकते हैं इसके रोकनेके लिये शास्त्रविद कहिये शास्त्रके जाननेवाले होंय और शूर होंय तथा शस्त्रविद्याको भली भांति जानते होंय और शुद्ध कुलमें उत्पन्न होंय ऐसे सात अथवा आठ मंत्रियोंको मंत्र आदि करनेके लिये नियत करे ॥ ५४ ॥

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ॥ विशेषतोऽसहायेन किंतु राज्यं महोदयम् ॥ ५५ ॥ तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं संधिविग्रहम् ॥ स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥ ५६ ॥

भाषा-सुखसेभी करने योग्य कामको एक मनुष्य कठिनाईसे कर सकता है विशेष करके राज्य जिसका बडा फल है उसको एक कैसे कर सकता है ॥ ५५ ॥ उन मंत्रियोंके साथ सामान्य कहिये मंत्रोंमें नहीं छुपाने योग्य ऐसे संधिविग्रह आदिकोंको सोचे और जिससे स्थित होय ऐसे स्थान तथा दंड कोश पुर देशरूप चारि प्रकारके सोचे और जिससे दंड दिया जाय ऐसे दंड कहिये हाथी घोडा रथ पयादे आदिके पोषणका चिंतवन करे और कोश कहिये धनका समूह उसकी आमदनी तथा खरचका तथा पुरकी रक्षा आदिका और देशके बसनेवाले मनुष्य पशु आदिके धारणकी योग्यताका चिंतवन करे और समुदाय कहिये धान्य हिरण्य आदिके उत्पत्तिस्थानका चिंतवन करे तथा गुप्ति कहिये अपनी और देशकी रक्षा चिंतवन करे और अपने परीक्षा किये हुए अन्नका भोजन करे और प्राप्त हुए धनके प्रशमन कहिये सत्पात्रमें देने आदिका चिंतवन करे ॥ ५६ ॥

तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक् ॥ समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ॥ ५७ ॥ सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता ॥ मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥ ५८ ॥

भाषा-एकांतमें उन सब सचिवोंके अपने २ अभिप्रायोंको जानि कार्योंमें जो अपना हित होय उसको करे ॥ ५७ ॥ इन्हीं सब सचिवोंमेंसे विशिष्ट कहिये विद्वान् ब्राह्मणके साथ संधिविग्रह आदि वक्ष्यमाण छः गुणोंकरि युक्त प्रकृष्ट मंत्रका निरूपण करे ॥ ५८ ॥

नित्यं तस्मिन्समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत् ॥ तेन सार्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥ ५९ ॥ अमात्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्रा-

ऊपर सैकडों मार्गोंकरि युक्त भीतर नदी झरना आदिके जलसे युक्त और बहुत अन्न जिनमें उत्पन्न होता है ऐसे खेतोंकरि युक्त ऐसे दुर्गोंमेंसे किसी एक दुर्गका आश्रय लेकर राजा अपना नगर वसावे ॥ ७० ॥

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् ॥ एषां हि बहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥ ७१ ॥ त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्ताश्रयाऽप्चराः ॥ त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवङ्गमनरामराः ॥ ७२ ॥

भाषा–इन सब दुर्गोंमें गिरिदुर्गके गुण अधिक हैं तिससे संपूर्ण प्रयत्नोंसे गिरिदुर्गका आश्रय ले क्योंकि इसमें शत्रु कठिनाईसे चढ सकता है और दूसरे थोडेही यत्नसे चलाई हुई शिला आदिसे बहुत शत्रुकी सेना मारी जा सक्ती है इत्यादिक बहुतसे गुण हैं ॥ ७१ ॥ इन दुर्गोंमेंसे तीनि पहले दुर्गोंमें मृग आदि रहते हैं उनसे पहले धन्वदुर्गमें मृग रहते हैं और महीदुर्गमें बिलोंमें रहनेवाले मूसे आदि रहते हैं अब्दुर्गमें मगर आदि जलजीव रहते हैं और अन्य तीनि वृक्षदुर्ग आदिकोंमें वंदर आदि रहते हैं उनमें वृक्षदुर्गमें वंदर और नृदुर्गमें मनुष्य तथा गिरिदुर्गमें देवता हैं ॥ ७२ ॥

यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः ॥ तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥ ७३ ॥ एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ॥ शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥ ७४ ॥

भाषा–जैसे दुर्गमें रहनेसे मृगादिकोंको व्याघ्र आदि शत्रु नहीं मार सकते हैं ऐसेही दुर्गमें बैठे हुए राजाको शत्रु नहीं मार सकते ॥ ७३ ॥ जिससे प्राकार जो किला आदि है उसमें बैठा हुआ एक सौ शत्रुओंसे युद्ध कर सकता है और प्राकारमें बैठे हुए सौ धनुष्यधारी दश हजार शत्रुओंको लडा सकते हैं तिससे दुर्ग बनानेका उपदेश किया जाता है ॥ ७४ ॥

तत्स्यादायुधसंपन्नं धनधान्येन वाहनैः ॥ ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥ ७५ ॥ तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः ॥ गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ७६ ॥

भाषा–वह दुर्ग खड्ग आदि शस्त्रों तथा धन धान्य, हाथी घोडे आदि वाहनों और ब्राह्मणों तथा कारीगरों और यंत्रों तथा घास, पानी आदिसे भरा हुआ होय ॥ ७५ ॥ उस दुर्गके मध्यमें सुंदर और पर्याप्त कहिये पृथक् २ स्त्रीगृह देवालय शस्त्र अस्त्रोंका गृह तथा अग्निशाला आदिक बने होंय और वह खाई परकोटे

आदिसे रक्षित होय और सब ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले फल फूलों करि युक्त होय और चूनेसे पोता हुआ सपेद होय और बावडी आदिके जलसे युक्त होय वृक्ष जिसमें होंय ऐसा अपने रहनेका घर बनवावे ॥ ७६ ॥

तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ कुले महति संभूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥ ७७ ॥ पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम् ॥ तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ॥ ७८ ॥

भाषा-उस घरमें स्थित होके समान वर्ण और शुभसूचक लक्षणों करि युक्त बडे कुलमें उत्पन्न मनकी हरनेवाली सुंदर रूपवती गुणवाली स्त्रीसे विवाह करे ॥ ७७ ॥ अथर्वणकी विधिसे पुरोहितको करे और कर्म करनेके लिये ऋत्विजको वरे वे इस राजाके गृह्यमें कहे हुए तीनों अग्नियों करि होने योग्य कर्मोंको करे ॥७८॥

यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः ॥ धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ॥ ७९ ॥ सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् ॥ स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु ॥ ८० ॥

भाषा-राजा अनेक प्रकारके बहुत दक्षिणावाले अश्वमेध आदि यज्ञोंको करे और ब्राह्मणोंको स्त्री, गृह, शय्या आदि भोगोंको तथा सुवर्ण वस्त्र आदि धनोंको दे ॥ ७९ ॥ राजा समर्थ मंत्रियोंसे वर्षमें लेने योग्य धान्य आदिके भागको मंगवावे और लोकमें कर आदिसे लेनेमें शास्त्रके द्वारा निष्ठ होय तथा अपने देशके रहनेवाले मनुष्योंमें स्नेह आदिसे पिताके समान वर्त्ते ॥ ८० ॥

अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः ॥ तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥ ८१ ॥ आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत् ॥ नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ८२

भाषा-हाथी घोडा रथ पयादोंके तथा घने स्थानोंमें पंडित और कामोंके चतुर देखनेवाले मनुष्योंको जुदे २ रक्खे वे इस राजाके उन हाथी, घोडे आदिके स्थानोंमें काम करनेवाले मनुष्योंके सब कामोंको अच्छे प्रकारसे करनेके लिये देखें ॥ ८१ ॥ वेद पढके गुरुकुलसे लौटे हुए गृहस्थकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंकी नियम करके धन धान्यसे पूजा करे ॥ ८२ ॥

न तं स्तेना न चामित्रा हरन्ति न च नश्यति ॥ तस्माद्राज्ञा निधातव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः॥८३॥ न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित् ॥ वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥८४॥

भाषा-ब्राह्मणमें रक्खी हुई निधिको न तौ चोर ले सकते हैं न शत्रु अन्य निधिके समान भूमिमें रक्खा हुआ कालवशसे नाशको प्राप्त होता है, अथवा स्थानके भ्रमसे नहीं दीखता है तिसे अक्षय और अनंत फल जो यह निधिके समान विधि कहिये धनका समूह है सो राजा करि ब्राह्मणोंमें रखने योग्य है अर्थात् उनके देने योग्य है ॥ ८३ ॥ अग्निमें जो हवि होमी जाती है वह कभी नीचे गिर जाती है कभी व्यथा करे है अर्थात् सूख जाती है और कभी दाह आदिसे नष्ट हो जाती है और ब्राह्मणके मुखमें जो होमा जाता है उसमें कहे हुए दोष नहीं होते हैं तिससे अग्निहोत्र आदिसे ब्राह्मणका देना श्रेष्ठ है ॥ ८४ ॥

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ॥ ८५ ॥ पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधानतयैव च ॥ अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्यावाप्यते फलम् ॥ ८६ ॥

भाषा-ब्राह्मणसे भिन्न क्षत्रिय आदिके लिये जो दान देना है वह समान फल है अर्थात् जिस देने योग्य वस्तुका फल सुना है उसे अधिक वा न्यून नहीं होता है जो क्रियारहित ब्राह्मण आपको ब्राह्मण कहता उसको ब्राह्मणब्रुव कहते हैं उसको देनेका फल पहलेकी अपेक्षा दूना होता है ऐसे प्रक्रांत कहिये वेदाध्ययनके आरंभ करनेवाले ब्राह्मणमें लाखगुना फल होता है और सब शास्त्रके पढनेवालेमें अनंत फल होता है ॥ ८५ ॥ पात्रको पाकर श्रद्धासे दिया हुआ दान देनेवालेको परलोकमें थोडा बहुत फल देनेवाला होता है ॥ ८६ ॥

समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः ॥ न निवर्तेत संग्रामात्क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ८७ ॥ संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम् ॥ शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥ ८८ ॥

भाषा-बराबरके बलवाले अथवा अधिक बलवाले वा हीन बलवाले राजा करि युद्धके लिये बुलाया हुआ राजा प्रजाओंका पालन करता हुआ युद्धसे न हटे और युद्धके लिये बुलाये हुए क्षत्रियको अवश्य युद्ध करना इस क्षत्रियके धर्मको स्मरता रहे ॥ ८७ ॥ युद्धसे न हटना और प्रजाओंका पालन करना तथा ब्राह्मणोंकी सेवा करना ये सब राजाके बहुतही स्वर्ग आदि कल्याणके उपाय हैं ॥ ८८ ॥

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ॥ युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ८९ ॥ न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून् ॥ न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ९०

भाषा-आपसमें स्पर्द्धासे एकको एक मारनेकी इच्छा करनेवाले राजा वडी शक्तिसे सन्मुख हो युद्धको करते हुए स्वर्गको जाते हैं ॥ ८९ ॥ कूटआयुध कहिये ऊपरसे काठ आदिसे वने होय और भीतर उनके तीक्ष्ण शस्त्र छुपे हुए होंय ऐसे आयुधोंसे युद्ध करता हुआ राजा शत्रुको न मारे और जिनके फल कांटेके आकार टेढे मांसके खींचनेवाले होंय तथा विषके वुझे हुए और अग्नि करि तपाये हुए ऐसे वाणोंसे शत्रुको न मारे ॥ ९० ॥

न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ॥ न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥ ९१ ॥ न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम् ॥ नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ९२ ॥

भाषा-आप रथमें वैठा हुआ रथको छोडिके भूमिमें खडे हुएको न मारे तथा नपुंसकको और हाथ जोरिके सन्मुख आये हुएको और वाल जिसके खुले होंय और जो वैठा होय तथा मैं तुम्हारा हूं ऐसे कहनेवालेको न मारे ॥ ९१ ॥ सोते हुएको विना कवचवालेको नंगेको शस्त्ररहितको नहीं लडनेवालेको युद्ध देखनेवालेको और दूसरेसे युद्ध न करनेवालेको न करे ॥ ९२ ॥

नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम् ॥ न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ९३ ॥ यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः ॥ भर्तुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९४ ॥

भाषा-जिसके खड्ग आदि शस्त्र टूटि गये हैं और जो पुत्र आदिके शोकसे व्याकुल है और जो वहुत चोटोंसे व्याकुल है तथा जो युद्धसे भागा है इन सबोंको कठिन क्षत्रिय धर्मका स्मरण करता हुआ न मारे ॥ ९३ ॥ डरके भागा हुआ जो युद्धमें मारा जाता है वह पालन करनेवाले अपने स्वामीके समस्त पापोंको प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥

यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम् ॥ भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥ ९५ ॥ रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः ॥ सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ॥ ९६ ॥

भाषा-युद्धमें भागकर मारे गये पुरुषका परलोकके लिये जो कुछ जोडा पुण्य वह सव उसके स्वामीको मिलता है ॥ ९५ ॥ रथ घोडा हाथी छत्र धन धान्य पशु स्त्री ये सव और गुड नोन आदि वस्तु और कुप्य कहिये सोना चांदी रत्न आदि धन तो राजाहीको देना चाहिये ॥ ९६ ॥

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥ राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥९७॥ एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः सनातनः॥ अस्माद्धर्मान्न च्यवेत क्षत्रियो घ्नन् रणे रिपून् ॥ ९८ ॥

भाषा–वे योद्धा जीते हुए धनमेंसे राजाको उद्धार दें अर्थात् जितना उसमें सुवर्ण चांदी रत्न आदि उत्तम धन होय सो और हाथी घोडे आदि वाहनभी राजाको देने चाहिये और राजाभी साथ जीते हुए धनमेंसे सब योद्धाओंको उनके अधिकारके योग्य बांधि दे ॥ ९७ ॥ यह जो निंदारहित सनातन योद्धाओंको धर्म कहा है युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाला क्षत्रिय इस धर्मको न छोडे ॥ ९८ ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥ ९९ ॥ एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥ अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥ १०० ॥

भाषा–नहीं जीते हुए भूमि सुवर्ण आदिके जीतनेकी इच्छा करे और जीते हुएको यतनसे रक्षा करे और रक्षा किये हुएको वाणिज्य आदिसे वढावे और वढे हुएको पात्रोंमें दान करे ॥ ९९ ॥ यह चार प्रकारका पुरुषार्थ जो स्वर्ग आदि हैं तिसका प्रयोजन ऐसा जाने इससे आलस्यरहित हो सदा इसको करे ॥ १०० ॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ॥ रक्षितं वर्धयेद् वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ॥ १ ॥ नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ॥ नित्यं संवृतसर्वार्थो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥ २ ॥

भाषा–जो नहीं प्राप्त है उसकी हाथी घोडा रथ पयादेरूप दंडसे जीतनेकी इच्छा करे और जीते हुएकी देखनेसे रक्षा करे और रक्षा किये हुएको स्थल तथा जलके मार्गसे वाणिज्य आदि बढनेके उपायोंसे बढावे और बढे हुएको शास्त्रमें कहे हुए विभागसे पात्रोंको दान करे ॥ १ ॥ हाथी घोडा युद्ध आदिकी शिक्षाको अभ्यास रक्खे और सदा प्रकाश की हुई शस्त्रविद्या आदिसे अपने पुरुषार्थको प्रकट करे और मंत्र आचार चेष्टा आदिको सदा गुप्त रक्खे और सदा शत्रुके व्यसन आदि छिद्रोंके देखनेमें लगा रहे ॥ २ ॥

नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत् ॥ तस्मात्सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् ॥ ३ ॥ अमाययैव वर्तेत न कथंचन मायया ॥ बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ॥ ४ ॥

भाषा-जिसका दंड सदा उद्यत है उससे सब जगत् डरता है तिससे सब जगत्को दंडहीसे अपने आधीन करे ॥ ३ ॥ मंत्री आदिकोंमें कपटसे न वर्ते जो कपट करे तौ सबोंका विश्वास योग्य न रहे धर्मकी रक्षाके लिये सत्यहीसे व्यवहार करे और यत्नसे अपने पक्षकी रक्षा करता हुआ शत्रुकी की हुई प्रजाके भेदरूप मायाको दूतके द्वारा जाने ॥ ४ ॥

नास्य च्छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु ॥ गूहेत्कूर्म इवा-
ङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥ ५ ॥ बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च
पराक्रमेत् ॥ वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥ ६ ॥

भाषा-ऐसा यत्न करे जिससे शत्रु प्रकृतिके भेद आदि अपने छिद्रको न जाने और शत्रुके प्रकृतिभेद आदि छिद्रोंको गुप्त दूतोंसे जाने और कछुआ जैसे अपने मुख चरण आदि अंगोंको अपने देहमें छुपाय लेता है ऐसे राज्यके अंग मंत्री आदिकोंको दान सन्मान आदिसे अपने वश करे और दैवसे जो प्रकृतिभेदरूप छिद्र हो जाय तौ यत्नसे उसका निवारण करे ॥ ५ ॥ जैसे वगला जलमें अति चंचलभी मछलीको पकडनेके लिये एकाग्र मनसे ध्यान लगाके चिंतवन करता है ऐसेही एकान्तमें रक्षायुक्तभी शत्रुके देश लेने आदि अर्थोंका चिंतवन करे और जैसे सिंह प्रबल बहुत मोटेभी हाथीके मारनेको उछलताही है ऐसे बलवान् करि दवाया हुआ थोडे बलवाला संपूर्ण शक्तिसे शत्रुके मारनेको चढाई करे और जैसे भेडिया पालनेवाले करि रक्षा किये हुएभी पशुको रक्षककी असावधानीमें मारही लेता है ऐसे दुर्ग आदिमें स्थितभी शत्रुको असावधान पाके मारे और जैसे शशा नाना प्रकारके धनुषधारी व्याधोंके वीचमें आके टेढी गतिसे उछलकर भाग जाता है ऐसे आप निर्बलभी बलवान् शत्रुसे घेरे जानेपर कैसेभी शत्रुकी असावधानी पाके गुणवान् दूसरे राजाका आश्रय लेनेके लिये भागि जाय ॥ ६ ॥

एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः ॥ तानानयेद्वशं सर्वा-
न्सामादिभिरुपक्रमैः ॥ ७ ॥ यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमै-
स्त्रिभिः ॥ दण्डेनैव प्रसह्यैताञ्छनकैर्वशमानयेत् ॥ ८ ॥

भाषा-इस कहे हुए प्रकारसे विजयमें प्रवृत्त राजाके जो विरोधी होंय उन सबोंको साम दाम भेद दंड इन उपायोंसे वशमें लावे ॥ ७ ॥ वे जो विजयके विरोधी पहले तीनि उपायोंसे न माने तो उनको बलसे देश आदिके विगाडनेकरि युद्धसे हौले २ लघु गुरु दंडके क्रमसे दंडहीसे वश करे ॥ ८ ॥

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः ॥ सामदण्डौ प्रशंस-

न्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥ ९ ॥ यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं
च रक्षति ॥ तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ ११० ॥

भाषा-चारों सामादिक उपायोंमें साम दंडहीकी देशकी वृद्धिके लिये पंडित सदा प्रशंसा करते हैं ॥ ९ ॥ जैसे खेतमें साथ उत्पन्न हुए धान्य तृण आदिकोंमेंसे निराव करनेवाला धान्योंकी रक्षा करता है और तृणोंको उखाडता है ऐसे राजा देशमें दुष्टोंको मारे और शिष्टोंसमेत देशकी रक्षा करे ॥ ११० ॥

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥ सोऽचिराद् भ्रश्यते रा-
ज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ॥ ११ ॥ शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते
प्राणिनां यथा ॥ तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥ १२ ॥

भाषा-जो राजा दुष्ट शिष्टके ज्ञान विना अपने देशके सब मनुष्योंको शास्त्रमें कहे हुए धन लेने तथा मारने आदिके कष्टसे पीडा देता है वह शीघ्रही देशके वैर नाम प्रजाके कोपसे और अधर्म करि राज्यसे तथा जीनेसे पुत्रादिकों समेत भ्रष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥ जैसे आहार आदिके रोकने करि शरीरके सुखानेसे प्राणियोंके प्राण क्षीण हो जाते हैं ऐसेही राजाओंकेभी देशको पीछे देनेसे प्रजाके कोप आदि करि प्राण नाशको प्राप्त होते हैं तिससे राजाको अपने शरीरके समान देशकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ॥ सुसंगृहीतराष्ट्रो हि
पार्थिवः सुखमेधते ॥ १३ ॥ द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्मम-
धिष्ठितम् ॥ तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥ १४ ॥

भाषा-देशकी रक्षा करनेमें आगे कहे हुए इस उपायको करे जिससे देशकी रक्षा करनेवाला राजा विना श्रमके वढता है ॥ १३ ॥ दो ग्रामोंके मध्यमें तथा तीनिके व पांचके अथवा सौ ग्रामोंके बीचमें गुल्म कहिये रक्षा करनेवाले पुरुषोंके समूहको रचे प्रधानपुरुषको उसका अधिष्ठाता करिके देशकी रक्षाका स्थान करे ॥१४॥

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा ॥ विंशतीशं शतेशं
च सहस्रपतिमेव च ॥ १५ ॥ ग्रामदोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः
शनैः स्वयम् ॥ शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशि-
नम् ॥ १६ ॥ विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ॥
शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥ १७ ॥

भाषा–एकग्रामका दशग्रामका वीसका तथा सौके स्वामी नियत करे ॥ १५ ॥ एकगांवका स्वामी जो गांवमें हुए चोर आदि दोषोंका आप प्रबंध न कर सके तौ दश गांववालेसे कहे और ऐसेही दश गांववाला वीस गांववालेसे और वीस गांववाला सौ गांववालेसे कहे ऐसा होनेपर चोर आदि कंटकोंका अच्छी रीतिसे उद्धार होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः ॥
अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ॥ १८ ॥

भाषा–एक ग्रामके अधिकारीकी वृत्ति कहते हैं जो अन्न पान इंधन आदि ग्रामवासियोंको प्रतिदिन राजाके लिये देने योग्य होय उसको वर्षमें देने योग्य धान्यके अष्टम भाग आदिको छोडके ग्रामका स्वामी जीविकाके लिये ग्रहण करे ॥ १८ ॥

दशी कुलं तु भुञ्जीत विंशी पञ्च कुलानि च ॥ ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम् ॥ १९ ॥ तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि ॥ राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः १२०

भाषा–धर्मका एक हल आठ वैलोंका होता है और जीविकावालोंका छः वैलोंका और गृहस्थोंका चार वैलों और दो वैलोंका ब्रह्महत्यावालोंका एक वैलका हल होता है यह हारीतस्मृतिमें लिखा है छः वैलोंका मध्यम हल होता है ऐसे दो हलोंसे जितनी भूमि जोती जाय उसको कुल कहते हैं उसको एक ग्रामका स्वामी जीविकाके लिये ग्रहण करे ऐसेही वीस ग्रामका स्वामी पांच कुलोंको ग्रहण करे और सौ ग्रामका स्वामी एक मध्यम ग्रामको और हजारका स्वामी दश मध्यम पुरको जीविकाके लिये ग्रहण करे ॥ १९ ॥ उन ग्रामके वसनेवालोंके ग्रामसंबंधी कामों तथा निज कामोंको राजाका हित करनेवाला मंत्री आलस्यको छोडकर देखे ॥१२०॥

नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ॥ उच्चैःस्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ॥ २१ ॥ स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम् ॥ तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥ २२ ॥

भाषा–प्रत्येक नगरमें उच्चैःस्थान कहिये कुल आदिसे बडे और प्रधानभूत तथा हाथी घोडे आदि सामग्रीसे भयानक नक्षत्रोंमें शुक्र आदि ग्रहके समान तेजस्वी कार्यद्रष्टाको नगरका स्वामी करे ॥ २१ ॥ वह नगरका अधिकारी ग्रामके स्वामी आदिकोंको विना प्रयोजन सब कालमें वलसे देखे और दूतोंसे सवोंकी मनकी वातोंको जाने ॥ २२ ॥

राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ॥ भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः ॥ २३ ॥ ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः॥तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम्॥२४॥

भाषा–बहुधा राजाके अधिकारी पराये धनके लेनेवाले और शठ कहिये वंचक होते हैं इसलिये राजा उनसे प्रजाकी रक्षा करे ॥ २३ ॥ जो पापबुद्धि रक्षाके अधिकारी कार्यार्थियों (मुकद्दमेवालों) से वाणीके छल आदिको प्रकट कर लोभसे अशास्त्रीय धनको लेते हैं राजा उनका सर्वस्व छीनके अपने देशसे निकाल दे ॥ २४ ॥

राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ॥ प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं स्थानंकर्मानुरूपतः ॥ २५ ॥ पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य वेतनम्॥षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः ॥ २६ ॥

भाषा–राजाओंका काम करनेवाले जो स्त्री और भृत्यजन हैं उनकी उत्कृष्ट मध्यम तथा अपकृष्ट स्थानके योग्य प्रतिदिनकी जीविका करे ॥२५॥ घरके झारनेवाले और पानी लानेवालेको एक पण नित्य दे पणका लक्षण आगे कहेंगे और महीनेमें एक द्रोण अन्न दे छठे महीने दो वस्त्र दे और उत्तम कर्म करनेवालेको छः पण नित्य दे और छठे मासमें छः जोडे वस्त्रोंके दे और प्रतिमास छः द्रोण धान्य दे और इसी रीतिसे मध्यम कर्म करनेवालेको तीनि पण नित्य दे और छठे महीने दो जोडे वस्त्रोंके दे और प्रतिमास तीनि द्रोण धान्य दे आठ मुट्ठीकी एक कुंची होती है और आठ कुंचियोंका एक पुष्कल होता है और चार पुष्कलोंका एक आढक और चार आढकोंका एक द्रोण होता है और चार द्रोणोंको खारी कहते हैं ॥ २६ ॥

क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम् ॥ योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान् ॥ २७ ॥ यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम् ॥ तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥ २८ ॥

भाषा–यह वस्त्र नोन आदि वस्तु कितनेमें मोल ली है और बेचनेमें कितना मिलेगा और कितनी दूरसे लाया है और इस वणिजके भोजनमें शाक दालि आदिके खरचमें कितना लगा है और वन आदिमें चोर आदिकोंसे रक्षा करनेमें कितना खर्च हुआ है और इसके नफेका योग कितना है इन सब बातोंको देखकर बनियोंसे कर लेवे ॥ २७ ॥ जैसे राजा प्रजापालन आदि कर्मके फलसे और जो किसान बनिया आदि खेती वाणिज्य आदि कर्मोंके फलसे युक्त होता है ऐसा शोचके राजा देशके करोंको लेवे ॥ २८ ॥

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः ॥ तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ॥ २९ ॥ पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः॥ धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥१३०॥

भाषा-इसमें दृष्टांत कहते हैं जैसे जोंक बछडा और भ्रमर थोडा २ रक्त दूध तथा मधुको खाते हैं ऐसेही राजा राज्यसे वर्षके करको थोडा २ लेवे ॥ २९ ॥ पशु और सुवर्णके लाभमेंसे राजा पचासवां भाग लेवे ऐसेही धान्योंका छठा आठवां अथवा बारहवां भाग लेवे भूमिकी उत्कर्षता न्यूनता तथा जुताईके न्यूनके अधिक श्रमको देखके यह कर लेनेकी न्यूनाधिकताका विकल्प है ॥ १३० ॥

आददीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम् ॥ गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥ ३१ ॥ पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च ॥ मृन्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ ३२ ॥

भाषा-वृक्ष १ मांस २ मधु ३ घी ४ गंध ५ औषधी ६ रस ७ पुष्प ८ मूल ९ फल १० पत्र ११ शाक १२ तृण १३ चर्म १४ वांसका पात्र १५ मट्टीका पात्र १६ पत्थरका पात्र १७ इन सत्रहोंका छठा भाग राजा लेवे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम् ॥ न च क्षुधाऽस्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥ ३३ ॥ यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा॥तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचिरेणैव सीदति३४॥

भाषा-धनके क्षीण होनेपरभी राजा वेदपाठी ब्राह्मणसे कर न लेवे और इसके देशमें वसता हुआ वेदपाठी भूंखसे पीडित न होय ॥ ३३ ॥ जिस राजाका श्रोत्रिय भूंखसे दुःख पाता है उसका देशभी उसकी क्षुधासे थोडेही कालमें नष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥

श्रुतवृत्ते विदित्वास्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥ संरक्षेत्सर्वतश्चैनं पिता पुत्रमिवौरसम् ॥ ३५ ॥ संरक्ष्यमाणो राज्ञायं कुरुते धर्ममन्वहम् ॥ तेनायुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥ ३६ ॥

भाषा-शास्त्रका पढना और आचरण जानके इसकी उनके अनुरूप धर्मसे जीविका नियत करे और जैसे पिता अपने निज पुत्रकी रक्षा करता है ऐसे चोर आदिकोंसे इसकी रक्षा करे ॥ ३५ ॥ राजा करि अच्छी भांति रक्षा किया हुआ वह श्रोत्रिय जिस धर्मको प्रतिदिन करता है उससे राजाकी आयु धन तथा देश बढता है ॥ ३६ ॥

यत्किंचिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम् ॥ व्यवहारेण जीवन्तं
राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥३७॥ कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मो-
पजीविनः ॥ एकैकं कारयेत्कर्म मासि मासि महीपतिः ॥ ३८ ॥

भाषा–राजा अपने देशमें थोडे मोलकेभी शाकपत्ते आदिके खरीदने वेचनेसे जीविका करनेवाला निकृष्ट मनुष्यसे थोडाभी कर वर्षमें दिवावे ॥३७॥ कारुक कहिये सुतार आदि शिल्पियोंसे जो कुछ ऊंचे हैं और शिल्पी कहिये लुहार आदि और शूद्र जो शरीरसे श्रम करके जीविका करते हैं जैसे बोझा ढोनेवाले उनसे राजा महीने महीनेमें एक एक दिन काम करवा लेवे ॥ ३८ ॥

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ॥ उच्छिन्दन् ह्यात्म-
नो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥३९॥ तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्का-
र्यं वीक्ष्य महीपतिः ॥ तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमतः ॥१४०॥

भाषा–प्रजाके स्नेहसे कर तथा महसूल आदिके न लेनेसे अपने मूलको न उखाडे तथा अति लोभसे वहुतसा कर लेके दूसरोंका मूल न उखाडे ये दोनों वातें न करे जिससे अपने मूलको उखाडके कोश कम होनेसे आपको पीडा देता है तथा दूसरोंका मूल उखाडके उनको पीडा देता है ॥ ३९ ॥ कार्यविशेषको देखके किसी काममें तेज और किसीमें मृदु होय एक रूपको न धारण करे जिससे उक्तरूप राजा सबको प्यारा होता है ॥ १४० ॥

अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्गतम् ॥ स्थापयेदासने त-
स्मिन् खिन्नः कार्येक्षणे नृणाम् ॥४१॥ एवं सर्वं विधायेदमिति क-
र्तव्यमात्मनः ॥ युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥ ४२ ॥

भाषा–आप कार्योंके देखनेमें खेदयुक्त राजा धर्मके जाननेवाले पंडित जितेंद्रिय तथा कुलीन श्रेष्ठ मंत्रीको उस कार्यदर्शनके स्थानमें नियत करे ॥ ४१ ॥ इस भांति कहे हुए प्रकारसे अपने सब कार्योंको करके मनको लगाय प्रमादरहित हो प्रजाओंकी रक्षा करे ॥ ४२ ॥

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः ॥ संपश्यतः स-
भृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥४३॥ क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजा-
नामेव पालनम् ॥ निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥ ४४ ॥

भाषा–मंत्री आदिकोंसमेत जिस राजाके देखते देशसे पुकारती हुई प्रजा चौर आदिकों करि लूटी जाती है वह मरा हुआ है जीवता नहीं है ॥ ४३ ॥ प्रजाकी

रक्षा करनाही क्षत्रियका सबसे बडा धर्म है जिससे कहा हुआ है लक्षण और फल जिसका ऐसे कर आदिका भोगनेवाला राजा धर्मसे युक्त होता है ॥ ४४ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ॥ हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम् ॥ ४५ ॥ तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् ॥ विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥ ४६ ॥

भाषा-वह राजा रातिके पिछले पहर उठके मूत्रपुरीषत्याग आदि शौचको करके एकाग्र मन हो अग्निहोत्रको करि ब्राह्मणोंको पूजि सुंदर शुभ सभामें प्रवेश करे ॥ ४५ ॥ उस सभामें बैठा हुआ राजा दर्शनके लिये आई हुई सब प्रजाको बोलने और दर्शन देने आदिसे आनंदित करके बिदा करे उनको पठवाके मंत्रियोंके साथ संधिविग्रहादिकोंका विचार करे ॥ ४६ ॥

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥ अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः ॥ ४७ ॥ यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः ॥ स कृत्स्नां पृथिवीं भुंक्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः ॥ ४८ ॥

भाषा-पर्वतके ऊपर बैठके अथवा सूने महलके ऊपर और वनमें अथवा एकांत स्थानमें मंत्रके भेद करनेवालोंसे छुपके कामोंके आरंभका उपाय १ पुरुषद्रव्य संपत्ति २ देशकाल विभाग ३ विनिपातका प्रतीकार ४ और कार्यकी सिद्धि ५ इस पंचांग मंत्रका विचार करे ॥ ४७ ॥ जिस राजाके मंत्रियोंसे भिन्न और लोग मिलके उसके मंत्रको नहीं जानते हैं वह कोश क्षीण होनेपरभी सब पृथिवीको भोगता है ॥ ४८ ॥

जडमूकान्धबधिरांस्तिर्यग्योनान्वयोतिगान् ॥ स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत् ॥ ४९ ॥ भिन्दन्त्यवमता मन्त्रं तिर्यग्योनास्तथैव च ॥ स्त्रियश्चैव विशेषेण तस्मात्तत्राहतो भवेत् ॥ १५० ॥

भाषा-बुद्धि, वाणी, नेत्र, कान आदिसे बिगडे हुए मनुष्योंको तथा तिर्यग्योनि तोता मैना आदिको और अति बूढे स्त्री म्लेच्छ रोगी और अंगहीनोंको मंत्रके समय निकाल देवे ॥ ४९ ॥ पुराने पापके कारण जडपन आदिके पानेवाले ये अधर्मके कारण अपमानित होनेपर मंत्रभेदको कर देते हैं तैसेही तोता आदि और अतिवृद्ध और स्त्री विशेषकर चंचल बुद्धि होनेसे मंत्र भेद कर देते हैं तिससे उन सबोंको यत्नसे निकाल देवे ॥ १५० ॥

मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः ॥ चिन्तयेद्धर्मकामार्थान्सार्धं तैरेक एव वा ॥ ५१ ॥ परस्परविरुद्धानां तेषां च समु-

पार्जनम् ॥ कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥ ५२ ॥

भाषा–दिनके मध्यमें अथवा रात्रिके मध्यमें स्वस्थ शरीर राजा मंत्रियोंके साथ अथवा अकेला धर्म अर्थ कामके करनेका चिंतवन करे ॥ ५१ ॥ बहुधा आपसमें विरोधवाले धर्म अर्थ कामके विरोधको बचाके उनके अर्जनका उपाय शोचे और अपने कार्यकी सिद्धिके लिये पुत्रियोंके देनेका निरूपण करे और विनयके सिखाने तथा नीतिशास्त्रकी शिक्षाके लिये कुमारोंकी रक्षाका चिंतवन करे ॥ ५२ ॥

दूतसंप्रेषणं चैव कार्यशेषं तथैव च ॥ अन्तःपुरप्रचारं च प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥ ५३ ॥ कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः ॥ अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥ ५४ ॥

भाषा–गुप्त चिट्ठी पत्री आदि लेखके ले जानेवाले दूतोंके पराये देशमें भेजनेका चिंतवन करे तथा आरंभ किये हुए कामोंके शेष पूरे होनेका चिंतवन करे स्त्रियोंका चेष्टित बहुतही विषम होता है जैसे चोटीमें छिपाये हुए शस्त्रसे रानीने विदूरथको मारा और विषसे लिपे हुए बिछुएसे विरक्त रानीने काशिराजको मारा इत्यादिक बातोंको जानकर रनवासकी स्त्रियोंका चेष्टित सखी दासी आदिकोंसे जाने और दूसरे राजाओंके यहां भेजे हुए दूतोंके चेष्टितोंको दूसरे दूतोंसे जाने ॥ ५३ ॥ प्रजाओंसे कर लेना १ भृत्योंको धन देना २ इस लोक तथा परलोकके लिये कर्म करना ३ तथा न करना ४ इस बातकी मंत्रियोंको आज्ञा देना कार्यसंदेहमें आज्ञा देना ५ प्रजाके लेन देन आदिके व्यवहारको देखना ६ व्यवहारमें जो हारे उससे शास्त्रोक्त धन लेना ७ पापियोंको प्रायश्चित्त कराना ८ इन आठों कर्मोंका चिंतवन करना और तत्वसे अर्थात् सिद्धांतसे पंचवर्गका चिंतवन करे वह पंचवर्ग लिखते हैं दूसरेकी भीतरी बातका जाननेवाला निर्भय बोलनेवाला कपटव्यवहार करनेवाला ऐसा मनुष्य जीविकाके लिये आवे तो उसको दान मानसे अपना करके एकांतमें कहे कि, जिसका दुष्ट कर्म देखो उसी समय हमसे कहो १ संन्याससे जो भ्रष्ट है उनका दोष तौ लोकमें विदित है उनको बुद्धि तथा पवित्रतासे युक्त करके बहुत पैदावाले मठमें स्थापित करके एकांतमें पहलेकी भांति बोले और जिस भूमिमें बहुतसा धान्य उत्पन्न होय वह भूमि उसको जीविकाके लिये देवे वह भ्रष्ट संन्यासी राजाके काम करनेवाले जो दूसरे संन्यासी हैं उनको भोजन और वस्त्र देवे २ और जीविकासे रहितको खेती करनेको बुद्धि तथा शौचसे गुप्त करके एकांतमें पहलेकी भांतिसे बोले और खेती करनेके लिये अपनी भूमि देवे ३ और जीविकारहित बनियाको पहलेकी भांति कहके धन तथा मानको दे अपने आधीन करके बनियोंके कर्म करावे ४ जीविकासे रहित मुँडिया होय अथवा जटाधारी होय उसको

गुप्तजीविका देकर एकांतमें पहलेकी भांति कहे और कपटी बहुतसे मुडिये तथा जटाधारी शिष्यों समेत तपस्या करे महीने दो महीने सबोंके आगे मुट्ठीभर बेर आदिका भोजन करे और रातिमें कोई न जाने तब भोजन करे और शिष्य उसकी सिद्धाईको प्रकाशित करे कि गुरुजी भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालके जाननेवाले हैं इससे सब लोग अपने २ अर्थको कहेंगे ५ ये पांचों क्रमसे कापटिक उदास्थित गृहपति वैदिक तापस कहाते हैं इन पांचों कर्मोंका चिंतवन करे इन्होंसे दूसरे राजाकी और अपने मंत्री आदिकी प्रीति तथा अप्रीतिको जानके उसका उपाय करे कि कौनसा राजा मेल चाहता है और कौनसा विगाड चाहता है यह जानिके वैसा उपाय करे ॥ ५४ ॥

मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ॥ उदासीनप्रचारं च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ॥५५॥ एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समासतः ॥ अष्टौ चान्याः समाख्याता द्वादशैव तु ताः स्मृताः ॥ ५६ ॥

भाषा-अरि विजिगीषु अर्थात् जीतनेकी इच्छा करनेवाला और मध्यम अर्थात् अरिविजिगीषु इन दोनोंकी भूमिके समीपमें रहनेवाला मिले हुए दोनों राजाओंके अनुग्रहमें और बिगडे हुए इन दोनोंके निग्रहमें समर्थ इन सबोंका चेष्टित अर्थात् करनेकी इच्छाका चिंतवन करे ॥ ५५ ॥ संक्षेपसे राजमंडलके ये चारि मूल प्रकृति हैं तथा आठ और हैं उनको कहते हैं शत्रुकी भूमिके आगे मित्र अरिमित्र मित्रमित्र अरिमित्रमित्र और पीछे पार्ष्णिग्राह आक्रंद पार्ष्णिग्राहासार आक्रंदासार ये पहले कहे हुए आठ चारोंको मिलाके बारह होते हैं ॥ ५६ ॥

अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः पञ्च चापराः ॥ प्रत्येकं कथिता ह्येताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥ ५७ ॥ अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च ॥ अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम् ॥ ५८ ॥

भाषा-चारि मूलप्रकृति आठ शाखाप्रकृति इन्होंमें एक एकके पांच पांच द्रव्य प्रकृति हैं उन पांचोंके ये नाम हैं जैसे अमात्य कहिये मंत्री १ राष्ट्र कहिये राज्य २ दुर्ग कहिये किला ३ अर्थ कहिये धन ४ और दंड ५ ये सब मिलके संक्षेपसे बहत्तरि ७२ प्रकृति हैं ॥ ५७ ॥ अपने राज्यके समीपका राजा शत्रु है और उसका सेवन करनेवालाभी शत्रु है और उसके आगेका राजा मित्र है और अरि तथा मित्रसे जो परे है वह उदासीन है ॥ ५८ ॥

तान्सर्वानभिसंदध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः ॥ व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च ॥ ५९ ॥ संधिं च विग्रहं चैव यानमा-

सैनमेवं च ॥ द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा ॥ १६० ॥

भाषा-उन सब राजाओंको साम दान भेद दंड इन उपायोंसे संभवके अनुसार जुदे जुदोंसे अथवा सबोंसे वशमें लावे अथवा पौरुष कहिये केवल दंडहीसे अथवा नीति कहिये एक सामहीसे वशमें लावे सोई कहा है कि, देशकी वृद्धिके लिये साम तथा दंडकी प्रशंसा करते हैं ॥ ५९ ॥ संधि कहिये मिलाप विग्रह कहिये लडाई यान कहिये शत्रुके ऊपर चढाई करना आसन कहिये शत्रुको घेरके पडे रहना द्वैधीभाव कहिये फोड फाड करना संश्रय कहिये बलवान्का आश्रय लेना इन छः गुणोंका सदा चिंतवन करे ॥ १६० ॥

आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव च ॥ कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च ॥ ६१ ॥ संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च ॥ उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ ६२ ॥

भाषा-अपनी समृद्धि और शत्रुकी हानि आदिक कार्योंको देखके विग्रह यान आसन द्वैधीभाव और संश्रय इनमेंसे किसीके साथ संधि और किसीके साथ विग्रह इत्यादि करे ॥ ६१ ॥ राजा संधि विग्रह यान आसन तथा द्वैधीभाव और संश्रय इन छहों गुणोंको दो प्रकारके जाने ॥ ६२ ॥

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ॥ तदा त्वायतिसंयुक्तः संधिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः ॥ ६३ ॥ स्वयंकृतं च कार्यार्थमकाले काल एव वा ॥ मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥ ६४ ॥

भाषा-तत्कालके फलके लाभके लिये अथवा आगेके फलके लाभके लिये जहां दूसरे राजाके साथ अन्य राजाके ऊपर चढाई आदि कर्म किये जाते हैं वह समानकर्मा संधि है और जो तुम यहां जाओ मैं यहां जाऊंगा यह उसी कालके तथा आगेके फलकी चाहनासे की जाती है उसको असमानकर्मा संधि कहते हैं ऐसे दो प्रकारकी संधि जाननी चाहिये ॥ ६३ ॥ शत्रुके विजयरूप प्रयोजनके लिये शत्रुका कष्ट आदि जानके आगे कहे हुए मार्गशीर्ष आदि कालसे दूसरे कालमें अथवा कहे हुएही कालमें आप करि किया हुआ एक विग्रह है और दूसरे राजा करि मित्रका अपकार करनेपर मित्रकी रक्षाके लिये दूसरा विग्रह होता है इस प्रकार दो प्रकारका विग्रह होता है ॥ ६४ ॥

एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ॥ संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥ ६५ ॥ क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा ॥ मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥ ६६ ॥

भाषा–अपना आवश्यक काम तथा शत्रुके व्यसन आदि अकस्मात् होनेपर समर्थका अकेले चढाई करना यह एक प्रकारका यान हुआ और असमर्थका मित्र सहित चढाई करना यह दो प्रकारका यान कहा जाता है ॥ ६५ ॥ पूर्व जन्ममें अथवा इस जन्ममें किये हुए पापोंसे जिसके हाथी घोडा कोश आदि क्षीण हो गया है तब दूसरेपर चढाई न करना अथवा संपन्नका मित्रके अनुरोधसे उसके कार्यकी रक्षाके लिये चढाई न करना यह दो प्रकारका आसन मुनियोंने कहा है ॥ ६६ ॥

बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ॥ द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः॥६७॥ अर्थसंपादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभिः ॥ साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ ६८ ॥

भाषा–अपनी प्रयोजनके सिद्धिके लिये सेनापति समेत सेनाको शत्रुके उपद्रवकी शांतिके लिये एक स्थानमें रक्खे और दूसरे स्थानमें किलेके भीतर कुछ सेनासमेत राजा रहे इस भांति संधि आदि छः गुणोंके उपकार जाननेवालोंने दो प्रकारका द्वैध कहा है ॥ ६७ ॥ शत्रुओं करि पीडा दिया शत्रुकी पीडाकी निवृत्तिरूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये अथवा उस समय पीडाके न होनेपर आगे होनेवाली शत्रुपीडाकी शंकासे यह राजा इस महाबली राजाका आश्रित है यह व्यपदेश सर्वत्र प्रकट करनेके लिये बलवान्का आश्रम लेना इस भांति संश्रय दो प्रकारका कहा गया है ॥ ६८ ॥

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः॥तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा संधिं समाश्रयेत् ॥ ६९ ॥ यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम् ॥ अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥ १७० ॥

भाषा–जब युद्धके उपरांत निश्चय अपनी अधिकता जाने उस कालमें थोडे धन आदिके क्षयकोभी अंगीकार करके संधि कर लेवे ॥ ६९ ॥ जब मंत्री आदि सब प्रकृतियोंको दानसन्मान आदिसे बहुतही संतुष्ट जाने और आपको हाथी घोडे खजाना आदिसे पुष्ट जाने तब विग्रह कहिये युद्ध करे ॥ १७० ॥

यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् ॥ परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति ॥ ७१ ॥ यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च ॥ तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन् ॥ ७२ ॥

भाषा–जब अपनी अमात्य आदि सेनाको हर्षयुक्त और धन आदिसे पुष्टत्वसे जाने और शत्रुके अमात्य आदि बलको अपनेसे विपरीत जाने तब शत्रुपर चढाई

करे ॥ ७१ ॥ जब हाथी घोडा आदि वाहनोंसे और मंत्री आदि सेनासे क्षीण होय तब हौले २ सामसे भेंट आदि देनेसे शत्रुको शांत करता हुआ यत्नसे आसन करे अर्थात् चुपचाप बैठ रहे ॥ ७२ ॥

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ॥ तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ॥ ७३ ॥ यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत् ॥ तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥ ७४ ॥

भाषा-जब राजा सब भांति शत्रुको बलवान् और संधि न करता हुआ जाने तब कुछ सेनासमेत आप किलेमें रहे और सेनाके एक भागसे शत्रुके साथ युद्ध करे ऐसे सेनाके दो भाग करके मित्रसंग्रह आदि अपना काम सिद्ध करे ॥ ७३ ॥ जब तो अमात्य आदि प्रकृतिके दोष आदिसे बहुतही ग्रहण करने योग्य होय और सेनाके दो भाग करके किलेमें रहनेपरभी अपनी रक्षा न कर सके तब शीघ्रही धर्मात्मा तथा बलवान् राजाका आश्रय लेवे ॥ ७४ ॥

निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽरिबलस्य च ॥ उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ ७५ ॥ यदि तत्रापि संपश्येद्दोषं संश्रयकारितम् ॥ सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥ ७६ ॥

भाषा-कैसा बलवान् होय सो कहते हैं जिनके दोपसे यह अत्यंत जाने योग्य हुआ उन प्रकृतियोंका और जिससे शत्रुके बलसे इसको भय उत्पन्न हुआ होय उन दोनोंको जो दंड देनेको समर्थ होय उस राजाका नित्य गुरुके समान सेवन करे ॥ ७५ ॥ जिसकी गति नहीं है उसकी गति आश्रय लेना है जो उससेभी आश्रयका किया हुआ दोष देखे तो उस कालमें निस्संदेह होके सुंदर युद्ध करे दुर्बलकाभी बलवान्से विजय देखा गया है और जो मारा जाय तो स्वर्ग मिले ॥ ७६ ॥

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ॥ यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ ७७ ॥ आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत् ॥ अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥ ७८ ॥

भाषा-सब साम आदि उपायोंसे नीतिका जाननेवाला राजा ऐसा यत्न करे जिसमें इसके मित्र उदासीन और शत्रु बहुत न होंय अधिकता होनेपर यह उनके ग्रहण करने योग्य हो जाता है क्योंकि धनके लोभसे मित्रभी शत्रु हो सकते हैं॥७७॥ सब थोडे वा बहुत कार्योंके उत्तरकाल तथा गुणदोषका विचार करे और वर्तमानकालका तो शीघ्रही करनेके लिये विचार करे और बीते हुए सब कार्योंके गुणदोषोंको इनमें क्या किया और क्या दोष है ऐसे यथार्थ विचार करे ॥ ७८ ॥

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ॥ अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ ७९ ॥ यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः ॥ १८० ॥

भाषा–उत्तरकालमें कार्योंके गुणदोषको जानता है वह गुणवान् कार्यका आरंभ करता है और दोषयुक्तका परित्याग करता है और जो वर्तमानकालमें शीघ्रही निश्चय करके कार्यको करता है और बीते हुए कार्यमें शेषको जानता है वह उस कार्यकी समाप्तिमें फलको पाता है जिससे ऐसे तीनों कालोंमें सावधान होनेसे कभी शत्रुओंकरके नहीं दवाया जाता है ॥ ७९ ॥ जैसे इस राजाको कहे हुए मित्र उदासीन तथा शत्रु बाधा न देवें ऐसा सब समान करे यह नीतिका संक्षेप है ॥१८०॥

यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रं प्रति प्रभुः ॥ तदानेन विधानेन यायादरिपुरं शनैः ॥ ८१ ॥ मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः ॥ फाल्गुनं वाथ चैत्रं वा मासौ प्रति यथाबलम् ॥ ८२ ॥

भाषा–जब समर्थ हो शत्रुके देशपर चढाईका आरंभ करे तब इस आगे कहे हुए प्रकारसे शत्रुके देशको शीघ्रता न करके जाय ॥ ८१ ॥ चतुरंगसेनाकरि युक्त राजा हाथी रथ आदिकी यात्राके विलम्बसे देरमें यात्रा करता हुआ तथा हेमंत ऋतुके बहुत है धान्य जिसमें ऐसे शत्रुके देशपर चढाई किया चाहता वह अपनी यात्राके लिये सुंदर मार्गशीर्षके महीनेमें यात्रा करे और जिस राजाके घोडे बहुत होंय और शीघ्रगति होंय वह राजा वसंतऋतुके जिसमें धान्य बहुत है ऐसे शत्रुके देशपर चढाई करना चाहता होय वह फाल्गुनमें अथवा चैतमें अपनी सेनाके जाने योग्य कालका उल्लंघन न करके यात्रा करे ॥ ८२ ॥

अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद् ध्रुवं जयम् ॥ तदा यायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः ॥ ८३ ॥ कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि ॥ उपगृह्यास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च ॥ ८४ ॥ संशोध्य विविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम् ॥ सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥ ८५ ॥

भाषा–कहे हुए कालोंसे भिन्न कालोंमेंभी जब निश्चय अपना जय जाने तब अपनी सेनाके योग्य ग्रीष्म आदि कालमेंभी हाथी घोडे आदि बहुत सेनावाला विरोधही करके यात्रा करे और शत्रुका अमात्य आदि प्रकृतिमें दंड पारुष्य आदि व्यसन उत्पन्न होनेपर शत्रुके पक्षमें उसकी प्रजाके होनेपर कहे हुए कालसे

और कालमेंभी चढाई करे. मूल कहिये अपने किले तथा देशमें पार्ष्णिग्राह किये गये प्रधान पुरुषको अधिष्ठाता करके रक्षा करनेके योग्य सेनाको एक स्थानमें स्थापित करि यात्राके उपयोगी वाहन आयुध और कवचका शास्त्रकी रीतिसे यात्राका विधान करके जैसे पराये देशमें गये हुए इस राजाका ठहरना होय ऐसेको लेकर शत्रुके पक्षवाले भृत्योंको अपने आधीन करके कपट करनेवाले दूतोंको शत्रुके देशकी वार्ता जाननेके लिये भेजके भली भांति जांगल अनूप आटविक भेदसे तीनि प्रकारके मार्गको वृक्षगुल्म आदिके काटने और ऊंचे नीचेके बराबर करने आदिसे शोधन करि हाथी घोडा रथ पयादोंकी सेना और कर्मकर कहिये काम करनेवालोंसमेत छः प्रकारकी सेनाको आहार औषध सत्कार आदिसे शोधन करके संग्रामकी उचित विधिसे शीघ्रही शत्रुके देशको यात्रा करे ॥८३॥८४॥८५॥

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ॥
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥ ८६ ॥

भाषा–जो मित्र गुप्तरूपसे शत्रुका सेवन करता है और जो भृत्य आदि पहले बिगडकर चला गया और पीछे आ गया होय उन दोनोंसे सावधान रहे जिससे वह बहुतही कठिन शत्रु है ॥ ८६ ॥

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा ॥ वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा ॥ ८७ ॥ यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद्बलम् ॥ पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम् ॥ ८८ ॥

भाषा–दंडकी आकृति व्यूहकी रचना आदि है उसको दंडव्यूह कहते हैं ऐसेही शकट आदि व्यूहभी होते हैं दंडव्यूहमें सेनाके आगे सेनाका स्वामी मध्यमें राजा पीछे सेनापति बगलोंमें हाथी उनके समीप घोडे तिस पीछे पयादे ऐसे रचना करनेसे सब ओरसे बराबर स्थितियुक्त दंडव्यूह होता है उससे चहूं ओर भय होनेपर चलने योग्य मार्गको चले और मुख तथा पीछेका भाग पतला बीचका भाग भारी ऐसा वराह व्यूह होता है इसीका जो बीचका भाग बहुत भारी होय तो गरुड व्यूह होता है जो दोनों बगलोंसे भय होय तो इन दोनों व्यूहोंसे यात्रा करे वराह व्यूहका उलटा मकरव्यूह होता है उससे आगे पीछे दोनों ओर भय होनेपर यात्रा करे और चीटियोंकी पंक्तिके समान आगे पीछे इकट्ठे होके जहां जहां सेनावालोंकी स्थिति है और वीरपुरुष जिसके आगेके भागमें स्थित हैं वह सूचीमुखव्यूह उससे आगे भय होनेपर यात्रा करे ॥ ८७ ॥ जिस दिशासे शत्रुके भयकी शंका होय उसीमें अपनी सेनाको फैलावे जिसके चारों ओर बराबर सेना फैली होय और बीचमें जिसके राजा स्थित है उस कमलव्यूह करि पुरसे निकलके सदा पडाव डाले ॥८८॥

सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ॥ यतश्च भयमाशंकेत्प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम् ॥ ८९ ॥ गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान्समंततः॥ स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः ॥ १९० ॥

भाषा-हाथी, घोडे, रथ, पयादे, रूप दश अंगका एक पति करना चाहिये उसको पत्तिक कहते हैं दश पत्तिकका एक स्वामी सेनापति कहाता है दश सेनापतिका नायक एक एक सेनानायक वा बलाध्यक्ष होता है उन दोनों सेनापति और बलाध्यक्षको सब दिशाओंमें युद्धके लिये नियुक्त करे और जब जिस दिशासे भयकी शंका होय तब उस दिशाको आगे करे ॥ ८९ ॥ विश्वासवाले पुरुष जिनके अधिष्ठाता हैं ऐसे गुल्मनाम सेनाके भागोंको तथा स्थित होके अथवा हटिके युद्ध करनेके लिये किया है भेरी ढोल शंख आदिका संकेत जिन्होंने और ठहरने तथा युद्धमें प्रवीण निर्भय व्यभिचाररहित सेनापति बलाध्यक्षोंको दूर सब दिशाओंमें दूसरेका प्रवेश रोकनेके लिये और शत्रुकी चेष्टा जाननेके लिये नियत करे ॥१९०॥

संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून् ॥ सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत् ॥ ९१ ॥ स्यन्दनाश्वैः समे युद्धयेदनूपे नौद्विपैस्तथा ॥ वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥ ९२ ॥

भाषा-थोड़े योद्धाओंको इकट्टे करके लडावे और बहुतोंको अच्छे प्रकारसे फैलाय दे पहले कही हुई सूचीसे अथवा वज्रनाम व्यूहसे तीनि प्रकारसे खडी है सेना जिसकी ऐसी रचना करके योद्धाओंको लडावे ॥ ९१ ॥ समान भूमिके भागमें रथ तथा घोडोंसे युद्ध करे वहां उनकी युद्धकी सामर्थ्य है और जिस देशमें जल बहुत है वहां नाव तथा हाथियोंसे युद्ध करे और वृक्ष तथा गुल्मोंसे घिरे हुए स्थानमें धनुषधारियोंसे और गढिले कंटक पत्थर आदि रहित स्थलमें ढाल, तलवार, भाला आदि शस्त्रोंसे युद्ध करे ॥ ९२ ॥

कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान् ॥ दीर्घाँल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत् ॥ ९३ ॥ प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक्परीक्षयेत् ॥ चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि ॥ ९४ ॥

भाषा-कुरुक्षेत्रमें उत्पन्न मनुष्योंको तथा मत्स्य कहिये विराट देशके निवासियोंको और पांचाल कहिये कान्यकुब्ज तथा अहिच्छत्रमें उत्पन्न मनुष्योंको और शूरसेन कहिये माथुरोंको बहुधा भारी शरीर शूरता तथा अहंकारका योग होनेसे सेनाके आगे युद्ध करावे तैसेही और देशोंकेभी छोटी बडी देहवाले युद्धके

अभिमानी मनुष्योंको सेनाके आगेही रक्खे ॥ ९३ ॥ सेनाकी व्यूहरचना करके विजयमें धर्मका लाभ और सम्मुख मारे गयेको स्वर्गका लाभ और भागनेमें स्वामीके पाप तथा नरककी प्राप्ति होती है ऐसे कहके उनको युद्धका उत्साह करावे और वे किस अभिप्रायसे प्रसन्न होते हैं और किससे कुपित होते हैं इस बातकी परीक्षा करे ऐसेही शत्रुओंसे युद्ध करते हुएभी योद्धाओंकी सकपट निष्कपट चेष्टाओंको जाने ॥ ९४ ॥

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् ॥ दूषयेच्चास्य संततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥ ९५ ॥ भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा ॥ समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥ ९६ ॥

भाषा–किलेमें होवे अथवा बाहर होय ऐसे युद्ध करते हुए राजाको घेरके पडा रहे और इसके देशको उजाडे और इसके घास अन्न पानी इंधनको नष्ट वस्तुओंके मिलाने आदिसे दूषित करे ॥ ९५ ॥ शत्रुके जल पीने योग्य तालाव आदिकोंको और किला परकोटा आदिको तोड दे और उसकी खाइयोंको तोडने भर देने आदिसे जलरहित कर दे ऐसे शत्रुओंको शंकारहित होके दबावे और शक्तिको ले लेवे और रात्रिमें ढक्का काहलिक आदि शब्दोंसे डर पावे ॥ ९६ ॥

उपजप्यानुपजपेद्बुद्ध्येतैव च तत्कृतम् ॥ युक्ते च दैवे युद्ध्येत जयप्रेप्सुरपेतभीः ॥ ९७ ॥ साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक् ॥ विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन ॥ ९८ ॥

भाषा–भेदके योग्य राज्यके चाहनेवाले शत्रुके वंशके लोगोंको तथा क्षोभयुक्त अमात्य आदिकोंको फोडे और भेदसे अपने किये गये उनकी चेष्टाको जाने और शुभग्रहकी दशा आदिसे फलयुक्त दैवको जानके जयकी इच्छासे निर्भय युद्ध करे ॥ ९७ ॥ प्रीति तथा आदरसे देखने और हितके कहने आदि रूप सामसे और शत्रुको हाथी घोडा रथ सुवर्ण आदिके देने रूप दानसे और शत्रुकी प्रजा और राज्य चाहनेवाले उसके अनुगामियोंके फोडनेरूप भेदसे इन सब उपायोंसे सामर्थ्यके अनुसार शत्रुओंके जीतनेका यत्न करे युद्धसे कभी नहीं॥ ९८ ॥

अनित्यो विजयो यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः ॥ पराजयश्च संग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ॥ ९९ ॥ त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसम्भवे ॥ तथा युद्ध्येत संपन्नो विजयेत रिपून्यथा ॥ २०० ॥

भाषा–युद्ध करते हुए राजाओंकी थोडे बल और बहुत बलकी अपेक्षाके विनाही नियमसे जीति हारि हो देखी जाती है तिससे और उपायोंके होनेपर युद्ध-

को नहीं करे ॥ ९९ ॥ पहले कहे हुए तीनि साम आदि उपायोंसे काम न होनेपर जीति हारिके संदेहमेंभी यत्नवाला ऐसे युद्ध करे जैसे शत्रुओंको जीत लेवे जिससे जीतिमें अर्थका लाभ होता है और सम्मुख मरनेमें स्वर्ग मिलता है और जहां निस्संदेह पराजय कहिये हारना पडे वहां युद्धसे हटि जाना अच्छा है जैसे आगे कहेंगे कि 'आत्मा तु रक्ष्य इति' अर्थात् अपनी सदा रक्षा करे यह मेधातिथि और गोविंदराजने लिखा है ॥ २०० ॥

जित्वा संपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान् ॥ प्रदद्यात्परिहारांश्च ख्यापयेदभयानि च ॥ १ ॥ सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चिकीर्षितम् ॥ स्थापयेत्तत्र तद्वंश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम् ॥ २ ॥

भाषा-पराये देशको जीतके उसमें जो देवता होंय उनको तथा धर्मप्रधान ब्राह्मणोंको भूमि सुवर्ण आदिके दान तथा सन्मानसे पूजन करे जीते हुए द्रव्यके एक भागके देने आदिहीसे यह पूजन है सो याज्ञवल्क्यने कहा है " नातः परतरो धर्मो नृपाणां यद्रणार्जितम् । विप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं प्रजाभ्यश्चाऽभयं सदा॥" अर्थ-इससे परे राजाओंका धर्म नहीं है कि रणमें जोडा हुआ धन ब्राह्मणोंको दिया जाय और प्रजाको सदा अभय दिया जाय इति । तथा देवता और ब्राह्मणोंके लिये मैंने यह दिया ऐसे देशके वासियोंको परिहार दे तथा स्वामीकी भक्तिसे जिन्होंने हमारा अपकार किया है उनकी मैंने क्षमा की अब निर्भय हो सुखसे व्यापार करो ऐसे अभय करे ॥ १ ॥ शत्रु और उसके मंत्री आदि सबोंहीका संक्षेपसे अभिप्राय जानकर उन देशोंमें बलसे मारे हुए राजाके वंशहीके पुरुषको राज्यमें स्थापित करे और तुमको यह करना चाहिये यह न करना चाहिये यह उसके लिये तथा उसके मंत्रियोंके लिये नियम करे ॥ २ ॥

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान् ॥ रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥ ३ ॥ आदानमप्रियकरं दानं च प्रियकारकम् ॥ अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते ॥ ४ ॥

भाषा-उन पराये मनुष्योंके लिये देशके धर्मसे शास्त्रसे प्राप्त आचारोंको प्रमाण करे और इस राज्यमें बैठाये हुए राजाको मंत्री आदिके समेत रत्न आदिकोंके देनेसे पूजन करे ॥ ३ ॥ यद्यपि वांछित वस्तुओंका ले लेना अप्रिय करनेवाला है और देना प्रिय करनेवाला है यह स्वभाव है तिसपरभी समय समयमें लेना देना प्रशंसाके योग्य होता है इससे उसी कालमें पूजन करे ॥ ४ ॥

सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे ॥ तयोर्दैवमचिन्त्यं तु मा-

नुषे विद्यते क्रिया ॥ ५ ॥ सह वापि व्रजेद्युक्तः संधिं कृत्वा प्रयत्नतः ॥ मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यंस्त्रिविधं फलम् ॥ ६ ॥

भाषा–पूर्व जन्ममें इकट्ठे किये पुण्य पापरूप कार्य दैवके आधीन हैं और इस जन्ममें इकट्ठे किये हुए मनुष्यके व्यापारके आधीन हैं उन दोनोंमेंसे दैवका तौ चिंतवन नहीं हो सकता है मानुषमें तौ विचार हो सकता है इसलिये मानुषकेही द्वारा कार्यसिद्धिके लिये यत्न करना चाहिये ॥ ५ ॥ चढाई करने योग्य शत्रुसे युद्ध करना चाहिये अथवा वही मित्र हो जाय और उस करके सुवर्ण दिया जाय अथवा भूमिका एक देश दिया जाय इन तीनोंको यात्राका फल जानके उसके साथ संधि कहिये मिलाप करके यत्नसे चल दे ॥ ६ ॥

पार्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य तथाक्रन्दं च मण्डले ॥ मित्रादथाप्यमित्राद्वा यात्राफलमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैव ते ॥ यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥ ८ ॥

भाषा–जीतनेकी इच्छासे शत्रुपर गये हुए राजाके पीछे जो आके उसके देश आदिको दबाता है वह पार्ष्णिग्राह कहाता है वैसा करनेवाले उसका रोकनेवाला जो अनंतर राजा है उसको आक्रंद कहते हैं उन दोनोंको देखकर यात्रा करनी चाहिये अथवा मित्रताको प्राप्त हुए शत्रुसे यात्राका फल ग्रहण करे उन दोनोंके विना देखे ग्रहण करता हुआ राजा कदाचित् उनके किये हुए दोष करि ग्रहण किया जाय ॥ ७ ॥ सुवर्ण और भूमिके लाभसे राजा ऐसा नहीं वृद्धिको प्राप्त होता है जैसा इस समय दुर्बलभी आगेको वृद्धियुक्त स्थिर मित्रको पाके वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ॥ अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते ॥ ९ ॥ प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च ॥ कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥ २१० ॥

भाषा–धर्मका जाननेवाला तथा किये हुए उपकारका जाननेवाला और जिसकी प्रकृति कहिये स्वभाव संतोषयुक्त होय ऐसा और प्रीति करनेवाला और जिनके आरम्भ स्थिर हैं ऐसे कामोंका करनेवाला मित्र प्रशस्त कहिये उत्तम है ॥ ९ ॥ विद्वान् कुलीन शूर चतुर दाता कियेका जाननेवाला और धीरजवाला अर्थात् सुख-दुःखमें एकरूप ऐसे शत्रुको पंडित दुरुच्छेद कहिये दुःखसे उखाडने योग्य कहते हैं तिससे ऐसे शत्रुके साथ मिलाप करना चाहिये ॥ २१० ॥

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता ॥ स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः ॥ ११ ॥ क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृद्धिकरीमपि ॥ परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन् ॥ १२ ॥

भाषा-साधुपन पुरुषविशेषका जानना शूरता दयावान् होना बहुत देनेवाला होना ये उदासीनके सब गुण हैं तिससे इस प्रकारसे उदासीनका आश्रय लेकर जिसके लक्षण कह चुके हैं ऐसे शत्रुके साथभी युद्ध करना चाहिये ॥ ११ ॥ अनामय कहिये रोग न होने आदि कल्याणकी देनेवाली और नदीमातृक होनेसे सदा सब सस्योंकी देनेवाली और बहुतसे तृण आदिके योगसे पशुओंकी बढानेवाली भूमिको अपनी रक्षाके लिये राजा शीघ्रही अपनी रक्षाका और प्रकार न होनेपर त्याग करे ॥१२॥

आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ॥ आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ १३ ॥ सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो भृशम् ॥ संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान् सृजेद्बुधः ॥ १४ ॥

भाषा-आपत्ति निवारण करनेके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये और धनके परित्यागसेभी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये और अपनी फिर स्त्री तथा धनके त्यागसेभी रक्षा करे ॥ १३ ॥ कोपका क्षय प्रकृतिका कोप मित्रका व्यसन इत्यादिके आपत्तियोंको एकसाथ अधिकतासे उत्पन्न जानके मोहको न प्राप्त होय किन्तु जुदे जुदे अथवा सब सामादिक उपायोंको शास्त्रका जाननेवाला काममें लावे ॥ १४ ॥

उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः ॥ एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये ॥ १५ ॥ एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः ॥ व्यायम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ॥ १६ ॥

भाषा-उपेता कहिये उपाय करनेवाले आपको और उपेय कहिये प्राप्त होने योग्यको और उपाय सामादिक ये सब परिपूर्ण इन तीनोंका आश्रय लेके सामर्थ्यके अनुसार प्रयोजनसिद्धिके लिये यत्न करे ॥ १५ ॥ ऐसे पहले कहे हुए प्रकारसे मंत्रियोंके साथ सब राज्यके वृत्तांतका विचार करके पीछे शस्त्र आदिकोंके अभ्यासकी कसरत करके मध्याह्नमें स्नान आदि तथा मध्याह्नके कृत्य करके भोजनको रनवासमें जाय ॥ १६ ॥

तत्रात्मभूतैः कालज्ञैरहार्यैः परिचारकैः ॥ सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मन्त्रैर्विषापहैः ॥ १७ ॥ विषघ्नैरगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि योजयेत् ॥ विषघ्नानि च रत्नानि नियतो धारयेत्सदा ॥ १८ ॥

भाषा-वहां रनवासमें अपने तुल्य भोजन करनेके समयके जाननेवाले दूसरे कारि नहीं फोडने योग्य ऐसे रसोई करनेवालों कारि किये हुए और अच्छी भांति चकोर आदिके देखनेसे परीक्षा किये गये अर्थात् सविष अन्नको देखके चकोरकी आंखें लाल हो जाती हैं और विषके दूर करनेवाले मंत्रों कारि जपे हुए अन्नका भोजन करे ॥ १७ ॥ विषकी नाश करनेवाली औषधियोंसे सब भोजनके पदार्थोंको मिलावे और विषके हरनेवाले रत्नोंको यत्न करके सदा धारण करे ॥ १८ ॥

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः ॥ वेषाभरणसंशुद्धाः स्पृशेयुः सुसमाहिताः ॥ १९ ॥ एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने ॥ स्नाने प्रसाधने चैव सर्वालंकारकेषु च ॥ २२० ॥

भाषा-गूढ चारके द्वारा परीक्षा की गई और गुप्त शस्त्रका ग्रहण तथा विषसे लिपे हुए आभरणोंके धारण करनेकी शंकासे जिनके वेष और आभरण देखि लिये गये हैं जिनका मन अन्यत्र नहीं है ऐसी स्त्रियां चामर स्नान पान जल और धूप देना इन सब बातोंसे राजाकी सेवा करे ॥ १९ ॥ ऐसे वाहन शय्या आसन भोजन स्नान और चन्दन आदि अनुलेप इन सब अलंकारकी वस्तुओंमें नाना प्रकारकी परीक्षा आदि प्रयत्न करे ॥ २२० ॥

भुक्तवान् विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह ॥ विहृत्य तु यथाकालं पुनः कार्याणि चिन्तयेत् ॥ २१ ॥ अलंकृतश्च संपश्येदायुधीयं पुनर्जनम् ॥ वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ॥ २२ ॥

भाषा-भोजन करके वहीं रनवासमें भार्याओंके साथ विहार करके दिनके सातवें भागतक क्रीडा कर आठवें भागमें राज्यसम्बन्धी कार्योंका विचार करे ॥ २१ ॥ अलंकृत अर्थात् सब वस्त्र आभूषण आदिकोंको धारण किये हुए शस्त्र धारण करनेवाले मनुष्योंको अर्थात् सिपाहियोंको देखे और सब वाहनोंको तथा शस्त्रों और आभरणोंको देखे ॥ २२ ॥

संध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत् ॥ रहस्याख्यायिनां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥ २३ ॥ गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समनुज्ञाप्य तं जनम् ॥ प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरं पुनः ॥ २४ ॥

भाषा-उसके पीछे संध्योपासन करके अंतःपुरके एकांत स्थानमें जाके शस्त्रोंको लिये हुए एकांतमें कहनेवाले दूतोंके कामोंको सुने ॥ २३ ॥ उन मनुष्योंको आज्ञा देकर दूसरी कक्षामें जाके स्त्रियोंकारि युक्त भोजनके लिये फिरि रनवासमें जावे॥२४॥

तत्र भुक्त्वा पुनः किंचित्तूर्यघोषैः प्रहर्षितः ॥ संविशेत्तु यथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतक्लमः ॥ २५ ॥ एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः ॥ अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत् ॥ २२६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रो० संहितायां राजधर्मो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

भाषा-वहां कुछ खायके नगारोंके शब्दसे आनंदित हो उचित समयमें शयन करे फिर श्रमरहित हो पहर भरके तडके उठे ॥ २५ ॥ रोगरहित राजा इस कहे हुए विधानको आप करे और जो अस्वस्थ अर्थात् रोग आदिसे ग्रस्त होय तौ यह सब सेवकोंसे करावे ॥ २२६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिकृतायां
कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ।

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥ मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥ १ ॥ तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ॥ विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥२॥

भाषा-इस प्रकारके शत्रु राजाओंसे प्रजाकी रक्षासे पाई है जीविका जिसने ऐसा उन्ही प्रजाओंके आपसके विवादसे उत्पन्न पीडाकी शांतिके लिये ऋणादान आदि अठारह हैं विषय जिसके विरोधयुक्त अर्थी प्रत्यर्थी (मुदई मुद्दाआलह)के वचनोंसे उत्पन्न हुए संदेहके हरनेवाले विचारको व्यवहार कहते हैं उन व्यवहारोंके देखनेकी इच्छा करता हुआ राजा जो आगे कहे जांयगे उन लक्षणों करि लक्षित ब्राह्मणों और मंत्रियोंके और सातवें अध्यायमें कहे हुए पंचांग मंत्रोंके साथ नम्र तथा वाणी हाथ पांवकी चपलता न होनेसे शांतस्वरूप क्योंकि राजाके उद्धत होनेसे वादी प्रतिवादियोंकी बुद्धि ठीक न रहनेसे अच्छी भांति न कह सकनेपर तत्त्वका निर्णय नहीं होता है इस भांति आगे कही सभामें प्रवेश करे ॥ १ ॥ उस सभामें भारी कामकी अपेक्षासे बैठा हुआ और छोटे काममें खडा हुआभी दाहिनी भुजाको उठाय अनुद्धत वेष अलंकारी हो राजा कार्योंका विचार करे ॥ २ ॥

**प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ॥
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥**

भाषा–अठारह व्यवहारके मार्गोंमें पढे हुए और देश जाति कुलके व्यवहारोंसे जाने गये उन ऋणादान आदि कार्योंको शास्त्रसे निश्चय किये हुए दिव्य कहिये शपथ आदि कारणोंसे पृथक् २ प्रतिदिन विचार करे उन्ही अठारहको गिनते हैं॥३॥

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ॥ संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥ ४ ॥ वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ॥ क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥ ५ ॥ सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ॥ स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ ६ ॥ स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च ॥ पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ७ ॥

भाषा–उनमें पहला ऋणादान अर्थात् उधार लेना १ निक्षेप कहिये धरोहड २ अस्वामिविक्रय कहिये स्वामिके बिना बेचि देना ३ संभूयसमुत्थान कहिये इकट्ठे हो बनियां आदिकोंकी क्रियाका करना ४ दत्तस्यानपकर्म कहिये दिये हुए धनका अपात्रकी बुद्धिसे अथवा क्रोध आदिसे ले लेना ५ नौकरका मासिक न देना ६ की हुई व्यवस्थाको न मानना ७ लेने तथा बेचनेमें पछितावा करनेसे बदल जाना ८ स्वामीका और पशुओंके पालनेवालेका झगडा ९ ग्राम आदिकी सीमाका झगडा १० वाक्पारुष्य कहिये गाली आदिका देना ११ दंडपारुष्य मारना आदि १२ स्तेय कहिये चुराके धन लेना १३ साहस कहिये बलसे धन छीन लेना १४ स्त्रीका पराये पुरुषसे संयोग १५ स्त्रीसहित पुरुषकी धर्मव्यवस्था १६ पिता आदिके धनका विभाग १७ फांसोंसे खेलना अथवा दाव लगाके पक्षी मेंढा आदिका लडाना १८ ये अठारह व्यवहारके स्थान हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् ॥
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥ ८ ॥

भाषा–इन ऋणदान आदि अठारह व्यवहारके स्थानोंमें बहुधा विवाद करनेवाले मनुष्योंके अनादि तथा परंपरासे चले आये हुए नित्य धर्मका आश्रय ले कार्यका निर्णय करे भूयिष्ठ शब्दसे औरभी विवादके स्थान हैं यह सूचित करता है वे प्रकीर्णक शब्दसे नारदादिकोंने कहे हैं सोई नारदने कहा है जैसे “ न दृष्टं यच्च पूर्वेषु सर्वं तत्स्यात्प्रकीर्णकमिति ” अर्थ–जो पहले कहे हुए अठारहमें नहीं देखे गये हैं वे सब प्रकीर्णक हैं ॥ ८ ॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ॥ तदा नियुंज्याद्विद्वां-

सं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥ ९ ॥ सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः ॥ सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥ १० ॥

भाषा-जब दूसरे कामोंकी आवश्यकतासे अथवा रोग आदिसे राजा आप कार्योंको न देखे तब उनके देखनेके लिये कार्य देखना जाननेवाले ब्राह्मणको नियत करे ॥ ९ ॥ वह ब्राह्मण राजाके देखने योग्य कार्योंको सभाके योग्य धर्मात्मा और कार्य देखनेके जाननेवाले तीनि ब्राह्मणों करि युक्त उसी सभामें जाय बैठके अथवा खडा होके फिरता हुआ नहीं उन ऋणादान आदि कार्योंको देखे ॥ १० ॥

यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः ॥ राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान्ब्राह्मणस्तां सभां विदुः ॥ ११ ॥ धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ॥ शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥ १२ ॥

भाषा-जिस स्थानमें ऋक् यजु और सामके जाननेवाले तीनिभी ब्राह्मण और राजाका अधिकारी विद्वान् ब्राह्मण बैठता है उस सभाको चतुर्मुख सभा मानते हैं ॥ ११ ॥ भा प्रकाशको कहते हैं उस करके सहित होय उसको सभा कहते हैं यहां विद्वानोंके समूहको सभा मानते हैं देशमें विद्वानोंके समूहरूप सभामें सत्य कथनसे उत्पन्न धर्म मिथ्या कथनसे उत्पन्न अधर्म करि पीडित होता है अर्थात् अर्थी प्रत्यर्थियोंको मध्यमें एकके सत्य कहनेसे और दूसरेके झूंठ कहनेसे वे सभासद इस धर्मके पीडा होनेवाले होनेसे कांटेके समान अधर्मको नहीं निकालते हैं तब वेही उस अधर्मरूपी शल्यसे विध जाते हैं ॥ १२ ॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ॥ अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥ १३ ॥ यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ॥ हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १४ ॥

भाषा-सभाको जानकर व्यवहार देखनेके लिये उसमें न जाना चाहिये और जो पूंछा जाय तौ सत्यही कहना चाहिये चुप बैठा हुआ अथवा झूंठ कहता हुआ दोनों प्रकारसे शीघ्रही पापी होता है ॥ १३ ॥ जिस सभामें सभासदोंके देखते हुए उनका अनादर करके अर्थी प्रत्यर्थियोंकरि अधर्मसे धर्म नहीं दिखाई देता है और जहां साक्षियोंकरि सत्य झूंठसे नाश किया जाता है और वे सभासद उसका यथार्थ निर्णय नहीं कर सकते वहां वेही सभासद उस पापसे नष्ट हो जाते हैं ॥ १४ ॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥ तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ १५ ॥ वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ॥ यावत्स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः ॥ २७ ॥ वशाऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ॥ पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ॥ २८ ॥

भाषा–जिसको बालकके चाचा ताऊ आदि अन्यायसे लिया चाहते होंय ऐसे अनाथ बालकके धनकी राजा तबतक रक्षा करे जबतक यह बालक छत्तीस वर्षके कहे हुए ब्रह्मचर्यको पूरा करके गुरुके कुलसे न लौटके आवे ऐसेका बालकपन अवश्य दूर हो जायगा और जो असमर्थ होनेसे बालकही लौट आके उसकाभी जबतक बालकपन न निकल जाय तबतक उसके धनकी रक्षा करे बालपन सोलह वर्षतक रहता है क्योंकि "बाल आषोडशाद्वर्षात्" सोलह वर्षतक बालक रहता है यह नारदका वचन है ॥ २७ ॥ जिसके पतिने दूसरा विवाह कर लिया है ऐसी स्वामी कारि निर्वाहके लिये दिया हुआ बांझ स्त्रीका धन और पुत्ररहितका और पतिव्रता विधवाका और रोगिणी स्त्रीका जो धन है उसकी बालकके धनके समान रक्षा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः ॥ तांश्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ २९ ॥ प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ॥ अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ॥ ३० ॥

भाषा–हम इस तुम्हारे धनकी और अधिकारियोंसे रक्षा रक्खेंगे ऐसे बहानेसे जे बांधव जीवती हुई स्त्रीके धनको ले ले उनको आगे कहे हुए चोरके दंडसे धर्मात्मा राजा दंड देवे ॥ २९ ॥ जिसका स्वामी नहीं जाना भया उसको वही राजा किसका क्यों खो गया है ऐसे डोंडी पिटवाके राजद्वारा आदिमें रखवाके तीनि वर्षतक राह देखे जो तीनि वर्षके भीतर धनका स्वामी आय जाय तो वही लेवे और तीनि वर्षके पीछे राजा अपने काममें लावे ॥ ३० ॥

ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि ॥ संवाद्य रूपसंख्यादीन्स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥ ३१ ॥ अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः ॥ वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३२ ॥

भाषा–जो कहे कि यह मेरा धन है उससे कैसा है कितना है और कहां खोया इस भांती पूंछना चाहिये तिस पीछे जो वह रूप और संख्या आदिको सत्य कहे तो वह धनका स्वामी धन पानेके योग्य है ॥ ३१ ॥ नष्ट हुए द्रव्यके देश कालको अर्थात् इस देशमें और इस समयमें नष्ट हुआ है और वर्ण कहिये सपेद

आदि रंग वा कडा मुकुट आदि और प्रमाणको न जानता हुआ पुरुष उस नष्ट हुए द्रव्यके बराबर दंडके योग्य है ॥ ३२ ॥

आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः ॥ दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ३३ ॥ प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम् ॥ यांस्तत्र चौरान् गृह्णीयात्तान् राजेभेन घातयेत् ॥ ३४ ॥

भाषा-जो खोया हुआ धन राजाने पाया है उसमेंसे छठा दशवां अथवा बारहवां भाग रक्षा आदिके कारणसे पहले साधुओंका यह धर्म है इस बातको जानता हुआ राजा ग्रहण करे धनके स्वामीकी निर्गुणताकी तथा सगुणताकी अपेक्षा यह छठे भाग आदिके लेनेका विकल्प है बाकी धनके स्वामीको देवे ॥ ३३ ॥ जो किसीका खोया हुआ धन राजाके नौकरोंको मिले उसको राजा पहरेमें रखवावे उसकी चोरीमें जिन चोरोंको पकडे उनको हाथीसे मरवावे ॥ ३४ ॥

ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः ॥ तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा ॥ ३५ ॥ अनृतं तु वदन्दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् ॥ तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसीं कलाम् ॥ ३६ ॥

भाषा-जो मनुष्य आप निधि (भूमिमें गडी द्रव्य) को पाके अथवा औरकी पाई हुईको मेरी यह निधि है यह सत्य प्रमाणसे अपने संबंधको प्रकट करे उस पुरुषकी सगुण निर्गुणकी अपेक्षा उस निधिसे आठवां भाग राजा लेवे और शेष उसको देवे ॥ ३५ ॥ जो अपना नहीं है उसको अपना कहता हुआ पुरुष अपने धनके आठवें भागसे दंड योग्य है अथवा उसी निधिके बहुतही छोटे भागको गनिके जिससे उसको दुःख न होय दंड करे ॥ ३६ ॥

विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् ॥ अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः ॥ ३७ ॥ यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ ॥ तस्माद्द्विजेभ्यो दत्त्वार्धमर्धं कोशे प्रवेशयेत् ॥ ३८ ॥

भाषा-विद्वान् ब्राह्मण तौ पहले रक्खी हुई निधिको देखकर सब ले लेवे छठा भाग राजाको न देवे जिससे वह सब धन समूहका स्वामी है ॥ ३७ ॥ जो पुरानी भूमिमें गडी हुई बिना स्वामीकी निधिको राजा पावे तो उसमेंसे आधी ब्राह्मणोंको देकर आधी अपने भंडारमें जमा करे ॥ ३८ ॥

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ ॥ अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः ॥ ३९ ॥ दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं

धनम् ॥ राजा तदुपयुञ्जानश्चोरस्याप्नोति किल्बिषम् ॥ ४० ॥

भाषा–अपनी नहीं पुरानी भूमिमें गडी हुई निधिको और सुवर्ण आदिकी खानिको जो ब्राह्मणको छोडके अन्य जाति पावे तो उसके आधेका राजा स्वामी है कारण यह है कि वह रक्षा करता है और भूमिकाभी स्वामी है ॥ ३९ ॥ लोगोंका जो धन चोर ले जाय राजा उसको चोरोंसे मँगवाके धनके स्वामीको दे देवे उस धनको आप लेनेसे राजा चोरके पापको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

जातिजानपदान्धर्मान् श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित् ॥ समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥४१॥ स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽपि मानवाः ॥ प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥४२॥

भाषा–जातिधर्म कहिये ब्राह्मण आदि जातिमें नियत याजन आदि धर्मोंको तथा जानपद कहिये देशमें व्यवस्थित वेदसे विरुद्ध नहीं ऐसे धर्मोंको और श्रेणीधर्म कहिये वनिया आदि क्रमविक्रय करनेवालेंके कुलमें स्थित धर्मोंको जानके उनसे विरुद्ध न होय ऐसे धर्मोंको राजा व्यवहारमें स्थापित करे ॥ ४१ ॥ जाति देश कुल धर्मादिक अपने कर्मोंको करते हुए और अपने २ नित्य नैमित्तिक कर्मोंमें स्थित दूर रहनेपरभी निकट रहनेका स्नेह न रहनेपरभी लोकके प्यारे होते हैं॥४२॥

नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः ॥ न च प्रापितमन्येन ग्रसेदर्थं कथंचन ॥ ४३ ॥ यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम् ॥ नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥ ४४ ॥

भाषा–प्रसंगसे आये हुए इसको कहके फिर प्रकृतको कहते हैं राजा अथवा राजाका नियत किया हुवा प्राड्विवाक आदि धनके लोभ आदिसे कार्य जो ऋण आदिका विवाद (झगडा) है उसको आप न उत्पन्न करे और अर्थी अथवा प्रत्यर्थी करि पहुँचाये हुए कार्यकी धन आदिके लोभसे उपेक्षा (वेपरवाही) न करे ॥४३॥ जैसे वहेलिया शस्त्रसे मारे हुए मृगके स्थानमें रुधिरके गिरनेसे पहुँच जाता है वैसेही अनुमानसे अथवा दृष्ट प्रमाणसे राजा धर्मके तत्त्वका निश्चय करे ॥ ४४ ॥

सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः ॥ देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः ॥ ४५ ॥ सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः ॥ तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ४६ ॥

भाषा–व्यवहारके देखनेमें प्रवृत्त राजा छलको छोडके सत्यको देखे तैसेही अर्थकोभी अर्थात् गौ सुवर्ण आदि धनके विषयमें स्थित व्यवहारको देखे आंखि

मटकाके इसने मेरी हँसी की इत्यादि छोटे अपराधोंको न सुने और तत्वके निर्णयमें स्वर्ग आदिके फल पानेवाले आपको और सत्य बोलनेवाले साक्षियोंको और देश तथा कालको अर्थात् देश तथा कालमें उचित है स्वरूप जिसका ऐसे व्यवहारके स्वरूपकी गुरुता लघुता आदि देखे ॥ ४५ ॥ विद्वान् और धर्ममें प्रधान कहिये मुख्य ऐसे ब्राह्मणों करि देखे हुए और उस देश कुल तथा जातिसे विरुद्ध नहीं ऐसे शास्त्रको लेकर व्यवहारका निर्णय करे ॥ ४६ ॥

अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ॥ दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ॥ ४७ ॥ यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः ॥ तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम् ॥ ४८ ॥

भाषा-अधमर्ण जो ऋण लेनेवाला है उसकी अर्थ सिद्धिके लिये दिये हुए धनकी सिद्धिके लिये धनके स्वामी करि सूचित किया गया राजा जो आगे कहे जांयगे ऐसे लेख्य (तमस्सुक) आदिके प्रमाणसे निश्चय किये हुए धनको अधमर्ण कहिये ऋण लेनेवालेसे उत्तमर्ण अर्थात् धन देनेवालेको दिलवावे ॥ ४७ ॥ कैसे दिवावे सो कहते हैं जो आगे कहे जांयगे उन उपायोंसे दिये हुए धनको उत्तमर्ण पावे धन उन उपायोंसे वशमें करके उस धनको दिवावे ॥ ४८ ॥

धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च ॥ प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च ॥ ४९ ॥ यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात् ॥ न स राज्ञाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम् ॥ ५० ॥

भाषा-उन उपायोंको कहते हैं धर्मसे व्यवहारसे छलसे आचरितसे तथा पांचवें बलसे दिये हुए धनका साधन करे ॥ ४९ ॥ जो उत्तमर्ण दिये हुए धनको अधमर्णपर आपही बल आदिसे साबित करे वह अपने धनको भली भांति साधन करता हुआ हमसे विना कहे तुमने क्यों बल आदि किया ऐसे कहकर राजाको न मना करना चाहिये ॥ ५० ॥

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् ॥ दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः ॥ ५१ ॥ अपह्नवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि ॥ अभियोक्ता दिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत् ॥ ५२ ॥

भाषा-मैं इसका देनदार नहीं हूं ऐसे धनके विषयमें छुपानेवाले अधमर्णको कारण कहिये लेख्य तथा साक्षी और दिव्य (कसम) आदिसे साबित किये हुए धनको राजा उत्तमर्णके लिये दिवावे और छपानेमें पुरुष शक्तिसे आगे कहे हुए

दशवें भागसे न्यूनभी दंड दिवावे ॥ ५१ ॥ उत्तमर्णका धन दे इस भांति सभामें प्राड्विवाक करि कहे हुए अधमर्णके मैं इसका देनदार नहीं हूं ऐसे मुकरनेपर अभियोग (नालिश) करनेवाला अर्थी धन देनेके समय वर्त्तमान साक्षीको लावे क्योंकि बहुधा स्त्री मूर्ख आदिके धनका निर्णय साक्षियोंहीसे होता है इससे प्रथम साक्षी देवे अथवा और लेख्य आदि दिखावे ॥ ५२ ॥

अदेश्यं यश्च दिशति निर्दिश्यापह्नुते च यः ॥ यश्चाधरोत्तरानर्थान्विगीतान्नावबुध्यते ॥ ५३ ॥ अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्वपधावति ॥ सम्यक् प्रणिहितं चार्थं पृष्टः सन्नाभिनन्दति ॥ ५४ ॥ असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः ॥ निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत् ॥ ५५ ॥ ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत् ॥ न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थात्स हीयते ॥ ५६ ॥

भाषा–जो अदेश्य कहिये जिस देशमें ऋण लेनेके समय अधमर्णकी सदा स्थितिका संभव नहीं है उसको कहे अथवा जो देश आदिको कहके मैंने यह नहीं कहा है ऐसे मुकर जाय और जो पहले तथा पीछे अपने कहे हुए अर्थोंको विरुद्ध नहीं जानता है और जो मेरे हाथसे इसने सुवर्णका एक पल लिया है ऐसे कहके फिर कहे कि मेरे पुत्रसे लिया है और भली भांति प्रतिज्ञा किये हुए अर्थको तुमने रातिमें साक्षियोंके विना क्यों दिया ऐसे प्राड्विवाकके पूंछनेपर समाधान न करे और जो बात करनेके अयोग्य निर्जन आदि देशमें साक्षियोंके साथ परस्पर बात करे और जो कहे हुए अर्थकी दृढताके लिये प्राड्विवाकके कहे हुए प्रश्नकी इच्छा न करे और 'निष्पतेत्' कहिये यहां ठहरना योग्य नहीं जो तुम्हारे औरोंका ऐसा व्यवहार होनेपर ऐसे कहके नियत स्थानसे दूसरे स्थानको चला जाय और जो कहो ऐसे कहनेपर कुछ न कहे और जो कहे हुए साध्यको प्रमाणसे सिद्ध न करे और जो पहले साधनको और दूसरे साध्यको नहीं जानता है असाधनको साधन करके कहता है असाध्यही जैसे इसने शशेके सींगका बना मेरा धनुप लिया है इसको देना चाहिये इत्यादि बातोंको साध्यत्वसे कहे वह इस साध्य अर्थसे हीन हो जाता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः ॥ धर्मस्थः कारणैरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् ॥ ५७ ॥ अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्बध्यो दण्ड्यश्च धर्मतः ॥ न चेत्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मं प्रति पराजितः ॥ ५८ ॥

भाषा–मेरे साक्षी हैं ऐसे कहके उनको लाओ ऐसा कहनेपर जो साक्षियोंको

नहीं लाता है उसको धर्ममें स्थित प्राड्विवाक पहले कहे हुए इन कारणोंसे हारा हुआ कहे ॥ ५७ ॥ जो अर्थी राजस्थानमें निवेदन (नालिश) करके भाषामें (इजहारोंके समय) न कहे तो विषम तथा भारी मुकद्दमेकी अपेक्षासे वधके योग्य है और हलकेमें धर्मसे दंडके योग्य है और जो प्रत्यर्थी तीनि पक्षमें न कहे तो धर्मसे हारता है छलसे नहीं ॥ ५८ ॥

यो यावन्निह्नुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत्॥ तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम् ॥ ५९ ॥ पृष्टोऽपव्ययमानस्तु कृतावस्थो धनैषिणा ॥ त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥

भाषा-जो प्रत्यर्थी जितने धनको मुकरि जाय अथवा अर्थी जितने धनमें मिथ्या बोले वे दोनों अधर्मी छुपाने तथा झूंठ कहे हुए धनसे दुगुना दंड दिवाने योग्य हैं अधर्मज्ञौ इस वचनसे जानके छुपाने तथा मिथ्या कहनेके मध्ये यह दंड है प्रमाद आदिसे छुपाने तथा झूंठ नियोग (दावा) करनेमें सौका दशवां भाग कहेंगे ॥५९॥ धनके चाहनेवाले उत्तमर्ण करि राजपुरुषोंसे बुलवाया गया और प्राड्विवाक करि पूछा गया जब मैं नहीं देनदार हूं ऐसे छुपाय जाय तब राजाके अधिकारी ब्राह्मणके आगे तीनिसे कम न होय ऐसे साक्षियोंसे अर्थीको साबित करना चाहिये ॥ ६० ॥

यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः ॥ तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथा वाच्यमृतं च तैः ॥ ६१ ॥ गृहिणः पुत्रिणो मौला क्षत्रविट्शूद्रयोनयः॥अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि ॥ ६२ ॥

भाषा-उत्तमर्ण आदि धनियोंको ऋण लेने आदि व्यवहारोंमें जैसे साक्षी करने चाहिये उनको मैं कहूंगा और जैसे उनको सत्य बोलना चाहिये उस प्रकारकोभी कहूंगा ॥ ६१ ॥ गृहस्थ पुत्रयुक्त उसी देशके और जातिमें क्षत्रिय वैश्य शूद्र होंय ऐसे अर्थीके बतलाये हुए साक्षीके योग्य होते हैं वे निश्चय करि आदिके विनाशके भयसे और उस देशके बसनेवालेसे विरोधके कारण अन्यथा नहीं कहेंगे ऋण लेने आदिसे जो कोई साक्षी नहीं होते हैं आपत्तिमें तो वाग्दंडपारुष्य स्त्रीसंग्रहण आदिमें तो कहे हुए साक्षियोंसे भिन्न साक्षी होते हैं ॥ ६२ ॥

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः ॥ सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥ ६३ ॥ नार्थसंबन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः ॥ न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यार्ता न दूषिताः ॥ ६४ ॥

भाषा-सब वर्णोंमें आप्त कहिये यथार्थ कहनेवाले सब धर्मोंके जाननेवाले और

लोभरहित करने चाहिये और इनसे विपरीत न करे ॥ ६३ ॥ ऋण आदि अर्थके संबंधी अर्थात् अधमर्ण आदि और आप्त कहिये मित्र और सहायता करनेवाले और वैरी और दृष्टदोष कहिये जिनका कहीं झूठी गवाही देना जाना गया है और रोगी तथा जिनको महापातक आदि दोष लगि रहा है ऐसे साक्षी न करने चाहिये॥६४॥

**न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ ॥ न श्रोत्रि-
यो न लिङ्गस्थो न संगेभ्यो विनिर्गतः ॥ ६५ ॥ नाध्य-
धीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् ॥ न वृद्धो न शि-
शुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ॥ ६६ ॥**

भाषा–प्रभु है इस कारणसे पूंछने योग्य न होनेसे राजा साक्षी नहीं करने योग्य है और कारुक कहिये सुतार आदि कुशीलव कहिये नट आदि क्योंकि वे अपने कामसे अवकाश नहीं पाते हैं और बहुधा धनके लोभसे साक्षी होते हैं और वेदका पढना तथा अग्निहोत्र आदि कर्ममें लगे रहनेसे वेदपाठीको साक्षी न करे लिंगस्थ कहिये ब्रह्मचारी और संगविनिर्गत कहिये संन्यासी ये दोनोंभी अपने कर्ममें व्याकुल तथा ब्रह्मके ध्यानमें लगे रहते हैं इससे येभी साक्षी नहीं करने योग्य हैं श्रोत्रियके कहनेसे अग्निहोत्र आदिमें लगे हुए ब्राह्मणसे अन्य ब्राह्मणका निषेध नहीं है ॥ ६५ ॥ अध्यधीन कहिये जो बहुतही पराधीन होय ऐसा गर्भदास विहित कर्मके त्यागसे लोकमें निंदित है इस कारण साक्षी नहीं करना चाहिये और दस्यु कहिये क्रूरकर्म करनेवाला और विकर्मकृत् कहिये निषिद्ध कर्म करनेवाला क्योंकि उनसे राजाके द्वेष आदिका संभव है और वृद्ध न करना चाहिये क्योंकि बहुधा वृद्धकी बुद्धिमें अंतर पड जाता है और बालक न करना चाहिये क्योंकि वह व्यवहारसे बाहर है और एक न करना चाहिये और अंत्य कहिये चांडाल आदि और विकलेंद्रिय कहिये जिसकी कान आदि इंद्रियां बिगडी होंय ऐसे साक्षी न करने चाहिये ॥ ६६ ॥

**नार्त्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः ॥ न श्रमार्त्तो न का-
मार्त्तो न क्रुद्धो नापि तस्करः ॥ ६७ ॥ स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजा-
नां सदृशा द्विजाः ॥ शूद्राश्च संतः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥ ६८ ॥**

भाषा–आर्त्त कहिये बंधुविनाश आदिसे दुःखी और मद्य आदिसे मतवारा और भूत आदिके आवेशसे उन्मत्त और भूख प्यास आदिसे पीडित और श्रमार्त्त कहिये मार्गके चलने आदिसे थका हुआ और कामके जो वशमें होय तथा जिसको क्रोध उत्पन्न हुआ होय और चोर ये सब साक्षी न करना चाहिये ॥ ६७ ॥ स्त्रि-

योंके आपसके ऋण लेने आदि व्यवहार स्त्री साक्षिणी होती हैं और द्विज कहिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके सदृश कहिये समान जातिके साक्षी होते हैं ऐसेही शूद्रोंके सज्जन शूद्र साक्षी होते हैं और चांडालोंके चांडाल आदि साक्षी होते हैं और सजातीय साक्षी न होनेपर और जातिकेभी होते हैं ॥ ६८ ॥

अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् ॥ अन्तर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये ॥ ६९ ॥ स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा॥शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा॥७०॥

भाषा-घरके भीतर अथवा वन आदिमें चोरों करि किये हुए उपद्रवमें देहमें चोट लगनेपर अथवा आततायी आदिके किये हुए उपद्रवमें जो कोई मिल जाय वह वादियोंका साक्षी होता है ऋणदान आदिसे समान कहे हुए लक्षण करि युक्त साक्षी नहीं होते हैं ॥ ६९ ॥ घरके भीतर आदिमें कहे हुए साक्षी न होनेपर स्त्री, बालक, वृद्ध, शिष्य, मित्र, सेवक और कर्म करनेवालेभी साक्षी होते हैं ॥ ७० ॥

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा ॥ जानीयादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा ॥ ७१ ॥ साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च ॥ वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ ७२ ॥

भाषा-बालक वृद्ध रोगी और उपद्रवयुक्त मनवाले मत्त उन्मत्त आदिकोंके गवाही देनेमें झूंठ बोलनेवालोंकी वाणी स्थिर नहीं होती है इससे उनको अनुमानसे जाने ॥ ७१ ॥ घर जला देने आदि साहसमें और चोरी स्त्रीसंग्रहण और वाग्दंड-पारुष्यमें साक्षियोंकी कही हुई परीक्षा न करनी चाहिये ॥ ७२ ॥

बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः ॥ समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥ ७३ ॥ समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिद्ध्यति ॥ तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥ ७४ ॥

भाषा-साक्षियोंके आपसमें विरुद्ध कहनेपर जिसको बहुतसे कहें उसको राजा निर्णय प्रमाण करे और जो बराबर होय तौ गुणवानोंका प्रमाण करे गुणवानोंमेंभी जो विरोध पडे तो ब्राह्मणोंमें जो क्रियावान् उत्तम होय उनको प्रमाण करे ॥७३॥ सामने देखनेसे और कानोंसे सुननेसेभी साक्षी होता है सत्य बोलता हुआ साक्षी धर्म तथा अर्थ करि मुक्त नहीं होता है ॥ ७४ ॥

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि ॥ अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥ ७५ ॥ यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि

किंचन ॥ पृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥

भाषा–साधुओंकी सभामें देखे हुए और सुननेसे अन्यथा कहता हुआ साक्षी नीचा मुख हो नरकको जाता है और परलोकमेंभी अन्य कर्मोंसे प्राप्त स्वर्गरूप फलसे हीन हो जाता है ॥ ७५ ॥ तुम इस विषयमें साक्षी हो ऐसे कहके नहीं किया हुआभी जो कुछ ऋणका लेना आदि देखे अथवा वाक्पारुष्य आदिको सुने वहां साक्षी देखे सुनेके अनुसार कहे ॥ ७६ ॥

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्बह्व्यः शुच्योऽपि न स्त्रियः ॥ स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वाच्च दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः ॥ ७७ ॥ स्वभावेनैव यद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् ॥ अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥ ७८ ॥

भाषा–लोभरहित एकको साक्षी होता है और अपनी शुद्धताईसे युक्त बहुतभी स्त्रियां बुद्धि स्थिर न होनेके कारण ऋणदान आदि पर्यालोचित व्यवहारमें साक्षिणी नहीं होती हैं और अपर्यालोचित चोरी तथा वाग्दंडपारुष्य आदि व्यवहारमें असंभव होनेपर स्त्रीकोभी साक्षी करना चाहिये तथा औरभी जो चोरी आदि दोषोंकरि युक्त हैं वेभी पर्यालोचित व्यवहारमें साक्षी नहीं होते हैं ॥ ७७ ॥ जो साक्षी भय आदिके विना स्वभावसे कहे वह व्यवहारके निर्णयके लिये ग्रहण करना चाहिये और जिसको वे स्वाभाविकसे तथा अन्य किसी कारणसे कहे वह धर्मके विषयमें निष्प्रयोजन है उसको न ग्रहण करे ॥ ७८ ॥

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ॥ प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनानेन सान्त्वयन् ॥ ७९ ॥ यद्द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिंश्चेष्टितं मिथः ॥ तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥ ८० ॥

भाषा–सभामें आये हुए साक्षियोंसे अर्थी प्रत्यर्थीके सामने राजाका अधिकारी ब्राह्मण मीठी बातें कहता हुआ आगे कहे हुए प्रकारसे पूंछे ॥ ७९ ॥ इन दोनों अर्थी प्रत्यर्थियोंके आपसके इस काममें जो जानते हो वह सब सत्य कहो तुम इसमें साक्षी हैं ॥ ८० ॥

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् ॥ इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥ ८१ ॥ साक्ष्येऽनृतं वदन्पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम् ॥ विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ॥ ८२ ॥

भाषा–साक्षी अपने काममें सत्य कहता हुआ उत्कृष्ट ब्रह्मलोक आदि लोकोंको प्राप्त होता है और इस लोकमें अति उत्कृष्ट ख्यातिको प्राप्त होता है जिससे यह

सत्यरूप वाणी ब्रह्माकरि पूजित है ॥ ८१ ॥ साक्षी झूंठी वाणीको कहता हुआ वरुणकी पाश अर्थात् सर्परूप रस्सियोंसे बंधा हुआ और जलोदर नाम रोगके पराधीन हो सौ जन्मतक अत्यंत पीडित रहता है तिससे साक्षीको सत्य बोलना चाहिये॥८२॥

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते॥तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ८३ ॥ आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ॥ मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

भाषा-साक्षी सत्य कहनेसे पूर्वजन्ममेंभी इकट्ठे किये हुए पापसे छूट जाता है और सत्य कहनेसे इसका धर्म बढता है तिससे सर्ववर्णके विषयमें साक्षीको सत्य कहना चाहिये ॥ ८३ ॥ शुभ अशुभ कर्ममें स्थित आत्माही अपना रक्षक है तिससे मनुष्योंके मध्यमें उत्तम साक्षी आत्माको झूंठ बोलनेसे मत तिरस्कार कर ॥ ८४ ॥

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ॥ तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ८५ ॥ द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः॥रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥ ८६ ॥

भाषा-पाप करनेवाले ऐसा जानते हैं कि अधर्म करनेमें हमें कोई नहीं देखता है परन्तु उनको आगे कहे हुए देखते हैं और अपना अन्तरात्मा पुरुष देखता है ॥ ८५ ॥ द्युलोक, पृथिवी, जल, हृदयमें स्थित जीव, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, पवन, रात्रि और दोनों संध्या और धर्म ये सब देहधारियोंके शुभ कर्मको जानते हैं॥८६॥

देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् ॥ उदङ्मुखान्प्राङ्मुखान्वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन् ॥८७॥ ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् ॥ गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः॥८८॥

भाषा-प्रतिमा आदिकोंसे जो पूर्वको अथवा उत्तरको मुख किये होय आप प्राड्विवाक शुद्ध होके पूर्वाह्ण काल अर्थात् दुपहरके पहले साक्ष्य (ग्वाही) पूंछे ॥ ८७ ॥ ब्रूहि कहिये कहो ऐसा शब्द कहके ब्राह्मणसे पूंछे और सत्य कहो ऐसा कहके क्षत्रियसे पूंछे और गौ, बीज तथा सुवर्णके चुरानेमें जो पाप होता है सो तुमको झूंठ बोलनेमें होगा ऐसे कहके वैश्यसे पूंछे और जो झूंठ बोलोगे तो जिनको आगे कहेंगे उन सब पापोंकरि युक्त होंगे ऐसे कहके शूद्रसे पूंछे ॥ ८८ ॥

ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः॥ मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा ॥८९॥ जन्मप्रभृति यत्किंचित्पुण्यं भद्र त्वया कृतम्॥तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ॥ ९० ॥

भाषा–ब्राह्मणके मारनेवालेको तथा स्त्री और बालकके मारनेवालेको और मित्रद्रोहीको तथा कृतघ्नीको जो लोक मिलते हैं वे झूंठ गवाही देनेवालेको प्राप्त होते हैं ॥ ८९ ॥ हे शुभ आचारवाले! जन्मसे लगाके जो कुछ तुमने सुकृत किया है सो सब तुम्हारा झूंठी गवाही देनेसे कूकुर आदिमें चला जायगा ॥ ९० ॥

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे ॥ नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥ ९१ ॥ यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः ॥ तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून् गमः ॥ ९२ ॥

भाषा–हे भद्र! मैं जीवात्मक एकही हूं यह जो तुम आपको मानते हो तो ऐसा मत मानो क्योंकि पापों और पुण्योंका देखनेवाला मुनि कहिये सर्वज्ञ परमात्मा सदा तुम्हारे हृदयमें स्थित है ॥ ९१ ॥ सबके संयमनसे यम और दंडधारी होनेसे वैवस्वत और क्रीडा करनेसे देव जो यह तुम्हारे हृदयमें स्थित है उसके साथ यथार्थ कहनेसे जो तुम्हारा विवाद न होय जब तुम्हारे मनोगतको यह और प्रकारसे जानता है और तुम और प्रकारसे कहते हो तौ अन्तर्यामीके साथ तुम्हारा विरोध होगा इससे सत्य कहनेहीसे तुम पापरहित और कृतकृत्य हो पाप दूर करनेके लिये गंगा तथा कुरुक्षेत्रको मत जाओ ॥ ९२ ॥

नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ॥ अन्धः शत्रुकुलं गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ ९३ ॥ अवाक्छिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं व्रजेत् ॥ यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन् धर्मनिश्चये ॥ ९४ ॥

भाषा–जो झूंठ साक्ष्य देता है वह नंगा तथा मुडिया हो खपरेमें भीख मांगनेको शत्रुकुलमें जाता है ॥ ९३ ॥ धर्मके निश्चयके लिये पूंछा गया जो पुरुष झूंठ बोलता है वह पापी अधोमुख हो बडे अंधकारमें जो नरक है उसमें जाता है ॥ ९४ ॥

अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति स नरः कण्टकैः सह ॥ यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः ॥ ९५ ॥ यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते ॥ तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥ ९६ ॥

भाषा–सभामें गया हुआ जो पुरुष तत्व अर्थके ठीक ठीक भावको न जानि घूंसी आदि सुखके लेशसे कहता है वह अंधेके समान कांटेसमेत मछलियोंको खाता है सुखकी बुद्धिसे तो प्रवृत्त होता है परन्तु बडे दुःखको पाता है ॥ ९५ ॥ जिसके कहते हुए सर्वज्ञ अंतर्यामी क्या यह झूंठ बोलता है अथवा सत्य ऐसी शंका नहीं करता है किन्तु सत्यही कहता है ऐसे शंकारहित होता है लोकमें उस पुरुषसे अन्य देवता नहीं जानते हैं ॥ ९६ ॥

यावतो बान्धवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ॥ तावतः संख्यया तस्मिन् शृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥ ९७ ॥ पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते॥शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ९८ ॥

भाषा-जिस पशु आदिके निमित्त साक्ष्य (गवाही) में झूंठ कहता हुआ जितने पिता आदि वांधवोंको नरकमें डालता है गणनासे गिनाये हुए उनको हे साधो! मुझसे सुनो अथवा जितने वांधवोंको मारता है उनके मारनेके फलको पाता है उनको सुनो दोनों पक्षोंमें झूंठ बोलनेकी निंदा हुई ॥ ९७ ॥ पशुके मध्ये झूंठ वोलनेमें पांच वांधवोंको नरकमें डालता है अथवा पांच वांधवोंके मारनेके फलको पाता है ऐसे गौओंके विषयमें दशके और अश्वके सौके और पुरुषके विषयमें एक हजारके यह संख्याका गौरव प्रायश्चित्तके गौरवके लिये है ॥ ९८ ॥

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ॥ सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ॥ ९९ ॥ अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने ॥ अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥१००॥

भाषा-सुवर्णके लिये झूंठ वोलता हुआ पुरुष उत्पन्न हुए और न उत्पन्न हुए पुत्रपौत्र आदिको नरकमें डालता है अथवा इनके मारनेके फलको पाता है और भूमिके विषयमें झूंठ वोलता हुआ सब प्राणियोंके मारनेके फलको पाता है तिससे भूमिके मध्ये झूठ मत वोलो यह शिष्यकी शिक्षाका कथन है ॥९९॥ वैदूर्य आदि मणियोंकी झूंठमें भूमिके समान दोष है यह कहते हैं तालाव तथा कुआके लेने योग्य जलके मध्ये और स्त्रियोंके मैथुन नाम उपभोगमें और अब्ज कहिये जलसे उत्पन्न हुए मोती आदिकोंके मध्ये और पाषाणमयी वैदूर्य आदिके मध्ये झूठमें भूमिके समान दोष कहते हैं ॥ १०० ॥

एतान् दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे ॥ यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद ॥ १ ॥ गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान् ॥ प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥ २ ॥

भाषा-झूंठ वोलनेमें तुम इन सव दोषोंको देखि जैसा देखा और सुना होय वैसाही तत्वसे कहो ॥ १ ॥ गौओंकी रक्षासे जीनेवाले और वाणिज्यसे जीनेवाले तथा सुतार आदि कारुकर्मसे जीनेवाले तथा नटके कामसे और नाचने गानेसे जीनेवाले और दासकर्मसे जीनेवाले और निषिद्ध जीविका करनेवाले ब्राह्मणोंसे साक्षीके प्रश्नमें शूद्रके समान पूंछे ॥ २ ॥

तद्वदन् धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः ॥ न स्वर्गाच्च्यवते लोका-
द्दैवीं वाचं वदन्ति ताम् ॥ ३ ॥ शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रर्तोक्तौ
भवेद्वधः ॥ तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते ॥ ४ ॥

भाषा-साक्ष्यको अन्यथाभी जानता हुआ मनुष्य धर्मसे दया आदि कर व्यवहारोंमें अन्यथा कहता हुआ स्वर्गसे नहीं भ्रष्ट होता है जिससे यह कारण विशेषसे जो झूंठ कहना है उसको मनु आदि देवसंबंधिनी वाणी कहते हैं ॥ ३ ॥ जहां सत्य कहनेमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रका वध होता होय वहां झूंठ बोलना चाहिये क्योंकि वह झूंठ सत्यसे अधिक है ॥ ४ ॥

वाग्दैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम् ॥ अनृतस्यैनसस्तस्य
कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥ ५ ॥ कूष्माण्डैर्वापि जुहुयाद् घृतमग्नौ
यथाविधि ॥ उदित्यृचा वा वारुण्या त्र्यृचेनाब्दैवतेन वा ॥ ६ ॥

भाषा-वे झूंठ बोलनेवाले साक्षी झूठसे उत्पन्न हुए पापकी उत्कृष्ट शुद्धिको करते हुए वाणी है देवता जिसकी ऐसे चरुसे सरस्वतीका यजन करे ॥ ५ ॥ यजुर्वेदके " यद्देवादेवहेडनं " इत्यादि कूष्मांड मंत्र हैं उन मंत्रोंसे देवताके निमित्त अग्निमें विधिपूर्वक घृतका होम करे और अपने गृह्यमें कहे हुए परिस्तरण आदि होमके धर्मसे वरुण है देवता जिसके ऐसी "उदुत्तमं वरुणपाशम्" इस ऋचासे और उदक जिसकी देवता है ऐसी " आपोहिष्ठा " इस ऋचासे घीका अग्निमें होम करे ॥ ६ ॥

त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः ॥ तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं
दशबन्धं च सर्वतः ॥ ७ ॥ यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य
साक्षिणः ॥ रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः ॥ ८ ॥

भाषा-जो रोगरहित साक्षी ऋणादानादि व्यवहारोंमें तीनि पक्षोंतक जो गवाही न दे तो उस विवादका सब धन उत्तमर्णको देवे और उस सब ऋणका दशमा भाग राजाको दंड देवे ॥ ७ ॥ जो गवाही दे चुका है ऐसे साक्षीके जो सात दिनके भीतर रोग आदि लगना अथवा समीपी पुत्र आदि ज्ञातिके मरणमेंसे कोई होय तो मिथ्याका दोष प्रकट होनेके कारण उत्तमर्णका ऋण और राजाका दंड उससे दिलाना चाहिये ॥ ८ ॥

असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः ॥ अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं
शपथेनापि लम्भयेत् ॥ ९ ॥ महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः
कृताः ॥ वसिष्ठश्चापि शपथं शेपे वै यवने नृपे ॥ ११० ॥

भाषा-जिनके साक्षी नहीं हैं ऐसे व्यवहारोंमें आपसमें विवाद करनेवालोंके तत्त्वको छल आदिके विना नहीं प्राप्त होता हुआ प्राड्विवाक जो आगे कहेंगे उस शपथसे सत्यको जाने ॥ ९ ॥ सप्तऋषियोंने और इंद्रादिक देवताओंने संदेहयुक्त कार्योंके निर्णयके लिये शपथ बनाये इसने सौ पुत्र खाय लिये ऐसे विश्वामित्र करि दोष लगाये गये वशिष्ठ मुनिने अपनी शुद्धिके लिये यवन नाम राजाके पुत्र सुदामा राजाके आगे शपथ किया यहां शप् धातुका करना अर्थ किया है ॥ ११० ॥

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ॥ वृथा हि शपथं कुर्वन्प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ ११ ॥ कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने ॥ ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥ १२ ॥

भाषा-पंडित छोटेभी काममें वृथा शपथ कहिये सौगंद न करे क्योंकि वृथा शपथ करता हुआ मनुष्य परलोकमें तथा इस लोकमें नरकके मिलने तथा अयशके मिलनेसे नाशको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ जिसको वहुत स्त्री हैं वह एक स्त्रीसे ऐसे कहे कि, मैं औरको नहीं चाहता हूं तूही मेरी प्यारी है इस भांति अच्छे भोगके लाभके लिये शपथ करे और विवाहोंमें जैसे मैं और व्याह न करूंगा और गौके लिये घास आदिके ले लेनेमें और अग्निमें होमके लियेही धनके लेनेमें और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये अंगीकार किये हुए धन आदिमें वृथा शपथ करनेसे पाप नहीं होता है ॥१२॥

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ॥ गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥ १३ ॥ अग्निं वाहारयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत् ॥ पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् ॥ १४ ॥

भाषा-ब्राह्मणको सत्य शब्दका उच्चारण करके शपथ करावे और क्षत्रियके वाहन तथा आयुधोंसे अर्थात् मेरे सब वाहन तथा आयुध निष्फल होंय ऐसे शपथ करावे और गौ वीज सुवर्ण निष्फल होंय ऐसे वैश्यसे और मुझको सब पाप होंय ऐसे शूद्रसे शपथ करावे ॥ १३ ॥ अग्निके समान पचास पलका आठ अंगुलके लोहेके गोलेको शूद्र आदिके दोनों हाथोंमें सात पीपलके पत्ते रखके धरावे और पितामह आदि करि कही हुई विधिसे सात पैंडतक चलावे और जोंक आदि करि रहित जलमें इसको गोता दिवावे और पुत्रोंका तथा स्त्रीका शिर जुदा जुदा इसको छुवावे ॥ १४ ॥

यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ॥ न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥ १५ ॥ वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुरा भ्रात्रा यवीयसा ॥ नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पृशः ॥ १६ ॥

तु वधदण्डमतः परम् ॥ २९ ॥ वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात् ॥ तदेषु सर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ॥ १३० ॥

भाषा-तुमने अच्छा नहीं किया फिर ऐसा न करना ऐसे वाणीसे धमकाना वाग्दण्ड है सो प्रथम अपराधमें गुणवान्को करना चाहिये तिसपरभी जो शांत न होय तो धिक्काररूप दंड करे अर्थात् तेरे जन्मको धिक्कार है ऐसे कहे तिसपरभी न माने तो तीसरा धनदंड (जुर्माना) करे तिसपरभी निषिद्ध कर्म करे तो वध-दंड अर्थात् ताडना तथा अंगका काटना आदि करे मारे नहीं ॥ २९ ॥ जब अंगच्छेद आदि उलटे दंडसे जो दण्डयोग्यको वशमें न कर सके तब इसमें वाग्दंड आदि चारों करे ॥ १३० ॥

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ॥ ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३१ ॥ जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ॥ प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ ३२ ॥

भाषा-तांबे रूपे और सुवर्ण आदिकी जो पण आदि संज्ञा मोल लेने वेचने आदि लोकके व्यवहारके लिये पृथिवीमें प्रसिद्ध है उनको दण्ड आदिके लिये मैं संपूर्णतासे कहता हूं ॥ ३१ ॥ झरोखेमें होकर आये हुए सूर्यके किरणोंमें जो सूक्ष्म रज दीखता है उस रजके परिमाणोंमें पहलेको त्रसरेणु कहते हैं ॥ ३२ ॥

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ॥ ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥ ३३ ॥ सर्षपाः षड्यवो मध्यस्त्रियवं त्वेककृष्णलम् ॥ पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ ३४ ॥

भाषा-आठ त्रसरेणुकी एक लिक्षा होती है उन तीनि लिक्षाओंका एक राज-सर्षप होता है उन तीनि राजसर्षपोंका एक गौरसर्षप जानना चाहिये ॥ ३३ ॥ उन छः गौर सर्षपोंका मध्यम अर्थात् न बहुत मोटा न छोटा एक जव होता है तीनि जवोंकी एक घुंघची अर्थात् रत्ती होती है और उन पांच रत्तियोंका एक मासा होता है उन सोलह मासोंका एक सुवर्ण होता है ॥ ३४ ॥

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ॥ द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥ ३५ ॥ ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतम् ॥ कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥ ३६ ॥

भाषा-चारि सुवर्णका एक पल होता है और दश पलका एक धरण होता है और दो घुंघची बराबरि करके कांटेमें धरी जांय तो उनका एक रूप्यमाषक

जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ उन सोलह रूप्यमाषकोंका एक रौप्यधरण और पुराण राजत कहिये रजतसंबंधी होता है और तांबेके कर्ष भरको कार्षापण तथा पण जानना चाहिये और कार्षिक शास्त्रके पलका चौथाई भाग जानना चाहिये इसीसे कोशवाले चारि कर्षको पल कहते हैं ॥ ३६ ॥

धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ॥ चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥ ३७ ॥ पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः ॥ मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ॥ ३८ ॥

भाषा–दश रौप्य धरणका एक रौप्यशत मान होता है और चारि सुवर्णका एक निष्क परिमाणसे जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ पचास अधिक दोसौ अर्थात् ढाईसौ पणका मन्वादिकोंने प्रथम साहस कहा है और पांचसौ पणका मध्यम साहस जानना चाहिये और हजार पणका उत्तम साहस जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति ॥ अपह्नवे तद्द्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् ॥ ३९ ॥ वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्वित्तविवर्धिनीम् ॥ अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते ॥ १४० ॥

भाषा–मुझे उत्तमर्णका धन देना है ऐसे सभामें अधमर्णके कहनेपर सैंकडा पीछे पांच दंड देने योग्य है और जो सभामेंभी ऐसे कहे कि, मैं इसका कुछ नहीं देनदार हूं ऐसे मुकर जाय तो सैंकडा पीछे दश पण दंड देने चाहिये यह मनुस्मृतिमें दंडका प्रकार है ॥ ३९ ॥ वसिष्ठने कही हुई वृद्धि (व्याज) धनकी बढानेवाली है उसको वृद्धिसे जीविका करनेवाला लावे उसीको दिखाते हैं सौ देनेपर उसका अस्सीवां भाग ले अर्थात् सौ पणपर सवापण प्रतिमहीने वृद्धि लेवे ॥ १४० ॥

द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ द्विकं शतं हि गृह्णानो न भवत्यर्थकिल्बिषी ॥४१॥ द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च शतं समम् ॥ मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ४२ ॥

भाषा–साधुओंका यह धर्म है ऐसा मानता हुआ दिये हुए सौ पणोंपर दो पण प्रत्येक महीनेमें लेवे जिससे सैंकडेपर दो लेता हुआ वृद्धिके धन लेनेमें दोषी नहीं होता है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमसे दो तीनि चारि पांच सैंकडेपर महीनेमें वृद्धि लेवे इससे अधिक न लेवे (शंका) जो कहो कि, अस्सीवां भाग थोडा है और सैंकडेपर दो वहुत हैं तो ब्राह्मणके यह थोडे वहुतका विकल्प कैसे होय इसपर मेधातिथि और गोविंदराज नाम दोनों टीकाकारोंने लिखा है कि जो पहली

वृद्धिसे निर्वाह न होय तौ सैंकडेपर दो लेने चाहिये परन्तु हम यह कहते हैं कि बंधक (गिरवी) सहितमें अस्सीवां भाग और विना बंधकमें सैंकडेपर दो लेने चाहिये सोई याज्ञवल्क्यने कहा है " अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबंधके । वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुःपंचकमन्यथा ॥ " अर्थ—बंधकसहितमें महीने २ अस्सीवां भाग वृद्धि होती है और अन्यथा कहिये बंधकरहितमें वर्णोंके क्रमसे दो तीनि चारि पांच वृद्धि होती है ॥ ४२ ॥

न त्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात् ॥
न चाधेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्ति न विक्रयः ॥ ४३ ॥
न भोक्तव्यो बलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत् ॥
मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथा भवेत् ॥ ४४ ॥

भाषा—भूमि गौ दास आदि बंधक भोगके लिये देनेपर धनके देनेमें पहले कही हुई वृद्धिको उत्तमर्ण नहीं पाता है बहुत कालतक रहनेको कालसंरोध कहते हैं भोग्य आदिके बहुत कालतक रहनेसे मूल धनके दुगुने हो जानेपरभी दूसरेको देना अथवा बेंचना नहीं हो सकता है मेधातिथि और गोविंदराज कहते हैं कि आधिके बहुत कालतक रहनेपरभी निसर्ग कहिये दूसरेके यहां धरना नहीं हो सकता है यहां तो गहने धरी हुई भूमि आदिके दूसरेके धरनेके समाचारसे सब शिष्टाचारसे विरोध होता है ॥ ४३ ॥ कपडा गहना आदि रक्षा करने योग्य आधि नहीं भोगने योग्य है जो भोग करे तौ उसकी वृद्धिको छोड दे पहले मोलसे इसको संतुष्ट करे अथवा भोगनेसे जो आधि असार हो जाय अर्थात् किसी कामकी न रहे तो अच्छी दशाका मूल्य देकर स्वामीको संतुष्ट करे जो ऐसा न करे तो बंधकका चोर होय॥४४॥

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः ॥ अवहार्यौ भवेतां
तौ दीर्घकालमवस्थितौ ॥४५॥ संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्य-
न्ति कदाचन ॥ धेनुरुष्ट्रो वहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥ ४६ ॥

भाषा—आधि कहिये बंधक अर्थात् जो वस्तु गहने धरी जाय और उपनिधि कहिये जो भोगनेके लिये प्रीतिसे दी हुई वस्तु ये दोनों निधि उपनिधि बहुत कालतक रहनेपरभी समय उलांघनेके योग्य नहीं है अर्थात् जब उनका स्वामी मांगे तभी देने योग्य है ॥ ४५ ॥ दुही जाती हुई कहिये दूध देनेवाली गौ और सवारी देता हुआ ऊंट तथा घोडा और काढनेके लिये दिया हुआ बैल आदि ये प्रीतिसे और कारि भोग किये गये स्वामीके कभी नष्ट नहीं होते हैं ॥ ४६ ॥

यत्किञ्चिद्दश वर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी ॥ भुज्यमानं परैस्तू-

र्णां न स तल्लब्धुमर्हति ॥ ४७ ॥ अजडश्चेदपौगण्डो विषये चास्य भुज्यते ॥ भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्द्रव्यमर्हति ॥ ४८ ॥

भाषा–जो कोई धन प्रीति आदिके विना दश वर्षतक दूसरों करि भोगा जाय और स्वामी देखे और कभी यह न कहे कि मत भोगो तौ स्वामी पाने योग्य नहीं होता है उसका उसमें स्वामीपन दूर हो जाता है ॥ ४७ ॥ जिसकी बुद्धि विकल होय अर्थात् यथावस्थित न होय उसको जड कहते हैं और सोलह वर्षसे जिसकी अवस्था अधिक न होय उसको पौगंड कहते हैं जो धनका स्वामी जड तथा पौगंड न होय और उसके सामने उसका धन भोगा जाय तौ स्वामीका स्वामित्व व्यवहारसे नष्ट हो जाता है भोगनेवालेहीका वह धन हो जाता है ॥ ४८ ॥

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ॥ राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति ॥ ४९ ॥ यः स्वामिनाऽननुज्ञातमाधिं भुङ्क्तेऽविचक्षणः ॥ तेनार्धवृद्धिर्मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः ॥ १५० ॥

भाषा– आधि कहिये गहने धरी हुई वस्तु और सीमा कहिये ग्राम आदिकी मर्यादा बालकका धन निक्षेप कहिये वासनमें रक्खा हुआ विना गिनाया बंद किया हुआ धन अर्थात् धरोहड उपनिधि और स्त्री कहिये दासी और राजा तथा वेदपाठीका धन ये कहे हुए दश वर्षके भोगसे स्वामीके नष्ट नहीं होते हैं और इनमें भोगनेवालेका स्वत्व नहीं होता है ॥ ४९ ॥ जो मूर्ख वृद्धि (व्याज) से दी हुई वस्तुके स्वामीकी आज्ञा विना छुपाके भोगता है तो उसको उस भोगकी शुद्धिके लिये आधी वृद्धि छोड देनी चाहिये और बलसे भोगनेमें तौ संपूर्ण वृद्धिकाही त्याग कहा है ॥ १५० ॥

कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहृता ॥ धान्ये सदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पञ्चताम् ॥ ५१ ॥ कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिद्ध्यति ॥ कुसीदपथमाहुस्तं पञ्चकं शतमर्हति ॥ ५२ ॥

भाषा–व्याजपर धनके देनेको कुसीद कहते हैं उसपर जो एक वार व्याज ले लिया जाय जो वह दूनेसे अधिक नहीं होता है मूलसे दूनाही होना है और व्याज दिये हुए धान्यमें और सद कहिये वृक्षके फलमें और लव कहिये ऊन आदि रोमोंमें और जोतने योग्य बैल आदिमें मूल धन धान आदि समेत पंचगुनेसे अधिक नहीं होता है ॥ ५१ ॥ वर्णोंके क्रमसे शास्त्रके अनुसार की हुई दो तीनिकी वृद्धिसे भिन्न विना की हुई अधिक नहीं होती है किंतु की हुईभी वृद्धि वर्णोंके क्रमसे दो तीनि सैकरेपर माससासमें लेनी चाहिये विना की हुई वृद्धिमेंभी दूसरा

विशेष कहते हैं कि कुत्सितसे जो मार्ग चले उसको कुसीदपथ कहते हैं यह उत्तमर्ण जो शूद्रके मध्ये कहे सैकरेपर पांच द्विजातिसेभी लेवे तो यही कुत्सित पंथा है अर्थात् पहले कहे हुए धर्मसम्बन्धी वृद्धि करनेवालेसे अपकृष्ट है यह मनु आदि कहते हैं यह विना की हुई वृद्धि उद्धारके विषयमें मांगनेसे उपरांत जाननी चाहिये क्योंकि कात्यायनका वचन है कि प्रीतिसे दिया हुआ जबतक न मांगा जाय तबतक नहीं बढता है और जो मांगनेपर न दिया जाय तो सैकरेपर पांच बढे ॥५२॥

नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चादृष्टां पुनर्हरेत् ॥ चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका च या ॥५३॥ ऋणं दातुमशक्तो यः कर्तुमिच्छेत्पुनः क्रियाम् ॥ स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् ॥५४॥

भाषा–एक महीना या दो महीना अथवा तीनि महीना बीतनेपर हमारे व्याजका हिसाब करके एकवारही देना इस नियमसे जो उत्तमर्ण एक वर्षतक व्याज लेवे, और वर्षके बीतनेपर नियमकी वृद्धिको न लेवे, और शास्त्रसे नहीं देखी गई तथा कही हुई धर्मसम्बन्धिनी दो तथा तीनि पण सैकडेसे अधिक न लेवे. अधर्मता दिखानेके लिये यह निषेध है और शास्त्रमें नहीं कही हुई चक्रवृद्धि आदि चारिको न लेवे. उन चारोंका स्वरूप कहते हैं. बृहस्पतिः "कायिका कायसंयुक्ता मासग्राह्या च कालिका ॥ वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः कारिता ऋणिना कृता ॥" अर्थ–काय करि युक्त होय उसको कायिका कहते हैं और जो महीने २ पर ली जाय उसको कालिका कहते हैं और वृद्धिपर जो वृद्धि (व्याजपर व्याज) होती है उसको चक्रवृद्धि कहते हैं उनमें चक्रवृद्धि स्वरूपहीसे निंदित है कालवृद्धि तो दुगुनेसे अधिक लेनेसे होती है और कायिका बहुत जोतने तथा दुहनेसे होती है और कारिता वह होती है जो उत्तमर्णके दबावसे आपत्तिकालमें ऋणी करि की जाय ये चारों वृद्धियां शास्त्रमें नहीं है इनको न लेवे ॥५३॥ जो ऋणी धन देनेकी असामर्थ्यसे फिर लेख्य (तमस्सुक) आदि क्रिया करनेकी इच्छा करे वह निर्जित कहिये उक्त मार्ग करि सचाईसे अपने आधीन की हुई वृद्धिको देकर करण जो लेख्य (तमस्सुक) है उसको फिर लिख देवे ॥ ५४ ॥

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत ॥ यावती संभवेद्वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति ॥ ५५ ॥ चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः ॥ अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥

भाषा–जो दैवगतिसे वृद्धि और हिरण्यकोभी न दे सके तो उसको मिलायके उसीको फिरि लिखे जाते हुए कागजपर वृद्धि और हिरण्य आदि अर्थात् मूल और

व्याजको चढाय देवे उस समय जितना चक्रवृद्धिका धन होगा वह सब देना पडेगा ॥ ५५ ॥ चक्रशब्दसे यहां चक्रवाले छकडे आदिके भाडा रूप वृद्धि अभिमत है चक्रवृद्धिका आश्रय लेनेवाला उत्तमर्ण देश तथा कालकी व्यवस्थायुक्त होता है जैसे जो काशीतक नोन आदि छकडेसे ले जाऊंगा तो मुझको इतना धन देने योग्य होगा यह मूल्यरूप देशकी व्यवस्था हुई और जो महीनेभरतक ले जाऊंगा तो मुझे इतना देना होगा यह कालकी व्यवस्था हुई ऐसे अंगीकार किये हुए देश तथा कालके नियमको दैवयोगसे नहीं पूरा करता हुआ अर्थात् शकट आदिसे नहीं ले जाता हुआ लाभरूप संपूर्ण फलको नहीं प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः ॥ स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति ॥ ५७ ॥ यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः ॥ अदर्शयन्स तं तस्य प्रयच्छेत्स्वधनादृणम् ॥ ५८ ॥

भाषा-स्थलके मार्ग तथा जलके मार्गके जानेमें चतुर इतने देशतक तथा इतने कालतक ले जानेपर इतना लेना योग्य है इस भांति देश तथा कालके लाभरूप धनके जाननेवाले बनिया आदि वैसे विषयमें जिस वृद्धिको व्यवस्थापित करें वही वहां व्यवस्था है और वही वहां वृद्धिके धनकी प्राप्तिमें प्रमाण है ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य जिसके दर्शनका प्रतिभू (जामिन) होय अर्थात् धन देनेके समय मैं इस ऋणीको दिखा दूंगा (हाजिर कर देऊंगा) और वह उस कालमें उत्तमर्णको न दिखावे तो अपने धनमेंसे उस धनके देनेके यत्न करे ॥ ५८ ॥

प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ॥ दण्डशुल्कावशेषं च न पुत्रो दातुमर्हति ॥५९॥ दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात्पूर्वचोदितः ॥ दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत् ॥१६०॥

भाषा-प्रतिभूनसे अर्थात् जमानतसे जो धन देने योग्य है उसको प्रातिभाव्य कहते हैं और वृथा दान जो हँसीके निमित्त पंडा आदिके अर्थ देनेकी योग्यतासे पिताने अंगीकार किया और आक्षिक कहिये जुआके निमित्त तथा सौरिक कहिये मद्यके निमित्त और दंडके निमित्त और शुल्क कहिये महसूल तिसका बाकी धन जो पिताको देना है उसको पिताके मरनेपर पुत्र देने योग्य नहीं है ॥ ५९ ॥ प्रातिभाव्य जमानतके धनको पुत्र नहीं देने योग्य है वह दर्शन प्रतिभू अर्थात् हाजिरजामिनी करनेवाले पिताके देने योग्य जानना चाहिये और देनेकी जमानत करनेवाले पिताके मरनेपर पुत्र आदिकोंसेभी ऋण दिवावे ॥ १६० ॥

अदातरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम् ॥ पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते

प्रतीप्सेत्केन हेतुना ॥ ६१ ॥ निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलं-धनः ॥ स्वधनादेव तद्दद्यान्निरादिष्ट इति स्थितिः ॥ ६२ ॥

भाषा—दानप्रतिभू अर्थात् देनेवाले जामिनसे दूसरा दर्शनप्रतिभू अथवा विश्वासप्रतिभूके मरनेपर पीछे धन देनेवाला उत्तमर्ण अपना धन कैसे पावे, क्योंकि प्रतिभू मर गया है तो यह दर्शनप्रतिभू अथवा प्रत्ययप्रतिभू जो अधमर्णकर निरादिष्ट अर्थात् निसृष्ट धन होय और प्रतिभूके पास उसके देने योग्य धन होय तो वह अथवा उसका पुत्र उत्तमर्णको ऋण देवे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा ॥ असंबद्धकृतश्चैव व्य-वहारो न सिद्ध्यति ॥ ६३ ॥ सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता ॥ बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात् ॥ ६४ ॥

भाषा—मद्य आदिसे मतवारे और रोग आदिसे उन्मत्त और बालक तथा वृद्ध करि तथा भाईकी आज्ञा विना किये हुए ऋणका व्यवहार सिद्ध नहीं होता है॥ ६३॥ यह मुझको करना है इत्यादिक भाषालेख्य आदिसे स्थिर की गईभी होय परन्तु जो शास्त्रके धर्मसे और परंपरासे चले आये हुए व्यवहारसे बाहर कहीं जाय तो वह सत्य नहीं होती है उसको न मानना चाहिये ॥६४॥

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ॥ यत्र वाप्युपधिं पश्येत्त-त्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥ ६५ ॥ ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः ॥ दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः ॥ ६६ ॥

भाषा—योग कहिये छलसे किये हुए बंधक कहिये गिरवी और दान तथा प्रतिग्रह किये जाय परन्तु सत्यतासे नहीं और अन्यत्र कहिये धरोहर आदिमें जहां छल जाना जाय अर्थात् वास्तवमें धरोहर न रक्खी होय वह सब लौटि जाता है ॥ ६५ ॥ पहलेसे बटे हुए अथवा विना बटे हुए भाई तथा कुटुंबके पालनेके लिये जो धन लेकर ऋणी मर जाय तौ उस ऋणको बटे हुए और विना बटे हुए सब अपने धनसे देवे ॥ ६६ ॥

कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोपि व्यवहारं यमाचरेत् ॥ स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचालयेत् ॥ ६७ ॥ बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्य-च्चापि लेखितम्॥सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥ ६८ ॥

भाषा—स्वामी उसी देशमें होय अथवा दूसरे देशमें होय उसके कुटुंबके खरचके लिये जो सेवकभी ऋण करे तो स्वामी उसको वैसाही अंगीकार करे ॥ ६७ ॥

बलसे दिया हुआ और बलसे भोगी गई भूमि आदि और बलसे लिखाया गया चक्रवृद्धिका आदिपत्र इन सब बलसे किये हुए व्यवहारोंको मनुने लौटाने योग्य कहा है ॥ ६८ ॥

त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् ॥ चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ् नृपः ॥ ६९ ॥ अनादेयं नाददीत परिक्षीणोऽपि पार्थिवः ॥ न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत् ॥ १७० ॥

भाषा-साक्षी प्रतिभू और कुल ये तीनों धर्मार्थ व्यवहारोंमें पराये लिये क्लेश पाते हैं तिससे इनसे साक्ष्य (गवाही) प्रातिभाव्य (जमानत) और व्यवहारका देखना नहीं करना चाहिये और ब्राह्मण उत्तमर्ण बनियां और राजा ये चारि पराये लिये दानके फलका उत्पन्न करना ऋणके द्रव्यका देना विक्रय और व्यवहारका देखना इन बातोंको करते हुए धनकी वृद्धिको प्राप्त होते हैं तिससे ब्राह्मण देनेवालेको और धनाढ्य अधमर्णको और बनिया बेचनेवालेको और राजा व्यवहार करनेवालेको बलसे न प्रवृत्त करे ॥ ६९ ॥ राजा क्षीण धन होनेपरभी नहीं लेने योग्य धनको न लेवे और धनवान् होनेपरभी लेने योग्य थोडाभी न छोडे ॥ १७० ॥

अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ॥ दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति ॥ ७१ ॥ स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानां च रक्षणात् ॥ बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्धते ॥ ७२ ॥

भाषा-नहीं लेने योग्यके लेनेसे और शास्त्रमें कहे हुए लेने योग्यके न लेनेसे पुरवासी राजाका असामर्थ्य स्थापित करते हैं तिससे मरिके अधर्मसे नरक आदिके भोगसे और इस लोकमें अपयशसे नाशको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ न्याय्य कहिये उचित धनके लेनेसे और वर्णोंके सजातीय शास्त्रोक्त विवाह आदिके संबंधसे अथवा वर्णोंका संसर्ग कहिये वर्णसंकर तिससे रक्षा करनेसे और दुर्बल प्रजाओंकी बलवान्से रक्षा करनेसे राजाका सामर्थ्य उत्पन्न होता है तिससे वह इस लोक तथा परलोकमें वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ७२ ॥

तस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये ॥ वर्त्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ ७३ ॥ यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः ॥ अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥ ७४ ॥

भाषा-तिससे यमके समान राजा क्रोधको वशमें करि जितेंद्रिय हो अपनेभी प्रिय अप्रियको छोडि यमकी चेष्टासे सर्वत्र समानरूप वर्त्ते ॥ ७३ ॥ जो राजा लोभ

आदिके व्यामोहसे अधर्मसे व्यवहारदर्शन आदि कार्योंको करता है उस दुष्टचित्तको प्रजा तथा पुरवासियोंकी अप्रीतिसे शीघ्रही शत्रु दंड देते हैं ॥ ७४ ॥

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति ॥ प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥ ७५ ॥ यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपे ॥ स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ ७६ ॥

भाषा-जो राजा रागद्वेषको छोडकर धर्मसे कार्योंको देखता है उस राजाको प्रजा ऐसे सेवन करती है जैसे समुद्रको नदियां अर्थात् नदियां जैसे समुद्रसे नहीं लौटती हैं उसीके साथ एकताको प्राप्त होती हैं प्रजाभी ऐसेही राजाकी अनुगामिनी होती है ॥ ७५ ॥ जो अधमर्ण मैं राजाका प्यारा हूं इस गर्वसे अपनी इच्छासे धन साबित करनेवाले उत्तमर्णका राजासे निवेदन (नालिश) करता है उसपर राजा ऋणका चौथाई भाग दंड करे और उसका धन दिवावे ॥ ७६ ॥

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः ॥ समोऽवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः ॥७७॥ अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम् ॥ साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत् ॥ ७८ ॥

भाषा-समान जाति अथवा हीन जाति अधमर्ण कहिये ऋणी धनके न होनेपर अपनी जातिके अनुरूप कर्मसेभी बराबर करे अर्थात् उत्तमर्ण अधमर्णपरसे निवृत्त हो धनीके समान आपको करे और जो ऋणी ऊंचा जातिका होय तो उससे कर्म न करावे किंतु वह हौले २ प्राप्तिके अनुसार उस धनको देवे ॥ ७७ ॥ इस कहे हुए प्रकारसे आपसमें विवाद करनेवाले अर्थी प्रत्यर्थीके साक्षी आदिसे निर्णय किये हुए कार्योंको विरोध दूर करके बराबर करे ॥ ७८ ॥

कुलजे वृत्तसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ॥ महापक्षे धनिन्यार्ये निक्षेपं निक्षिपेद् बुधः ॥ ७९ ॥ यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ॥ स तथैव ग्रहीतव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ १८० ॥

भाषा-उत्तम कुलमें उत्पन्न होय और सदाचारवान् होय धर्मका ज्ञाता तथा सत्य बोलनेवाला होय और बहुत पुत्र आदि कुटुंबवाला होय और सरल प्रकृतिका होय ऐसे मनुष्यके समीप व्यभिचार न होनेसे धरोहर रक्खे ॥ ७९ ॥ जो मनुष्य जिस प्रकारसे मूंडा हुआ अथवा विना मूंडा हुआ साक्षियोंके होनेपर अथवा विना साक्षियोंके जिस सुवर्ण आदि धनके जिसके हाथमें रक्खे वह धन उस रखनेवालेको वैसाही लेना चाहिये जिसे जिस भांति देना है उसी भांति लेना उचित है मूंदे

हुएभी सुवर्ण आदिकी मुद्राको आपही खोलि रखनेवाला जब कहे कि, मेरा यह तोलकर दे तब यह दण्ड आदिके लिये है ॥ १८० ॥

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति ॥ स याच्यः प्राड्विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसंनिधौ ॥ ८१ ॥ साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः ॥ अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः ॥ ८२ ॥

भाषा-रक्खा हुआ मेरा सुवर्ण आदि द्रव्य दे ऐसे रखनेवाले कारि कहा गया जो पुरुष उसको जब न देवे तब रखनेवालेके सूचित करनेपर प्राड्विवाकको उस रखनेवालेके पीछे मांगना चाहिये ॥ ८१ ॥ पहली धरोहरमें साक्षी न होनेपर सभाके योग्य अवस्थामें बाल नहीं और स्वरूपवान् और राजाका उपद्रव आदि कहनेवाले ऐसे अपने चार पुरुषोंसे सुवर्ण आदि द्रव्यको रखवाके उन्हीं राजपुरुषोंको उस धरोहरवालेसे चार पुरुषों कारि रक्खी हुई धरोहर प्राड्विवाकको मांगनी चाहिये ८२॥

स यदि प्रतिपद्येत यथा न्यस्तं यथा कृतम् ॥ न तत्र विद्यते किंचिद्यत्परैरभियुज्यते ॥ ८३ ॥ तेषां न दद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथाविधिः ॥ उभौ निगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा ॥ ८४ ॥

भाषा-वह धरोहर लेनेवाला मूंदी हुई अथवा खुली हुई जैसी रक्खी थी कडे मुकुट आदिके आकारसे बनी हुईको वैसेही मान ले कि, सच्ची है लीजिये तो पहले रखनेवाले जिसने प्राड्विवाकसे आवेदन (नालिश) किया है उसका कुछ नहीं है यह जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ उन चार पुरुषोंका रक्खा हुआ सुवर्ण जैसा रक्खा था वैसा न दे तो दोनों धरोहरे अर्थात् पहले सूचित करनेवालेकी और चार पुरुषों कारि रक्खी हुई उसको दवाके दिलवानी चाहिये इस प्रकारकी धर्मकी धारणा कहिये निश्चय है ॥ ८४ ॥

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे ॥ नश्यतो विनिपाते तावनिपाते त्वनाशिनौ ॥ ८५ ॥ स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे ॥ न स राज्ञा नियोक्तव्यो न निक्षेप्तुश्च बन्धुभिः ॥ ८६ ॥

भाषा-जो रक्खा जाय वह निक्षेप कहा जाता है और मुहर लगा हुआ विना गिना अथवा बासनमें रक्खा हुआ जो रक्खा जाय उसको उपनिधि कहते हैं इनका ब्राह्मण और संन्यासीकी भांति उपदेशमें भेद है, वे दोनों निक्षेप और उपनिधि रखनेवाले और जिसके समीप रक्खी है उसके जीवते हुए तदनंतर कहिये उसके पुत्र आदिको और उसके अनंतर उसके धनके अधिकारीको निक्षेप धारनेवाला कभी न

स्वामीका भाई आदि संबंधी होय तो छः सौ पण दंड देने योग्य है और जो स्वामीका संबंधी न होय और स्वामीके संबंधी पुत्र आदिसे धन दान विक्रय आदि होय तो वह चोरके पापको प्राप्त होता है और चोरके समान दंड करने योग्य है ॥१९८॥

अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा ॥ अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः ॥१९९॥ संभोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित् ॥ आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः॥२००॥

भाषा—स्वामीके विना जो दिया गया और जो वेंचा गया अथवा मोल लिया गया उसको विना कियाही जानिये व्यवहारमें जैसी मर्यादा है वह वैसा नहीं किया गया होता है ॥ १९९ ॥ जिस वस्तुमें भोगना तो है और मोल लेने आदिका लेख नहीं है वहां पहले पुरुषके आगे लेखही प्रमाण है भोग नहीं यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ २०० ॥

विक्रयाद्यो धनं किंचिद्गृह्णीयात्कुलसन्निधौ ॥ क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम् ॥ १ ॥ अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः ॥ अदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नास्तिको लभते धनम् ॥ २ ॥

भाषा—जो द्रव्य विक्रय कहिये वेंचनेसे व्यवहारियोंके आगे मोल देकर जिससे लेता है वह न्यायसे शुद्ध द्रव्यको पाता है ॥ १ ॥ जो मूलस्वामी वेंचनेसे अथवा परदेशमें जाने आदिसे व्यवहार न कर सके और प्रकाशित क्रयसे यह निश्चय है तो दंडके योग्य नहीं है मोल लेनेवाला राजा करि छोडा जाता है और नष्ट धनका स्वामी विना स्वामीके वेंचे हुए द्रव्यको मोल लेनेवालेके हाथसे पाता है इस विषयमें मोल लेनेवालेको आधा मोल देकर स्वामीको अपना धन लेना चाहिये यहां व्यवहारसे दोनोंका आधा धन मारा जाता है ॥ २ ॥

नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रयमर्हति ॥ न चासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् ॥ ३ ॥ अन्यां चेद्दर्शयित्वान्या वोढुः कन्या प्रदीयते ॥ उभे ते एकशुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः ॥ ४ ॥

भाषा—केशर आदि द्रव्योंमें कुसूम आदि मिलाके न वेंचना चाहिये और असारको सार कहके न वेंचे और तराजु आदिमें कमती न तोले और पीठि पीछे न वेंचे और प्रीतिसे रक्खे हुए द्रव्यको न वेंचे विना स्वामीके विक्रयके समान होनेसे विना स्वामीके वेंचनेहीका दंड होता है ॥ ३ ॥ मोलसे देने योग्य कन्याको मोलके समय निर्दोष सुंदर दिखाके जो वरको दोषसहित कुरूपा दी जाय तो दोनों कन्याओंको वर उस एकही मोलसे व्याहि लेवे यह मनुने कहा है मोलका द्रव्य

न्याका दान करना वेंचनाही है इससे इसको द्रव्यके वेंचने मोल लेनेके
ा है ॥ ४ ॥

त्ताया न कुष्ठिन्या न च या स्पृष्टमैथुना ॥ पूर्वं दोषानभि-
ख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ॥ ५ ॥ ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म
हापयेत् ॥ तस्य कर्मानुरूपेण देयोऽंशः सह कर्तृभिः ॥ ६ ॥

षा-उन्मत्ताके कोढिनीके और मैथुन संसर्गवालीके उन्माद आदि दोषोंको
आदि विवाहोंसे पहले वरको सूचना करके देनेवाला दंड योग्य नहीं होता
विना कहे दंड योग्य होता है ॥ ५ ॥ अब संभूयसमुत्थानको कहते हैं
वरण किया हुआ ऋत्विक् जो थोडासा कर्म करके रोग आदिसे कर्मको छोड
उसको और ऋत्विचोंसे विचार करके उसके कियेके अनुसार दक्षिणाका अंश
सा) देना चाहिये ॥ ६ ॥

क्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् ॥ कृत्स्नमेव लभेतांशमे-
नैव च कारयेत् ॥ ७ ॥ यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताः प्र-
त्यङ्गदक्षिणाः ॥ स एव ता आददीत भजेरन्सर्व एव वा ॥ ८ ॥

भाषा-माध्यंदिनी यज्ञ आदिमें दक्षिणाके समय दक्षिणाओंके देनेपर रोग
दिसे कर्मको छोडता हुआ नटखटीसे नहीं तो वह संपूर्ण दक्षिणाके भागको पावे
बाकी कर्मको औरसे करवावे ॥७॥ जिस आधान आदि कर्ममें अंग अंग
जिसके संबंधसे सुनी हुई जो दक्षिणा होती है वही उनको ले अथवा केवल
ो भागको सब बांटके ले लेवे ॥ ८ ॥

रथं हरेत वाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम् ॥ होता वापि हरेद-
श्वमुद्गाता चाप्यनः क्रये ॥ ९ ॥ सर्वेषामर्धिनो मुख्यास्तदर्धेनार्धि-
नोऽपरे ॥ तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः ॥ २१० ॥

भाषा-यहां सिद्धांत कहते हैं कि किन्ही शाखावालोंके आधानमें अध्वर्युको रथ देना
ाहिये यह कहा है और ब्रह्माको वेगवान् घोडा और होताकोभी घोडा और उद्गाताके
ऽये सोमके मोलमें सोमका ले चलनेवाला छकडा इस व्यवस्थाकी सामर्थ्यसे जो
क्षिणा जिसके संबंधसे सुनी जाती है वही उसको ग्रहण करे ॥ ९ ॥ दक्षिणाका
वेभाग कहते हैं. उसको सौसे दीक्षायुक्त करता है यह सुना जाता है वहां सब
सोलह ऋत्विजोंके मध्यमें जो चारि ऋत्विज अर्थात् होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाता
ये सब दक्षिणाके आधे भागके पानेवाले हैं और अरतालीस गौके पानेवाले होते हैं
इसीसे कात्यायनने बारह बारह आद्योंके कहिये पहलोंके लिये इस भांति प्रत्येकको

बारह गोदान कहे हैं यद्यपि सौके आधे पचास होते हैं तिसपरभी यहां न्यून आधा लेनेसे ये आधेवाले कहे जाते हैं और समीपतासे मैत्रावरुण, प्रतिस्तोता, ब्राह्मणाच्छीसी, प्रस्तोता ये मुख्य ऋत्विक्की पाई हुई दक्षिणाका आधा लेनेसे अर्द्धी अर्थात् आधे भागके पानेवाले कहे जाते हैं और तीसरे अच्छावाक नेष्टा आग्नीध्र प्रतिहर्ता ये मुख्य ऋत्विक्की दक्षिणाका तीसरा भाग पाते हैं और चौथाईवाले उन्नेता पोता सुब्रह्मण्य ये मुख्य ऋत्विक्की पाई हुई दक्षिणाका चौथा भाग पाते हैं यह तो छः छः दूसरोंसे और चार चार तीसरोंसे और तीनि तीनि चौथेसे सूत्रमें लिखते हुए कात्यायनने स्फुट किया है ॥ २१० ॥

संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः ॥ अनेन विधियोगेन कर्तव्यांशप्रकल्पना ॥११॥ धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम् ॥ पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत् ॥ १२ ॥

भाषा—मिलकर घरके बनाने आदि अपने कर्मोंको लोकमें स्थपति (राजा) सूत्रकार (बढई) आदि मनुष्योंसे करवानेवालोंका इस यज्ञदक्षिणा विधानके आश्रयसे विशेष ज्ञान (कारीगरी) और व्यापार काहिये कामकी अपेक्षासे भागकी कलपना करनी चाहिये॥ ११ ॥ अब दत्तानपकर्म कहिये दियेका निषेध कर देना कहते हैं. जिसने यज्ञ आदि कर्मके लिये किसी मांगनेवालेको धन दिया अथवा देनेकी प्रतिज्ञा की होय पीछे वह इस धनको यज्ञके लिये न लगावे तब यह दिया हुआभी धन ले लेना चाहिये और प्रतिज्ञा किया हुआ न देना चाहिये ॥ १२ ॥

यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः ॥ राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ॥१३॥ दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ॥ १४ ॥

भाषा—जो उस दिये हुए धनको लेनेवाला लोभसे अथवा अहंकारसे न देवे और प्रतिज्ञा किये हुएको बलसे ले तो उस चोरीके पापकी शुद्धिके लिये राजाको सुवर्ण प्रमाण दंड देने योग्य होता है ॥ १३ ॥ धर्मसे रहित यह दिये हुएका न देना तबसे कहा इसके उपरांत भृतिका अर्थात् नौकरीका न देना आदि कहूंगा ॥ १४ ॥

भृतोऽनार्तो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम् ॥ स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम्॥१५॥आर्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्यथाभाषितमादितः॥स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम्॥१६॥

भाषा—नौकरीपर रक्खा हुआ जो मनुष्य रोगके विना अहंकारसे कहे हुए

कामको न करे तो उसपर कर्मके अनुरूप आठ रत्ती सोना दण्ड करना चाहिये और नौकरीका धनभी न देना चाहिये ॥ १५ ॥ जब रोग आदिकी पीडासे काम न करे आराम होके पहले कहेके समान काम देवे तो वह बहुत दिनोंकाभी वेतन (तनख्वाह) पावे ॥ १६ ॥

यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत्॥ न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः॥१७॥ एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादानकर्मणः॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम्॥१८॥

भाषा-जो काम जैसा कहा गया उसको पीडित होनेपर दूसरेसे न करावे अथवा स्वस्थ रहनेपर आप न करे और न करावे तो उसको उस किये हुए कामके शेषकाभी वेतन (तनख्वाह) न देना चाहिये ॥ १७ ॥ वेतनादान कर्मकी यह सब व्यवस्था कही इसके उपरांत संविद्व्यतिक्रम करनेवालोंके दण्ड आदिकी व्यवस्था कहेंगे १८

यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविदम्॥ विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत्॥१९॥ निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम्॥ चतुःसुवर्णान्षण्णिष्कांश्छतमानं च राजतम्॥२२०॥

भाषा-ग्राम और देश शब्दोंसे उनके वसनेवाले लक्षित होते हैं संघ कहिये वनिये आदिका समूह हम इस कर्मको करेंगे और इसको न करेंगे इस प्रकारके संकेत (इशारा) को सत्य आदिकी सौगंधसे निश्चित करके उसको जो मनुष्य लोभ आदिसे उलंघन करे उसको राजा देशसे निकाल देवे ॥ १९ ॥ इस संविद्व्यतिक्रम कारि अर्थात् प्रतिज्ञा उलंघन करनेवालेको रोंककर उसपर चारि सुवर्ण छः निष्क प्रत्येक चारि सुवर्ण प्रमाण और चांदीके सौ मान और तीनसों वीस रत्ती परिमाण ये तीनों प्रकारके दण्ड हैं इनमेंसे विषय कहिये कार्यके भारीपन और हलकपनकी अपेक्षासे सब इकट्ठे अथवा एक एक दण्ड राजा करे ॥ २२० ॥

एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धार्मिकः पृथिवीपतिः॥ ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम्॥२१॥ क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत्॥ सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत च॥२२॥

भाषा-ग्राम कहिये ब्राह्मण आदिके जाति समूहमें संविद्व्यतिक्रम करनेवालोंपर इस धर्मप्रधान विधिको राजा दंड करे ॥ २१ ॥ नाश न होनेवाली स्थिर मोलकी भूमि वा तांबेका पट्टा आदिको मोल लेकर अथवा बेंचकर लोकमें जिसको पछतावा होय कि, मैंने अच्छा नहीं तोल लिया वह उस मोल लियेको दश दिनके भीतर लौटा दे और बेंचे लौटा लेवे ॥ २२ ॥

परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत् ॥ आददानो ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥२३॥ यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ॥ तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥ २४ ॥

भाषा–दश दिनके उपरांत मोल ली हुई भूमि आदिको न छोडे और वेंची हुईको मोल लेनेवालेसे बल करि न दिलवावे वेंचे हुएको बलसे लेता हुआ और मोल लियेको छोडता हुआ राजा करि सौ पण दंड करने योग्य है ॥ २३ ॥ नोन्मत्तया इत्यादि जो पहिले कहा है दंड विशेषके लिये यहां कहते हैं उन्माद आदि दोषोंको न कहकर दोषयुक्त कन्याको जो वरके लिये देता है उसपर राजा आप आदरसे छ्यानवे पण दंड करे पछतविके प्रसंगसे यह कन्याके मध्ये कहा ॥ २४ ॥

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः ॥ स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ॥२५॥ पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः ॥ नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥ २६ ॥

भाषा–यह कन्या नहीं है क्षतयोनि है ऐसे जो मनुष्य द्वेषसे कहे वह उसके दोषको न प्रकट कर सके तो सौ पण प्रमाण राजाके दंडको प्राप्त होय ॥ २५ ॥ " अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत " इत्यादि मनुष्योंकी विवाहके मंत्र कन्या शब्दके श्रवणसे कन्याओंमें व्यवस्थित हैं अकन्याके विषयमें भिन्नार्थ होनेसे शास्त्रमें कही नहीं धर्मविवाहकी सिद्धिके लिये व्यवस्थित हैं इसीसे कहते हैं कि, विवाहके मंत्रोंसे संस्कार की गईभी वे क्षतयोनि स्त्रियां धर्मविवाह आदिकी क्रिया जिनकी दूरि हुई है ऐसी होती हैं इसका अर्थ यह है कि, यह धर्मविवाह नहीं है यह क्षतयोनिका विवाहके मंत्रोंसे होम आदिका निषेध करनेवाला नहीं है " या गर्भिणी संस्क्रियते " और " वोढुः कन्यासमुद्भवम् " यह आगे मनुजीनेही क्षतयोनिकाभी विवाह संस्कार कहा है और देवलने तो गांधर्वविवाहोंमें कहा है कि " पुनर्वैवाहिको विधिः" अर्थात् यह पुनर्विवाहकी विधि है तथा " कर्त्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकः " इति. अर्थ–तीनि वर्णोंको समय पाके अग्नि साक्षी देकर करना चाहिये गांधर्व विवाहोंमें होममन्त्र आदिकी विधि कही है और गांधर्व तो उपगमनपूर्वकभी होता है उसका क्षत्रियोंमें धर्मपन मनुने कहा है इस कारण सामान्य विशेषके न्यायसे यह इतर विषयक है क्षतयोनिके विवाहको अधर्म धर्मसे बाहर कहा ॥ २६ ॥

पाणिग्राहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ॥ तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥ २७ ॥ यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहा-

नुशयो भवेत् ॥ तमनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत् ॥ २८ ॥

भाषा—विवाहके मंत्र निश्चय भार्यात्व कहिये स्त्रीपनके कारण हैं क्योंकि शास्त्रके अनुसार प्रयोग किये गये उन मंत्रोंसे भार्यात्व सिद्ध होता है उन मंत्रोंमेंसे "सखा सप्तपदी भव" इस मंत्रसे कन्याको सातवें पांवके रखनेपर भार्यात्वकी सिद्धिकी शास्त्रके जाननेवालोंको समाप्ति जाननी चाहिये और सातवां पांव रखनेके पहले भार्यात्वकी सिद्धि नहीं है पश्चात्ताप होनेपर छोड दे पीछे नहीं ॥२७॥ केवल खरीदने बेचनेमेंही नहीं किंतु अन्यत्रभी संविद्वेतनादि कामोंमें जिसको पश्चात्ताप होय वह इस दश दिनकी विधिसे राजा धर्मयुक्त मार्गमें चलावे ॥ २८ ॥

पशुषु स्वामिनां चैव पालानां च व्यतिक्रमे ॥ विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥ २९ ॥ दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे ॥ योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात् ॥ २३० ॥

भाषा—गौ आदि पशुओंमें स्वामीका और चरानेवालेके व्यतिक्रम होनेपर विवाद कहिये झगडेको धर्मको तत्त्वसे यथार्थ कहूंगा ॥ २९ ॥ दिनमें पशु पालनेवालेको सौंपे हुए पशुओंसे जो खेती आदिमें जो कुछ उपद्रव हो जाय तो पालनेवालेकी बुराई है और रातिमें चरवाहेके लौटाय देनेसे स्वामीके घरमें बंधे हुए पशुओंमेंसे जो कोई निकलकर कुछ उपद्रव करे तो स्वामीका दोष है और जो दिनराति चरानेवालेके पास रहते होय तो उसीकी बुराई होगी ॥ २३० ॥

गोपः क्षीरभृतो यस्तु स दुह्याद्दशतो वराम् ॥ गोस्वाम्यनुमते भृत्यः सा स्यात्पालेऽभृते भृतिः ॥ ३१ ॥ नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतम् ॥ हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ॥ ३२ ॥

भाषा—जो गोपाल कहिये अहीर केवल दूधपर नौकर होय भोजन आदिसे कुछ काम नहीं वह स्वामीकी आज्ञासे दश गौओंमेंसे श्रेष्ठ एक गौको अपनी नौकरीके मध्ये दुहि लेवे यह भोजन आदि रहित गौ पालनेवालेकी नौकरी हुई अर्थात् एक गौका दूध देनेसे दस गौओंको पाले ॥ ३१ ॥ नष्ट कहिये दृष्टिसे बाहर हुएको और कीडों करि नाश किये हुएको और कुत्तों करि खाये हुएको और गढिले आदिमें गिरकर मरे हुएको जो पालनेवालेका कोई मनुष्य न होय तो मरे और भागे हुए गौ आदि पशुको पालनेवालाही स्वामीको देवे ॥ ३२ ॥

विघुष्य तु हृतं चौरैर्न पालो दातुमर्हति ॥ यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥३३॥ कर्णौ चर्म च वालांश्च बस्तिं स्नायुं च रोचनाम् ॥ पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्कानि दर्शयेत् ॥३४॥

भाषा-जो थोडीही दूर ले जानेके पीछेही पालनेवाला अपने प्रभुके स्वामीसे कह देवे तो ढोल आदिसे शब्द करके चोरों करि हरे गये पशुको पालनेवाला स्वामीको न देवे विघुष्य कहिये ढोल आदि बजायके इसके कहनेसे चोरोंकी बहुलायत और प्रबलता जानी जाती है ॥ ३३ ॥ पशुओंके आपसे मरनेपर पालनेवाला कान चाम पूंछ वाल नाभिके नीचेका भाग नसें और रोचना स्वामियोंको देवे औरभी मुख्य चिह्न सींग खुर आदि दिखावे ॥ ३४ ॥

अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले त्वनायति ॥ यां प्रसह्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्बिषं भवेत् ॥ ३५ ॥ तासां चेदवरुद्धानां चरंतीनां मिथो वने ॥ यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किल्बिषी ॥ ३६ ॥

भाषा-भेड बकरियोंको भेडियोंके घेरनेपर पालनेवाले न आवे तो जिस एक भेड अथवा बकरीको वनमें भेडिया मारे वह पालनेवालेका दोष होता है ॥ ३५ ॥ पालनेवाले करि रोकी हुई और वनमें इकट्ठी होके चरती हुई भेड बकरियोंमेंसे जो कोई भेडिया कहीं उछल कर गुप्त हो जिस किसी भेड वा बकरीको मारे वहां पालकको दोष नहीं होता है ॥ ३६ ॥

धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ॥ शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥ ३७ ॥ तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि ॥ न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥ ३८ ॥

भाषा-चारि हाथका एक धनुष्य होता है शम्या लाठीको कहते हैं उसका पात गिरना ग्रामके समीप सब दिशाओंमें चार सौ हाथ अथवा तीनि लाठीका नापतक पशुओंके चरनेके लिये अन्न बोने आदिसे रोकवेका त्याग करने योग्य है और फिर नगरके समीप यह तिगुणा करना चाहिये ॥ ३७ ॥ उस त्यागके स्थानमें जो कोई आवृति अर्थात् खाई आदिसे घेरिके धान्यको बोवे और उसको जो पशु खा जांय तो वहां राजा पशुपालोंको दंड न देवे ॥ ३८ ॥

वृतिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत् ॥ छिद्रं च वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥ ३९ ॥ पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः ॥ स पालः शतदण्डार्हो विपालांश्चारयेत्पशून् ॥ २४० ॥

भाषा-उस परिहारके स्थानमें खेतके चारों ओर कांटे आदिकोंसे ऐसी ऊंची वृति बनावे कि जिसको बाहरसे ऊंट न देखि सके और उसमें जो कुत्ता वा सूकरके मुखके जानेके योग्य छिद्र होंय उन सबोंको बंद कर देवे ॥ ३९ ॥ मार्गके समीप

अथवा ग्रामके समीप अथवा कंटक आदिसे घेरे हुए परिहार (बचावमें) स्थित खेतको पालसमेत पशुपालन कारि नहीं रोके हुए द्वार आदिसे कैसेहू घासिके खाय तो सौ पण दंड देना चाहिये पशुके दंडका असंभव है तिससे पालहीको दंड देना चाहिये और पालके विनाही खानेको प्रवृत्त पशुओंको खेत रखानेवाला हांकि देवे ॥ २४० ॥

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति ॥ सर्वत्र तु सदो देयः क्षेत्रिकस्येति धारणा ॥ ४१ ॥ अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशूंस्तथा ॥ सपालान्वा विपालान्वा न दण्ड्यान्मनुरब्रवीत् ॥ ४२ ॥

भाषा-मार्ग और ग्रामके खेतोंसे अन्य खेतोंको खाता हुआ पशु सवा पण दंडके योग्य हैं यहांभी पालनेवालेहीको दंड देना योग्य है सब खेतोंमें पशुके खाये हुएका फल क्षेत्रके स्वामीके लिये पाल अथवा पशुका स्वामी अपराधके अनुसार देवे यह निश्चय है ॥ ४१ ॥ दश दिनके भीतरकी ब्याई हुई गौ तथा चक्र शूलसे अंकित छोडा हुआ बैल और देवतासंबंधी पशु चाहे पालसहित होंय चाहे पालरहित होंय खेत खाते होंय तो मनुने उनको अदंड्य कहा है छोडे हुए बैलोंको गौओंके गर्भके लिये गोकुलमें पाल रखते हैं इसलिये पालका संबंध है ॥ ४२ ॥

क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् ॥ ततोऽर्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्य तु ॥ ४३ ॥ एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ स्वामिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमे ॥४४॥

भाषा-खेत जोतनेवालेका निज बैल जो खेत खाय जाय अथवा बोनेके समय न बोया जाय इस अपराधोंके होनेपर जिस राजाके भागकी हानि उससे होय उसे दशगुणा दण्ड उसपर होना चाहिये और जो खेतवालेके विना जाने उसके नौकरोंसे उक्त अपराध हो जाय तो खेतवालेही पर दश गुनेका आधा दण्ड होना चाहिये ॥४३॥ स्वामीके और पालकोंके रक्षाके अपराधसे पशुओंके खेत खानेरूप व्यतिक्रम होनेपर धर्मप्रधान राजा यह पहले कहा हुआ काम करे ॥ ४४ ॥

सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः ॥ ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु ॥ ४५ ॥ सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान् ॥ शाल्मलीन्सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान् ॥४६॥

भाषा-दो ग्रामोंकी सीमाके मध्ये झगडा उत्पन्न होनेपर ज्येष्ठके महीनेमें सूर्यके तापसे तृणोंके सूखि जानेसे सीमाके चिह्नोंके प्रकट होनेपर राजा सीमाका निश्चय

करे ॥ ४५ ॥ वट, पीपल, ढाक, सेमल, शाल, ताल और दूधवाले वृक्षको वहुत कालतक रहनेके कारण सीमाके चिह्नके लिये लगावे ॥ ४६ ॥

गुल्मान्वेणूंश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च ॥ शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति ॥४७॥ तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च ॥ सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥ ४८॥

भाषा–गुल्मोंको जिनमें शाखा नहीं निकलती हैं और वांसोंको और वहुत कांटे तथा थोडे कांटे आदिके भेदसे नाना प्रकारके सीमा वृक्षोंको और लताओंको लगावे और स्थल कहिये ऊंचे बनाये हुए भूमिके भागोंको और शरपतोंको और छोटे गुल्मोंको सीमाके चिह्न करे ऐसा करनेपर सीमा नष्ट नहीं होती है ॥ ४७ ॥ तालाव, कुवा, बावडी, जल निकलनेके मार्ग, देवताओंके मंदिर, शिवालय आदिको दो ग्रामोंकी संधिके स्थानमें बनवावे सीमाके निर्णयके लिये लोकमें प्रसिद्ध करके बनवाये हुए इन तालाव आदिकोंमें जल पीनेवालेभी सुननेकी परंपरासे वहुत कालतक साक्षी रहते हैं ॥ ४८ ॥

उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत् ॥ सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ॥ ४९ ॥ अश्मनोऽस्थीनि गोवालांस्तुषान्भस्म कपालिकाः ॥ करीषमिष्टकाङ्गाराञ्छर्करा वालुकास्तथा ॥ २५० ॥ यानि चैवंप्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्षयेत् ॥ तानि संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् ॥ ५१ ॥

भाषा–इस लोकमें सीमानिर्णयके मध्ये सदा मनुष्योंको भ्रमसे सीमाका ज्ञान होता है इस बातको देखि कहे हुएसे भिन्न गूढ जिनको आगे कहेंगे ऐसे सीमाके चिह्नोंको करावे ॥४९॥ पत्थर, हड्डी, गौके बाल, धानकी भूसी, कपाल, करस, ईंट, अंगारे, ठीकरियां, बालू तथा औरभी इसी प्रकारकी वस्तु काला अंजन, विनौला आदि जिनको वहुत दिनोंमेंभी भूमि अपने रूपमें न मिला लेवे उनको ग्रामकी संधियोंमें सीमाके मध्यमें डालकर घडोंमें भरके सीमाओंके अंतमें रख देवे इस बृहस्पतिके वचनसे वडे पत्थरोंको छोडके घडीमें भरके गुप्त भूमिमें गाड देवे ॥ २५० ॥ ५१ ॥

**एतैर्लिङ्गैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः ॥
पूर्वभुक्त्या च संततमुदकस्यागमेन च ॥ ५२ ॥**

भाषा–झगडा करनेवाले ग्रामोंकी सीमाका पहले कहे हुए इन चिह्नोंसे राजा

निर्णय करे और वसनेवालोंकी सीमाका अविच्छिन्न कहिये बराबर चले आये भोग (कब्जे) से निर्णय होता है तीनि पुरुष आदिके भोगसे नहीं क्यों कि " तस्याधिः सीमा " यह पर्युदास है और दो ग्रामोंके बीचमें स्थित नदी आदिके प्रवाहसे इस पार उस पारके ग्रामोंकी सीमाका निश्चय करे ॥ ५२ ॥

यदि संशय एव स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने ॥ साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः ॥ ५३ ॥ ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीम्नि साक्षिणः ॥ प्रष्टव्याः सीमलिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥ ५४ ॥

भाषा-जो गुप्त और प्रकट चिह्नोंके देखनेसेभी निर्णय न होय अर्थात् किसीने छिपे हुए कोयले भूसी आदिके ये घडे लेकर दूसरे स्थानमें गाडि दिये हैं और यह वड सीमाका वृक्ष नहीं है वह नष्ट हो गया इत्यादि संदेह जो होय तो साक्षियोंसे सीमाविवादका निर्णय होवे ॥ ५३ ॥ ग्रामके मनुष्योंके समूहमेंसे दोनों ग्रामके नियत किये हुए मनुष्यों और वादी प्रतिवादियोंके सामने सीमाके मध्ये सीमाके चिह्नोंमें संदेह होनेपर साक्षियोंसे चिह्न पूंछने चाहिये ॥ ५४ ॥

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयम् ॥ निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वांस्तांश्चैव नामतः ॥ ५५ ॥ शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः ॥ सुकृतैः शापिताः स्वैः स्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम् ॥ ५६ ॥

भाषा-पूंछे गये वे सब साक्षी सीमाके मध्ये जिस भांति निर्णय करे उसी प्रकारसे न भूलनेके लिये सीमाको पत्रमें लिखे और उन सब साक्षियोंके नाम लिखे ॥ ५५ ॥ लाल फूलोंकी मालाको धारण किये हुए और लालही वस्त्रोंको पहिरे हुए और माथेपर मट्टी कंकरोंको रखके जो हमारा सुकृत है वह निष्फल होय ऐसे अपने सुकृतों कारि शाप दिये गये वे शक्तिके अनुसार सीमाका निर्णय करे ॥ ५६ ॥

यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः ॥ विपरीतं नयन्तस्तु दाप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ॥ ५७ ॥ साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः ॥ सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ ॥ ५८ ॥

भाषा-सत्य है प्रधान जिनके ऐसे वे साक्षी शास्त्रमें कहे हुए विधानसे निर्णय करते हुए पापरहित होते हैं और झूंठसे निश्चय करते हुए प्रत्येक सौ पण दंड देने योग्य होते हैं ॥ ५७ ॥ दो ग्रामोंकी सीमाके विवादमें साक्षी न होनेपर चारों ओरोंके निकट वसनेवाले चारि ओरके चारि ग्राम साक्षियोंके धर्मसे राजाके आगे सीमाका निर्णय करे ॥ ५८ ॥

सामन्तानामभावे तु मौलानां सीम्नि साक्षिणाम् ॥ इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान् ॥ ५९ ॥ व्याधाञ्छाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखानकान् ॥ व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः ॥२६०॥

भाषा–साक्षिधर्मसे राजाके सामने और पासके चारि ग्रामोंके वसनेवाले विश्वासयुक्त और ग्राम वसनेके लगाके पुरखोंकेक्रमसे उस ग्रामके रहनेवाले ऐसे सीमाके साक्षियोंके न होनेपर जो आगे कहे जांयगे ऐसे निकट बर्त्तमान वनके फिरनेवाले मनुष्योंसे पूंछे ॥ ५९ ॥ बहेलियोंसे, अहीरोंसे, धीवरोंसे, कंजरोंसे, सांप पकडनेवालोंसे, शिलोंछवृत्तिवालोंसे तथा औरभी फल फूल ईंधनके लिये वनके व्यवहारियोंसे पूंछे ये तो अपने प्रयोजनके लिये उस ग्रामसे सदा वनको जाते हुए उस ग्रामकी सीमाके जाननेवाले होते हैं ॥ २६० ॥

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम् ॥ तत्तथा स्थापयेद्राजा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥ ६१ ॥ क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च ॥ सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥ ६२ ॥

भाषा–पूंछे गये वे व्याध आदि सीमारूप ग्रामकी संधियोंमें जिस प्रकारसे चिह्न कहें उसी प्रकारसे राजा दोनों ग्रामोंकी सीमाको स्थापित करे ॥ ६१ ॥ एक ग्राममेंभी खेत कुआ तालाव बाग और घरोंकी सीमाके झगडेमें और पासके ग्रामोंके वसनेवाले साक्षियोंके प्रमाणसेही मर्यादाके चिह्नोंका निश्चय जानना चाहिये व्याध आदिकोंके प्रमाणसे नहीं ॥ ६२ ॥

सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् ॥ सर्वे पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥ ६३ ॥ गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ॥ शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः ॥ ६४ ॥

भाषा–सीमाके चिह्नोंके लिये झगडनेवाले मनुष्योंके और पास देखके बसनेवाले जो झूंठ कहें तो वे सब प्रत्येक राजा करि मध्यम साहसका दण्ड देने योग्य हैं ऐसेही जो और पासके नहीं हैं उनको पहले कहा हुआ दो सौ पण दण्ड देना चाहिये ॥ ६३ ॥ घर तालाव बाग खेत इनमेंसे किसीको मारना बांधना आदि भय दिखा कर ले लेवे तो पांच सौ दंड करने योग्य होय और जो अपनेके भ्रमसे ले ले तो उसपर दो सौ दंड किया जाय ॥ ६४ ॥

सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् ॥ प्रदिशेद्भूमिमेतेषामुपकारादिति स्थितिः ॥६५॥ एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमावि-

निर्णये ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥ ६६ ॥

भाषा-चिह्न तथा साक्षी आदिके न होनेसे सीमाका प्रमाण न हो सकनेपर धर्मज्ञ राजा पक्षपातरहित हो दो ग्रामोंके बीचमें स्थित झगडेकी भूमिको जिन ग्रामके बसनेवालोंका अधिक उपकार होय उसके बिना निर्वाह न होता होय उन्हींको देवे यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ६५ ॥ यह सीमाके निश्चयका धर्म संपूर्ण कहा इसके उपरांत वाक्पारुष्य कहूंगा दंडपारुष्यसे पहले वाक्पारुष्य होती है इससे पहले कही ॥ ६६ ॥

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ॥ वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥ ६७ ॥ पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने ॥ वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥ ६८ ॥

भाषा-यह चोर है ऐसे ब्राह्मणके आक्षेपरूप वचन कहके क्षत्रिय सौ पण दंडके योग्य होता है ऐसे डेढ सौ अथवा दो सौ कार्यका हलकापन तथा भारीपनकी अपेक्षासे वैश्य शूद्रभी ऐसेही ब्राह्मणकी बुराई करनेसे ताडनादि रूप वधके योग्य होता है ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण जो पहले कहा हुआ आक्षेप क्षत्रियका करे तो पचास पण दंडके योग्य है और वैश्य तथा शूद्रका जो कहा हुआ आक्षेप करे तो ब्राह्मण पचीस और बारह पण क्रमसे दंड करने योग्य होय ॥ ६८ ॥

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ॥ वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥ ६९ ॥ एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन् ॥ जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः ॥ २७० ॥

भाषा-द्विजातियोंकी बराबरकी जातिमें कहे हुए आक्षेपके होनेपर बारह पण दंड है और नहीं कहने योग्य बुरे वचनोंमें तथा भाई बहिनी आदिकी गाली देनेमें वही पहले कहे हुए सौ पणका दूना अर्थात् दो सौ पण दंड होता है ॥ ६९ ॥ शूद्र द्विजातियोंको पातक लगानेवाली वाणीसे गाली देकर जीभ काटनेके योग्य होता है जिससे पाद नाम निकृष्ट अंगसे उत्पन्न है ॥ २७० ॥

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ॥ निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥ ७१ ॥ धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ॥ तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ ७२ ॥

भाषा-अभिद्रोह आक्रोशको कहते हैं ब्राह्मण आदिकोंका जैसे अरे यज्ञदत्तके तू ब्राह्मणोंमें नीच है इत्यादिक आक्रोशसे नाम तथा जातिके ग्रहण करनेवालेके

मुखमें अग्निसे तपी हुई दश अंगुलकी लोहेकी खील डालने योग्य है ॥७१॥ कैसेहू धर्मके लेशको जानके तुमको यह धर्म करना चाहिये ऐसे अहंकारसे ब्राह्मणको उपदेश करनेवाले शूद्रके मुखमें और कानोंमें जलता हुआ तेल राजा डलवावे ॥ ७२ ॥

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ॥ वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतं दमम् ॥७३॥ काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम् ॥ तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥ ७४ ॥

भाषा-दंडकी लघुतासे यह समान जातिविषय कहे शूद्र कारि किये हुए द्विजातिके आक्षेपविषयक नहीं है. तुमने यह नहीं सुना है तुम इस देशमें नहीं उत्पन्न हुए हो तुम्हारी यह जाति नहीं है और तुम्हारे शरीरका संस्कार यज्ञोपवीत आदि कर्म नहीं किया गया है ऐसे अहंकारसे मिथ्या कहता हुआ दो सौ पण दण्ड देनेयोग्य होता है ॥ ७३ ॥ कानेको पंगुको तथा औरभी ऐसे हाथ आदि अंग हीनको सत्यभी काने आदि शब्दसे कहता हुआ वहुतही थोडा अर्थात् एक कार्षापण दण्डके योग्य होता है ॥ ७४ ॥

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ॥ आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता ॥ ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः ॥ ७६ ॥

भाषा-माता, पिता, स्त्री, भाई, पुत्र, गुरु इनको पातक आदि लगानेवाले और गुरुको न मार्ग देनेवालेपर सौ पण दण्ड करना चाहिये ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रियों कारि आपसमें जा जातिसे पतित होने योग्य पातक लगानेपर दण्ड शास्त्रके जाननेवाले राजा कारि दण्ड करने योग्य है दण्डहीको विशेष कारि कहते हैं क्षत्रियको पातक लगानेवाले ब्राह्मणपर प्रथम साहस और ब्राह्मणको पातक लगानेवाले क्षत्रियपर मध्यम साहस दण्ड करना चाहिये ॥ ७६ ॥

विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ॥ छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः ॥ ७७ ॥ एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥ ७८ ॥

भाषा-वैश्य तथा शूद्रोंकी जातिमें आपसमें जातिसे पतित होनेके योग्य पातक लगानेपर ब्राह्मण क्षत्रियके समान शूद्रको पातक लगानेवाले वैश्यपर प्रथम साहस और वैश्यको पातक लगानेवाले शूद्रपर मध्यम साहस ऐसे जीभ काटनेके विना तथा योग्य दण्ड करना चाहिये यह शास्त्रका निश्चय है ॥ ७७ ॥ यह पीछे

कही हुई वाकपारुष्यके दण्डकी विधि यथावत् कहिये ठीक ठीक कही अब इसके उपरांत ताडन आदि दण्डपारुष्यके निर्णयको कहेंगे ॥ ७८ ॥

येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः ॥ छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ॥ ७९ ॥ पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति ॥ पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति ॥ २८० ॥

भाषा-अंत्यज शूद्र जिस किसी हाथ पांव आदि अंगसे साक्षात् अथवा छिपके द्विजातिपर प्रहार करे वही इसका अंग काटना चाहिये यह मनुका उपदेश है मनुका ग्रहण आदरके लिये है ॥ ७९ ॥ मारनेके लिये हाथको अथवा दण्डको उठाके हाथ काटनेको प्राप्त होता है और कुपित हो लातसे मारता हुआ पांवके काटनेरूप दण्डको प्राप्त होता है ॥ २८० ॥

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ॥ कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तयेत् ॥ ८१ ॥ अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः ॥ अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ॥ ८२ ॥

भाषा-ब्राह्मणके आसनपर बैठा हुआ शूद्र कटिमें तपाये हुए लोहेसे चिह्न करके देशसे निकालने योग्य है अथवा जैसे यह मरे नहीं ऐसे इसके स्फिच अर्थात् कटिके मांसपिण्डको कटवाय देवे ॥ ८१ ॥ गर्वसे कफको थूकि करि ब्राह्मणका अपमान करनेवाले शूद्रके राजा दोनों ओष्ठ कटवाय देवे और मूत्र डालनेसे अपमान करनेवालेका लिंग कटवाय देवे और पादनेसे अपमान करनेवालेकी गुदाको कटवाय देवे ॥८२॥

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन् ॥ पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥ ८३ ॥ त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः ॥ मांसभेत्ता तु षण्निष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥८४॥

भाषा-अहंकारसे ब्राह्मणके बाल पकडनेवाले शूद्रके इसको पीडा होगी अथवा न होगी इसका विचार न करता हुआ राजा दोनों हाथोंको कटवाय देवे और मारनेके लिये पांव डाढी गर्दन और अंडकोशोंके पकडनेवालेके दोनोंही हाथोंको कटवाय देवे ॥ ८३ ॥ जो समान जातिकी त्वचामात्रका भेदन करे तो सौ पण दंड करने योग्य है और रक्त निकालनेवालाभी सौ पण दंडके योग्य है और मांसका भेदन करनेवाला छः निष्क दंड करने योग्य है और हाडका भेदन करनेवाला तो देशसे निकालने योग्य है ॥ ८४ ॥

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथा यथा ॥ तथा तथा दमः कार्यो

हिंसायामिति धारणा ॥ ८५ ॥ मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ॥ यथा यथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथा तथा ॥ ८६ ॥

भाषा-वृक्ष आदि सब उद्भिज्जोंका उपभोग जिस जिस प्रकारसे फल पुष्प पत्र आदिसे उत्तम मध्यम अधम रूपसे होता है वैसेही हिंसामेंभी उत्तम साहस आदि दंड करना चाहिये यह निश्चय है ॥ ८५ ॥ मनुष्योंके तथा पशुओंके पीडा उत्पन्न करानेके लिये जो प्रहार करनेपर जैसी जैसी पीडाकी अधिकता होय वैसा वैसा दंड अधिक करे ऐसे मर्मस्थान आदिमें त्वचाका भेद आदि करनेपर त्वचाका भेदन करनेवाला सौ पण दंड करने योग्य है दुःखविशेषकी अपेक्षासे इस कहे हुए दंडसे अधिकभी दंड करने योग्य है ॥ ८६ ॥

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ॥ समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा ॥ ८७ ॥ द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥ स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्याच्च तत्समम् ॥ ८८ ॥

भाषा-हाथ पांव आदि अंगोंकी और व्रण (घाव) शोणित कहिये रुधिरकी पीडा होनेपर समुत्थान व्यय कहिये जितने समय कारि पहली दशाका प्राप्तिरूप समुत्थान होय अर्थात् अच्छा होके पहलासा हो जा कालमें पथ्य औषधि आदिसे जितना खर्च होय वह उससे दिवाना चाहिये जो उस खर्चको पीडाका उत्पन्न करानेवाला न देना चाहे तो जो उसपर उत्थान व्यय है और दंड है उसीको दण्डभावसे राजा दिलवावे ॥८७॥ जिनका विशेष दण्ड नहीं कहा है ऐसी कडे और तांबेके कडाह आदि वस्तुओंमें जो जिसकी जानकर अथवा विना जाने बिगाडे उसको दूसरी वस्तु आदिसे संतोष करावे और नाश किये हुए द्रव्यकी बराबर राजाको दण्ड देवे ॥ ८८ ॥

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्टमयेषु च ॥ मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥ ८९ ॥ यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च ॥ दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥

भाषा-चमडेके वर्त्तन आदिमें और चर्म काठ मट्टी आदिके बने हुए अन्यके वासनोंके नाश करनेपर उनके मोलसे पांच गुणा दण्ड राजाको देना चाहिये और स्वामीकाभी संतोष करानेही योग्य है ॥ ८९ ॥ रथ आदि यान कहिये सवारीका और उसके चलानेवाले सारथीका तथा उसके स्वामीका जिसका वह यान है उनके नाथ कटि जाना आदि दश कारण दण्डको उल्लंघन करि वर्त्तमान है अर्थात् इन निमि-

त्तोंके होनेपर प्राणियोंके मारनेमें और द्रव्यके नाश होनेमें स्वामी आदिकोंको दण्ड नहीं होता है यह मनु आदि कहते हैं और इनसे भिन्न कारणोंमें दण्ड होता है॥२९०॥

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ॥ अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च ॥ ९१ ॥ छेदने चैव यन्त्राणां योक्ररश्म्योस्तथैव च ॥ आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ॥ ९२ ॥

भाषा–बैलोंकी नाथके कटि जानेपर जुआके टूट जानेपर अथवा भूमिके ऊंची नीची होनेसे तिरछा जानेपर और यानकी धूरीके टूटनेपर तथा पहियाके टूटनेपर और चमडेके बंधानोंके ।ट जानेपर और जोतोंके तथा पगहियोंके टूट जानेपर और सारथी आदि करि किये हुए हट जाओ हट जाओ ऐसे ऊंचे शब्दके होनेपर जो यानसे प्राणीकी हिंसा तथा द्रव्य आदिका नाश हो जाय तो सारथी आदिको दण्ड नहीं है यह मनुजी कहते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ॥ तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम्॥ ९३ ॥ प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ॥ युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतं शतम् ॥ ९४ ॥

भाषा–जहां सारथीके कुशल न होनेसे रथ इधर उधर मार्गको छोडके चले और उससे हिंसा होनेपर विना सीखे हुए सारथी रखनेके कारण स्वामीपर दोसौ पण दण्ड करना चाहिये ॥ ९३ ॥ जो सारथी कुशल होय तो सारथीही कहे हुए दोसौ पण दण्डके योग्य है स्वामी नहीं और सारथी जो कुशल न होय तो उसमें सारथीके स्वामीके सिवाय औरभी यानमें बैठे हुए मनुष्य अकुशल सारथीके यानमें चढनेके कारण प्रत्येक सौ सौ पण दण्डके योग्य हैं ॥ ९४ ॥

स चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ॥ प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः ॥ ९५ ॥ मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषं भवेत् ॥ प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥ ९६ ॥

भाषा–जो वह सारथी सामनेसे आती हुई बहुतसी गौओं करि अथवा दूसरे रथ करि रोका हुआ अपने रथके चलानेकी असावधानीसे पीछेको न हट सके और संकोचित मार्गमें अपने रथके घोडोंको हांकता हुआ चले और जो घोडोंसे अथवा रथसे अथवा रथके अंग पहिया आदिकोंसे प्राणियोंको मारे तो वहांभी न विचारा हुआ दण्ड करना चाहिये ॥९५॥ सारथीकी असावधानीके कारण रथ आदि यानसे मनुष्यको मर जानेपर शीघ्रही चोरका दण्ड उत्तम साहस होता है और गौ गज आदि बडे प्राणियोंके मारनेपर उत्तम साहसका आधा पांच सौ पण दण्ड होता है ॥९६॥

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः ॥ पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ ९७ ॥ गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः ॥ माषकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ॥ ९८ ॥

भाषा–जिनकी जाति विशेष कही है उनसे अन्य वनमें विचरनेवाले छोटे पशुओंके मारनेमें और किशोर आदि पक्षियोंके मारनेमें दो सौ पण दण्ड होता है और रुरु पृषत आदि शुभ मृगोंके तथा और शुक हंस सारस आदि पक्षियोंके मारनेपर पांच सौ पण दण्ड होता है ॥ ९७ ॥ गधा बकरा और भेडके मारनेमें पांच रुपयेके माष प्रमाण दण्ड होता है यहां सोनेके मासेका ग्रहण नहीं है क्योंकि आगे आगे लघु कहिये हलके दंडका कथन है और कुत्ता तथा सुअरके मारनेमें फिर एक रूपेका मासा दण्ड होता है ॥ ९८ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः ॥ प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥ ९९ ॥ पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथंचन ॥ अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥ ३०० ॥

भाषा–स्त्री, पुत्र, दास, शिष्य और सगा भाई इनमें जो कोई अपराध करे तो रस्सीसे अथवा बहुत छोटी हलकी बांसकी लकडीसे ताडना करने योग्य होते हैं ॥ ९९ ॥ रस्सी आदिसेभी देहके पृष्ठभागमें अर्थात् पीठिमें ताडना करने योग्य हैं शिरमें कभी नहीं कहे हुए प्रकारसे अन्यथा करनेमें वाग्दंड (जुर्माना) रूप चौरदण्डको प्राप्त होय ॥ ३०० ॥

एषोखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः ॥ स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥ १ ॥ परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः ॥ स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते ॥ २ ॥

भाषा–यह दण्डपारुष्यका निर्णय संपूर्णतासे कहा इसके उपरांत चौरदंडके निर्णयका विधान कहेंगे ॥१॥ चोरोंके दण्ड देनेमें राजा बडा भारी यत्न करे जिससे चोरोंको दंड देनेसे राजाकी ख्याति होती है और उपद्रवरहित होनेसे देशभी बढता है ॥ २ ॥

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ॥ सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम् ॥ ३ ॥ सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः ॥ अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥ ४ ॥

भाषा–चोरोंके दण्ड देनेसे जो राजा साधुओंको अभय देता है वही

सर्वोंका पूज्य और प्रशंसायोग्य होता है और उसका गवायन आदि सत्र कहिये यज्ञविशेष जिसकी चोरोंका दण्ड देनारूप अभयही दक्षिणा है वह सदा बढता है और निश्चित समय और नियत है दक्षिणा जिसकी ऐसा होता है यह तो अभय-दक्षिणा युक्त सब कालमें होता है ॥ ३ ॥ प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले राजाका वानिया आदिसे तथा श्रोत्रिय आदिसे धर्मका छठा भाग होता है और नहीं रक्षा करनेवालेको अधर्ममेंसे छठा भाग होता है तिससे राजा यत्न करके चौरोंके दण्ड देनेसे सर्वोंकी रक्षा करे ॥ ४ ॥

यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति ॥ तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात् ॥ ५ ॥ रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् ॥ यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥ ६ ॥

भाषा-जो कोई जप यज्ञ दान देवताका पूजन आदि करता है उसके छठे भागको राजा भली भांति पालन करनेसे प्राप्त होता है ॥५॥ राजा शास्त्रके अनुसार दंड देनेरूप धर्मसे पालन करता हुआ और चोर आदिकोंके दंड देता हुआ प्रति दिन लक्ष गौ हैं दक्षिणा जिसकी ऐसे यज्ञसे यजन करता है अर्थात् उनसे उत्पन्न पुण्यको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ॥ प्रतिभागं च दण्डं च स सद्यो नरकं व्रजेत् ॥ ७ ॥ अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् ॥ तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥ ८ ॥

भाषा-रक्षा न करता हुआ जो राजा वलि कहिये धान्य आदिका छठा भाग आदि और कर कहिये ग्राम तथा पुरके वासियोंसे प्रति महीने भादों और पूस आदि महीनोंके नियमसे लेने योग्य अथवा शुल्क कहिये जलके मार्गसे अथवा स्थलके मार्गसे वाणिज्य करनेवालोंसे नियत चौकी आदि स्थानोंमें द्रव्यके अनुसार लेने योग्य जो दान (महसूल) नामसे प्रसिद्ध है और प्रति भाग कहिये फल फूल शाक और तृण आदि भेंट जो प्रतिदिन लेने योग्य है और दण्ड कहिये और व्यवहार आदिमें दण्ड लेता है वह मरके शीघ्रही नरकको जाता है ॥ ७ ॥ जो राजा रक्षा नहीं करता है और वलिरूप धान्य आदिके छठे भागको लेता है उसको सब लोगोंके समस्त पापोंके लेनेवाला मनु आदि कहते हैं ॥ ८ ॥

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम् ॥ अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् ॥ ९ ॥ अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः ॥ निरोधनेन बन्धेन विविधेन वधेन च ॥ ३१० ॥

भाषा-शास्त्रकी मर्यादाके न माननेवालेको और परलोकको न मानकर अनुचित दण्ड आदिसे धन लेकर बढे हुएको और रक्षा न करनेवालेको और कर तथा बलि आदिके खानेवाले राजाको नरकगामी जाने ॥ ९ ॥ अधर्मी चोर आदिको अपराधकी अपेक्षासे तीनि उपायों कारि यत्नसे दण्ड देवे उनको कहते हैं जेलखानेमें डाल देनेसे और बेरी आदिके बंधनोंसे और ताडना तथा हाथ पांव आदिके काटने आदि नाना प्रकारके मारनेसे ॥ ३१० ॥

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च ॥ द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते संततं नृपाः ॥ ११ ॥ क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यिणां नृणाम् ॥ बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥ १२ ॥

भाषा-पापियोंके दण्ड देनेसे और साधुओंकी रक्षा करनेसे महायज्ञ आदिकोंसे ब्राह्मणोंके समान सब काल राजा पवित्र होते हैं तिससे अधार्मियोंको दण्ड दे और साधुओंपर अनुग्रह करे ॥ ११ ॥ कार्यवाले अर्थी प्रत्यर्थियोंके आक्षेपसे कहे हुए वचनोंके और बालक वृद्ध तथा रोगियोंके आक्षेपको आगे जो कहा जायगा ऐसे अपने उपकारकी इच्छा करनेवाला प्रभु सह लेवे ॥ १२ ॥

यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ॥ यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥ १३ ॥ राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ॥ आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवंकर्मास्मि शाधि माम् ॥ १४ ॥ स्कन्धेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम् ॥ शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ॥ १५ ॥

भाषा-दुःखितोंकारि आक्षेप किया गया जो सह लेता है वह उससे स्वर्गलोकमें पूजाको प्राप्त होता है और जो दर्पसे नहीं सहता है वह उससे नरकमें जाता है॥१३॥ यद्यपि "सुवर्णस्तेयकृद्विप्र" इत्यादिसे प्रायश्चित्तप्रकरणमें कहेंगे तिसपरभी सुवर्णके चुरानेवाले प्रति इसको राजदंडरूपता दिखानेके लिये दण्डप्रकरणमें पढे ब्राह्मणके सुवर्णके चुरानेवाले और बाल खोले हुए वेगसे जाते हुए मैंने ब्राह्मणका सुवर्ण चुराया है ऐसे चोरीको कहते हुए पुरुषको खैरका मूसल नाम आयुध अथवा दोनों ओरसे पैना दण्ड अथवा लोहेकी शक्तिको कंधेपर रखके राजाके समीप जाना चाहिये तिस पीछे ब्राह्मणके सुवर्णका चुरानेवाला मैं हूं तिससे इस मूसल आदिसे मुझे मारो ऐसे राजासे कहना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ॥ अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ॥ १६ ॥

भाषा-एक वार मूसल आदि मारनेसे प्राण जाते रहें अथवा मरेके समान हुए जीवतको छोड देनेसे वह चोर उस पापसे छूट जाता है और जो राजा करुणा आदिसे उस चोरको न मारे तो चोरके पापको भोगता है ॥ १६ ॥

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी ॥ गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥ १७ ॥ राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ॥ निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा १८ ॥

भाषा-जो ब्रह्महत्या करनेवालेके अन्न खानेवालेमें उसका पाप आय जाता है और भ्रूण जो गर्भ है उसकी हत्या करनेवालेका अन्न जो खाता है उसको पाप होता है यह यहां कहा गया परंतु ब्रह्महत्यारेका पाप नष्ट नहीं होता है और व्यभिचार करनेवाली स्त्रीके जार पतिको क्षमा करनेवाले पतिको पाप लगता है और शिष्य संध्या तथा अग्निहोत्रादि न करनेसे उत्पन्न पापको सहनेवाले गुरुमें स्थापित करता है और विधिको उल्लंघन करनेवाला यजमान क्षमा करनेवाले याजकमें अपने पापको डारता है और चोर उपेक्षा करनेवाला राजाको अपना पाप देता है तिससे राजाको चोरदंड देने योग्य है ॥ १७ ॥ सुवर्णकी चोरी आदिक पापोंको करके पीछे राजाओं करि दंड दिये गये मनुष्य रोकनेवाले पापके न होनेसे पहले किये हुए पुण्यके द्वारा सुकृती मनुष्योंके समान स्वर्गको जाते हैं ऐसे प्रायश्चित्तके समान दंडकोभी पापोंसे शुद्ध करनेका कारण कहा है ॥ १८ ॥

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिंद्याच्च यः प्रपाम् ॥ स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत् ॥ १९ ॥ धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ॥ शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ ३२० ॥

भाषा-कुएके समीप पानी भरनेके लिये रक्खे हुए रस्सी और घडेमेंसे जो रस्सी अथवा घडेको चुरावे और जो पानी पिलानेके घटको फोडे उसपर सुवर्णका एक मासा दंड होना चाहिये और वह उस रस्सी आदिको कुएपर रक्खे ॥ १९ ॥ दोसौ पलका एक द्रोण होता है और वीस द्रोणका एक कुंभ होता है ऐसे दश कुंभोंसे अधिक धान्य चुरानेवालेका वध कहा है वह तो स्वामिकी गुणवत्ताकी अपेक्षासे ताडन अंगोंका काटना और मारनारूप जानना चाहिये और शेषमें फिरि एक कुंभसे लगाके दश कुंभतकके चुरानेमें चुराये हुएसे ग्यारह गुणा दंड दिलवाना चाहिये और चुराया हुआ धान्य स्वामीको दिवावे ॥ ३२० ॥

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ॥ सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् ॥ २१ ॥ पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेद-

नमिष्यते ॥ शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥

भाषा–जैसे धान्यमें वध कहा है वैसेही तुलासे प्रमाण करने योग्य सुवर्ण रजत आदिकोंके और उत्कृष्ट कहिये बढिके रेशमी कपडे आदिकोंके सौ पलसे अधिक चुरानेमें वध करनाही चाहिये ॥ २१ ॥ पहले कहे हुए पचाससे सौतक चुरानेपर मनु आदिकोंने हाथ काटना कहा है और शेषमें एक पलसे लगाके पचास पलतक चुरानेमें चुराये हुए धनसे ग्यारह गुणा दंड देना चाहिये ॥ २२ ॥

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ॥ मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥ २३ ॥ महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥ कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ॥ २४ ॥

भाषा–बडे कुलमें उत्पन्न मनुष्योंके और विशेष कारि स्त्रियोंके और हीरा वैडूर्य आदि श्रेष्ठ मणियोंके चुरानेमें वधके योग्य होता है ॥ २३ ॥ हाथी, घोडा, गौ, भैंस आदि बडे पशुओंके तथा खड्ग आदि शस्त्रोंके और कल्याणघृत आदि औषधीके चुरानेवालेको दुर्भिक्ष आदि रूप समय और प्रयोजनको भले बुरे काममें लगा हुआ समुझि राजा ताडन अंगच्छेदन और वधरूप दंड करे ॥ २४ ॥

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरिकायाश्च भेदने ॥
पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥ २५ ॥

भाषा–ब्राह्मणकी गौओंके चुरानेमें और लादनेके लिये बांझ गौके नाथनेमें और भेड बकरी आदि पशुओंके चुरानेमें हालही आधा पांव काटि देना चाहिये ॥ २५ ॥

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ॥ दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ॥ २६ ॥ वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च ॥ मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥२७॥ मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च ॥ मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥ २८ ॥ अन्येषां चैवमादीनां मद्यानामोदनस्य च ॥ पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः ॥२९॥

भाषा–सूत, कपास और किण्व कहिये सुराबीज, गोबर, गुड, दही, दूध, मठा, पानी, तृण और वेणुवैदल कहिये पतले बांसोंके टुकडोंसे बने हुए जल भरनेके पात्र आदिकोंका और सब प्रकारके नोन और मिट्टीके बने हुए बासनोंके चुरानेमें मिट्टीके तथा भस्मके चुरानेमें मछलियों और पक्षियोंके तैल तथा घीके मांसके मधु(शहत)-के और जो कुछ मृगचर्म गेंडाके सींग आदिसे ऐसेही औरभी असारसी मनसिल

आदिके और वारह प्रकारके मद्योंको और भातको छोडकर पुआ लड्डू आदि पक्वान्नोंको चुरानेमें चुराई हुई वस्तुके मोलसे दूना दंड करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ॥
अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥ ३३० ॥

भाषा-फूलोंके और खेतमें लगे हुए हरे धान्योंके और गुल्म लता तथा वृक्षोंके और शुद्ध न किये हुए अन्य धान्योंके जो एक समर्थ पुरुषका भार रहे उनके चुरानेमें देशकाल आदिकी अपेक्षासे सुवर्णकी अथवा रूपेकी पांच रत्ती प्रमाण दंड होता है ॥ ३३० ॥

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ॥ निरन्वये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतं दमः ॥ ३१ ॥ स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् ॥ निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापह्नूयते च यत् ॥ ३२ ॥

भाषा-साफ किये हुए धान्योंके और शाक मूल तथा फल आदिके चुराने पर अन्वय द्रव्यके स्वामीके संबंधको कहते हैं जिसमें एक ग्राममें वसने आदिका कुछभी संबंध नहीं है वहां सौ पण दण्ड करना चाहिये और जहां संबंध है वहां पचास पण दण्ड करना चाहिये खलिहानेमें पडे हुए धान्योंके चुरानेमें यह दण्ड है वहां साफ किये जाते हैं और घरमें स्थित धान्योंके चुरानेमें पहले कहा हुआ ग्यारह गुणा दण्ड देना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो धान्यका ले लेना आदि कर्म द्रव्यके स्वामीके सामने बलसे हर लिया जाता है वह साहस होता है सह बलको कहते हैं उसे जो होय उसको साहस कहते हैं इससे इसमें चोरीका दण्ड न करना चाहिये इस लिये इसका चोरीके प्रमाणमें पाठ है और जो स्वामीके पीठि पीछे लिया जाता है वह चोरी होती है और जो लेकर छिपाया जाता है वहभी चोरीही है ॥ ३२ ॥

यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ॥ तमाद्यं दण्डयेद्राजा यश्चाग्निं चोरयेद्गृहात् ॥ ३३ ॥ येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ॥ तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३४ ॥

भाषा-जो मनुष्य संस्कार की हुई इन सूत आदि द्रव्योंको उपभोगके लिये चुरावे और जो तीनों अग्नियोंको अग्निके घरसे चुरावे उसपर राजा प्रथम साहसका दंड करे और अग्निके स्वामीको अग्निके आधानकी हानि दिवावे ॥ ३३ ॥ जिस जिस हाथ पांव आदि अंगसे संधि फोडने आदि जिस प्रकारसे चोर मनुष्यों-

में विरुद्ध धन लेने आदिकी चेष्टा करे उसी अंगका राजा उस प्रसंगके दूरि करनेके लिये कटवावे ॥ ३४ ॥

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ॥ नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥३५॥ कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः॥तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा३६॥

भाषा-पिता, आचार्य, मित्र, भाई, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित इनमेंसे कोई अपने धर्ममें न स्थित रहे वह क्या राजाके दण्ड देने योग्य नहीं है अर्थात् दण्ड देनेही योग्य है ॥ ३५ ॥ जिस अपराधमें राजाके व्यतिरिक्त सामान्य जन एक कार्षापण दंडके योग्य होय उस अपराधमें राजा हजार पण दंडके योग्य होता है यह निश्चय है अपने दंडको राजा जलमें डाल देवे अथवा ब्राह्मणोंको दे देवे दण्डके वरुण स्वामी हैं यह आगे कहा है ॥ ३६ ॥

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ॥ षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत्॥द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः॥३८॥

भाषा-जिस चोरीमें जो दंड कहा है वह चोरीके गुणदोष जाननेवाले शूद्रपर आठ गुणा करने योग्य है और चोरीके गुणदोष जाननेवाले वैश्यपर सोलह गुणा ऐसेही क्षत्रियपर बत्तीस गुणा और गुणदोष जाननेवाले ब्राह्मणपर चौंसठि गुणा अथवा सौ गुणा अथवा एक सौ अठाईस गुणा गुणकी अधिकताकी अपेक्षा यह ब्राह्मणहीपर होना चाहिये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च ॥ तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ॥३९॥ योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम् ॥ याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः ॥ ४० ॥

भाषा-लता और वनस्पतियोंके फूलोंको अपनेके समान ग्रहण करे और विना रक्षा किये हुए वानस्पत्य आदिकोंके मूल फलको और होमकी अग्निके लिये काष्ठको और गौके खानेके लिये तृणके लेनेको मनु चोरी नहीं कहते हैं तिससे इसमें दण्ड नहीं है और न अधर्म है ॥ ३९ ॥ अदत्तादायी जो चोर है तिसके हाथसे जो ब्राह्मण याजन अध्यापन और प्रतिग्रहसे पराये धनको जानिके लेनेकी इच्छा करे वह चोरकी तुल्य जानना चाहिये इसीसे चोरके समान दण्ड देने योग्य है॥४०॥

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ॥ आददानः परक्षेत्रा-

न्नं दण्डं दातुमर्हति ॥ ४१ ॥ असंधितानां संधाता संधितानां च मोक्षकः ॥ दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्याच्चोरकिल्बिषम् ॥ ४२ ॥

भाषा-मार्गका खर्च जिसका चुकि गया है ऐसा बटोही ब्राह्मण दो ईखों और दो मूलियोंको पराये खेतसे लेता हुआ दण्ड देनेके योग्य नहीं होता है ॥ ४१ ॥ नहीं बंधे हुए पराये घोडा आदिकोंका बांधनेवाला और अश्वशाला आदिमें बंधे हुओंका खोलनेवाला और दास रथ घोडा इनका चुरानेवाला चोरके दंडको पावे वह दंड तो भारी हलके अपराधके अनुसार मारण अंगच्छेदन और धनका ले लेना आदि जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ॥ यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥४३॥ ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ॥ नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥४४॥

भाषा-इस कही हुई विधिसे चोरोंका प्रबंध करता हुआ राजा इस लोकमें बडी ख्याति और परलोकमें उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ सबके अधिपति होनेरूप पदके प्राप्त होनेकी और अविनाशी तथा अक्षय यशके प्राप्त होनेकी इच्छा करता हुआ राजा बलसे घरके जलानेवाले और धनके लेनेवाले मनुष्यकी क्षणमात्रभी उपेक्षा न करे तत्काल दंड देवे ॥ ४४ ॥

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः ॥ साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥ ४५ ॥ साहसे वर्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः ॥ स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ४६ ॥

भाषा-वाक्पारुष्य करनेवालेसे चोरसे तथा दंडपारुष्य करनेवाले मनुष्यसे साहस करनेवाला मनुष्य अतिशय करि पाप करनेवाला जानना चाहिये ॥ ४५ ॥ जो राजा साहस करते हुए मनुष्यको सहता है अर्थात् क्षमा करता है वह पाप करनेवालोंकी उपेक्षा करनेसे अधर्मकी वृद्धिसे नाशको प्राप्त होता है और देशका अपकार करनेसे मनुष्योंके द्वेषको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ॥ समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥ ४७ ॥ शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते ॥ द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥ ४८ ॥ आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ॥ स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति ॥ ४९ ॥

भाषा-मित्रके कहनेसे अथवा बहुतसे धनकी प्राप्तिसे सब जीवोंके दुःख देनेवाले साहसी मनुष्योंको राजा न छोडे ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण आदि तीनि वर्णोंको उस कालमें खड्ग आदि शस्त्र धारण करना चाहिये जिस समय वर्ण और आश्रमी साहस करनेवालोंसे धर्म न करने पावें तथा तीनों वर्णवालोंको राजारहित देशमें पराई सेना आने आदि कालमें उत्पन्न हुए स्त्रीसंगर आदिके प्राप्त होनेपर और अपनी रक्षाके लिये और दक्षिणा धन गौ आदिके हरनेके कारण संग्राममें और स्त्री तथा ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त और गति न होनेके कारण धर्मयुद्धमें शत्रुओंको मारता हुआ दोषभागी नहीं होता है दूसरेके मारनेमेंभी यहां साहसका दंड नहीं करने योग्य है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३५० ॥

भाषा-गुरु बालक वृद्ध और बहुश्रुत ब्राह्मण इनमेंसे जो विद्याव्रत आदिसे उत्कृष्टभी कोई मारनेके लिये आता होय और भागने आदिसेभी अपना बचाव न हो सकता होय तो बिना विचारके मारे ॥ ३५० ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥ ५१ ॥ परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नॄन्महीपतिः ॥ उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥ ५२ ॥

भाषा-मनुष्योंके सामने अथवा एकान्तमें मारनेके लिये उद्यत आततायीके मारनेमें मारनेवालेको कुछ अधर्म दंड तथा प्रायश्चित्त नाम दोष नहीं लगता है कारण यह है कि मारनेवालेमें स्थित मन्यु अर्थात् क्रोधके अभिमानकी देवता हन्यमानमें स्थित हो क्रोधको लौटाय देती है और साहसमें अपराधके गौरवकी अपेक्षासे मारण अंगच्छेदन और धनग्रहण आदि दंड करने चाहिये ॥ ५१ ॥ अब स्त्रीसंग्रहण कहते हैं. पराई स्त्रियोंके भोगमें प्रवृत्त मनुष्योंके समूहको नाक ओंठ काटने आदि दंडोंसे चिन्हयुक्त करिके राजा अपने देशसे निकाल देवे ॥ ५२ ॥

तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ॥ येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥ ५३ ॥ परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन् रहः ॥ पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥ ५४ ॥

भाषा-पराई स्त्रियोंमें गमन करनेसे उत्पन्न हुआ वर्णसंकर होता है जिस वर्णसंकर करि शुद्ध पत्नीयुक्त यजमान न होने कारण अग्निमें डाली हुई आहुति अच्छी भांति सूर्यको प्राप्त नहीं होती है इसका अभाव होनेपर वृद्धिनाम जगत्के

मूलका नाश करनेवाला अधर्म जगत्के नाशके लिये होता है ॥ ५३ ॥ तिसको पहले परस्त्रीगमन आदिका दोष लगि चुका है वह पुरुष किसीकी स्त्रीसे एकांतमें बात करे और च्युतवीर्य होवे तो प्रथम साहस दंडको प्राप्त होय ॥ ५४ ॥

यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ॥ न दोषं प्राप्नुयात्किंचिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥ ५५ ॥ परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा ॥ नदीनां वापि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥५६॥

भाषा-जिसको पहले परस्त्री आदिका दोष नहीं लगा है वह जो किसी कारण मनुष्योंके आगेभी बात करे तो वह दंडयत्व आदि अर्थात् दण्ड देने योग्य दोषोंको न प्राप्त होय जिससे उसका कुछ अपराध नहीं है ॥ ५५ ॥ तीर्थ अरण्य वन आदिके कहनेसे शून्यस्थान जानना चाहिये. जो पुरुष पानी भरनेके घाटमें और अरण्य कहिये ग्रामसे बाहर लता गुल्मोंसे भरे हुए सूने देशमें और वन कहिये बहुत वृक्षोंसे भरे हुए स्थानमें और नदियोंके संगममें निर्दोषभी होनेपर किसी कारणसेभी बात करे वह हजार पणरूप संग्रहण दण्ड जो आगे कहेंगे उसको पावे ॥५६॥

उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ॥ सहखट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ५७ ॥ स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तथा ॥ परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ५८ ॥

भाषा-उपचारक्रिया कहिये माला सुगंध तथा चंदन आदि अनुलेपनका भेजना और केलि कहिये हँसना आलिंगन करना आदि और अलंकार भूषण आदिकोंका स्पर्श करना और खट्वापर बैठना इन सबोंको मनु आदिने संग्रहण कहा है ॥५७॥ जो छूनेको अनुचित स्तन जघन आदि स्थानोंमें स्त्रीको छुवे अथवा उस स्त्रीकरके वृषण आदि स्थानमें छुआ गया सहि लेवे तो आपसमें अंगीकाररूप सब मनु आदिकोंने संग्रहण कहा है ॥ ५८ ॥

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ॥ चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा ॥ ५९ ॥ भिक्षुका बन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा ॥ संभाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ॥ ३६० ॥

भाषा-दण्डकी अधिकतासे यहां अब्राह्मण कहनेसे शूद्र जानना चाहिये नहीं इच्छा करती हुई ब्राह्मणीमें उत्तम संग्रहण करनेसे शूद्र वधदंडको प्राप्त होता है और चारों ब्राह्मण आदि वर्णोंके धन पुत्र आदिकोंमेंसे अधिकतासे स्त्री सदा रक्षा करने योग्य है उससे उस प्रसंगके दूर होनेके लिये उत्कृष्ट संग्रहणसेभी सब वर्णों करि स्त्रियां रक्षा करने योग्य हैं ॥ ५९ ॥ भिक्षासे जीनेवाले स्तुति पढनेवाले यज्ञकी

दीक्षावाले और सूपकार कहिये रसोई करनेवाले आदि तथा भिक्षा आदि अपने कामके लिये गृहस्थोंकी स्त्रियोंके साथ विना रोक टोकके संभाषण करे इस भांति इनको संग्रहण दोष नहीं होता है ॥ ३६० ॥

न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ॥ निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ॥ ६१ ॥ नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु ॥ सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च ॥ ६२ ॥

भाषा–स्वामी करि मने किया हुआ स्त्रियोंके साथ बात न करे और जो मने किया हुआ बात करे तौ राजा करि सोलह सुवर्णके दण्ड योग्य होता है ॥ ६१ ॥ पराई स्त्रीसे बात न करे यह बोलनेका निषेध नट और गवैया आदिकी स्त्रियोंमें नहीं है क्योंकि भार्या और पुत्र अपना तनु है यह कहा है अर्थात् भार्याही आत्मा है इससे वे जीविका करते हैं धन लाभके लिये उसके जारसे कुछ नहीं कहते हैं उनसें और नट आदिकोंसे व्यतिरिक्तोंमें जो स्त्रियां हैं उनमेंभी यह निषेधकी विधि नहीं है जिससे चारण आत्मोपजीवीभी हैं वे परपुरुषोंको लायके उनसे अपनी भार्याओंका आलिंगन कराते हैं और आप आये हुए परपुरुषोंको छिपकर अपना न जानना प्रगट करते हुए व्यवहार कराते हैं ॥ ६२ ॥

किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात्संभाषां ताभिराचरन् ॥ प्रैष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च ॥ ६३ ॥ योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ॥ सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः ॥६४॥

भाषा–शून्य स्थानमें चारण और आत्मोपजीवीकी स्त्रियोंसे बात चीत करता हुआ पुरुष राजा करि थोडासा दण्डका लेश दिवाने योग्य है क्योंकि वेभी परदारा हैं तथा रुकी हुई दासियोंसे और बौद्ध आदिकी ब्रह्मचारिणियोंसे संभाषण करता हुआ कुछ दण्डमात्र देने योग्य होता है ॥ ६३ ॥ जो विना इच्छा करनेवाली कन्याको जबर्दस्तीसे संग करिके दूषित करता है वह ब्राह्मणसे अन्य होय तो लिंगच्छेदनादिसे वध करने योग्य है और इच्छावाली कन्यासे संग करे तो वध करने योग्य है ॥ ६४ ॥

कन्यां भजंतीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत् ॥ जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद्गृहे ॥ ६५ ॥ उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति ॥ शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि ॥ ६६ ॥

भाषा–संभोगके लिये उत्कृष्ट जातिके पुरुषका सेवन करती हुई कन्याको थोडाभी दण्ड न देवे और हीन जातिके पुरुषका सेवन करनेवालीको जबतक उसका

काम निवृत्त न होय तबतक बांधकर रक्खे ॥ ६५ ॥ हीन जाति पुरुष उत्कृष्ट जातिकी इच्छा करनेवाली अथवा इच्छा न करनेवाली कन्यासे गमन करता हुआ जातिकी अपेक्षासे अंगके काटने और मारनेरूप दण्डके योग्य है और इच्छा करती हुई समान जातिकी कन्यासे गमन करता हुआ जो पिता राजी होय तो मोलके अनुरूप धन देवे दण्डके योग्य नहीं है और कन्या उसीको व्याहनी चाहिये ॥ ६६ ॥

अभिषह्य तु यः कन्यां कुर्याद्दर्पेण मानवः ॥ तस्याशु कर्त्ये अङ्गुल्यौ दण्डं चार्हति षट् शतम् ॥ ६७ ॥ सकामां दूषयंस्तुल्यो नाङ्गुलिच्छेदमाप्नुयात् ॥ द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसंगविनिवृत्तये ॥ ६८ ॥

भाषा-जो मनुष्य समान जातिकी कन्याको दर्पसे गमनको छोडि बलसे अंगुली डालने मात्रसे नाश करे उसकी दो अंगुली शीघ्रही काटनी चाहिये और छः सौ पण दण्ड होना चाहिये ॥ ६७ ॥ समान जातिका पुरुष इच्छा करनेवाली कन्याको अंगुलीके प्रक्षेपमात्रसे नाश करता हुआ अंगुलीच्छेदको नहीं प्राप्त होता है किंतु अति प्रसक्तिके निवारण करनेके लिये दोसौ पण दण्ड करने योग्य है ॥ ६८ ॥

कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः ॥ शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश ॥ ६९ ॥ या तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति ॥ अङ्गुल्योरेव वा च्छेदं खरेणोद्वहनं तथा ॥ ३७० ॥

भाषा-जो कन्याही दूसरी कन्याको अंगुलीके प्रक्षेपसे नाश करे उसपर दोसौ पण दण्ड होना योग्य है और कन्या दुगुना मोल उसके पिताको देवे और दश शिफा प्रहारोंको प्राप्त होय ॥ ६९ ॥ जो स्त्री अंगुलीप्रक्षेपसे कन्याका नाश करे उसको उसी समय शिर मुंडा अंगुली काटि गधेपर चढा सडकमें निकाले ॥ ३७० ॥

भर्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता ॥ तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ ७१ ॥ पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ॥ अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥ ७२ ॥

भाषा-जो स्त्री बडे धनवाले पिता आदि बंधुओंके घमंडसे अथवा सुंदरता आदि गुणोंके गर्वसे पतिको दूसरे पुरुषके साथ गमन करनेसे उल्लंघन करे उसको राजा बहुतसे मनुष्योंके आगे कुत्तोंसे चुथवावे ॥ ७१ ॥ पीछे कहे हुए पाप करनेवाले जार पुरुषको तपाकर लाल की हुई लोहेकी सज्जापर जलावे और उस सज्जापर और काष्ठ ऊपरसे डाले जबतक वह पापी जल जाय ॥ ७२ ॥

संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ॥ व्रात्यया सह संवासे

चांडाल्या तावदेव तु ॥ ७३ ॥ शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्ण-मावसन् ॥ अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥ ७४ ॥

भाषा-परस्त्री गमनसे दूषित जिस पुरुषको दण्ड नहीं दिया गया उसको एक वर्ष पीछे फिर उसीका दोष लगनेपर पहले दण्डसे दूना दण्ड करना चाहिये तथा व्रात्यकी जायाके गमन करनेमें जो दण्ड कल्पना किया गया है वही चांडालीके गमनमें होना चाहिये अंत्यजकी स्त्रीसे गमन करनेवालेपर एक हजार पण दण्ड कहा है संवत्सरके बीति जानेपर जो उसी व्रात्यकी जायासे और उसी चांडालीसे फिर गमन करे तो दूना दण्ड करना चाहिये ॥ ७३ ॥ भर्त्ता आदिके भयसे रक्षित अथवा अरक्षित द्विजातिकी स्त्रीसे जो शूद्र गमन करे तो नहीं रक्षा की हुईसे गमन करता हुआ लिंगरहित करने योग्य है और रक्षितासे तौ गमन करता हुआ शरीर तथा धनसे हीन करने योग्य है ॥ ७४ ॥

वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः ॥ सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वै-श्यपार्थिवौ ॥ वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥ ७६ ॥

भाषा-वैश्यको गुप्ता ब्राह्मणीमें गमन करनेपर एक वर्षतक बंधनमें रखकर पीछे सर्वस्व ग्रहणरूप दण्ड करना चाहिये अर्थात् उनका सब धन आदि छीन ले और क्षत्रियामें गमन करनेपर तौ 'वैश्यस्य क्षत्रियायां' यह आगे कहेंगे और क्षत्रि-यको गुप्ता ब्राह्मणीके साथ गमन करनेसे हजार पण दण्ड देना चाहिये और गधेके मूत्रसे इसका मुंडन कराना चाहिये॥७५॥ जो अरक्षिता ब्राह्मणीसे वैश्य तथा क्षत्रिय गमन करे तो वैश्यपर पांच सौ दण्ड करे और क्षत्रियपर हजार करे वैश्यपर यह पांचसौका दण्ड शूद्राके भ्रम आदिसे निर्गुण जातिमात्रसे जीविका करनेवाली ब्राह्मणीके मध्ये जानना चाहिये और उससे अन्य ब्राह्मणीके गमनमें तौ वैश्यकोभी हजारही दण्ड कहा है ॥ ७६ ॥

उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह ॥ विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना ॥ ७७ ॥ सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलाद्व्रजन्॥ शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः ॥७८॥

भाषा-वे दोनोंभी क्षत्रिय वैश्य अरक्षिता ब्राह्मणीके साथ मैथुन करनेसे शूद्रके समान सर्वस्व दंड करने योग्य हैं अथवा चटाईमें लपेट कर जलाने योग्य हैं उनमें वैश्यको तौ लाल कुशोंकी चटाईमें और क्षत्रियको सरपतेके पत्तामें लपेटकर जलावे यह वशिष्ठका कहा हुआ विशेष ग्रहण करना चाहिये पहले क्षत्रियपर हजार दण्ड करना

चाहिये और वैश्यपर सर्वस्व दंड करना चाहिये यह कहा है तिससे यह प्राणांतिक दंड गुणवत् ब्राह्मणीके गमन करनेमें जानना चाहिये ॥ ७७ ॥ रक्षिता ब्राह्मणीमें बलसे गमन करनेवाले ब्राह्मणपर हजार पण दंड होवे और इच्छा करनेवालीसे एक वार मैथुन करनेमें पांच सौ दंड करने होता है ॥ ७८ ॥

मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥७९॥ न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ॥ राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥३८०॥

भाषा- ब्राह्मणका वध दंडके स्थानमें शिरका मुडवा देना दंड है यह शास्त्रने कहा है और क्षत्रिय आदिकोंका तो कहे हुए मारनेसे दंड होता है ॥ ७९ ॥ सब पाप करनेवालेभी ब्राह्मणको कभी न मारे अपितु सर्वस्वसमेत अक्षत शरीरको देशसे निकाल देवे ॥ ३८० ॥

न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि ॥ तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत् ॥८१॥ वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत् ॥ यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः ॥ ८२ ॥

भाषा-ब्राह्मणके वधसे और वडा अधर्म पृथिवीमें नहीं है तिससे राजा सब पाप करनेवाले ब्राह्मणके वधको मनसेभी न विचारे ॥ ८१ ॥ जो रक्षिता क्षत्रियामें वैश्य गमन करे और क्षत्रिय जो रक्षिता वैश्यामें गमन करे तो उन दोनोंको अरक्षिता ब्राह्मणीमें गमन करनेसे जो दंड कहे हैं जैसे वैश्यपर पांच सौ करे और क्षत्रियपर हजार ये दोनोंही दंड वैश्य तथा क्षत्रियको होते हैं यह तो वैश्यका रक्षित क्षत्रियाके गमनमें पांचसौ दंड लघु होनेसे गुणवान् वैश्य और निर्गुण जातिमात्रसे जीविका करनेवाली क्षत्रियाका शूद्राके भ्रम आदिसे गमनविषयक जानना चाहिये और क्षत्रियको रक्षिता वैश्यामें ज्ञानसे हजार दंड योग्यही है ॥ ८२ ॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् ॥ शूद्रायां क्षत्रियविशोः सहस्रो वै भवेद्दमः ॥ ८३ ॥ क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः ॥ मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥ ८४ ॥

भाषा-रक्षिता क्षत्रिया वैश्यामें गमन करता हुआ ब्राह्मण सहस्र दंड देने योग्य है और रक्षिता शूद्रामें गमन करनेसे क्षत्रिय वैश्य सहस्रही दंडके योग्य होते हैं ॥ ८३ ॥ अरक्षिता क्षत्रियाके गमनमें वैश्यपर पांच सौ दंड होता है और क्षत्रियको अरक्षिता क्षत्रियाके गमन करनेमें गधेके मूत्रसे मुंडन और पांच सौ रुपये दंड होना चाहिये ॥ ८४ ॥

अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ॥ शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ॥ ८५ ॥ यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ॥ न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ॥ ८६ ॥

भाषा–अरक्षिता क्षत्रिया वैश्या अथवा शूद्रामें गमन करता हुआ ब्राह्मण पांच सौ दंडके योग्य होता है और अंत्यज कहिये चांडाल उसकी स्त्रीसे गमन करता हुआ हजार दंडके योग्य होता है ॥ ८५ ॥ जिस राजाके राज्यभरमें चोर तथा पराई स्त्रीसे गमन करनेवाला और कडुई बात कहनेवाला और घरोंका जलाना आदि साहस करनेवाला तथा दंडपारुष्य करनेवाला नहीं है वह राजा स्वर्गपुरको जाता है ॥ ८६ ॥

एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके ॥ साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः ॥ ८७ ॥ ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं चर्त्विक्त्यजेद्यदि ॥ शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतं शतम् ॥ ८८ ॥

भाषा–अपने देशमें इन स्तेन आदि पांचका दंड देनेवाला और समान जातिके राजाओंमें राजाका साम्राज्य करनेवाला इस लोकमें यश करनेवाला होता है ॥ ८७ ॥ जो यजमान कर्म करनेमें समर्थ और अतिपातक आदि दोषोंसे रहित यजन करानेवालेको अथवा ऋत्विक् जो दुष्ट नहीं ऐसे यजमानको छोडे तो उन दोनोंपर सौ सौ दंड करना चाहिये यह दंडके प्रसंगसे कहा ॥ ८८ ॥

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ॥ त्यजन्नपतितानेतान् राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥ ८९ ॥ आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः ॥ न विब्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन्हितमात्मनः ॥ ३९० ॥

भाषा–माता, पिता, स्त्री और पुत्र ये सेवा तथा पोषण आदि न करनेसे त्यागने योग्य नहीं हैं तिससे पातक आदि दोषोंसे विना इन्होंको त्यागता हुआ एक एकके त्यागमें राजा करि छः सौ पण दंड करने योग्य होता है ॥ ८९ ॥ द्विजातियोंके गृहस्थ आश्रमोंके कार्यमें यह शास्त्रार्थ है यह शास्त्रार्थ नहीं है ऐसे आपसके विवादोंका अपना हित करनेकी इच्छा करनेवाला राजा यह शास्त्रार्थ है ऐसे सहसा विशेष कर न कहे ॥ ३९० ॥

यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥ सांत्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ९१ ॥ प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशतिद्विजे ॥ अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् ॥ ९२ ॥

भाषा–जो जैसी पूजाके योग्य है उसका वैसेही पूजन करि और ब्राह्मणोंके

साथ पहले प्रीतिसे कोपरहित करके तिस पीछे इनका जो निज धर्म है उसको चितावे ॥ ९१ ॥ सदा घरमें रहनेवाला प्रातिवेश्य कहाता है और अंतरसे वसनेवाला आनुवेश्य जिस उत्सवमें वीस अन्य ब्राह्मण भोजन कराये जांय उसमें भोजनके योग्य प्रातिवेश्य आनुवेश्य ब्राह्मणोंको न भोजन कराता हुआ ब्राह्मण एक रूपेका मासा दण्ड करने योग्य है ॥ ९२ ॥

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिकृत्येष्वभोजयन् ॥ तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हिरण्यं चैव माषकम् ॥९३॥ अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः ॥ श्रोतियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम् ॥९४॥

भाषा-विद्या और आचारयुक्त तथा नाना प्रकारके गुणोंकारि युक्तको विवाह आदि विभवके कार्योंमें प्रातिवेश्य आनुवेश्योंको नहीं भोजन कराते हुएको उस अन्नके न भोजन करनेवालेके लिये दूना दंड दिवाना चाहिये और एक सुवर्णका मासा राजाको दंड देवे ॥ ९३ ॥ अंधा, बहिरा, पंगा, सत्तर वर्षकी अवस्थाका और श्रोत्रिय और धनधान्यसे उपकार करनेवाला ये किसी करके और जिसका कोश क्षीण हो गया है ऐसे राजा करके अपना लेने योग्यभी कर लेनेयोग्य नहीं है ९४

श्रोत्रियं व्याधितार्तौ च बालवृद्धावकिंचनम् ॥ महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत्सदा ॥९५॥ शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकः शनैः ॥ न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत् ॥९६॥

भाषा-विद्या तथा आचारयुक्त ब्राह्मणको रोगीको पुत्रवियोग आदिसे दुःखीको बालकको वृद्धको दरिद्रीको वडे कुलमें उत्पन्नको और उत्तम चरित्रवालेंको राजा दान मान और हितके करनेसे सदा पूजन करे ॥ ९५ ॥ सेमल आदि वृक्षके चिकने पट्टेपर धोवी हौले हौले कपडे धोवे और पराये वस्त्रोंमें औरके वस्त्र न मिलावे तथा औरके वस्त्र औरके पहिरनेको न देवे जो ऐसा करे तौ यह दंडयोग्य होय ॥९६॥

तंतुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम् ॥ अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम् ॥ ९७ ॥ शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः ॥ कुर्युरर्घं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत् ॥ ९८ ॥

भाषा-कोली कपडा बुननेके लिये दस पल सूत लेकर माडी आदि लगनेके कारण ग्यारह पल कपडा देवे और जो इससे कम दे तो राजाको बारह पण दंड दे और स्वामीको राजी करे ॥ ९७ ॥ स्थल तथा जलके मार्गसे व्यवहार करनेवालोंसे राजाके लेने योग्य मार्गको शुल्क कहते हैं उनके नियत करनेमें चतुर और

सब बेंचने योग्य वस्तुओंके सार असारके जाननेवाले वे बेंचनेकी वस्तुओंमें जितना धन जिसका मोल अनुरूपण करे उन नफेके धनसे वीसवां भाग राजा लेवे ॥९८॥

राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च ॥ तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः ॥९९॥ शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी ॥ मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम् ॥ ४०० ॥

भाषा–राजाके संबंधसे जो बेंचनेकी वस्तु प्रसिद्ध हैं जैसे राजाके कामके उसी देशमें उत्पन्न हुए हाथी घोडा आदि तथा जो मने की हुई वस्तु हैं जैसे दुर्भिक्षमें अन्न दूसरे देशमें न ले जाना उनको लोभसे दूसरे देशमें ले जानेवाले वनियेका राजा सर्वस्व ले लेवे ॥ ९९ ॥ शुल्क (महसूल) वचानेके लिये जो मार्ग छोडकर चलता है अथवा अकाल कहिये रात्रि आदिमें लेता वेंचता है और शुल्क घटानेके लिये बेंचनेकी वस्तुकी गिनाती कम वताता है वह राजाके देने योग्य छुपाये हुएका आठगुण दंड देवे ॥ ४०० ॥

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ ॥ विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ ॥ १ ॥ पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते ॥ कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः ॥ २ ॥

भाषा–कितनी दूरसे आया है और दूसरे देशकी वस्तुका आगम कितनी दूरि पहुँचाया जाता है और अपने देशमें उत्पन्न हुई वस्तुका निकलना किस समयतक रहा कितना मोल मिलता है और इसमें नफा कितना है और कर्म करनेवाले नोकर आदिकोंके भोजन वस्त्र आदिमें कितना खरच हुआ इस भांति विचार करके जैसे मोल लेनेवाले और बेंचनेवालेको पीडा न होय ऐसे सब वस्तुओंका क्रय विक्रय करावे ॥ १ ॥ विकनेकी वस्तुओंका आना जाना नियत नहीं है इससे अस्थिर मोलकी वस्तुओंकी पांच रात्रि बीतनेपर और स्थिर मोलकी वस्तुओंकी पक्ष बीतनेपर अर्घोंति जाननेवाले बनियोंके सामने राजा आप्त पुरुषोंके साथ व्यवस्था करे ॥ २ ॥

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ॥ षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥ ३ ॥ पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं तरे ॥ पादं पशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥ ४ ॥

भाषा–तुलामान कहिये सुवर्ण आदिके परिमाणके लिये जो किया जाता है और प्रतिमान प्रस्थ द्रोण आदि अपना निरूपित जैसे होय छः छः महीने बीतनेपर सभ्य पुरुषोंके साथ फिर उसकी परीक्षा करे ॥ ३ ॥ 'भांडपूर्णानि यानानि' यह आगे कहेंगे तिससे खाली छकडा आदि यानपर एक पण लेना चाहिये और पुरुषके ले

चलने योग्य भारपर आधा पण और गौ आदि पशुपर चौथाई पण और भाररहित मनुष्यपर पणका आठवां भाग उतराई लेनी चाहिये ॥ ४ ॥

भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः ॥ रिक्तभाण्डानि यत्किञ्चित्पुमांसश्चापरिच्छदाः ॥ ५ ॥ दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत् ॥ नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥ ६ ॥

भाषा-बेंचने योग्य द्रव्यसे भरे हुए छकडे आदिपर द्रव्यके उत्कर्षकी अपेक्षासे उतराई देनी चाहिये और खाली गोनी कंडोल आदिपर कुछ थोडी उतराई देनी चाहिये और दरिद्रियोंसे आधेसेभी कम दिवानी चाहिये ॥ ५ ॥ पहले नदीके वार-पर उतरनेके लिये कहा है अब नदीके मार्गसे जाने योग्य दूरके मार्गसे प्रबल वेग तथा स्थिर जलयुक्त नदी आदि देश और ग्रीष्म वर्षा आदि कालकी अपेक्षासे उतराईका मोल कल्पना करने योग्य यह नदीके किनारोंमें जानना चाहिये समुद्रमें तो जहाजका चलना पवनके आधीन होनेसे अपनी आधीनता न होनेपर अधिक उतराईके द्रव्यका सूचित करनेवाला है इसमें नदीकी भांति योजन आदि नहीं है इससे वहां उचितही उतराई लेनी चाहिये ॥ ६ ॥

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः ॥ ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं तरे ॥ ७ ॥ यन्नावि किञ्चिद्दाशानां विशीर्येतापराधतः ॥ तद्दाशैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोऽंशतः ॥ ८ ॥

भाषा-दो महीनोंके उपरांतकी गर्भिणी स्त्री तथा संन्यासी मुनि वानप्रस्थ ब्राह्मण और ब्रह्मचारी ये पार उतरनेमें उतराईका मूल्य न देवे ॥ ७ ॥ नावमें चढनेवालोंकी नौका केवटोंके दोषसे हानि हो जाय तो गया हुआ धन नाववालेही मिलकर हिस्सेसे देवे ॥ ८ ॥

एष नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ॥ दाशापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः ॥ ९ ॥ वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च ॥ पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥ ४१० ॥

भाषा-मल्लाहोंके दोषसे जो पानीमें नष्ट हो जाय उसको मल्लाह देवे यह पहले मनुका कहा हुआ दंड दैवी उपद्रवमें नहीं है यह विधान करनेके लिये नौकाओंसे जानेवालोंका यह व्यवहार कहा दैवसे उत्पन्न हुई आंधी आदिसे नावके टूटने करि धन आदिका नाश होनेपर मल्लाहोंको दंड नहीं है ॥ ९ ॥ वैश्यसे वाणिज्य व्याजकी जीविका खेती पशुओंका पालन ये कर्म करावे और शूद्रोंसे राजा द्विजातियोंका दास्य कहिये सेवा करावे ॥ ४१० ॥

क्षत्रियं चैव वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितौ ॥ बिभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन् ॥ ११ ॥ दास्यं तु कारयँल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृतान्द्विजान् ॥ अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् १२

भाषा–ब्राह्मण पीडित क्षत्रिय वैश्योंसे करुणा करके अपनी रक्षा तथा खेती आदि कामोंको करवावे और भोजन वस्त्र आदिसे उनका पोषण करे और जो धनाढ्य ब्राह्मण आये हुए उन दोनोंको न रक्खे तौ राजा करि दंड करने योग्य है यह प्रकरणकी सामर्थ्यसे जाना जाता है ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मण यज्ञोपवीत किये हुए द्विजातियोंसे उनकी इच्छाके विना प्रभुता करि लोभसे पांय धोना आदि दासोंका काम कराता है उसपर छः सौ पण दंड करना चाहिये ॥ १२ ॥

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ॥ दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ॥ १३ ॥ न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते ॥ निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥ १४ ॥

भाषा–भोजन आदिसे पाले हुए अथवा न पाले हुए शूद्रसे दासका काम करावे जिससे यह ब्राह्मणके दासभावहीके लिये प्रजापति करि बनाया गया है ॥ १३ ॥ स्वामी करि त्याग किया गयाभी शूद्र दासभावसे नहीं छूटता है जिससे दास्य शूद्रका सहज कहिये साथ उत्पन्न है कौन इस शूद्रत्व जातिके दास्यको दूरि कर सकता है अर्थात् कोई नहीं जो ऐसा न होय तौ जो आगे कही जायगी ऐसी दास्य करनेकी गणनाही व्यर्थ हो जाय ॥ १४ ॥

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्त्रिमौ ॥ पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः ॥ १५ ॥ भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः ॥ यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥ १६ ॥

भाषा–संग्राममें स्वामीसे जीता भोजनके लोभसे आया हुआ भक्त दास तथा अपनी दासीसे उत्पन्न और मोलसे लिया हुआ और दूसरे करि दिया हुआ तथा पिता आदिके क्रमसे जो चला आता है और दण्ड आदिके धनकी शुद्धिके लिये जिसने दासपन अंगीकार किया है ये सात संग्राममें स्वामीसे जीते आदि दासपनके करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ भार्या, पुत्र तथा दास ये तीनि मनु आदिकोंकरि अधन कहे गये हैं कारण यह है कि जिस धनको वे जोडते हैं वह धन जिसके वे भार्या आदि हैं उसका होताहै यह तौ भार्या आदिकी पराधीनता दिखानेके लियेहै क्योंकि आगे अध्यग्नि आदि छः प्रकार स्त्रीधन कहा जायगा ॥ १६ ॥

**विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद् द्रव्योपादानमाचरेत् ॥ नहि तस्यास्ति किं-
चित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः ॥ १७ ॥ वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्मा-
णि कारयेत् ॥ तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् १८ ॥**

भाषा-निःसंदेह ब्राह्मण शूद्रसे धन ग्रहण करे जिससे उसका कुछभी स्वत्व (हक्क) नहीं है कारण यह है कि इसका धन स्वामीके लेने योग्य है ऐसे आपत्तिमें ब्राह्मण बलसेभी इसका धन लेता हुआ राजा करि दण्ड देने योग्य नहीं है इसलिये यह कहा जाता है ॥ १७ ॥ वैश्यको खेती आदि और शूद्रको द्विजातिकी सेवा आदि कर्म राजा यत्नसे करावे कारण यह है कि वे अपनी जातिके कर्मसे च्युत हो अशास्त्रीय जोडे हुए धनके मद आदिसे जगत्को व्याकुल न कर देवे ॥ १८ ॥

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ॥ आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोशमेव च ॥ १९ ॥ एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान्समापयन् ॥ व्यपोह्य किल्बिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ४२० ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

भाषा-राजा प्रारंभ किये हुए कार्योंकी सिद्धिको प्रतिदिन उनके अधिकारियोंके द्वारा देखे ऐसेही हाथी घोडेको कि आज क्या आया और क्या गया और सोना चान्दीके उत्पत्तिस्थानोंको और कोशागार (खजाने) को देखे व्यवहारके देखनेमें असमर्थभी राजा अपने धर्मोंको न छोडे यह दिखानेके लिये कहे कि फिर कथन है ॥ १९ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे इन सब ऋणदान आदि व्यवहारोंको तत्वसे निर्णय करि पूरा करता हुआ राजा सब पापोंको छोडकर स्वर्ग आदिकी प्राप्तिरूप उत्कृष्ट गतिको प्राप्त होता है ॥ ४२० ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिकृतायां
कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतावष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः ॥ संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ १ ॥ अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् ॥ विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे ॥ २ ॥

भाषा-नत्वा पित्रोः पदद्वंद्वं ध्यात्वा शंकरमव्ययम् ॥ नवमाध्यायविवृतिः केशवेन

मयोच्यते ॥ १ ॥ धर्मके लिये हित और आपसमें कभी चलनेवाला नहीं ऐसे मार्गमें स्थित और संयुक्त अथवा वियुक्त और परंपरासे चले आनेके कारणसे नित्य ऐसे पुरुष तथा पत्नीके धर्मोंको कहूंगा स्त्रीपुरुषके आपसके धर्ममें व्यतिक्रम होनेपर दोनोंमेंसे एक करि सूचित किये गये राजाको दण्डसेभी अपने धर्मकी व्यवस्था स्थापन करनी चाहिये इससे व्यवहारमें इसका कथन है ॥ १॥ अपने भर्त्ता आदिकों करि स्त्रियां सदा वशमें रखने योग्य हैं निषिद्ध नहीं ऐसे रूप रस आदि विषयोंमें प्रसंग करती हुई अपने वश करने योग्य हैं ॥ २ ॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ॥ रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ ३ ॥ कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः ॥ मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ॥ ४ ॥

भाषा–विवाहसे पहले स्त्रीकी पिता रक्षा करता है पीछे तरुण अवस्थामें भर्ता रक्षा करता है उसके अभावमें पुत्र, तिससे स्त्री किसी अवस्थामें स्वतंत्र न होय और जिसके पति पुत्र नहीं है उसकी पिता आदिभी रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥ प्रदानके कालमें नहीं देता हुआ पिता निंदा योग्य होता है ऋतुके पहले प्रदानकाल गौतमने कहा है और पति ऋतुकालमें पत्नीसे नहीं गमन कर्ता हुआ निंदा योग्य होता है और पतिके मरनेपर माताकी न रक्षा करनेवाला पुत्र निंदायोग्य होता है ॥ ४ ॥

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ॥ द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ५ ॥ इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् ॥ यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ६ ॥

भाषा–दुःशीलताके करनेवाले थोडेभी कुसंगसे स्त्री विशेष करि रक्षा करने योग्य हैं और बहुतका तो क्या कहना है, और उनकी उपेक्षा करनेसे पिता भर्त्ताके दोनों कुलोंको सन्ताप कराती हैं ॥ ५ ॥ सब ब्राह्मण आदि वर्णोंके भार्यारक्षण धर्मको आगेके श्लोकमें कही हुई रीतिसे सब धर्मोंसे उत्तम जानते हुए अंधे पंगे आदिभी भार्याकी रक्षा करनेका यत्न करें ॥ ६ ॥

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ॥ स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥ ७ ॥ पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ॥ जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ ८ ॥

भाषा–जिससे यत्नपूर्वक भार्याकी रक्षा करनेमें असंकीर्ण विशेष करि शुद्ध संततिके उत्पन्न करनेसे अपनी संततिको तथा शिष्ट समाचारको और पिता पिता-

मह आदिके वंशको और आपको विशुद्ध संतति है कारण जिसका ऐसे और्ध्वदेहिक कर्मोंके लाभसे अपने धर्मकीभी रक्षा करता है तिससे स्त्रियोंकी रक्षा करनेका यत्न करे ॥ ७ ॥ पति शुक्ररूपसे भार्यामें प्रवेश करके गर्भभावको प्राप्त हो उस भार्यामें पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है. तथा च श्रुतिः "आत्मा वै पुत्रनामासि" इति. जायाका यही जायात्व है जिससे इसमें पति फिर उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् ॥ तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् ॥ एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥ १० ॥

भाषा–शास्त्रसे विहित होय अथवा निषिद्ध होय जैसे पतिका स्त्री सेवन करती है वैसा शास्त्रोक्त पुरुषका सेवन करनेसे उत्कृष्ट और निकृष्ट पुरुषके सेवनसे निकृष्ट पुत्रको उत्पन्न करती है तिससे संततिकी शुद्धिके लिये पत्नीकी यत्नसे रक्षा करे ॥ ९ ॥ कोई बलसे रोकने आदिसेभी स्त्रीकी रक्षा करनेको नहीं समर्थ हैं वहांभी व्यभिचार होता है किंतु इन कहे हुए रक्षा करनेके उपायोंके योगसे वे रक्षा करनेको समर्थ हैं ॥ १० ॥

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ॥ शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे ॥ ११ ॥ अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः ॥ १२ ॥

भाषा–धनके संग्रहण करने तथा खरच करनेमें द्रव्य तथा शरीरके शुद्ध करनेमें और पतिकी सेवामें और अन्नके सिद्ध करने अर्थात् रसोईके बनानेमें और घरकी सामग्री शय्या आसन कुंड कडाह आदिके देखनेमें इसको लगावे ॥ ११ ॥ आप्त तथा आज्ञाकारी पुरुषोंकारि घरमें रोकी हुईभी रक्षित नहीं होती है जो दुःशीलतासे अपनी रक्षा नहीं करती है और जो धर्मज्ञतासे आप अपनी रक्षा करती है, वेही सुरक्षित होती है इसीसे धर्म अधर्मका फल स्वर्ग नरककी प्राप्तिके उपदेशसे उनका संयम करना योग्य है ॥ १२ ॥

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ॥ स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट् ॥ १३ ॥ नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः ॥ सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ १४ ॥

भाषा–मद्य पीना असत्पुरुषोंका संसर्ग पतिसे वियोग भ्रमण करना कुसमयमें सोना पराये घरमें रहना ये छः स्त्रीके व्यभिचार दोषके उत्पन्न करनेवाले हैं तिससे

ये इनसे रक्षा करने योग्य हैं ॥ १३ ॥ ये सुंदर रूपका विचार नहीं करती हैं और न इनका यौवन आदि अवस्थामें आदर होता है किंतु सुरूप होय अथवा कुरूप होय पुरुष है यही मानके उसको भोगती हैं ॥ १४ ॥

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैःस्नेह्याच्च स्वभावतः ॥ रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥ १५ ॥ एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिनिसर्गजम् ॥ परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १६ ॥

भाषा-पुरुषके दर्शनसे संभोग आदिकी इच्छा होनेके कारण और चित्तकी स्थिरता न होनेसे और स्वभावसे स्नेहरहित होनेके कारण यत्नसेभी रक्षा की गई ये व्यभिचारके आश्रयसे भर्त्ताओंमें विकारयुक्त हो जाती हैं ॥ १५ ॥ ऐसे दो श्लोकोंमें कहे हुए इनके स्वभावको हिरण्यगर्भकी सृष्टिके समय उत्पन्न जानि पुरुष इनकी रक्षाके लिये उत्कृष्ट यत्न करे ॥ १६ ॥

शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम् ॥ द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् ॥ १७ ॥ नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ॥ १८ ॥

भाषा-शय्या आसन अलंकार करनेका स्वभाव काम, क्रोध, कुटिलता, पराई हिंसा, कुत्सित आचार ये सब मनुने सृष्टिकी आदिमें स्त्रियोंके लिये बनाये तिससे यत्नसे ये रक्षा करने योग्य हैं ॥ १७ ॥ स्त्रियोंकी जातकर्म आदि क्रिया मंत्रोंसे न होती है यह शास्त्रकी मर्यादा है तिससे मंत्रसहित संस्कार न होने कारण इनके अंतःकरण पापरहित नहीं होते हैं और इंद्रियां प्रमाण हैं और धर्ममें प्रमाण ऐसी श्रुति स्मृतिरहित होनेसे धर्मज्ञ नहीं होती हैं और अमंत्र कहिये पापके दूर करनेवाले मंत्रोंकरि रहित होनेके कारण पाप होनेपरभी उसके दूरि करनेको नहीं समर्थ होती हैं झूंठके समान स्त्रियां अशुभ हैं यह शास्त्रकी मर्यादा है तिससे यत्नसे रक्षा करने योग्य हैं यह तात्पर्य है ॥ १८ ॥

तथा च श्रुतयो बह्व्यो निगीता निगमेष्वपि ॥ स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः ॥ १९ ॥ यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता ॥ तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम् ॥ २० ॥

भाषा-व्यभिचारशील होना यह स्त्रियोंका स्वभाव है यह कहा उसमें श्रुतिके प्रमाण लिखते हैं. बहुतसे श्रुतियोंके वाक्य जैसे "न चैतद्विद्मो ब्राह्मणा सोऽब्राह्मणा वा" इत्यादिक निगमोंमें स्त्रियोंकी स्वालक्षण्य कहिये व्यभिचार शीलताके जाननेके लिये पढी हैं उनमेंसे जो निष्कृतिरूप अर्थात् व्यभिचारके प्रायश्चित्तभूत हैं उन श्रुति-

योंको सुनिये ॥ १९ ॥ कोई पुत्र अपनी माताके मानसिक व्यभिचारको जानके कहता है कि मन, वाणी, काय और कर्मसे पतिके भिन्न पुरुषकी इच्छा नहीं करती है वह पतिव्रता है उससे अन्य अपतिव्रता होती है मेरी माता अपतिव्रता हो पराये घरोंमें जाती हुई जो परपुरुषपर लोभयुक्त हुई उस परपुरुषके संकल्पसे दुष्ट माताको रजोरूप वीर्यको मेरा पिता शोधन करो इस प्रकृत स्त्रीकी व्यभिचारशीलताके मध्ये इतिकरण है अंत जिनका ऐसे मंत्रके तीनि पाद सूचक हैं यह मंत्र चातुर्मास्य आदिमें काम देता है ॥ २० ॥

ध्यायत्यनिष्टं यत्किंचित्पाणिग्राहस्य चेतसा ॥ तस्यैष व्यभिचा-
रस्य निह्नवः सम्यगुच्यते ॥ २१ ॥ यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्ये-
त यथाविधि ॥ तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥ २२ ॥

भाषा-यह मंत्र मानसी व्यभिचारका प्रायश्चित्तरूप है सो दिखाते हैं. जो स्त्री पति जिसको नहीं चाहता ऐसे दूसरे पुरुषके साथ गमन करनेको मनसेभी नहीं चाहती है उसके चित्तके चलायमान होनेका यह प्रायश्चित्तका मुख्य मंत्र है भली भांतिसे शोधनेवाले मनु आदिने कहा है माताशब्दका श्रवण है तिससे यह पुत्रहीका मुख्य प्रायश्चित्त रूप मंत्र है माताका नहीं ॥ २१ ॥ स्त्री विवाह आदिकी विधिसे जैसे भले बुरे पतिसे संयुक्त होती है उसके गुण उस भर्त्ताके समान हो जाते हैं जैसे समुद्रमें मिलकर मीठे जलकी नदी खारी जलकी हो जाती है ॥ २२ ॥

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ॥ शारङ्गी मन्दपालेन ज-
गामाभ्यर्हणीयताम् ॥ २३ ॥ एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्र-
सूतयः ॥ उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥ २४ ॥

भाषा-इस उत्कर्षमें दृष्टांत देते हैं. जैसे निकृष्टयोनि अक्षमाला नाम वसिष्ठके साथ व्याही गई और चटकानाम मंदपाल नाम ऋषिको व्याही गई ये दोनों पूज्यताको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ ये तथा औरभी निकृष्टसे उत्पन्न सत्यवती आदि स्त्रियां अपने २ पतिके गुणोंसे उत्कृष्टताको प्राप्त हुईं ॥ २४ ॥

एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ॥ प्रेत्येह च सुखोद-
र्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत ॥ २५ ॥ प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृह-
दीप्तयः ॥ स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ २६ ॥

भाषा-यह सदा शुभ स्त्रीपुरुषोंके विषयक लोकाचार कहा अब इस लोक तथा परलोकमें आगेको सुखके कारण ऐसे क्या क्षेत्रीका संतान है अथवा बीजीका इत्यादि प्रजाके धर्मोंको सुनिये ॥ २५ ॥ यद्यपि इनकी रक्षाके लिये दोष कहे हैं

तिसपरभी उपाय हो सकनेके कारण दोषका अभाव है ये स्त्रियां बडे उपकाररूप गर्भके उत्पन्न करनेके लिये बहुतसे कल्याणके पात्र हैं तिससे वस्त्र अलंकार आदिके देनेसे बडे मानके योग्य और अपने घरकी शोभा करनेवाली हैं स्त्री और श्री घरोंमें तुल्यरूप हैं इनमें कुछ विशेष नहीं है जैसे श्रीके विना घर शोभित नहीं होता है ऐसेही स्त्रीके विनाभी शोभा नहीं पाता है ॥ २६ ॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ॥ प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥ २७ ॥ अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ॥ दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥ २८ ॥

भाषा-संतानका उत्पन्न करना और उत्पन्न हुएका पालना और प्रतिदिन अतिथि मित्र आदिका भोजन आदि लोकमें व्यवहारकी प्रत्यक्ष भार्याही कारण है ॥ २७ ॥ संततिका उत्पन्न करना कहभी चुके परन्तु पूजाकी योग्यता सूचित करनेके लिये फिर कहा है अग्निहोत्र आदि धर्मके कार्य सेवा और उत्कृष्ट प्रीति तथा संतानके उत्पन्न करने आदिसे पितरोंका और अपना स्वर्गका निवास ये सब कार्य स्त्रीके आधीन हैं ॥ २८ ॥

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥२९॥ व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्॥ सृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥३०॥

भाषा-जो स्त्री मन, वाणी तथा देहके संयम हो मन वाणी तथा देहसे व्यभिचारको नहीं प्राप्त होती है वह पतिके साथ अर्ज्जन किये हुए स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होती है और इस लोकमें सज्जनोंकारि साध्वी कही जाती है ॥ २९ ॥ दूसरे पुरुषके योगसे लोकमें निंदाको और दूसरे जन्ममें स्यारीकी योनिको पाती है और क्षयरोग आदिसे पीडित होती है स्त्रीधर्म कहभी चुके परन्तु ये दो श्लोक उत्तम संतानके निमित्त हैं इस कारण बहुत प्रयोजनको जान फिर पढे ॥ ३० ॥

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः ॥ विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत ॥ ३१ ॥ भर्तुः पुत्रं विजानंति श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि ॥ आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥ ३२ ॥

भाषा-पुत्रके मध्ये शिष्ट मनु आदिकोंने और पहले उत्पन्न हुए महर्षियोंने यह कहा है अब सर्व जनोंका हितकारी आगे कहेंगे उसको सुनिये ॥३१॥ भर्त्ताका पुत्र होता है यह मुनि मानते हैं भर्त्तामें दो प्रकारकी श्रुति है कोई विना व्याहेभी उत्पन्न करनेवाले भर्त्ताको उस पुत्रसे पुत्रवाला कहते हैं और अन्य तो नहींभी

उत्पन्न करनेवाले व्याहनेवाले भर्त्ताको दूसरे करि उत्पन्न किये हुए पुत्र करि पुत्री कहते हैं ॥ ३२ ॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ॥ क्षेत्रबीजसमायो-
गात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥३३॥ विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव
कुत्रचित् ॥ उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ॥ ३४ ॥

भाषा-धान आदिके उत्पत्तिके स्थानको क्षेत्र कहते हैं उसके तुल्य स्त्री मुनियोंकरि कही गई है और पुरुष धान आदिके बीजके तुल्य कहा गया है यद्यपि रेत बीज है परन्तु उसका आधार होनेसे पुरुष बीज कहा जाता है क्षेत्र और बीजके योगसे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है इस भांति दोनोंको विशिष्ट कारण होनेसे यह कहना योग्य है ॥ ३३ ॥ क्या? जिसका क्षेत्र है उसका अपत्य है अथवा जिसका बीज है उसका? इसपर कहते हैं. कहीं बीज प्रधान है जे अनियुक्तमें उत्पन्न हुए हैं इस न्यायसे बीजि चंद्रमाके बुध उत्पन्न हुआ तैसेही व्यास ऋष्यशृंग आदि बीजवालोंहीके पुत्र हुए कहीं क्षेत्रकी मुख्यता है जैसे "यस्तल्पजः प्रमीतस्य" यह कहा है इसीसे विचित्रवीर्यके क्षेत्र क्षत्रियामें ब्राह्मण करि उत्पन्न किये गयेभी धृतराष्ट्र आदिक क्षत्रिय क्षेत्रवालेहीके पुत्र हुए और जहां बीज और योनि दोनोंकी समता है वहां व्याहनेवालाही उत्पन्न करनेवाला है उसकी अच्छी संतति होती है ॥ ३४ ॥

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ॥ सर्वभूतप्रसूतिर्हि
बीजलक्षणलक्षिता ॥३५॥ यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादि-
ते ॥ तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यंजितं गुणैः ॥ ३६ ॥

भाषा-वहां बीजकी प्राधान्यकी अपेक्षासे कहते हैं. बीज और क्षेत्रमें बीज प्रधान कहा जाता है तिससे संपूर्ण पंचभूतोंसे बने हुओंकी उत्पत्ति बीजमें स्थित वर्णरूपके चिह्नोंहीसे उपलक्षित दिखाई देती है ॥ ३५ ॥ जिस जातिका धान आदि बीज ग्रीष्म आदि कालमें जोतने आदि करि संस्कार किये हुए खेतमें बोया जाता है उसकी जातिहीका वह बीज अपने वर्ण आदिकोंकरि उपलक्षित उस खेतमें उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते ॥ न च योनिगुणा-
न्कांश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥३७॥ भूमावप्येककेदारे कालोप्तानि
कृषीवलैः ॥ नानारूपाणि जायंते बीजानीह स्वभावतः ॥ ३८ ॥

भाषा–इस भांति अन्वयके प्रकार बीजकी प्राधान्यता दिखाके अब व्यतिरेक मुखसे दिखानेको कहते हैं. निश्चय यही भूमि भूतोंसे बने हुए वृक्ष गुल्म लता आदिकी नित्य योनि कहिये क्षेत्ररूप कारण सब लोगोंकरि कही जाती है और भूमिनाम योनिके किन्ही मट्टीरूप आदि स्वरूप धर्मोंको बीज अपने विकार अंकुर शाखा आदिकी अवस्थाओंमें नहीं भजता है तिससे योनिके गुणोंके न वर्त्तमान होनेसे क्षेत्रकी प्रधानता नहीं ॥ ३७ ॥ भूमिमें एकही क्यारिमें किसानोंकरि समयमें बोये गये धान मूंग आदि बीजके स्यावसे नानारूप उत्पन्न होते हैं और भूमिके एक होनेसे एकरूप नहीं होते हैं ॥ ३८ ॥

व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः ॥ यथाबीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥ ३९ ॥ अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते ॥ उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥ ४० ॥

भाषा–व्रीहि कहिये साठी धान और शालि कहिये कलम धान आदि और मूंग तिल उडद तथा जव बीजके स्वभावको नहीं छोडकर नाना रूप उत्पन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ धान बोयेसे मूंग आदि उत्पन्न होय यह संभव नहीं होता है. जिससे जो जो बीज बोया जाता है सोई उगता है ऐसे बीजके गुणोंके अनुवर्त्तन कहिये साथ रहनेसे और क्षेत्रके धर्म न रहनेसे धान आदिमें और मनुष्योंमेंभी बीजकी मुख्यता है ॥ ४० ॥

तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ॥ आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ॥ ४१ ॥ अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ॥ यथा बीजं न वप्तव्यं पुंसा परपरिग्रहे ॥ ४२ ॥

भाषा–अब क्षेत्रकी प्राधान्यता कहते हैं. वह बीज स्वाभाविक बुद्धिवाले और पिता आदि करि सिखाये और वेद तथा उसके अंगोंके माननेवाले आयुकी इच्छा करनेवालेको पराई स्त्रीमें कभी न बोना चाहिये ॥ ४१ ॥ बीते हुए कालके जाननेवाले इस अर्थमें वायुकी कही हुई गाथा अर्थात् छंद विशेषकरि युक्त वाक्योंको कहते हैं जैसे परपुरुष करि परस्त्रीमें बीज न बोना चाहिये ॥ ४२ ॥

नश्यतीषुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्ध्यतः ॥ तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परपरिग्रहे ॥४३॥ पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः ॥ स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ॥ ४४ ॥

भाषा–जैसे और करि वेधे हुए करसायल मृगके उसी छेदमें वेधनेवाले दूसरेका फेंका हुआ बाण निष्फल होता है पहले मारनेवालेकरि मारे जानेके कारण

उसीको मृगका लाभ हो जाता है ऐसे परस्त्रीमें बोया गया वीज शीघ्रही निष्फल होता है क्योंकि गर्भग्रहणके पीछे क्षेत्रीको अपत्य मिलता है ॥४३॥ इस पृथिवीको पहले पृथुराजाके ग्रहण करनेसे अनेक राजाओंका संबंध होनेपरभी पृथुकी भार्या पहले भूतकालके जाननेवाले जानते हैं और स्थाणु जो ठूट आदि है उनको खोद-कर जो खेत करता है उसीका वह क्षेत्र कहते हैं ऐसेही मृग आदिमें जिसने पहले शर आदि चलाया है उसीका वह मृग कहते हैं ऐसे पहले परिग्रह करनेवालेकी स्वामिता होनेसे व्याहनेवालेहीकी संतान होती है उत्पन्न करनेवालेकी नहीं ॥ ४४ ॥

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह ॥ विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ॥४५॥ न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते ॥ एवं धर्मं विजानीमः प्राक् प्रजापतिनिर्मितम् ॥ ४६ ॥

भाषा-पुरुष एकही नहीं होता है किंतु भार्या अपना देह और अपत्य कहिये संतान इन सबोंसमेत पुरुष होता है यह वेदके जाननेवाले ब्राह्मण कहते हैं जो भर्त्ता है वही भार्या कही गई है उसमें उत्पन्न किया हुआ अपत्य भर्त्ताहीका होता है ॥ ४५ ॥ निष्क्रय बेंचना और विसर्ग दान दोनों बातोंसे स्त्री भर्त्ताके भार्यापनसे नहीं छूटती है ऐसे पहले प्रजापतिके कहे हुए नित्य धर्मको हम मानते हैं इस भांति मोल आदिसेभी पराई स्त्रीको अपने आधीन करके उसका उत्पन्न किया हुआ पुत्र आदि संतान क्षेत्रवालेहीका होता है बीजवालेका नहीं ॥ ४६ ॥

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ॥ सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥ ४७ ॥ यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च ॥ नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्याङ्गनास्वपि ॥४८॥

भाषा-पिता आदिके धनमें भाइयोंका धर्मसे किया हुआ विभाग एकही बार होता है फिर अन्यथा नहीं किया जाता है तैसेही पिता आदि करि कन्या एकही बार किसीको दी गई फिर दूसरेको नहीं दी जाती है ऐसेही और करि पहले और-को दी हुई होनेपर पीछे पिता आदि करि प्राप्त हुईभी उसमें उत्पन्न किया हुआ पुत्र बीजवालेका नहीं होता है इसलिये यह कहा है तैसेही कन्यासे भिन्नभी आदि द्रव्यमें एकही बार देता हूं यह कहता है न कि दूसरेको देता हूं यह तीन बातें सज्जनोंकी एकबार होती हैं ॥ ४७ ॥ जैसे पराई गौ, घोडी, ऊंटनी, दासी, भैंसी, बकरी, भेड इनमें अपले बैल आदिको छोड बछडे आदिका उत्पन्न करनेवाला उसको नहीं पाता है तैसेही पराई स्त्रियोंमें उत्पन्न करनेवाला संतानको नहीं पाता ॥ ४८ ॥

येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः॥ ते वै सस्यस्य जातस्य

न लभन्ते फलं क्वचित् ॥ ४९ ॥ यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् ॥ गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम् ॥५०॥

भाषा–जे क्षेत्रके स्वामी नहीं हैं ऐसे बीजके स्वामी पराये खेतमें बीज बोते हैं वे उसमें उत्पन्न हुए धान्य आदिके फलको किसी देशमें नहीं पाते हैं यह दृष्टांत है ॥ ४९ ॥ जो औरकी गौओंमें बैल सौभी बछडे उत्पन्न करे तो वे सब बछडे स्त्री जो गौ है उसके स्वामीके होते हैं न कि बैलके स्वामीके और बैलका जो वीर्य सींचना है वह बैलके स्वामीका निष्फलही होता है. जैसे " गोऽश्वोष्ट्र " इस श्लोकसे उत्पन्न करनेवाला अजाका पानेवाला नहीं होता है इसमें यह दृष्टांत कहा है ॥ ५० ॥

तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः ॥ कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभते फलम् ॥ ५१ ॥ फलं त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा ॥ प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी ॥ ५२ ॥

भाषा–जैसे गौ आदिके गर्भोंमें वैसेही स्त्रीकी संतानमें स्वामीपनसे रहित होते हुए भार्यामें जो बीज बोते हैं वे क्षेत्रके स्वामियोंहीका संतानरूप प्रयोजन करते हैं और बीजका सींचनेवाला संतानरूप फलको नहीं पाता है ॥ ५१ ॥ इसमें जो संतान उत्पन्न होगा वह हमारा तुम्हारा दोनोंका होगा इस भांति जहां नियम नहीं किया गयाहै वहां निःसंदेह कही हुई रीतिसे खेतवालेका संतान है बीजसे क्षेत्र बलवान् है ५२॥

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते ॥ तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च ॥ ५३ ॥ ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ॥ क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम् ॥ ५४ ॥

भाषा–जो इसमें संतान होगा वह हमारा तुम्हारा दोनोंका होगा ऐसे कहकर वह क्षेत्रस्वामी करि बीज बोनेके लिये जो बीचवालेको दिया जाता है उस संतानके लोकमें बीजवाला और खेतवाला दोनों स्वामी पानेवाले देखे गये हैं ॥५३॥ जलके वेग तथा पवनकरि दूसरेके खेतसे लाया गया बीज जिसके खेतमें उत्पन्न होता है वह बीज उस खेतके स्वामीहीका होता है जिसने बीज बोया है वह उसके फलको नहीं पाता है ऐसे अपनी भार्याके भ्रमसे पराई भार्याके गमनमें मेरा यह पुत्र होगा ऐसा जाननेपर क्षेत्रवालेहीका पुत्र है यह देखाया गया है ॥ ५४ ॥

एष धर्मो गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च ॥ विहंगमहिषीणां च विज्ञेयः प्रसवं प्रति ॥ ५५ ॥ एतद्वः सारफल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितम् ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि ॥ ५६ ॥

भाषा-गौ, घोडी, दासी, ऊंटनी, बकरी और भेड इनकी संततिमेंभी यही व्यवस्था जाननी चाहिये जो क्षेत्रका स्वामीही गौ आदिकी संततिका स्वामी है बैल आदिका स्वामी स्वामी नहीं और नियम करनेपर तो दोनों संततिके स्वामी होते हैं ॥ ५५ ॥ यह बीज तथा योनिकी प्रधानता और अप्रधानता तुमसे कही इस पीछे स्त्रियोंके संतान न होनेमें जो करना चाहिये सो कहूंगा ॥ ५६ ॥

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा ॥ यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥५७॥ ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् ॥ पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ ५८ ॥

भाषा-जेठे भाईकी स्त्री छोटे भाईकी गुरुपत्नी होती है और छोटे भाईकी स्त्री बडे भाईकी पुत्रवधू मुनियोंने कही है ॥ ५७ ॥ जेठा और छोटा दोनों भाई आपसमें वह उसकी और वह उसकी भार्यामें गमन करके संतानका अभाव न होनेपर नियुक्तभी पतित होते हैं ॥ ५८ ॥

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया ॥ प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये ॥ ५९ ॥ विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि ॥ एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥ ६० ॥

भाषा-संतानके न होनेमें पति आदि गुरुओंकरि आज्ञा दी गई स्त्री देवर अथवा अन्य सपिंडसे अच्छे प्रकारसे जो आगे कहा जायगा ऐसे घृताक्त आदि नियमवाले पुरुषके गमनसे वांछित प्रजा उत्पन्न करावे वांछित कहनेसे कार्यके अयोग्य पुत्र उत्पन्न होनेसे फिर गमन पाया जाता है ॥ ५९ ॥ विधवामें इस कहनेसे जाना गया कि, संतान उत्पन्न करने योग्य पतिके न होनेपर यह है इससे पतिके जीवते हुएभी अयोग्य पति आदि गुरुओंकारि आज्ञा दिया हुआ घीसे सब शरीरमें लेप कारि मौन हो रात्रिमें एक पुत्र उत्पन्न करे दूसरा नहीं ॥ ६० ॥

द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः ॥ अनिर्वृतं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥ ६१ ॥ विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि ॥ गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्त्तेयातां परस्परम् ॥ ६२ ॥

भाषा-नियोगसे पुत्र उत्पन्न करनेकी विधिके जाननेवाले अन्य आचार्य अपुत्र समान है यह शिष्टोंके कहनेसे प्राप्त नियोगके प्रयोजनको मानते हुए स्त्रियोंमें दूसरे पुत्रका उत्पन्न करना धर्मसे मानते हैं ॥ ६१ ॥ विधवा आदिमें नियोगका प्रयोजन गर्भाधान शास्त्रकी रीतिसे संपन्न होनेपर जेठा भाई और छोटे भाईकी स्त्री आपसमें गुरुके समान और पुत्रवधूके समान व्यवहार करें ॥ ६२ ॥

भाषा—भोजन वस्त्र आदि देकर पतिके परदेश जानेपर देहका अलंकार करने तथा पराये घरमें जानेसे रहित हो जीवे और भोजन वस्त्र न देकर जानेपर सूतके कातने आदि अनिंदित कामोंसे जीविका करे ॥ ७५ ॥ गुरुकी आज्ञाके करने आदि धर्मकार्यके लिये परदेशमें गया पति पत्नीको आठ वर्षतक राह देखने योग्य है तिसके उपरांत पतिके समीप जाय सोई वसिष्ठने कहा है कि परदेशकी स्त्री आठ वर्षतक स्थित रहे उपरांत पतिके पास जाय और विद्याके लिये परदेशमें गया हुआ पति छः वर्षतक राह देखने योग्य है और अपनी विद्या आदिसे यशके लिये परदेशमें गया हुआभी छः वर्ष और दूसरी भार्यासे भोग आदि करनेके लिये गया हुआ तीन वर्षतक राह देखने योग्य है ॥ ७६ ॥

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः ॥ ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत् ॥७७॥ अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्तमेव वा ॥ सा त्रीन्मासान् परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥ ७८ ॥

भाषा—पतिसे द्वेष करती हुई स्त्रीको एक वर्षतक देखे तिसके उपरांतभी द्वेष माननेवालीको अपने दिये हुए अलंकार आदि धनको लेकर उससे गमन न करे भोजन वस्त्र तौ देना होगा ॥ ७७ ॥ जो स्त्री जुआ आदि प्रमादवालेको अथवा मद उत्पन्न करनेवाले वस्तुके पीने आदिसे मतवारेको अथवा सेवा आदि न करनेसे जो तिरस्कार करे उसके अलंकार शय्या आदि लेकर तीन महीनेतक गमन न करे ॥७८॥

उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम् ॥ न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम् ॥७९॥ मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ॥ व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्राऽर्थघ्नी च सर्वदा ८०॥

भाषा—उन्मत्त कहिये वात आदि दोषके क्षोभसे जो प्रकृतिमें नहीं स्थितकी और पतितकी और ग्यारहें अध्यायमें जो कह जायगा ऐसे नपुंसककी और बीजरहितकी और कोढ आदि पापरोगकरि युक्त पतिकी सेवा न करनेवाली स्त्रीका त्याग नहीं है और उसका धन लेना चाहिये ॥७९॥ निषिद्ध मद्यपान करनेवाली और निषिद्ध आचारवाली और पतिसे प्रतिकूल चलनेवाली और कुष्ठ आदि रोगकरि युक्त और भृत्य आदिकी ताडना करनेवाली और सदा बहुत खर्च करनेवाली जो स्त्री होय उसके रहनेपरभी दूसरा विवाह करना चाहिये ॥ ८० ॥

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ॥ एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥८१॥ या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः ॥ साऽनुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥८२ ॥

भाषा–पहले ऋतुधर्मसे लगाके जिसके आठ वर्षतक संतति न होय तो आठवें वर्ष दूसरा विवाह करना चाहिये और जिसके संतान मर जाते होंय उसके रहित दशमें वर्ष और स्त्रीसंततिवालीके ग्यारहें वर्ष और अप्रिय बोलनेवालीके तौ शीघ्रही अन्य विवाह करना चाहिये ॥ ८१ ॥ जो रोगिणी होनेपरभी पतिके अनुकूल होय और शीलवाली होय उसकी आज्ञा लेकर दूसरा विवाह करना चाहिये कभी यह अपमान करने योग्य नहीं है ॥ ८२ ॥

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात् ॥ सा सद्यः संनिरो-
द्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ॥८३॥ प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्य-
मभ्युदयेष्वपि॥ प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि षट्॥८४

भाषा–जो स्त्री दूसरा विवाह करनेपर कुपित हो घरसे निकले वह उसी दिन रस्सी आदिसे बांधिकर राखने योग्य है और कोप दूरि होनेतक पिता आदिके समीप छोडने योग्य है ॥ ८३ ॥ जो क्षत्रिय आदिकी स्त्री भर्ता आदिके मने करनेपरभी विवाह आदि उत्सवोंमेंभी निषिद्ध मद्यको पीवे अथवा नाच आदिमें स्थित जनोंके समूहमें जाय वह छः रत्ती सुवर्ण व्यवहारके प्रकरणसे राजाको दंड करने योग्य है ॥ ८४ ॥

यदि स्वाश्चापराश्चैव विन्देरन्योषितो द्विजाः ॥ तासां वर्णक्रमेण
स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वेश्म च ॥८५॥ भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मका-
र्यं च नैत्यकम् ॥ स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन॥८६॥

भाषा–जो द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपनी जातिकी तथा दूसरी जातिकी स्त्रियोंको व्याहे तौ उनका द्विजातिके क्रमसे वाणीका सत्कार और दायविभागकी उत्कर्षताके लिये वस्त्र अलंकार आदिके देनेसे जेठेपनकी पूजा और घरभी प्रधान होय अर्थात् सबसे ब्राह्मणीकी अधिक होय उससे कम क्षत्रियाकी उससे कम वैश्याकी यही क्रम सब वर्णोंमें जानिये ॥ ८५ ॥ भर्त्ताके देहकी परिचर्या कहिये टहल और अन्न देना आदि धर्मका काम तथा भिक्षाका देना अभ्यागतोंको परोसना और होमकी द्रव्योंका देना आदि प्रतिदिनका कर्म द्विजातियोंके सजातिहीकी स्त्री करे दूसरी जातिकी कभी न करे ॥ ८६ ॥

यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयान्यया ॥ यथा ब्राह्मणचा-
ण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥८७॥ उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृ-
शाय च ॥ अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ ८८ ॥

भाषा-जो अपनी जातिकी स्त्रीके निकट होनेपर देहकी सेवा आदि कर्मोंको अन्य जातिकी स्त्रीसे मूर्खताके कारण कराता है वह जैसे ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्न ब्राह्मण चांडाल होता है वैसेही पूर्व ऋषियोंकरि देखा गया है ॥ ८७ ॥ कुल तथा आचार आदिसे उत्कृष्ट और सुंदर रूपयुक्त और समान जातिके वरको विवाह समयके अयोग्यभी आठ वर्षकी कन्या व्याहि देवे इस प्रकारसे धर्म हीन नहीं होता है इस कालसे पहलेभी कन्याको ब्राह्मविवाहकी विधिसे देवे ॥ ८८ ॥

काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ॥ न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥ त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ॥ ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ९० ॥

भाषा-उत्पन्न है ऋतुधर्म जिसके ऐसी कन्या मरणपर्यंत पिताके घरमें रहे सो अच्छा परंतु विद्या और गुणोंकरि रहितको पिता आदि कभी न देवे ॥ ८९ ॥ पिता आदि करि गुणवान् वरको नहीं दी गई कन्या ऋतुमती होनेपर तीनि वर्ष राह देखे फिरि तीनि वर्षके उपरांत अधिक गुणयुक्त वर न मिलनेपर समान जाति गुणवाले वरको आप वरे ॥ ९० ॥

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ॥ नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं साऽधिगच्छति ॥ ९१ ॥ अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा ॥ मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥ ९२ ॥

भाषा-पिता आदि करि नहीं दी गई कुमारी जो कहे हुए विवाहके कालमें भर्त्ताको आपही वरे तो वह कुछभी पापको नहीं प्राप्त होती है और न उसका पति पापको प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥ आप पतिको वरनेवाली कन्या वरके अंगीकार करनेके पहले पिता माता तथा भाईके दिये हुए अलंकार उन्हींको दे दे और जो न दे तो चोर होय ॥ ९२ ॥

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् ॥ स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ॥ ९३ ॥ त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ॥ त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ ९४ ॥

भाषा-ऋतुमती कन्याका व्याहनेवाला पिताको कन्याका मूल्य न देवे कारण यह है कि, पिता ऋतुका कार्य संततिके रोकनेसे कन्याके स्वामीपनसे हीन हो जाता है ॥ ९३ ॥ तीस वर्षका पुरुष बारह वर्षकी मनोहर कन्याके साथ व्याह करे अथवा चौबीस वर्षका आठ वर्षकीको व्याहे और शीघ्रता करनेवाला गृहस्थ धर्ममें दुःख पाता है यह योग्य काल दिखानेके लिये कहा है कुछ नियमके लिये नहीं ॥ ९४ ॥

देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः ॥ तां साध्वीं बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन् ॥ ९५ ॥ प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थं च मानवाः ॥ तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥ ९६ ॥

भाषा–" भगोऽर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वा दुर्गार्हपत्याय देवाः " इत्यादि मंत्रके सूचित करनेसे जो देवताओं करि दी भार्या है उसको पति प्राप्त होता है अपनी इच्छासे नहीं उस पतिव्रताको देवताओंका प्रिय करता हुआ द्वेषयुक्त होनेपरभी भोजन वस्त्र आदिसे सदा पालन करने योग्य है ॥ ९५ ॥ जिससे गर्भग्रहण करनेके लिये स्त्री उत्पन्न की गई है और गर्भ आधान करनेके लिये मनुष्य तिससे गर्भ उत्पन्न करनेके समान इन दोनोंका अग्निका आधान आदिभी धर्मपत्नीके साथ साधारण कहा है " क्षौमे वसानावग्नीनादधीयातां " इत्यादि वेदमें विहित है तिससे " भार्यां बिभृयात् " पहले कहे हुएका शेष है ॥ ९६ ॥

कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियते यदि शुल्कदः ॥ देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते ॥ ९७ ॥ आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददत् ॥ शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥ ९८ ॥

भाषा–कन्याका शुल्क तौ दे दिया होय परन्तु विवाह न हुआ होय उस समय शुल्क देनेवाला वर मर जाय तौ पिता आदि करि यह कन्या देवरको देने योग्य है जो वह स्त्री अंगीकार करे तो ॥ ९७ ॥ शास्त्रका न जाननेवाला शूद्रभी कन्याको देता हुआ शुल्कको न लेवे फिरि शास्त्र पढे हुए द्विजातिका तो क्या कहना है जिससे शुल्कको लेता हुआ मनुष्य गुप्त कन्याका विक्रय करता है ॥ ९८ ॥

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः ॥ यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते ॥ ९९ ॥ नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु ॥ शुल्कसंज्ञेन मूल्येन च्छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥ १०० ॥

भाषा–इसको पहले शिष्ट लोगोंने कभी नहीं किया न और वर्त्तमान कालके करते हैं जो औरको कन्या देना अंगीकार करके फिरि औरको देवे यह जिसका शुल्क ले लिया है उस कन्याके मध्ये कहा है ॥ ९९ ॥ पहले कल्पोंमेंभी यह हुआ यह हमने कभी नहीं सुना है कि, जो शुल्क नाम मोलसे किसी सज्जनने गुप्त कन्याका विक्रय किया होय ॥ १०० ॥

अन्योन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणान्तिकः ॥ एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ १ ॥ तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ

तु कृतक्रियौ ॥ यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम् ॥ २ ॥

भाषा–भार्या और पतिके मरनेतक धर्म अर्थ और काममें परस्पर व्यभिचार न होय यह संक्षेपसे स्त्रीपुरुषका उत्कृष्ट धर्म जानना चाहिये ॥ १ ॥ जिन्होंने विवाह किया है ऐसे स्त्रीपुरुष सदा ऐसा यत्न करें जैसे धर्म अर्थ और काममें परस्पर वियुक्त होनेपरभी व्यभिचार युक्त न होय ॥ २ ॥

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः ॥ आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम् ॥ भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः ॥ ४ ॥

भाषा–भार्या और पतिका परस्पर अनुराग युक्त यह धर्म तुमसे कहा और संतानके न होनेमें संततिकी प्राप्ति कही अब दाय जो पिता आदिका धन है उसके विभागकी व्यवस्था सुनिये ॥ ३ ॥ भाई मिलके पिताके मरनेके उपरांत पिताके धनको और माताके मरनेके पीछे माताके धनको बराबर करके बांट लेवे और मातापिताके जीवते हुए उनके धनके स्वामी नहीं होते हैं ॥ ४ ॥

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः ॥ शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥ ५ ॥ ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ॥ पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ॥ ६ ॥

भाषा–जो ज्येष्ठ धर्मात्मा होय तौ पिताके संपूर्ण धनको वही लेवे और छोटे उससे पिताके समान भोजन वस्त्र पावें और ऐसे सब साथही रहें ॥ ५ ॥ उत्पन्न होनेहीसे संस्काररहितभी जेठे पुत्रसे मनुष्य पुत्रवान् होता है और पितरोंके ऋणसे छूट जाता है इससे ज्येष्ठही सब धनके योग्य है यह पहलेका शेष है ॥ ६ ॥

यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्नुते ॥ स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ॥ ७ ॥ पितेव पालयेत्पुत्राञ्ज्येष्ठो भ्रातॄन्यवीयसः ॥ पुत्रवच्चापि वर्तेरञ्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ ८ ॥

भाषा–जिसके उत्पन्न होनेपर ऋणका शोधन और जिसके उत्पन्न होनेसे अमृतत्वको प्राप्त होता है वही पिताका धर्मके कारणसे उत्पन्न पुत्र होता है और औरोंको तौ काममात्रके कारणसे उत्पन्न मुनीश्वर जानते हैं तिससे वही सब धनको ग्रहण करे ॥ ७ ॥ विभाग न होनेमें जेठा भाई छोटे भाइयोंको भोजन वस्त्र आदिसे पिताके समान पालन करे और छोटे भाई पुत्रोंके समान जेठे भाईमें धर्मसे वर्त्तें ॥ ८ ॥

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ॥ ज्येष्ठः पूज्यतमो लो-

के ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः ॥९॥ यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः ॥ अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बंधुवत् ॥११०॥

भाषा–जिसका विभाग नहीं हुआ है ऐसा जेठा जो धर्मात्मा होय तो छोटेभी उसके अनुगामी होनेसे धार्मिक होनेके कारण जेठा कुलको वढाता है और जो अधर्मी होय तौ छोटोंकोभी उसके अनुगामी होनेके कारणसे जेठा कुलका नाश कर देता है लोकमें गुणवान् ज्येष्ठ अति पूज्य है ॥ ९ ॥ जो जेठा छोटे भाइयोंमें पिताके समान वर्त्तता है वह पिताके समान और माताके समान अनिंद्य होता है और जो ऐसे नहीं वर्त्तता है वह मामा आदि बंधुओंके समान पूजने योग्य है॥११०॥

एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया ॥ पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिया ॥११॥ ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् ॥ ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ॥ १२ ॥

भाषा–ऐसे विना बँटे हुए भाई एक साथ रहें अथवा धर्मकी कामनासे जुदे जुदे पंचयज्ञ करनेसे उनका धर्म वढता है तिससे विभाग (बांट) करना धर्महीके लिये है ॥११॥ साझेके साधारण धनसे वीसवां भाग निकाल कर जेठेको देवें और घरकी सब वस्तुओंमें जो उत्तम होय वहभी जेठको देवें और मध्यम कहिये मझलेको चालीसवां भाग दे और छोटेको अस्सीवां भाग देकर सब बराबर बांट लेवें ॥१२॥

ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् ॥ येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ॥१३॥ सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः ॥ यच्च सातिशयं किंचिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् ॥ १४ ॥

भाषा–जेठा तथा छोटे पहले श्लोकमें कहे हुए २०।४०।८० भागोंको लेवें और जेठे तथा छोटेसे भिन्न जो मध्यम हैं उनके बीचकी छोटाई बडाईकी अपेक्षाको नहीं करके सब मझलोंमें प्रत्येकको कहा हुवा चालीसवां भाग देना चाहिये. मझलोंमें छोटाई बडाईकी अपेक्षासे विभागकी विषमता दूर करनेके लिये यह कहा है ॥ १३ ॥ धनके सब प्रकारोंमेंसे जो श्रेष्ठ धन होय उसको ज्येष्ठ लेवे और दश गौ आदि पशुओंमेंसे श्रेष्ठ एक ज्येष्ठ लेवे यह वहांके लिये है जहां जेठा गुणवान् होय और अन्य सब निर्गुणी होंय ॥ १४ ॥

उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु ॥ यत्किंचिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्धनम् ॥ १५ ॥ एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान्प्रकल्पयेत् ॥ उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं ... १६ ।

भाषा–सब समान गुण होनेमें कहते हैं दशमेंसे श्रेष्ठको ज्येष्ठ पावे यह जो उद्धार कहा है सो यह पढने आदि कर्म करनेवाले भाइयोंमें जेठेका नहीं है तिसपरभी यत्किंचित् पूजा बढानेवाला द्रव्य जेठेको देना चाहिये ऐसे बराबर गुणवालेंमें उद्धारका निषेध देखा गया है इस कारण पहलेमें गुणोंकी अधिकताकी अपेक्षासे उद्धारकी विषमता जाननी चाहिये ॥ १५ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे जिसमेंसे बीसवां भाग निकाल लिया गया है ऐसे धनमेंसे सब भाइयोंके बराबर भाग करे बीसवां भाग आदिमें तौ फिर नहीं निकाली हुई भागकी कल्पना आगे कही हुई होती है॥ १६ ॥

एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्धं ततोऽनुजः ॥ अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १७॥ स्वेभ्योऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक्॥स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः १८

भाषा–एक अधिक अंश अर्थात् दो भागोंको जेठा पुत्र ग्रहण करे और अधिक अर्द्ध अर्थात् डेढ भाग जेठेसे छोटा ग्रहण करे और छोटे फिर एक एक भाग ग्रहण करें यह धर्म व्यवस्थित है यह ज्येष्ठ और उससे छोटेकी गुणवान् होनेकी अपेक्षासे और छोटोंके निर्गुण होनेमें जानना चाहिये कारण यह है कि, जेठेका और उससे छोटोंका आधिक्य देखा जाता है ॥ १७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चारों भाई अपनी जातिकी अपेक्षा "स्वेभ्यश्चतुरोंऽशान् हरेयुः" विप्र इत्यादिसे आगे कहे हुए भागोंमेंसे अपने अपने भागसे चौथा भाग जुदा जुदा भाग कन्याओंके लिये और बिना व्याही बहिनीको जो जिसकी सगी बहिनी होय उसीको संस्कारके लिये देवे इस भांति सब जो सगी न होय तो दूसरी मातासे उत्पन्न ऊंचे नीचोंकरि संस्कार करनेही योग्य है जो बहिनोंके संस्कारके लिये चौथा भाग देना न चाहे तो पतित होय ॥ १८ ॥

अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् ॥ अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥१९॥ यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेदिति ॥ समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १२० ॥

भाषा–घोडा आदि एक शफ कहिये एक खुरके कहे जाते हैं एक शफ समेत बकरी भेड आदिके बांटनेके समय बराबर करके बांटे और जिसका विभाग न हो सकता हो उसको न बांटे वह तो जेठेहीका होता है उसकी बराबर दूसरी वस्तु देनेसे बराबरी करके अथवा बेंचके उसके मोलको न बांटे ॥ १९ ॥ छोटा जो जेठे भाईकी स्त्रीमें नियोगसे पुत्र उत्पन्न करे तो उस चाचाके साथ उस क्षेत्रजका बराबरी विभाग होता है पिताके समान उद्धारसमेत नहीं होता है यह भागकी

व्यवस्था नियत है जो नियोगसे नहीं उत्पन्न है उसका अनंशित्व कहिये भाग न पाना आगे कहेंगे यद्यपि "समेत्य भ्रातरः समम्" यह कहा है तिसपरभी इसी सूचनासे जिसका पिता मर गया है ऐसे पौत्रकाभी पितामह कहिये दादेके धनमें पिताके समान विभाग है यह पाया जाता है ॥ १२० ॥

उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते ॥ पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण तं भजेत् ॥ २१ ॥ पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः ॥ कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥ २२ ॥

भाषा-जेठे भाईका क्षेत्रज पुत्रभी पिताके समान उद्धार समेत भाग पानेके योग्य है इस शंकाको दूर कारि पहिले कहे हुएहीको दृढ करते हैं. अप्रधान क्षेत्रज पुत्र प्रधान क्षेत्रवाले पिताका धर्मसे उद्धार समेत विभागके लेनेसे संबंधयुक्त नहीं होता है क्षेत्रीभी पिताके क्षेत्रके द्वारा पुत्रके उत्पन्न करनेमें प्रधान होता है तिससे पहले कहे हुएही धर्मसे विभागकी व्यवस्थारूप चाचाके साथ उस क्षेत्रजका विभाग करे यह पहलेहीके शेष है ॥ २१ ॥ जो पहले व्याही हुईमें छोटा पुत्र उत्पन्न होय और पीछे व्याही हुईमें जेठा होय तौ वहां कैसा विभाग होय यह जो संदेह होय तो क्या माताके विवाहके क्रमसे पुत्रका जेठापन अथवा अपने जन्मके क्रमसे तब॥२२॥

एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः ॥ ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः ॥ २३ ॥ ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेद्वृषभषोडशाः ॥ ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा ॥ २४ ॥

भाषा-पहलीमें उत्पन्न हुआ छोटाभी एक बैल उद्धार लेवे तिस पीछे उस श्रेष्ठ बैलसे और जे अश्रेष्ठ बैल होंय वे उस जेठीसे उत्पन्न पुत्रसे माताके कारण कम ऐसे छोटोंको प्रत्येक एक एक बैल होते हैं माताके विवाहके क्रमसे जेठापन होता है ॥ २३ ॥ पहले व्याही हुई स्त्रीमें जो जो उत्पन्न हुआ वह जन्मसेभी भाइयोंसे जेठा वह सोलह बैलसमेत पंद्रह गौओंको लेवे तिस पीछे जो और बहुतसी माताओंसे उत्पन्न वे पुत्र अपनी माताके व्याहके जेठेपनकी अपेक्षा बाकी गौओंको बांट लेवे यह निश्चय है ॥ २४ ॥

सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः ॥ न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥ २५ ॥ जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं स्वब्राह्मण्यास्वपि स्मृतम् ॥ यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥ २६ ॥

भाषा-समान जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंको जातिमें स्थित विशेष न होनेपर माताके क्रमसे जेठापन ऋषियोंकारि नहीं कहा जाता है किंतु जन्महीके क्रमसे

इसीसे छोटीसेभी उत्पन्न पहले कहा हुआही बीसवें भाग द्व्यंश आदिको ग्रहण करे ऐसे माताके जेठपनके विहित तथा निषिद्ध होनेसे सोलहके लेने और न लेनेकाभी विकल्प हुआ वह तौ भाइयोंके गुणवान् तथा निर्गुण होनेके कारण लघुतासे व्यवस्थित हुआ ॥ २५ ॥ स्वब्रह्मण्य नाम ज्योतिष्टोममें इंद्रके बुलानेके लिये पढा जाता है वह प्रथम पुत्र कारि पिताका उद्देश करके आह्वान किया जाता है अमुकका पिता यज्ञ करता है ऐसा ऋषियोंने कहा है और गर्भमें एकही साथ जिनका निषेक हुआ है ऐसे यम कहिये जोडियोंकी जन्मके क्रमसे ज्येष्ठता कही गई है ॥ २६ ॥

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ॥ यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम् ॥२७॥ अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः॥ विवृद्धयर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥२८॥

भाषा-जिसके पुत्र नहीं है वह जो इसमें अपत्य उत्पन्न होय सो मेरा श्राद्ध आदि और्ध्वदेहिक कर्मोंका करनेवाला होय ऐसे कन्यादानके समयमें जमाईकेसाथ नियमरूप विधानसे कन्याको पुत्रिका करे ॥ २७ ॥ पुत्र उत्पन्न करनेकी विधिके जाननेवाले दक्ष प्रजापति अपना वंश बढानेके लिये इस कहे हुए विधानसे सब बेटियोंको पहले आप पुत्रिका करते भये ॥ २८ ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् ॥२९॥ यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ॥ तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥ १३० ॥

भाषा-होनेवाले पुत्रिकापुत्रके लाभसे प्रसन्न दक्षप्रजापतिने अलंकार आदिसे सत्कार करके दश पुत्रिका धर्मको दीं तेरह कश्यपको सत्ताईस द्विजोंके तथा औषधियोंके राजा चंद्रमाको दीं॥ २९॥ आतमाका स्थानी पुत्र है और उसीके अंगोंसे उत्पन्न होनेके कारण पुत्रके समान कन्या है इसीसे पिताके आत्मस्वरूप उस कन्याके विद्यमान होनेपर पुत्ररहित मरे हुए पिताका धन पुत्रिकासे भिन्न दूसरा कैसे लेवे ? ॥ १३० ॥

मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ॥ दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ॥ ३१ ॥ दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् ॥ स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥ ३२ ॥

भाषा-माताको जो धन है वह उसके मरनेपर कुमारीका भाग है उसमें पुत्रोंका भाग नहीं है कुमारी कहनेसे विना व्याही जाननी चाहिये और पुत्ररहित मरे हुए नानाका धन दौहित्र अर्थात् पुत्रिकाका पुत्रही सब लेवे॥ ३१॥ दौहित्र अर्थात्

पुत्रिकाका पुत्रही अन्यपुत्ररहित पिताका संपूर्ण धन लेवे और वही पिता और नानाके लिये दो पिंड देवे ॥ ३२ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः ॥ तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः ॥ ३३ ॥ पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनुजायते ॥ समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः ॥ ३४ ॥

भाषा–पुत्र तथा दौहित्रमें लोकमें तथा धर्मके काममें कुछ विशेष नहीं है कारण यह है कि, दोनोंके माता पिता उसके देहसे उत्पन्न हैं यह पहलेहीका अनुवाद है ॥ ३३ ॥ पुत्रिका करनेपर जो करनेवालेके पीछे पुत्र उत्पन्न होय तौ उनके विभागकालमें समान विभाग होय पुत्रिकाको उद्धार न देना चाहिये जिससे जेठी होनेपरभी उसका जेठापन उद्धारके समयमें नहीं आदर करने योग्य है ॥ ३४ ॥

अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन ॥ धनं तत्पुत्रिकाभर्ता हरेतैवाविचारयन् ॥ ३५ ॥ अकृता वा कृता वापि यं विन्देत्सदृशात्सुतम् ॥ पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम् ॥ ३६ ॥

भाषा–पुत्ररहित पुत्रिकाके कैसेहू मरनेपर उसके धनको उसका पतिही विना विचारके ग्रहण करे पुत्रिकाकी पुत्रकी समतासे पुत्र तथा पत्नीरहित मृतपुत्र पिताके धन ग्रहणकी प्रसक्ति होनेपर उसके निवारणके लिये यह वचन है ॥ ३५ ॥ पुत्रिका की हुई अथवा न की हुई समान जातिके पतिसे जिस पुत्रको उत्पन्न करे उस दौहित्र करि पौत्रका काम करनेसे मातामह पौत्री है और वह इसको पिंड देवे और उसके धनको लेवे ॥ ३६ ॥

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ॥ अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ॥ ३७ ॥ पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः ॥ तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ ३८ ॥

भाषा–उत्पन्न हुए पुत्रसे स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होता है और पौत्रसे बहुत कालतक उन्हींमें रहता है तिस पीछे पुत्रके पौत्रसे आदित्य लोकको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ जिससे पुंनाम नरकसे सुत पिताकी रक्षा करता है उस रक्षा करनेसे आपही ब्रह्माने पुत्र यह कहा है ॥ ३८ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ॥ दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत् ॥ ३९ ॥ मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः ॥ द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥ १४० ॥

भाषा–पौत्र तथा दौहित्र इन दोनोंमें लोकमें कुछ विशेष नहीं है जिससे दौहित्रभी नानाको परलोकमें पौत्रके समान निस्तार करता है॥ ३९ ॥ पुत्रिकाका पुत्र पहले माताको पिंड दे और दूसरा माताके पिता कहिये नानाको और तीसरा माताके पितामह अर्थात् परनानाको देवे ॥ १४० ॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्रिमः ॥ स हरेतैव तद्रिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः॥४१॥ गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्रिमः क्वचित् ॥ गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥ ४२ ॥

भाषा–जिसका दत्तक अर्थात् गोद लिया हुआ पुत्र सब गुणोंसे संपन्न होय और दूसरे गोत्रसेभी आया होय वह औरस कहिये निजपुत्रके होनेपरभी पिताके धनका भाग पावे ॥ ४१ ॥ दत्तक अपने पिताके गोत्र तथा धनको कभी नहीं पाता है पिंड तौ गोत्र तथा रिक्थ हिस्सेका अनुगामी होता है जिसके गोत्र और रिक्थको भजता है कहिये प्राप्त होता है उसीको वह पिंड देता है तिससे पुत्र देनेवाले जनकके उस पुत्रकरि करने योग्य स्वधा कहिये पिंड श्राद्ध आदि निवृत्त हो जाते हैं॥४२॥

अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात् ॥ उभौ तौ नार्हतो भागं जारजातककामजौ ॥४३॥ नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः ॥ नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः ॥ ४४ ॥

भाषा–जो गुरु आदिके नियोग विना उत्पन्न है और जो सपुत्रामें नियोगसेभी देवर आदि करि कामसे उत्पन्न किया गया है वे दोनों क्रमसे जारसे कामकी इच्छासे उत्पन्न हैं धनके भाग योग्य नहीं हैं ॥ ४३ ॥ नियुक्ताभी स्त्रीमें घृतलेप आदि नियोगकी विधिके विना उत्पन्न हुआ पुत्र क्षेत्रवाले पिताका धन पाने योग्य नहीं है जिससे यह पतित करि उत्पन्न किया गया है जे नियुक्त विधिके विना पुत्र उत्पन्न करते हैं वे पतित होते हैं ॥ ४४ ॥

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः ॥ क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः ॥४५॥ धनं यो बिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च ॥ सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥ ४६ ॥

भाषा–नियुक्तामें उत्पन्न हुआ क्षेत्रज पुत्र औरसके समान लेवे जिससे उसका कारणभूत बीज क्षेत्रके स्वामीका है और संतानभी धर्मसे उसीके लिये है ॥ ४५ ॥ जो मरे हुए भाईके रक्षा करनेमें असमर्थ पकारि दिये हुए स्थावरजंगम धनकी रक्षा करें और उसकाभी पोषण करें वह नियोग धर्मसे उसमें भाईका पुत्र उत्पन्न करके उस अपत्यको वह धन दे देवे ॥ ४६ ॥

यां नियुक्तान्यतः पुत्रं देवराद्वाप्यवाप्नुयात् ॥ तं कामजमरिक्थीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥ ४७ ॥ एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु ॥ बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥ ४८ ॥

भाषा-गुरु आदि करि आज्ञा दी गई जो स्त्री देवरसे अथवा अन्यसे कहिये असपिंडसे पुत्रको उत्पन्न करे वह पुत्र जो कामज होय तो उस वृथा उत्पन्न हुए-को भाग न पानेवाला मनु आदि कहते हैं ॥ ४७ ॥ समान जातिकी स्त्रियेंमें एक पतिसे उत्पन्न पुत्रोंकी यह विभागविधि जाननी चाहिये अब नाना जातिकी बहुतसी स्त्रियेंमें उत्पन्न पुत्रोंका विभाग सुनिये ॥ ४८ ॥

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः ॥ तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं विधिः स्मृतः ॥४९॥ कीनाशो गोवृषो यानमलंकारश्च वेश्म च ॥ विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः ॥ १५० ॥

भाषा-ब्राह्मणके क्रमसे जो ब्राह्मणी आदि चारि स्त्रियां होंय तो उनके पुत्र उत्पन्न होनेपर यह आगे कही हुई विभागकी विधि मनु आदिकोंने कही है ॥४९॥ खेत करनेवाला बैल और घोडा आदि सवारी अंगूठी आदि गहना और घर प्रधान जितने भाग हैं उनमेंसे एक प्रधानभूत अंश ब्राह्मणीपुत्रके उद्धारके लिये देना चाहिये और बाकी आगे कही हुई रीतिसे बांट लेने चाहिये ॥ १५० ॥

त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः ॥ वैश्याजः सार्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ ५१ ॥ सर्वं वा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च ॥ धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनाऽनेन धर्मवित् ॥ ५२ ॥

भाषा-ब्राह्मणीका पुत्र धनमेंसे तीनि भाग लेवे दो क्षत्रियाका पुत्र डेढ वैश्याका और एक अंश शूद्राका पुत्र ऐसे जहां ब्राह्मणी और क्षत्रियाको पुत्र दोही है तहां पांच भाग किये हुए धनमेंसे तीनि भाग ब्राह्मणीपुत्रके और दो क्षत्रियापुत्रके इसी रीतिसे ब्राह्मणी और वैश्या पुत्र आदिमें और दो तथा बहुत पुत्रोंमें यही कल्पना करनी चाहिये ॥ ५१ ॥ अथवा सब धनका प्रकार जिसमेंसे उद्धार नहीं निकला है उसके दश भाग करके विभागके धर्मका जाननेवाला धर्मसे विरुद्ध नहीं ऐसा विभाग आगे कही हुई विधिसे करे ॥ ५२ ॥

चतुरोंऽशान्हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः ॥ वैश्यापुत्रो हरेद्द्व्यंशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ ५३ ॥ यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपि वा भवेत् ॥ नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ॥५४॥

भाषा–चारि चारि भाग ब्राह्मण लेवे तीनि भाग क्षत्रियाका पुत्र और दो वैश्याका पुत्र और एक शूद्रासे उत्पन्न ऐसे ब्राह्मणी और क्षत्रियाके पुत्र होनेपर धनके सात भाग करके उनमें ये चारि भाग ब्राह्मणके तीनि क्षत्रियापुत्रके ऐसेही ब्राह्मणी वैश्या पुत्र आदिकोंमें और दो तथा बहुत पुत्रोंमें कल्पना करनी चाहिये ॥५३॥ जो ब्राह्मणक द्विजातीकी सब स्त्रियोंसे पुत्र होय अथवा न होय तिसपरभी शूद्रापुत्रके लिये अनंतर जो अधिकारी होय वह दशम भागसे अधिक धर्मसे न देवे ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक् ॥ यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेत् ॥५५॥ समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम् ॥ उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम् ॥ ५६ ॥

भाषा–शूद्राका पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके धनका पानेवाला नहीं होता है किंतु जो धन इसको पिता देवे वही उसका होता है ॥ ५५ ॥ द्विजातियोंके समान जातिकी स्त्रियोंमें जे पुत्र उत्पन्न हैं वे सब जेठेको उद्धार देकर बाकीके बराबरि विभाग करके जेठेके साथ और सब बांट लेवे ॥ ५६ ॥

शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्या विधीयते ॥ तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत् ॥५७॥ पुत्रान् द्वादश यानाह नृणां स्वायम्भुवो मनुः ॥ तेषां षड् बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः ॥५८॥

भाषा–शूद्रके समान जातीही स्त्री कही गई हैं ऊंची नीची नहीं उससे उत्पन्न हुए जो सौभी पुत्र होंय तौ उनका बराबरही भाग होय किसीको उद्धार न देना चाहिये ॥ ५७ ॥ जिन द्वादश पुत्रोंको स्वायंभुवमनुने कहा है उनमेंसे पहिले छः बांधव और गोत्रदायादभी हैं तिससे बांधव होनेके सपिंड तथा समानोदकोंका पिंड तथा जलदान आदि करते हैं और समीपी न होनेसे गोत्रका भाग लेते हैं और पिछले ६ गोत्र तथा धनके लेनेवाले नहीं होते हैं और बांधव तौ होते हैं तिससे बंधु कार्य जलदान आदि करते हैं ॥ ५८ ॥

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ॥ गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट् ॥ ५९ ॥ कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ॥ स्वयंदत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः ॥ १६० ॥

भाषा–औरस १ क्षेत्रज २ दत्तक ३ कृत्रिम ४ गूढोत्पन्न ५ और अपविद्ध ६ ये भाग पानेवाले और बांधव होते हैं ॥५९॥ कानीन १ सहोढ २ क्रीत ३ पौनर्भव ४ स्वयंदत्त ५ और शौद्र ६ ये छः गोत्र तथा धनके पानेवाले नहीं होते हैं और बांधव तौ होते हैं ॥ १६० ॥

यादृशं फलमाप्नोति कुप्लवैः संतरञ्जलम् ॥ तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतरंस्तमः ॥ ६१ ॥ यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ ॥ यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्गृह्णीत नेतरः ॥ ६२ ॥

भाषा-औरसके साथ क्षेत्रज आदि पढे हैं इससे तुल्यताकी शंका होनेपर उसके दूर करनेके लिये कहते हैं. फूस आदि तृणोंसे वनी हुई बुरी उडुप आदि एक भांतिकी नावसे जलको उतरता हुआ जिस भांतिके फलको पाता है वैसेही क्षेत्रज आदि कुपुत्रोंसे परलोकमें कठिनतासे पार होने योग्य दुःखको पाता है इससे यह दिखाया गया कि, मुख्य औरस पुत्रके समान क्षेत्रज आदि पुत्रोंकी संपूर्ण कार्य करनेमें योग्यता नहीं होती है ॥ ६१ ॥ पुत्ररहित कारि पराये क्षेत्रमें नियोगसे उत्पन्न किया हुआ पुत्र "उभयोरप्यसौ रिक्थी पिंडदाता च धर्मतः" अर्थात् यह दोनों-का धर्मसे भाग लेनेवाला और पिंड देनेवाला है इस याज्ञवल्क्यके वचनके मध्ये जव क्षेत्रिक पिताके क्षेत्रजके पीछे और पुत्र होय तब वे औरस और क्षेत्रज यद्यपि एक पिताके रिक्थके योग्य होंय तिसपरभी जो जिसके पिताको धन होय उसीको वह लेवे क्षेत्रज क्षेत्रजवाले पिताका नहीं पावे ॥ ६२ ॥

एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः ॥ शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् ॥ ६३ ॥ षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृका-द्धनात् ॥ औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वा ॥ ६४ ॥

भाषा-पहले रोग आदिसे और सपुत्रके न होनेमें क्षेत्रज आदि पुत्रोंके कर लेनेपर पीछे औषधि आदिसे रोग निवृत्त होनेसे जो औरस उत्पन्न होय तिसपर कहते हैं कि औरसही एक पुत्र पिताके धनका स्वामी है और क्षेत्रजको छोडके जो वाकी रहे उनको भोजन वस्त्र देवे ॥ ६३ ॥ पिताके धनका विभाग करता हुआ औरस पुत्र क्षेत्रजको उसका छठा अथवा पांचवां भाग देवे निर्गुण सगुणकी अपे-क्षासे यह छः पांचका विकल्प है ॥ ६४ ॥

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ ॥ दशापरे तु क्रमशो गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥ ६५ ॥ स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पा-दयेद्धि यम् ॥ तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ ६६ ॥

भाषा-औरस तथा क्षेत्रज पुत्र कहे हुए प्रकारसे पिताका धन लेनेवाले होते हैं और फिर दत्तक आदि दश पुत्र गोत्रभागी होते हैं और " पूर्वाभावे परः " इस क्रमसे धनकेभी भाग पानेवाले होते हैं ॥ ६५ ॥ कन्याकी अवस्थामें जिसके विवाह

संस्कार हुआ है ऐसी अपनी स्त्रीमें जिसको आप उत्पन्न करे उस पुत्रको औरस मुख्य जाने सजातीय स्त्रीमें आप उत्पन्न किया हुआ पुत्र औरस जानना चाहिये॥६६॥

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा ॥ स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥६७॥ माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ॥ सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः॥६८॥

भाषा–जो मरे हुएकी अथवा नपुंसककी अथवा संतति रोकनेवाले रोग कारि युक्तकी भार्यामें घृत लगाने आदि नियोगके धर्मसे गुरु कारि नियुक्तमें उत्पन्न हुए पुत्रको मनु आदि क्षेत्रज कहते हैं ॥ ६७ ॥ माता तथा पिता आपसकी संमतिसे लेनेवालेके समान जिसको जिस पुत्रको उसीकी पुत्र न होनेरूप आपत्तिमें भय आदिके विना प्रसन्नतासे जल ले संकल्प करके देवे वह दत्रिम पुत्र जानना चाहिये ॥ ६८॥

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् ॥ पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥ ६९ ॥ उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः ॥ स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥ १७० ॥

भाषा–माता पिताके परलोकके करने न करनेके गुण दोषके जाननेवाले और माता पिताकी सेवा आदि पुत्रके गुणोंकारि युक्त जिस समान जातिके पुत्रको पुत्र करते हैं उसको कृत्रिम पुत्र जानिये॥६९॥जिसके घरमें स्थित भार्यासे जो उत्पन्न होय वह सजातिका है यह ज्ञान होनेपरभी किस पुरुषसे यह उत्पन्न है यह न जाना जाय तो वह घरमें गुप्त उत्पन्न हुआ उसका पुत्र होता है जिसकी भार्यामें उत्पन्न होय॥१७०॥

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ॥ यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते ॥ ७१ ॥ पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः ॥ तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥ ७२ ॥

भाषा–माता पिता कारि त्याग किया गया होय अथवा उनमेंसे एकके मरनेपर अथवा अन्य कारि त्याग किये हुए पुत्रको जो अंगीकार करता है उसका वह अपविद्ध नाम पुत्र कहा जाता है ॥ ७१ ॥ पिताके घर कन्या जिस पुत्रको छिपा हुआ उत्पन्न करे उस कन्याके व्याहनेवालेके पुत्रको नामसे कानीन कहे ॥ ७२ ॥

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती॥वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते॥७३॥क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात्॥स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ॥७४॥

भाषा–जो गर्भिणी ज्ञातगर्भा अथवा अज्ञातगर्भा व्याही जाय उसमें उत्पन्न

हुआ वह गर्भ व्याहनेवालेका पुत्र होता है और सहोढ कहा जाता है ॥ ७३ ॥ जो पुत्रके लिये माता पिताके समीपसे जिसको मोल लेवे वह क्रीतक उसका पुत्र होता है मोल लेनेवालेके गुणोंके समान होय अथवा हीन होय वहां जातिसे समानता असमानता नहीं है " सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः " अर्थात् समान जातिके पुत्रोंमें मैंने यह विधि कही है यह याज्ञवल्क्यने सबही पुत्रोंको सजातीय कहा है तिससे मानवशास्त्रमेंभी क्रीतके सिवाय सब पुत्र सजातीय जानने चाहिये ॥ ७४ ॥

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ॥ उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥७५॥ सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ॥ पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ ७६ ॥

भाषा-भर्त्ता करि छोडी गई अथवा जिसका भर्त्ता मर गया ऐसी जो स्त्री दूसरेकी फिर भार्या होकर जिस पुत्रको उत्पन्न करे वह उत्पन्न करनेवालेका पौनर्भव पुत्र होता है ॥ ७५ ॥ जो अक्षतयोनि वह स्त्री दूसरेका आश्रय ले तो उस पौनर्भव भर्त्ताके साथ फिर विवाहनाम संस्कारके योग्य है अथवा कौमार पतिको छोडि औरका आश्रय लेकर फिर उसीके पास लौटकर आवे तो उस कुमार भर्त्ताके साथ फिर विवाह नाम संस्कार योग्य है ॥ ७६ ॥

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ॥ आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु स स्मृतः ॥७७॥ यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम्॥ स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ॥७८॥

भाषा-जिसके माता पिता मर गये होंय वह अथवा छोडनेके योग्य कारणके विना द्वेष आदिसे उन करि छोडा गया जिसको अपना आत्मा देता है वह उसका स्वयंदत्त नाम पुत्र मनु आदिकोंने कहा है ॥ ७७ ॥ " विन्नास्वेष विधिः स्मृतः " अर्थात् विवाहिताओंमें यह विधि कही है इस याज्ञवल्क्यके वचनसे व्याहीही हुई शूद्रामें ब्राह्मण कामसे जिस पुत्रको उत्पन्न करे वह जीवते हुएही मरेके समान है यद्यपि यह पिताके उपकारके लिये श्राद्ध आदि करता है तिसपरभी संपूर्णका उपकारक न होनेके कारण मरेके तुल्य कहा है ॥ ७८ ॥

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् ॥ सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः ॥७९॥ क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान्॥पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः॥१८०॥

भाषा-ध्वजाहतादिक कहे हैं लक्षण जिसके ऐसी दासीमें अथवा दासकी दासीमें जो शूद्रका पुत्र होता है वह पिताकी आज्ञासे व्याही हुईके पुत्रोंकी बराबर भाग पानेवाला होता है अर्थात् तुल्य भाग पाता है यह शास्त्रकी व्यवस्था है॥७९॥ इन क्षेत्रज आदि उक्त ग्यारह पुत्रोंको पुत्रके उत्पन्न करनेकी विधिका और औरसे पुत्र कारि करने योग्य श्राद्ध आदिका लोप न होय इसलिये मुनियोंने पुत्रके प्रतिनिधि कहिये स्थानी कहे हैं ॥ १८० ॥

य एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः ॥ यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥ ८१ ॥ भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् ॥ सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥८२॥

भाषा-जो ये क्षेत्रज आदि अन्यके बीजसे उत्पन्न पुत्र औरस पुत्रके प्रसंगसे कहे व जिसके बीजसे उत्पन्न है उसीके पुत्र होते हैं क्षेत्रवालेके नहीं औरसपुत्रके होनेपर तथा पुत्रिकाके होनेपर वे न करने चाहिये इसलिये यह कहा है ॥ ८१ ॥ एक माता पितासे उत्पन्न बहुतसे भाइयोंमें जो एक पुत्रवाला होय और अन्य पुत्ररहित होंय तौ उस एक पुत्रसे सब भाइयोंको मनु पुत्रसहित कहते हैं तिस पीछे तौ उसके होनेपर और पुत्र प्रतिनिधि न करने चाहिये वही पिंडका देनेवाला और भाग लेनेवाला होता है इससे यह कहा गया ॥ ८२ ॥

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ॥ सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥ ८३ ॥ श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे पापीयान्रिक्थमर्हति ॥ बहवश्चेत्तु सदृशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥ ८४ ॥

भाषा-एक है पति जिनकर ऐसी सब स्त्रियोंमें जो एक पुत्रवती होय तो उस एक पुत्रसे मनुने उन सबोंको पुत्रयुक्त कहा है तिससे सौतिके पुत्र होनेपर स्त्रीको और दत्तक आदि पुत्र न करने चाहिये इसलिये यह कहा है ॥ ८३ ॥ औरस आदि पुत्रोंमें पहला पहला श्रेष्ठ है और वही भाग पानेवाला है"स चान्यान् बिभृयात्"इस विष्णुके वचनसे औरस आदि पुत्रोंमें पहले पहलेके न होनेमें आगिला आगिला रिक्थके योग्य है पहलेके होनेमें दूसरेका पालन वही करे ऐसे पुत्रत्व सिद्ध होनेपर शूद्रापुत्रका बारह पुत्रोंमें पाठ क्षेत्रज आदिकोंके होनेपर धनकी अयोग्यता दिखानेके लिये होनेसे सार्थक है अन्यथा तौ क्षत्रिया वैश्यापुत्रके समान और सत्व होनेसे क्षेत्रज आदिकोंके होनेपरभी धनको पावे और जो समानरूप बहुतसे पौनर्भव आदि पुत्र होंय तो सबही बांट कारि धनको लेवें ॥ ८४ ॥

न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः ॥ पिता हरेदपुत्रस्य

रिक्थं भ्रातर एव च ॥ ८५ ॥ त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते ॥ चतुर्थः संप्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते ॥ ८६ ॥

भाषा–न सगे भाई न पिता किंतु औरसके न होनेमें क्षेत्रज आदि गौण पुत्र पिताका धन लेनेवाले होते हैं यह इससे कहा जाता है औरसका तौ "एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः" अर्थात् एकही औरस पुत्र पिताके धनका स्वामी है इसीसे सिद्ध है और जिसके मुख्य गौण दोनों प्रकारके पुत्र नहीं हैं और पत्नी तथा दुहिताभी नहीं हैं उसके धनको पिता पावे और उनकी माताकेभी न होनेपर भाई पावें यह आगे विस्तारसे कहेंगे ॥ ८५ ॥ अब क्षेत्रज आदिकोंकाभी पुत्ररहित पितामह आदिके धनमेंभी अधिकार दिखानेको कहते हैं. पिता आदि तीनिका जलदान करना चाहिये और उन्हीं तीनिके लिये पिंड देना चाहिये और चौथा पिंडोदकका देनेवाला है पांचवेंका यहां संबंध नहीं है तिससे पुत्ररहित पितामह आदिके धनमें गौण पुत्रोंका अधिकार योग्य है और सपुत्र पौत्रोंका तौ "पुत्रेण लोकान् जयति" इसीसे पितामहके धनमें भागी होना कहा है ॥ ८६ ॥

अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत् ॥ अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ॥८७॥ सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः ॥ त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते॥८८॥

भाषा–सपिंडोंके मध्यमें जो वहुत समीपी सपिंड स्त्री अथवा पुरुष होय उसका मरे हुए मनुष्यका धन होता है इसके उपरान्त सपिंडकी संतान न होनेपर समानोदक आचार्य तथा शिष्य ये क्रमसे धनको लेवें ॥ ८७ ॥ इन सबोंके न होनेमें तीनों वेदोंके पढनेवाले बाहरी भीतरी शौचकरि युक्त जितेंद्रिय ब्राह्मण धनके लेनेवाले होते हैं और वेही पिंड देनेवाले होते हैं ऐसा होनेपर मरे हुए धनीके श्राद्ध आदि धर्मकी हानि नहीं होती है ॥ ८८ ॥

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ॥ इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥८९॥ संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् ॥ तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत् ॥ १९० ॥

भाषा–ब्राह्मणका धन राजाको कभी न लेना चाहिये यह शास्त्रकी मर्यादा है कि, उक्त लक्षण ब्राह्मणके न होनेपर ब्राह्मणमात्रको देना चाहिये और क्षत्रिय आदिकोंका धन कहे हुए धन लेनेवालोंके न होनेपर राजा लेवे ॥ ८९ ॥ पुत्ररहित मरे हुएकी स्त्री पुरुषके गुरुओंसे आज्ञा ले नियोगधर्मसे पुत्रको उत्पन्न करे उस मरे हुएका जो धन होय वह उस पुत्रको देवे ॥ १९० ॥

द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने ॥ तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीत नेतरः ॥ ९१ ॥ जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः ॥ भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ॥ ९२ ॥

भाषा-दोसे उत्पन्न जो पुत्र स्त्रीके समीप स्थित धनमें विवाद करे तो जो जिसके पिताका धन होय वह उसका पावे और पितासे उत्पन्न दूसरेके पिताका न पावे ॥ ९१ ॥ माताके मरनेपर सगे भाई तथा विना व्याही हुई बहिनें माताके धनको बराबर बांट लेवें और व्याही हुई तो धनके अनुरूप समान पाती हैं ॥ ९२ ॥

यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः ॥ मातामह्या धनात्किंचित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥ ९३ ॥ अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ॥ भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥ ९४ ॥

भाषा-उन बेटियोंकी जो विना व्याही बेटियां हैं उनके लियेभी नानीके धनसे जैसे उनका सत्कार होय वैसे प्रीतिसे कुछ देना चाहिये ॥ ९३ ॥ विवाहके समय अग्निके समीप जो पिता आदि करि दिया गया होय उसको अध्यग्नि कहते हैं और जो पिताके घरसे पतिके घर ले जानेके समय मिले उसको अध्यावाहनिक कहते हैं और जो प्रीतिनिमित्तक कर्ममें भर्त्ता आदिकरि दिया गया होय तथा भाई और पिताने जो और समयमें दिया होय इस भांति छः प्रकारका स्त्रीधन कहा गया है॥९४॥

अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ॥ पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत् ॥ ९५ ॥ ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्वसु ॥ अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ॥ ९६ ॥

भाषा-विवाहके उपरान्त पतिके कुलसे अथवा पिताके कुलसे जो स्त्रीको मिला और जो पतिने प्रसन्न होके दिया वह और जो अध्यग्नि आदि पहले श्लोकमें कहा है वह भर्ताके जीवते मरी हुई स्त्रीका सब धन उसके पुत्रोंका होता है ॥ ९५ ॥ जिनके लक्षण कह चुके हैं ऐसा ब्राह्मण आदि पांच विवाहोंमें जो स्त्रीसंबंधी धन है वह पुत्ररहित उस स्त्रीके मरनेपर भर्त्ताहीका मनु आदिने कहा है ॥ ९६ ॥

यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु ॥ अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥ ९७ ॥ स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन ॥ ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥ ९८ ॥

भाषा-जो उक्त लक्षण आसुर राक्षस और पैशाच विवाहोंमें छः प्रकारकाभी जो

स्त्रीका धन है वह उस पुत्ररहितके मरनेपर माता पिताका होता है ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणकी नाना जातिकी स्त्रियोंमें जो क्षत्रिया आदि स्त्री पुत्रपतिरहित मर जाय तो उसका पिताका दिया हुआ धन सजाति विजाति सौतिके कन्या पुत्रोंके होनेपरभी ब्राह्मणी सौतिकी कन्या लेवे उसके न होनेमें उसके पुत्रका वह धन होता है ॥९८॥

न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात्॥ स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ॥९९॥ पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो धृतो भवेत्॥ न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥२००॥

भाषा-भाई आदि बहुत साधारण कुटुंबके धनसे भार्या आदि स्त्रियोंको रत्न अलंकार आदिके लिये धनका संग्रह न करना चाहिये और पतिकी आज्ञा विना पतिके धनसेभी न करना चाहिये तिससे यह स्त्रीधन नहीं है ॥९९॥ पतिके जीवते हुए जो अलंकार पतिकी सम्मतिसे स्त्रियोंकरि धारण किया जाय उसके मरनेपर विभागके समय पुत्र आदि उसको न बांटे बांट करनेसे पापी होते हैं ॥ २०० ॥

अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा ॥ उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः ॥ १ ॥ सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा ॥ ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥ २ ॥

भाषा-नपुंसक, पतित, जन्मांध, बहिरा, उन्मत्त, जड, गूंगा और जो कुणि पंगा आदि जिनकी इंद्रियां बिगडी हैं वे पिता आदिके धनके पानेवाले नहीं होते हैं केवळ अन्न वस्त्रके भागी होते हैं ॥ १ ॥ शास्त्रका ज्ञाता धन लेनेवाला सब इन नपुंसक आदिकोंके लिये जीवनेतक अपनी शक्तिसे भोजन वस्त्र देवे जो न दे तो पापी होय ॥ २ ॥

यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथंचन ॥ तेषामुत्पन्नतंतूनामपत्यं दायमर्हति ॥ ३ ॥ यत्किंचित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति ॥ भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः ॥ ४ ॥

भाषा-जो कैसेहू इनकी विवाहकी इच्छा होय तौ क्लीबके क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न होनेपर उन उत्पन्न हुए अपत्योंका अपत्य धनका भागी होता है ॥ ३ ॥ पिताके मरनेपर भाइयोंके साथ नहीं बँटा हुआ जेठा अपने पौरुषसे जो कुछ धन पावे उस धनमेंसे विद्याका अभ्यास करनेवाले छोटे भाइयोंका भाग होता है औरोंका नहीं॥४॥

अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत्॥ समस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा ॥ ५ ॥ विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव

धनं भवेत् ॥ मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥ ६ ॥

भाषा–विद्याहीन सब भाइयोंके खेती वणिज आदि व्यापारसे जो धन उत्पन्न होय अपने जोडे हुए धनमें उसमें पिताके धनको छोडके बराबर बांट होय उद्धार न निकाला जाय यह निश्चय है ॥५॥ विद्या मैत्री और विवाहसे जोडा हुआ और माधुपर्किक कहिये मधुपर्क देनेके समय पूज्यतासे जो मिला होय वह उसीका होता है ॥६॥

भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा ॥ स निर्भाज्यः स्वकादंशात्किंचिद्दत्त्वोपजीवनम् ॥ ७ ॥ अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम् ॥ स्वयमीहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति ॥ ८ ॥

भाषा–राजाके साथ जाने आदि कर्मसे धनके संचय करनेमें समर्थ जो भाइयोंके साधारण धनको नहीं चाहता है वह अपने भागमेंसे कुछ थोडासा देकर भाइयोंकरि जुदा करने योग्य है इससे उसके पुत्र कालांतरमें उस धनमें विवाद नहीं करि सकते है ॥ ७ ॥ पिताके धनको खर्च न करके जो खेती आदि क्लेशसे संचय करे तो उस अपनी चेष्टासे प्राप्त धनको इच्छाके विना भाइयोंको नहीं देने योग्य है ॥ ८ ॥

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् ॥ न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम् ॥ ९ ॥ विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्पुनर्यदि ॥ समस्तत्र विभागः स्याज्ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥ २१० ॥

भाषा–पिताकरि असमर्थ होनेके कारण उपेक्षा करनेसे नहीं प्राप्त हुए पिताके धनको जो पुत्र अपनी सामर्थ्यसे ले तो उस अपने संचित धनका इच्छाके विना पुत्रोंके साथ न विभाग करे ॥९॥ पहले उद्धारसमेत अथवा विना उद्धारके बँटे हुए भाई धनको इकट्ठा करि साथ रहके जीविका करते हुए जो फिरि बांट करे तो वहां बराबर बांट करना चाहिये जेठेको उद्धार न देना चाहिये ॥ २१० ॥

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः ॥ म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते ॥११॥ सोदर्या विभजेरंस्तं समेत्य सहिताः समम् ॥ भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः ॥ १२ ॥

भाषा–जिन भाइयोंसे कोई विभागके समय संन्यास आदि करि अपने भागसे हीन हो जाय अथवा मर जाय तो उसका भाग लुप्त नहीं होता है ॥ ११ ॥ सगे भाई मिल करि और सगी बहिनें इकठे रहते होंय तो उस भागको बराबर करि बांटि लेवें सगों और सौतेलोंमें जो मिलाये हुए धनके कारण योगक्षेमको बांट लेवें न सब सगे न सौतेले यह तो पुत्र पत्नी और माता पिताके न होनेमें जानना चाहिये ॥ १२ ॥

यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः ॥ सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः ॥१३॥ सर्व एव विकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम् ॥ न चादत्त्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥१४॥

भाषा–जो जेठा भाई लोभसे छोटे भाइयोंको धोखा दे वह जेठे भाईकी पूजासे रहित और उद्धार सहित भागसे रहित हो राजाके दण्ड योग्य होय ॥ १३ ॥ नहीं पतितभी जे भाई जुवां तथा वेश्याकी सेवा आदि कुकर्मोंमें लगे हुए वे धन पानेके योग्य नहीं है और छोटोंके विना दिये जेठा साधारण धनसे अपने लिये मुख्य धन न करे ॥ १४ ॥

भ्रातॄणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ॥ न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथंचन ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम् ॥ संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत स तैः सह ॥ १६ ॥

भाषा–पिताके साथ स्थित विना बँटे हुए भाइयोंका जो साथ धनसंचय करनेके लिये उत्थान हो तो बांटनेके समय किसी पुत्रको पिता अधिक न देवे ॥१५॥ जब जीवते हुए पिताकरि पुत्रोंका इच्छासे विभाग किया गया होय तब विभागके उपरान्त उत्पन्न हुआ पुत्र पिताके मरनेपर पिताहीके धनको लेवे और जिन्होंने बँटे हुए पिताके साथ फिर धनको मिलाया होय उनके साथ वह पिताके मरनेपर विभाग करे ॥ १६ ॥

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ॥ मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥१७॥ ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि ॥ पश्चाद्दृश्येत यत्किंचित्तत्सर्वं समतां नयेत् ॥ १८ ॥

भाषा–अपत्यरहित पुत्रका धन माता ग्रहण करे और माताके मरनेपर पत्नी पिताके भाई और उनके पुत्रोंके होनेपर पिताकी माता अर्थात् दादी धनको लेवे॥१७॥ पिता आदि करि लिये हुए सब ऋणमें तथा धनमें शास्त्रके अनुसार विभाग होनेपर जो कुछ पिताका ऋण धन विभागके समय विना जाना निकले वह सब बराबर करके बाँटना चाहिये शोधन करने योग्य न लेना चाहिये और न जेठेको उद्धार देने चाहिये ॥ १८ ॥

वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः ॥ योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते ॥ १९ ॥ अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणां च क्रियाविधिः ॥ क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत ॥२०॥

भाषा-वस्त्र, वाहन और आभरण साझेके समयमें जो जिस कारि भोगा गया वह उसीका है बांटने योग्य नहीं है यह तो अतिन्यून तथा अधिकमूल्यविषयक नहीं है और जो बहु मूल्य आभरण आदि हैं वह तो बांटनेही योग्य हैं और कृतान्न कहिये भात सक्तु आदि सो नहीं बांटने योग्य हैं उदक कहिये कुवा आदिमें स्थित जल सबोंकारि भोगने योग्य है बांटने योग्य नहीं है और स्त्रियां कहिये दासी आदि जिनका बराबर भाग नहीं होता है वे नहीं बांटने योग्य हैं किंतु बराबर काम करवाने योग्य हैं और योगक्षेम कहिये मंत्री पुरोहित आदि और प्रचार कहिये गौ आदिके प्रचारका मार्ग इन सबको मनु आदि अविभाज्य कहिये नहीं बांटने योग्य कहते हैं ॥ १९ ॥ यह क्षेत्रज आदि पुत्रोंका दायभाग अर्थात् क्रमसे विभाग करनेका प्रकार तुमसे कहा अब द्यूत कहिये जुवाकी व्यवस्था सुनिये ॥ २२० ॥

द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ॥ राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥ २१ ॥ प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ ॥ तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥ २२ ॥

भाषा-जिनके लक्षण आगे कहेंगे ऐसे द्यूत और समाह्वय कहिये प्राणिद्यूत इनको राजा अपने देशसे दूर करे जिससे ये दोनों दोष राजाके राज्यके विनाश करनेवाले हैं ॥ २१ ॥ ये दोनों द्यूत और समाह्वय प्रत्यक्ष चोरी हैं तिससे इनके निवारणमें राजा नित्य यत्न करता रहे ॥ २२ ॥

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ॥ प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥ २३ ॥ द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ॥ तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥ २४ ॥

भाषा-पांसा और शलाका आदि प्राणरहित वस्तुओंसे जो किया जाता है उसको लोकमें द्यूत कहते हैं और जो प्राणी कहिये मेंढा मुरगा आदिसे दांव लगाके किया जाता है उसको समाह्वय जानिये लोकमें प्रसिद्ध इन दोनोंके लक्षणोंका कहना त्यागके लिये है ॥ २३ ॥ द्यूत और समाह्वयको जो करे और जो अधिष्ठाता होके करावे उन दोनोंके अपराधकी अपेक्षासे राजा हाथ काटना आदि वध करे और यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मणोंके चिह्न धारण करनेवाले शूद्रोंको मारे ॥ २४ ॥

कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पाषण्डस्थांश्च मानवान् ॥ विकर्मस्थाञ्छौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात् ॥ २५ ॥ एते राष्ट्रे वर्त्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः ॥ विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥ २६ ॥

भाषा-द्यूत आदिके सेवन करनेवालोंको और नाचनेवालोंको गानेवालोंको और वेदसे द्वेष करनेवालोंको और श्रुतिस्मृतिसे बाहर व्रत धारण करनेवालोंको और आपत्तिके विना पराये कर्मसे जीविका करनेवालोंको और मद्य बनानेवालोंको राजा शीघ्रही अपने देशसे निकाल देवे ॥ २५ ॥ ये कितव आदि छिपे हुए चोर राजाके देशमें वसते हुए नित्य छलनकी क्रियासे सज्जनोंको पीडा देते हैं ॥ २६ ॥

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ॥ तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ २७ ॥ प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः ॥ तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥ २८ ॥

भाषा-अभी यह नहीं किंतु पहले कल्पमेंभी यह द्यूत अतिशय कारि वैर करानेवाला देखा गया है इससे बुद्धिमान् हँसीके लियेभी उसका सेवन न करे ॥ २७ ॥ जो मनुष्य उस द्यूतका गुप्त अथवा प्रगट सेवन करता है उसको जैसी राजाकी इच्छा होय वैसा दंड होय ॥ २८ ॥

क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् ॥ आनृण्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैः शनैः ॥ २९ ॥ स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् ॥ शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ॥ २३० ॥

भाषा-अब हारे हुओंके धन न होनेपर यह कहते हैं. क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रजातिमें उत्पन्न पुरुषके धन न होनेसे धन देनेको न समर्थ होंय तो उससे उसके योग्य कर्म करवाके धनका शोधन करे और ब्राह्मण तो जैसा मिलता जाय वैसा क्रमसे देता जाय कर्म करवाने योग्य नहीं है ॥ २९ ॥ स्त्री, बालक, वृद्ध, उन्मत्त, दरिद्री और रोगियोंको शिफा वांसका खंड और रस्सी आदि कारि बांधने आदिसे राजा दंड करे ॥ २३० ॥

ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् ॥ धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः ॥ ३१ ॥ कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ॥ स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ॥ ३२ ॥

भाषा-जो व्यवहार आदिके देखने अर्थात् निर्णय करनेमें राजा कारि नियत किये हुए उत्कोच धन कहिये घूंसि लेनेसे तथा तेजीसे बिगड कर अर्थी आदिके कामको बिगाडें राजा उनका धन आदि सर्वस्व छीन लेवे ॥ ३१ ॥ छलसे राजाकी आज्ञा (हुक्म) लिखनेवालोंको और स्त्री बालक तथा ब्राह्मणके मारनेवालोंको और शत्रुकी सेवा करनेवालोंको राजा मार डाले ॥ ३२ ॥

तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन यद्भवेत् ॥ कृतं तद्धर्मतो विद्यान्न तद्भूयो निवर्तयेत् ॥३३॥ अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा ॥ तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत् ॥ ३४ ॥

भाषा—जहां ऋणदान आदि व्यवहारमें जिस कार्यकी शास्त्रकी व्यवस्थासे निर्णय हो गया होय और कहे हुए दण्डतक जो पहुँच गया होय उस किये हुएको अंगीकार करे फिर न लौटावे यह विना कारण किये हुएकी व्यवस्था है इससे कारणसे किये हुएको तौ लौटावे ॥ ३३ ॥ राजाके मंत्री अथवा प्राड्विवाक व्यवहारके देखनेमें नियत किये हुए भली भांति निर्णय न करें तो राजा आप करे और उनपर हजार पण दंड करे यह तौ घूंसिका धन न लेनेमें कहा है उसको तो पहले कह चुके हैं ॥ ३४ ॥

ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ एते सर्वे पृथग्ज्ञेया महापातकिनो नराः ॥ ३५ ॥ चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ॥ शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ ३६ ॥

भाषा—ब्रह्महा कहिये ब्राह्मणका मारनेवाला मद्यका पीनेवाला अर्थात् पैष्टिका पीनेवाला द्विजाति और पैष्टी साध्वी तथा गौडीका पीनेवाला ब्राह्मण और ब्राह्मणका सुवर्ण चुरानेवाला तस्कर और गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला ये सब प्रत्येक महापातकी जानने योग्य हैं ॥ ३५ ॥ प्रायश्चित्त करनेवाले इन चारों महापातकियोंको शरीरसम्बन्धी और धनके ले लेनेसे धनसंबंधी अपराधके अनुसार धर्मयुक्त आगे कहे हुए दण्डको करे ॥ ३६ ॥

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ॥ स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥ ३७ ॥ असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपाठ्याविवाहिनः ॥ चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ३८ ॥

भाषा—"नांक्या राज्ञा ललाटे स्युः" अर्थात् राजा करि ललाटमें न अंकन करने योग्य है यह आगे कहा है इससे ललाटही अंकनका स्थान जाना जाता है वहां गुरुपत्नीसे गमन करनेवालेके ललाटमें तपे हुए लोहसे जीवनेतक रहनेवाले भगकी आकृति गुरुकी पत्नीसे गमनका चिह्न करे ऐसेही मदिरापान करनेपर पीनेवालेके लंवा सुराध्वजके आकारका चिह्न करे और सोना चुरानेपर चुरानेवालेके माथेमें कुत्तेके पैरका और ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले कबंध पुरुषका अर्थात् विना शिरके पुरुषका चिह्न करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इनको अन्न आदि न भोजन करावे और न इनको यजन करावे और न इनको पढावे और इनके साथ कन्यादान आदि सम्बन्ध

न करना चाहिये ये तो निर्द्धन होनेसे याचन आदि दीनतायुक्त और सब श्रौत आदि कर्मोंसे रहित पृथिवीमें भ्रमण करें ॥ ३८ ॥

ज्ञातिसंबन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः ॥ निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥३९॥ प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्ववर्णा यथोदितम् ॥ नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ॥२४०॥

भाषा-ज्ञातिके मनुष्यों करि तथा मामा आदि संबंधियोंकरि ये अंकन किये हुए पुरुष छोडने योग्य हैं इनके ऊपर दया न करनी चाहिये और न ये नमस्कार करने योग्य हैं यह मनुकी आज्ञा है ॥ ३९ ॥ शास्त्रमें कहे हुए प्रायश्चित्तके करनेवाले ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण ललाटमें नहीं अंकन करने योग्य हैं किंतु उत्तम साहसदंड करने योग्य हैं ॥ २४० ॥

आगःसु ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः ॥ विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥ ४१ ॥ इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यकामतः ॥ सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् ॥ ४२ ॥

भाषा-" इतरे कृतवंतस्तु " इस आगेके श्लोकमें कहा हुआ " अकामतः " यह यहांभी योजना करनी चाहिये तिससे अकामसे किये हुए इन अपराधोंमें गुणवान् ब्राह्मणको मध्यम साहस दण्ड करना चाहिये और पहले कहा हुआ उत्तम साहस निर्गुणीके लिये जानना चाहिये और कामसे इन अपराधोंमें धनधान्य आदि सामग्री समेत ब्राह्मण देशसे निकालने योग्य है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणसे अन्य क्षत्रिय आदि इन पापोंको विना इच्छाके करे तो सर्वस्व हरनेको योग्य है और इच्छासे इनके इन अपराधोंमें प्रवास कहिये वधके योग्य है ॥ ४२ ॥

नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम् ॥ आददानस्तु तल्लोभात्तेन दोषेण लिप्यते ॥ ४३ ॥ अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायोपपादयेत् ॥ श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥ ४४ ॥

भाषा-धार्मिक राजा दण्डरूप इन महापातकियोंके धनको न लेवे और लोभसे लेता हुआ महापातक दोषका संसर्गी होता है ॥ ४३ ॥ फिर वह दण्डका धन कहां जाय इसलिये कहते हैं. उस दण्डके धनको नदी आदिके जलमें डालकर वरुणको देवे अथवा शास्त्र तथा उत्तम चरित्रयुक्त ब्राह्मणको देवे ॥ ४४ ॥

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः ॥
ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ४५ ॥

भाषा–महापातकीके दण्डके धनके स्वामी वरुण हैं जिससे दंडधारी होनेके कारण राजाओंकेभी स्वामी हैं तैसेही सब वेदोंका पढनेवाला ब्राह्मण सब जगत्का प्रभु है इससे प्रभुत्वसे वे दोनों दण्डके धनके योग्य हैं ॥ ४५ ॥

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यो धनागमम्॥ तत्र कालेन जायन्ते मानवा दीर्घजीविनः ॥४६॥ निष्पद्यन्ते च सस्यानि यथोक्तानि विशां पृथक् ॥ बालाश्च न प्रमीयन्ते विकृतं न च जायते ॥ ४७ ॥

भाषा–जिस देशमें राजा महापातकीके धनको नहीं लेता है वहां परिपूर्ण कालसे मनुष्य उत्पन्न होते हैं और दीर्घ आयुके होते हैं और वैश्योंके जैसे धान आदि सस्य बोये जाते हैं वैसेही पृथक् पृथक् उत्पन्न होते हैं और अकालमें बालक नहीं मरते हैं और अंगभंग कोई प्राणी नहीं उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम् ॥
हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ॥ ४८ ॥

भाषा–शरीरकी पीडा और धन लेने आदिसे ब्राह्मणको इच्छासे बाधा देनेवाले शूद्रको हाथ काटने आदि दुःख देनेवाले वधके उपायोंसे राजा मारे ॥ ४८ ॥

यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे ॥ अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः ॥४९॥ उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवदमानयोः ॥ अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥ २५० ॥

भाषा–शास्त्रसे अवध्यके मारनेमें जितना अधर्म होता है उतनाही मारने योग्यके छोडनेमेंभी शास्त्रके अनुसार दण्ड देते हुए राजाका धर्म होता है तिससे उसको करे ॥ ४९ ॥ ऋणदान आदि अठारह व्यवहारके स्थानोंमें परस्पर विवाद करनेवाले अर्थी प्रत्यर्थीका यह कार्यनिर्णय विस्तारसे कहा ॥ २५० ॥

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः ॥ देशानलब्धांल्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत् ॥ ५१ ॥ सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः ॥ कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

भाषा–इस कहे हुए प्रकारसे धर्मयुक्त व्यवहारोंका निर्णय करता हुआ राजा प्रजाकी प्रीतिसे नहीं पाये हुए देशोंके लेनेकी इच्छा करे और पाये हुए देशोंकी भली भांतिसे रक्षा करे ॥ ५१ ॥ " जांगलं सस्यसंपन्नं " इस कही हुई रीतिसे जो भली भांति आश्रित देश है उसमें सातवें अध्यायमें कहे हुए प्रकारसे किला बनाकर चोर साहसिक आदि कंटकोंके दूरि करनेमें सदा बडा यत्न करे ॥ ५२ ॥

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ॥ नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥ ५३ ॥ अशासंस्तस्करान्यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः ॥ तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥ ५४ ॥

भाषा-जिससे साधु आचरणवालोंकी रक्षा करने और चौर आदिकोंको दंड देनेसे प्रजाके पालनमें उद्योगयुक्त राजा स्वर्गको जाते हैं तिससे कंटकोंके उखाडनेमें यत्न करे ॥ ५३ ॥ जैसे फिरि राजा चोर आदिकोंको न दूरि करता हुआ छठा भाग आदि कहे हुए करको लेता है उसपर देशके वसनेवाले मनुष्य क्रोधित होते हैं और दूसरे कर्मोंसे प्राप्त हुईभी उसकी स्वर्गकी गति इस पापसे रुकि जाती है ॥ ५४ ॥

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ॥ तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः ॥ ५५ ॥ द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान् ॥ प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ॥ ५६ ॥

भाषा-जिस राजाके बाहुबलके आश्रयसे देश चोर आदिकोंके भयसे रहित होता है उसका वह देश नित्य ऐसे वृद्धिको प्राप्त होता है जैसे जलके सींचनेसे वृक्ष ॥ ५५ ॥ चार कहिये दूतही हैं नेत्र जिसके ऐसा राजा दूतोंहीके द्वारा प्रकट तथा गुप्त दो भांतिके पराये धनके लेनेवालोंको जाने ॥ ५६ ॥

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ॥
प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ॥ ५७ ॥

भाषा-उन चोर आदिकोंमेंसे जो तराजू बांट आदिके घाटि होनेसे सुवर्ण आदि वेचनेकी वस्तुके वेचनेवाले पराये धनको लेते हैं वे खुले ठगनेवाले चोर हैं और सेंधिके फोडने आदिसे तथा वनके रहनेवाले जे लूटिसे पराये धनको लेते वे गुप्त चोर हैं ॥ ५७ ॥

उत्कोचकाश्चौपधिका वञ्चकाः कितवास्तथा ॥ मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह ॥ ५८ ॥ असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः ॥ शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः ॥ ५९ ॥ एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशाँल्लोककण्टकान् ॥ निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिङ्गिनः ॥ २६० ॥

भाषा-घूंसि लेनेवाले जे कार्यी जे मुकद्दमेवाले हैं उनसे धन लेकर अयोग्य कार्य करते हैं और औपाधिक जे भय दिखाके छलते हैं और वंचक जे सुवर्ण आदि

द्रव्यको लेकर घटकी द्रव्य डालकर छलते हैं और कितव जे द्यूत तथा प्राणिद्यूतसे खेलते हैं और जे धन पुत्र लाभ आदि मंगलोंकी ममताको कहकर जीविका करते हैं वे मंगलादेशवृत्त हैं और जे कल्याण करनेवाले आचारोंसे पापोंको छुपाके धन लेते हैं वे भद्र हैं और जे हाथोंकी रेखा आदिके देखनेमें शुभाशुभ फल कहके जीविका कहते हैं वे ईक्षणिक हैं और जे हाथीकी शिक्षासे जीवते हैं वे महामात्र हैं और जे चिकित्सासे जीविका करते हैं वे चिकित्सक हैं महामात्र और चिकित्सक ये दोनों असम्यक्कारी अर्थात् अच्छा काम करनेवाले नहीं हैं और शिल्पोपचारयुक्त कहिये जे चित्रके लिखने आदि उपायसे जीवते हैं नियुक्त किये गये येभी शिल्पका उत्साह दिलाकर धनको ले लेते हैं और पण्य स्त्री कहिये वेश्याभी दूसरेके वश करनेमें चतुर होती हैं इत्यादि खुले हुए लोकके छलनेवालोंको राजा चारोंके द्वारा जाने तथा औरभी गुप्तरूपसे विचरनेवाले शूद्र आदिकोंको जो ब्राह्मण आदिकोंका वेष धारण करते हैं उनको धन हरनेवाले जानें ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ २६० ॥

तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः ॥ चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत् ॥ ६१ ॥ तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः ॥ कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः ॥ ६२ ॥

भाषा–उन कहे हुए वंचकोंको गुप्तरूप सभाके मनुष्योंके द्वारा तथा उस कामके करनेवाले सभ्य मनुष्योंके द्वारा जैसे बनियोंके चोरीको बनियोंके द्वारा इत्यादिक पुरुषोंकरि तथा इनसे भिन्न सातवें अध्यायमें कहे हुए कापटिक आदि अनेक स्थानोंमें स्थित चारोंके द्वारा जानि उत्सादन करके अपने वशमें करे ॥ ६१ ॥ उन प्रकट तथा गुप्त तस्करोंके अपने कर्म चोरी आदिमें सेंधि फोडने आदि पारमार्थिक दोषोंको लोकमें उनसे कहवाय उनके धन तथा शरीर आदिके सामर्थ्यकी अपेक्षासे तथा अपराधकी अपेक्षासे उनपर राजा दंड करे ॥ ६२ ॥

न हि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ॥
स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥ ६३ ॥

भाषा–जिस कारणसे चोरोंका और विनीत वेषसे पृथिवीतलमें विचरनेवाले पाप करनेकी बुद्धिवाले मनुष्योंको दंड देनेके विना पापक्रियामें नियम नहीं हो सकता है इससे इनको दंड देवे ॥ ६३ ॥

सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ॥ चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च ॥ ६४ ॥ जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च ॥ शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि

च ॥ ६५ ॥ एवंविधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ॥ तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् ॥ ६६ ॥

भाषा–सभा अर्थात् ग्राम नगर आदिमें नियत जनोंके समूहका स्थान तथा प्याऊ और पूपोंकी शाला जहां पूआ विकते हैं वेश्याका स्थान और मद्यके तथा अन्नके विकनेका स्थान, चौराहे तथा प्रसिद्ध वृक्षोंके मूल और जनसमूहके स्थान, पुरानी फुलवाडी, वन, कारीगरोंके घर कहिये कारखाने, शून्यघर, आम आदिके बाग और बनाये हुए वन ऐसे स्थानोंको राजा स्थावर जंगम कहिये एक स्थानमें ठहरी हुई और चलती हुई पयादोंकी सेनाको तथा अन्य दूतोंको चोरोंके निवारणके लिये भेजे बहुधा ऐसे स्थानोंमें अन्नपान तथा स्त्रीसंभोग आदिके ढूंढनेके लिये चोर बसते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ॥ विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः ॥ ६७ ॥ भक्ष्यभोज्यापदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः ॥ शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥ ६८ ॥

भाषा–उनकी सहायता करनेवाले और उनके चरित्रोंके समान चारित्र और सेंधि फोडने आदि कामोंके जाननेवाले चोरोंकी मायामें निपुण दूतरूप पहले चोरोंसे अन्य चोरोंको जाने और उनके दूरि करनेका प्रबंध करे॥६७॥दूत हुए वे पहले चोर और चोरोंसे ऐसे कहें कि, आइये हमारे घर चालिये वहां लड्डू खीर आदि खावें ऐसे भक्ष्य भोज्यके बहानेसे और हमारे देशमें एक ब्राह्मण है वह चाही हुई अर्थसिद्धिको जानता है उसको देखें ऐसे ब्राह्मणोंके दर्शनोंसे और कोई अकेलाही बहुतोंके साथ युद्ध करेगा उसको देखें इस भांति शौर्य कर्मके बहानेसे उन चोरोंसे राजाके दंड धारण करनेवाले पुरुषोंसे मेल करें और उनको पकडवा देवें ॥ ६८ ॥

ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये ॥ तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्समित्रज्ञातिबान्धवान् ॥ ६९ ॥ न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः ॥ सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ॥ २७० ॥

भाषा–जो चोर वहां भक्ष्य भोज्य आदिमें पकडे जानेकी शंकासे न आवे और जे मूल कहिये राजाकरि नियुक्त पुराने चोरोंके समूहमें सावधान हो उनके साथ संगति न करे उनको उन्हीं पुराने चोरोंके द्वारा जानि उनमें मिले हुए मित्र पिता आदि और जाति स्वजन समेत बलसे पकडकर मारे ॥ ६९ ॥ धर्मात्मा राजा चुराये हुए द्रव्यके सेंधि फोडने आदिको उपकरण कुदाली आदिके विना चोरपनका नि-

श्चय विना किये न मारे किंतु चुराये हुए द्रव्यसे और चोरीकी सामग्रीसे चोरपनका निश्चय करि विना विचारके मारे ॥ २७० ॥

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ॥ भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत् ॥७१॥ राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान् ॥अभ्याघातेषु मध्यस्थाञ्छिष्याच्चौरानिव द्रुतम् ॥७२॥

भाषा-ग्राम आदिकोंमेंभी जे कोई चोरोंका चोरपन जानके भोजन देते हैं और चोरीके उपयोगी भांड आदिके रखनेको स्थान देते हैं उनकोभी अपराधी जानि राजा मरवावे ॥ ७१ ॥ जे देशोंमें रक्षाके लिये रक्खे गये हैं और जे सीमाके समीप वसनेवाले क्रूर न होकर चोरीके उपदेश करनेसे मध्यस्थ होंय उनको चोरके समान शीघ्र दंड देवे ॥ ७२ ॥

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः ॥ दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥७३॥ ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने ॥ शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥७४ ॥

भाषा-यजन कराना तथा दान लेने आदिसे दूसरेके यज्ञ आदि धर्मको उत्पन्न करि जो जीवता है वह धर्मजीवी ब्राह्मण जो धर्मकी मर्यादासे वाहर हो जाय तौ अपने धर्मसे भ्रष्ट हुए उसकोभी राजा दंडसे पीडा देवे ॥ ७३ ॥ चोर आदि करि ग्रामके लूटने और जलको बांध तोडनेपर और खेतमें उत्पन्न धान्यको नाश करने तथा मार्गमें चोरके देखनेपर उनके समीपके जे अपने शक्तिके अनुसार रक्षा न करे उनको राजा शय्या और गौ आदि पशुओंसमेत देशसे निकाल देवे ॥ ७४ ॥

राज्ञः कोपापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ॥ घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥७५॥ संधिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ॥ तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ॥७६॥

भाषा-राजाके भंडारसे धनके चुरानेवालोंको तथा राजाकी आज्ञाके न माननेवालोंको और शत्रुओंका राजासे वैर वढानेवालोंको अपराधके अनुसार हाथ पांव जीभ काटने आदि नाना प्रकारके दंडोंसे मरवावे ॥ ७५ ॥ जे चोर रातिमें सेंधि फोडकर पराये धनको चुराते हैं राजा उनके दोनों हाथ काटके उनको शूलीपर चढावे ॥ ७६ ॥

अंगुलीग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ॥ द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥७७॥ अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावका-

शदान् ॥ संनिधातॄंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ॥ ७८ ॥

भाषा-वस्त्रके किनारे आदिमें बंधे हुए सुवर्णको जो गांठि खोलके चुराता है वह ग्रंथिभेदक अर्थात् गंठिकटा होता है उसके पहले द्रव्य लेनेमें अंगुली कहिये अंगूठा और तर्जनी कटवा दी और दूसरी वार लेनेमें हाथ पांव दोनों कटवा दे और तीसरी वार लेनेमें वधके योग्य होते हैं ॥ ७७ ॥ ग्रंथिभेदको कहिये गंठिकटोंको जानके आगि भोजन और शस्त्र रखनेके लिये स्थान देनेवालोंको तथा चोरीका धन रखनेवालोंको राजा चोरके समान दंड देवे ॥ ७८ ॥

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ॥ यद्वापि प्रतिसंस्कु-
र्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ॥ ७९ ॥ कोष्ठागारायुधागारदेवताग-
रभेदकान् ॥ हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥ २८० ॥

भाषा-जो स्नान आदिसे मनुष्योंके उपकार करनेवाले तालावको वांध आदिके तोडनेसे विगाडें उनको जलमें डुववाके अथवा और प्रकारसे मारे अथवा जो तडागका फिरि संस्कार करे उसको उत्तम साहस रूप हजार पण दंड देवे ॥ ७९ ॥ राजाके कोठार और धन तथा शस्त्रोंके घरके फोडनेवालोंको और वहुत धनके खरचसे वनने योग्य देवालय आदिके फोडनेवालोंको और हाथी घोडा तथा रथ चुरानेवालोंको शीघ्रही मारे ॥ २८० ॥

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् ॥ आगमं वाप्यपां भि-
न्द्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् ॥ ८१ ॥ समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्य-
मनापदि ॥ स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत् ॥ ८२ ॥

भाषा-जो फिर प्रजाके लिये पहले किसी कारि वनाये हुए तालावके जलही ले ले तालावके सव जलके नाश करनेमें पहले कहा हुआ वध दंड करना योग्य है और जो वांध वांधि कारि जलके मार्गका नाश करता है उसपर प्रथम साहस दंड करना चाहिये ॥ ८१ ॥ जो रोगी न होनेपर राजमार्गमें विष्ठा करे वह दो कार्षापण दंड देवे और अपवित्रको शीघ्रही दूर करे ॥ ८२ ॥

आपद्गतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव वा ॥ परिभाषणमर्हन्ति
तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥८३॥ चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्या-
प्रचरतां दमः ॥ अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥ ८४ ॥

भाषा-रोगी वृद्ध गर्भिणी और वालक ये दंड देने योग्य नहीं हैं किंतु उनसे ऐसे कहना चाहिये कि, तुमने यह क्या किया और अपवित्र शुद्ध कराने योग्य है

यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ८३ ॥ सब कायशल्यभिषज अर्थात् चीराफारी करनेवाले वैद्य जो दुष्ट चिकित्सा करें तौ उनको दंड देना चाहिये वहां गौ, घोडा आदिकी दुष्ट चिकित्सामें प्रथम साहस दंड है और मनुष्यमें तौ मध्यम साहस दंड योग्य है॥८४॥

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ॥ प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥ ८५ ॥ अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा ॥ मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥ ८६ ॥

भाषा-संक्रम कहिये जलके ऊपर जानेके लिये काष्ठ अथवा शिला आदिसे बने हुए छोटे पुलको और ध्वज कहिये चिह्न राजद्वार आदिमें और यष्टि पुष्करिणी आदिमें और प्रतिमा कहिये छोटी मट्टी आदिकी बनी हुई इन सबोंके नाश करनेवालेपर पांच सौ पण दंड करे और उस विगाडे हुएको फिर नया बनावे ॥ ८५ ॥ शुद्ध वस्तुओंमें कम दामकी वस्तु मिलाकर दूषित करनेमें और नहीं तोडने योग्य माणिक्य आदि मणियोंके तोडनेमें और वेधने योग्य मोती आदिकोंके कुठोर वेधनेमें प्रथम साहस दंड करना चाहिये और सबोंमें पराई वस्तुके नाश करनेमें दूसरी वस्तु आदिके देनेसे स्वामीका संतोष करना चाहिये ॥ ८६ ॥

समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा ॥ समाप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ॥८७॥ बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत् ॥ दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिणः ॥ ८८ ॥

भाषा-बराबर मोल देनेवालोंके साथ बढकी तथा घटकी वस्तु देनेसे जो विषमव्यवहार करता है और बराबर मोलकी वस्तुको देकर जो किसीकी बहुत मोलकी किसीकी थोडे मोलकी इस भांति विपम मोलको लेता है वह अनुबंध विशेषकी अपेक्षासे प्रथम साहस अथवा मध्यम साहस दंडको प्राप्त होय ॥ ८७ ॥ बंधनगृह (जेलखाने) सब मनुष्योंके देखने योग्य राजा मार्गके समीप बनावे जहां बेडी आदि बंधनोंसे बंधे हुए भूंख प्याससे दुःखी और जिनके नख डाढी मूछ आदि बाल बढे हुए दुबले पाप करनेवालोंको और पाप करनेवाले पाप न करनेके लिये देखें ॥८८॥

प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ॥
द्वाराणां चैव भेत्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ८९ ॥
अभिचारेषु सर्वेषु कर्त्तव्यो द्विशतो दमः ॥
मूलकर्मणि चानाते कृत्यासु विविधासु च ॥ २९० ॥

भाषा-और राजा घर तथा शहरके परकोटेके फोडनेवालेको और उन्हींकी

खाईके पूरनेवालेको और उनके द्वारोंके तोडनेवालोंको शीघ्रही देशसे निकाल देवे ॥ ८९ ॥ अभिचार होम आदि शास्त्रमें कहे हुए मारनेके उपायोंमें और जड खोदना पैरोंकी धूली लेने आदि लौकिक मारनेके उपायोंके करनेपर जो मरनेका फल न होय तौ दो सौ पण दण्ड करना चाहिये और जो मर जाय तौ मनुष्यके मारनेका दण्ड करे ऐसे माता, पिता, स्त्री आदिसे भिन्न झूंठी बातोंसे मोहित करि धन लेने आदिके लिये वश करनेमें और कृत्या कहिये नाना प्रकारके उच्चाटन आदिके करनेमें दो सौ पण दण्ड करना चाहिये ॥ २९० ॥

अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च ॥ मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम् ॥ ९१ ॥ सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः ॥ प्रवर्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः ॥ ९२ ॥

भाषा-अबीज कहिये जलसे नहीं उगने योग्य धान आदिको उगनेके योग्य कहके जो बेचे अथवा घटिकी वस्तुको बहुतसी बढिकी वस्तुमें मिलाके यह सब बढिकी है ऐसे कहके जो बेचे और जो ग्राम नगर आदिकी सीमाका नाश करे यह नाक, हाथ, पांव, कान काटके वधके योग्य है ॥ ९१ ॥ सब कंटकोंमें बहुतही पापी तैलमें छल करनेवाले और कसममें बदलकर घटिकी धातु मिलायके सोने आदिकी चोरी करनेवाले सुनारकी सब देहको छुरोंसे कटवायके खंड खंड कराय दे ॥ ९२ ॥

सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥ कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ९३ ॥ स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ॥ सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ ९४ ॥

भाषा-जोती जाती हुई भूमिकी हल कुदाली आदिके चुरानेमें और खड्ग आदि शस्त्रोंके तथा कल्याणघृत आदि औषधके चुरानेपर उपयोगकालसे दूसरे कालकी अपेक्षासे और प्रयोजनकी अपेक्षासे राजा दंड करे ॥ ९३ ॥ स्वामी कहिये राजा और अमात्य कहिये मंत्री आदि और पुर कहिये राजाका किया हुआ दुर्ग वसनेका नगर राष्ट्र कहिये देश और कोश कहिये धनका समूह और दंड कहिये हाथी, रथ, पयादे और सातवें अध्यायमें कहे हुए तीनि प्रकारके मित्र ये सात प्रकृति कहिये अंग हैं इससे यह राज्य सप्तांग कहा जाता है ॥ ९४ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ॥ पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्व्यसनं महत् ॥ ९५ ॥ सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदण्डवत् ॥ अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किंचिदतिरिच्यते ॥ ९६ ॥

भाषा-क्रमसे कहे हुए राज्यके इन सात अंगोंमें अगले २ की अपेक्षा पिछले

२ को भारी जाने जैसे मित्रके व्यसनसे अपने बल कहिये सेनाका व्यसन भारी है क्योंकि, संपन्न सेनाहीकी मित्रके अनुग्रहमें सामर्थ्य है ऐसेही सेनासे कोश भरी है क्योंकि कोशके नाशमें सेनाकाभी नाश होता है और कोशसे राष्ट्र भारी है क्योंकि राष्ट्रके नाशमें कोशकी उत्पत्ति कहांसे होय और ऐसे राष्ट्रसे दुर्ग भारी है, क्योंकि घास ईंधन और रसादिसे भरे हुए दुर्गहीसे राज्यकी रक्षा होती है और दुर्गसे मंत्री भारी है क्योंकि प्रधान मंत्रीके नाशमें सब अंग बिगड जाते हैं और मंत्रीसेभी आत्मा भारी है क्योंकि सब आत्माहीके लिये हैं तिससे अगले-की अपेक्षासे पिछलेकी यत्नसे रक्षा करे ॥ ९५ ॥ त्रिदंडीके त्रिदंडके समान बंधे हुए इस कहे हुए राज्यके सातों अंगोंमें आपसमें विलक्षण उपकरण होनेके कारण कोईभी अंग अधिक नहीं होता है यद्यपि पहले श्लोकमें पूर्व पूर्व अंगकी अधिकता कही तिसपरभी इन अंगोंमेंसे अन्य अंगका अपकार अन्य अंग नहीं कर सकता है इससे आगे २ के अंगकी अपेक्षा करनी योग्य है इसालिये यह अ-धिकताका निषेध है यहां प्रसिद्ध यतीका त्रिदंडही दृष्टांत है जैसे वह चार अंगुलके गौके बालेंके लपेटनेसे आपसमें बंधे होते हैं और उनमेंसे त्रिदंड धारण शास्त्रार्थमें कोई दंड अधिक नहीं होता है ॥ ९६ ॥

तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यते ॥ येन यत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिञ्छ्रेष्ठमुच्यते ॥ ९७ ॥ चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम् ॥ स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ॥ ९८ ॥

भाषा–जिससे उन २ करने योग्य कार्योंमें वह वह अंग अधिकता युक्त होता है क्योंकि, उसका कार्य दूसरा नहीं कर सकता है ऐसे तो जिस अंगसे जो काम होता है उसमें वही प्रधान कहा जाता है तिससे आपसमें जो गुणोंकी अधिकता आदि कही सो इससे प्रकट की गई ॥ ९७ ॥ सातवें अध्यायमें कहे हुए कापटिक आदिसे सेनाके उत्साहके योगसे और हस्तिबंध तथा वणिक्पथ आदिके करनेसे उत्पन्न हुई अपनी और शत्रुकी शक्तिको राजा सदा जाने ॥ ९८ ॥

पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च ॥ आरभेत ततः कार्यं संचिन्त्य गुरुलाघवम् ॥ ९९ ॥ आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ॥ कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥ ३०० ॥

भाषा–पीडन कहिये मारक आदि अपने तथा पराये चक्रमें उत्पन्न काम क्रोधसे उत्पन्न दुःखोंको और उनके भारीपन तथा हलकेपनको विचारके संधिविग्रह आदि कार्यका आरंभ करे ॥ ९९ ॥ राजा अपने राज्यकी वृद्धि और शत्रुकी हानि

करनेवाले कर्मोंको जो बडी कठिनाईसेभी किये गये होंय उन किये हुएभी कार्यों-का आरंभ करके आप खेदयुक्त होनेपरभी उनका वारंवार फिरभी आरंभ करे कारण यह है कि, कर्मोंके आरंभ करनेवाले पुरुषको लक्ष्मी बहुतही सेवन करती है ॥ ३०० ॥

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च ॥ राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥ १ ॥ कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्द्वापरं युगम् ॥ कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ २ ॥

भाषा–सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये राजाहीके चेष्टित विशेष हैं उन्हींसे सत्य आदि विशेषोंकी प्रवृत्ति होती है तिससे राजाही कृत आदि युग कहा जाता है ॥ १ ॥ कैसा चेष्टित कृत आदि युग है इसपर कहते हैं अज्ञान और आलस्य आदिसे जब राजा उद्योगरहित होता है तब कलियुग हैं और जानते हुएभी नहीं करता है तब द्वापर और जब कर्म करनेमें अवस्थित होता है तब त्रेता और फिरि जब शास्त्रके अनुसार कर्मोको करता हुआ विचरता है तब सतयुग है तिससे राजाको कर्म करनेमें तत्पर होना चाहिये वहां यह तात्पर्य है वास्तविक कृत आदिका भेटना नहीं है ॥ २ ॥

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च ॥ चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥ ३ ॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ॥ तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥ ४ ॥

भाषा–इंद्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चंद्र, अग्नि और पृथिवीके वीर्यके अनुरूप चरित राजा करे और राजा कंटकोंके उखाडनेसे प्रताप अनुराग करके युक्त होता है ॥ ३ ॥ कैसे इंद्र आदिका चरित्र करे इसपर कहते हैं. ऋतु संवत्सर और पक्षका आश्रय लेकर यह कहा जाता है. जैसे श्रावण आदि चारि महीने सस्य आदिकी सिद्धिके लिये इंद्र बरसता है ऐसे इंद्रके चरितको करता हुआ राजा अपने देशमें आये हुए साधुओंको वांछित अर्थोंसे पूर्ण करे ॥ ४ ॥

अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ॥ तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥ ५ ॥ प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ॥ तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ ६ ॥

भाषा–जैसे सूर्य अगहन आदि आठ महीने किरणोंसे थोडा २ रस थोडे तापसे ग्रहण करते हैं ऐसेही राजा शास्त्रमें कहे हुए करोंको पीडाके विना देशसे ग्रहण करे जिससे यह सूर्यका व्रत है ॥ ५ ॥ जैसे प्राण नाम पवन सब जीवोंमें भीतर प्र-

वेश करके विचरता है ऐसेही चारके द्वारा अपने पराये राज्यमंडलमें चिकीर्षित अर्थ जाननेके लिये भीतर प्रवेश करना चाहिये जिससे यह पवनका चरित है॥ ६ ॥

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ॥ तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्॥ ७ ॥ वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते ॥ तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥ ८ ॥

भाषा-यद्यपि यमके शत्रु मित्र नहीं है तिसपरभी उसके निंदक और पूजकोंका शत्रु मित्र कथन है. जैसे यम शत्रु मित्रके मरनेके समय तुल्यके समान दंड देता है ऐसेही राजाकोभी अपराधके समय रागद्वेषको छोडकर प्रजा शासन करने योग्य है जिससे यह यमका व्रत है ॥ ७ ॥ जो वरुणकी रस्सियोंसे बांधनेको इष्ट है वह जैसे पाशोंसे बंधाही हुआ दीखता है वैसेही पाप करनेवाले जबतक न कुछ कर सकें तबतक शासन करे जिससे यह इसका वरुणका व्रत है ॥ ८ ॥

परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः ॥ तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः ॥ ९ ॥ प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु ॥ दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥ ३१० ॥

भाषा-जैसे चंद्रमाके देखनेसे मनुष्य हर्षित होते हैं ऐसेही मंत्री आदि जिसके देखनेसे संतोषको प्राप्त होंय वह चंद्राचारी राजा है॥९॥पाप करनेवालोंका दंड देनेमें सदा प्रचंड होय और प्रतिकूल मंत्रियोंका मारनेवाला होय यह इसका अग्निसंबंधी व्रत कहा गया है ॥ ३१० ॥

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ॥ तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥ ११ ॥ एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः ॥ स्तेनान्राजा निगृह्णीयात्स्वराष्ट्रे पर एव च ॥ १२ ॥

भाषा-जैसे पृथिवी सब बडे छोटे स्थावर जंगम ऊंचे नीचेको समान करके धारण करती है ऐसेही विद्वान् धनवान् गुणवान् जीवोंको तथा इनसे भिन्न दीन अनाथ आदि सब जीवोंको रक्षा करने और धन देने आदिसे सामान्यता करि धारण करनेवाले राजाका पृथिवी संबंधी व्रत होता है ॥ ११ ॥ इन कहे हुए उपायोंसे और अपनी बुद्धिसे उत्पन्न हुए विना कहे हुओंसे राजा आलस्यरहित हो अपने देशमें जो चोर बसते होंय और पराये देशके बसनेवाले अपने देशमें आके चोरी करते होंय उन दोनों प्रकारके चोरोंको पकडे ॥ १२ ॥

परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत् ॥ ते ह्येनं कुपिता ह-

न्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥ १३ ॥ यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ॥ क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् ॥ १४ ॥

भाषा-कोशके क्षीण होने आदिसे बडी आपत्तिको प्राप्तभी राजा ब्राह्मणोंको क्रोधित न करे जिससे क्रोधित हुए वे सेनावाहन समेत इसको शीघ्रही शाप तथा अभिचारसे मारेंगे ॥ १३ ॥ जिन ब्राह्मणों करि अभिशापसे अग्नि सर्वभक्षी किया गया और समुद्र नहीं पीने योग्य है जल जिसका ऐसा किया गया और चंद्रमा क्षीणतायुक्त किया गया पीछे पूर्ण किया गया उनको कुपित करके कौन नाशको न प्राप्त होय ॥ १४ ॥

लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः ॥ देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात् ॥ १५ ॥ यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा ॥ ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्ताञ्जिजीविषुः ॥ १६ ॥

भाषा-जे स्वर्ग आदि लोकोंको तथा लोकपालोंको दूसरे उत्पन्न कर सकते हैं और देवताओंको शापसे मनुष्य आदि करते हैं उनको पीडा देकर कौन समृद्धिको प्राप्त होय ॥१५॥ जिन यजन याजन करनेवाले ब्राह्मणोंका आश्रय लेकर अग्निमें छोडी हुई आहुति इस न्यायसे पृथिवी आदि लोक और देवता स्थितिको प्राप्त होते हैं अवर वेदही जिनके अभ्युदयका साधन होनेसे और याजन अध्यापन आदिसे जिनके धनका उपाय है उनको जीवनेकी इच्छा करता हुआ कौन मारे ॥१६॥

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ॥ प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ १७ ॥ श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ॥ हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥ १८ ॥

भाषा-जो ऐसा है तो विद्वान् ब्राह्मणका सेवन करे इसपर कहते हैं जैसे आहित और अनाहित अग्नि बडा देवता है ऐसेही मूर्ख तथा विद्वान् ब्राह्मण उत्कृष्ट देवता है ॥ १७ ॥ जैसे बडा तेजस्वी अग्नि श्मशानमें मुर्दोंके जलानेपरभी नहीं दूषित होता है किंतु फिरभी यज्ञोंमें होम किया गया बढता है ॥ १८ ॥

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ॥ सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥ १९ ॥ क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः ॥ ब्रह्मैव संनियन्तृ स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥ ३२० ॥

भाषा-ऐसे ब्राह्मण यद्यपि संपूर्ण कुत्सित कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं तिसपरभी सब भांति पूज्य हैं कारण यह है कि,वे उत्कृष्ट अर्थात् सब से बडे देवता हैं ॥१९॥ ब्राह्म-

णोंको सब भांति पीडा देनेवाले क्षत्रियोंको शाप अभिचार आदिसे ब्राह्मणही दंड देनेवाले हैं जिससे क्षत्रिय ब्राह्मणसे हुआ है. क्योंकि ब्रह्मकी वाहोंसे उत्पन्न है॥३२०॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ २१ ॥ नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्धते ॥ ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते ॥ २२ ॥

भाषा–जल ब्राह्मण और पाषाणसे अग्नि क्षत्रिय और लोह उत्पन्न हुए उनका तेज सर्वत्र जलना तिरस्कार करना और काटनारूप कर्म करता है अपने कारण जल ब्राह्मण और पाषाणमें दाहना तिरस्कार और छेदनरूप कार्य नहीं करता है ॥ २१ ॥ शांति पुष्टता और व्यवहार देखना आदि धर्म न होनेसे ब्राह्मणरहित क्षत्रिय नहीं वढता है ऐसेही क्षत्रियरहित ब्राह्मणभी नहीं वढता है, क्योंकि रक्षा विना यज्ञ आदि कर्म नहीं हो सकते हैं, क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय आपसमें संबंध रखतेही हैं इस लोक तथा परलोकमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्तिसे वृद्धिको प्राप्त होता है दंडके प्रकरणमें तो यह ब्राह्मणकी स्तुति है अपराधीभी ब्राह्मणोंके लघु दंडके प्रयोगमें नियमके लिये हैं ॥ २२ ॥

दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ॥ पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे ॥ २३ ॥ एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः ॥ हितेषु चैव लोकस्य सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत् ॥ २४ ॥

भाषा–जब अनिष्टके देखनेसे अथवा चिकित्साके योग्य नहीं ऐसे रोगसे जब आसन्नमृत्यु होय तब महापातकीके धनसे भिन्न विनियोग किये हुएसे बाकी सब दंडका धन ब्राह्मणोंको देकर पुत्रको राज्य सौंपि निकटमृत्यु पुरुष अधिक फलके पानेके लिये संग्राममें प्राण छोडे संग्रामका संभव न होय तो अनशन कहिये न खाने आदिसेभी छोडे ॥ २३ ॥ ऐसे तीनि अध्यायोंमें कहे हुए राजधर्मोंसे व्यवहार करता हुआ राजा सदा यत्नसे भृत्योंको प्रजाके हितोंमें लगावे ॥ २४ ॥

एषोऽखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः ॥ इमं कर्मविधिं विद्यात्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥ २५ ॥ वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम् ॥ वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ॥ २६ ॥

भाषा–परंपरासे चले आनेसे नित्य यह राजाके कर्मकी विधि सब कही अब वैश्य शूद्रोंके क्रमसे जो आगे कहा जायगा ऐसा कर्मका अनुष्ठान जाने ॥ २५ ॥ किया गया है यज्ञोपवीततक संस्कार जिसका ऐसा वैश्य विवाह आदिकोंकरके

जो आगे कही जायगी ऐसी जीविकामें खेती आदि कामके लिये पशुओंके पालनेमें सदा लगा रहे ॥ २६ ॥

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ॥ ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ॥२७॥ न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति ॥ वैश्ये चेच्छति नाऽन्येन रक्षितव्याः कथंचन ॥ २८ ॥

भाषा-जिससे ब्रह्माने पशुओंको उत्पन्न करके रक्षाके लिये वैश्यको दिये प्रसंगसे यह कहा है इससे वैश्य करि पशुरक्षा करने योग्य है यह पहलेका अनुवाद है और संपूर्ण प्रजाको उत्पन्न करके ब्राह्मणके लिये और राजाके लिये रक्षाके निमित्त दी यह प्रसंगसे कहा ॥ २७ ॥ पशुओंकी रक्षा न करौं यह इच्छा वैश्यको कभी न करनी चाहिये इससे खेती आदि जीविकाके होनेपरभी वैश्यको पशुओंकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये वैश्यको पशुकी रक्षा करनेपर दूसरेसे पशुकी रक्षा न करवानी चाहिये ॥ २८ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ॥ गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घबलाबलम् ॥ २९ ॥ बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च ॥ मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ ३३० ॥

भाषा-मणि, मोती, मूंगा, लोह, वस्त्र और कपूर आदि गंधोंका और नोन आदि रसोंका उत्तम मध्यमोंका देशकालकी अपेक्षासे मोलका बढना घटना वैश्य जाने ॥२९॥ सब बीजोंके बोनेकी विधिका जाननेवाला होय अर्थात् यह बीज इस कालमें बोया हुआ ऊगता है इसमें नहीं इस भांती वैसेही यह ऊपर है और यह धान्यका देनेवाला है इत्यादि खेतके गुण दोषका जाननेवाला होय और प्रस्थ द्रोण आदि मानके तथा तुलाके सब उपायोंको तत्वसे जाने जिसमें दूसरा न ठगे॥३३०॥

सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् ॥ लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम् ॥३१॥ भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम् ॥ द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥३२॥

भाषा-यह बढका है यह घटका है इस भांति एक जातिकेभी द्रव्योंका विशेष जान ऐसेही पूर्व पश्चिम आदि दिशाओंकाभी अर्थात् कहां क्या थोडा मोल है क्या बहुत मोल है इत्यादिक देशके गुणदोष जाने और बेंचनेकी वस्तुओंकाभी कि, इतने कालमें इतना घटा होगा अथवा नफा होगा यह जाने तथा इस देशमें और इस कालमें घट तृण जल जव आदिसे पशु बढते हैं और इससे क्षीण होते हैं इसकोभी जाने ॥ ३१ ॥ गौओंके पालनेवालेको यह और भैंसोंके पालनेवालेको

यह देना चाहिये इस भांति देशकालके अनुरूप वेतन जाने और गौड दाक्षिणी आदि मनुष्योंकी नाना प्रकारकी भाषा बेंचनेके लिये जाने वैसेही यह वस्तु ऐसे रक्खी जाती है इसके साथ बहुत कालतक रहती है इसको जाने तैसेही यह वस्तु इस देशमें और इस कालमें इतनेमें बेंची जाती है इसकोभी जाने ॥ ३२ ॥

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ दद्याच्च सर्वभूताना-
मन्नमेव प्रयत्नतः ॥ ३३ ॥ विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां य-
शस्विनाम् ॥ शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परः ॥ ३४ ॥

भाषा–धर्मसे दो पण सैंकडे आदि कहे हुए प्रकारसे धनकी वृद्धिमें बडा यत्न करे और सुवर्ण आदि दानकी अपेक्षा प्राणियोंको अन्नही देवे ॥ ३३ ॥ शूद्रका तौ वेदके जाननेवाले और अपने धर्मके करनेसे यशकारि युक्त गृहस्थ ब्राह्मणोंकी जो सेवा है वही उत्कृष्ट स्वर्ग आदि कल्याणकारक धर्म है ॥ ३४ ॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः ॥ ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृ-
ष्टां जातिमश्नुते ॥ ३५ ॥ एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः
शुभः ॥ आपद्यपि हि यस्तेषां क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ३३६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

भाषा–बाहरी और भीतरी शौच करि युक्त और अपनी जातिकी अपेक्षासे ऊंचे द्विजातिकी सेवा करनेवाला मधुर बोलनेवाला अहंकाररहित और मुख्यता करि ब्राह्मणका आश्रय लेनेवाला और ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय तथा वैश्यका आश्रय लेनेवाला शूद्रभी अपनी जातिसे उत्कृष्ट जातिको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ आपत्तिरहित समयमें चारों वर्णोंके कर्मकी शुभ विधिरूप यह धर्म कहा और आपत्तिमें जो उनका धर्म है उसको संकीर्ण सुननेके उपरांत क्रमसे सुनिये ॥ ३३६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ॥ प्रब्रूयाद्ब्राह्मण-
स्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥ सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्यु-
पायान्यथाविधि ॥ प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ॥२॥

भाषा-वैश्य शूद्र धर्मके उपरांत " संकीर्णानां च संभवम् " अर्थात् संकीर्णोंकीभी उत्पत्ति कहेंगे यह प्रतिज्ञा कर चुके हैं इससे यह कहना है क्योंकि, वर्णोंहीसे संकीर्णोंकी उत्पत्ति है और तीनों वर्णोंका मुख्य धर्म अध्ययन है और ब्राह्मणका अध्यापन कहिये पढाना सो कहते हैं. ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण अध्ययनसे अनुभव किये हुए अपने कर्मके करनेवाले वेदको पढे और इनमेंसे ब्राह्मणही अध्यापन करे क्षत्रिय वैश्य नहीं यह निश्चय है ॥ १ ॥ सब वर्णोंकी जीविकाका उपाय ब्राह्मण शास्त्रके अनुसार जाने और उनको उपदेश करे और आपही कहे हुए नियमको करे ॥ २ ॥

**वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्याच्चान्नियमस्य च धारणात् ॥ संस्कारस्य वि-
शेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ३॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो व-
र्णा द्विजातयः ॥ चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥४॥**

भाषा-जातिकी अधिकतासे और प्रकृति कहिये कारण अर्थात् उत्पत्तिके स्थान जो हिरण्यगर्भ हैं उनके उत्तम अंगरूप कारणकी अधिकतासे और नियम जो वेद है उसके पढने पढानेसे और संस्कार जो उपनयन नाम तिसकी क्षत्रियकी अपेक्षा मुख्यताके विधानसे विशेषसे और वर्णोंको पढाने तथा जीविकाका उपदेश करनेमें ब्राह्मणही समर्थ प्रभु है ॥ ३ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों वर्ण द्विजाति संज्ञक हैं इन्हींके यज्ञोपवीतका विधान होनेसे और शूद्र फिरि चौथा वर्ण एकजाति है क्योंकि उसके यज्ञोपवीत नहीं होता है फिरि और पांचवां वर्ण नहीं है क्योंकि संकीर्ण जातिवालोंका तो अश्वतर अर्थात् खिच्चरके समान माता पिताकी जातिसे भिन्न दूसरी जाति होती है इससे उनको वर्णत्व नहीं है यह दूसरी जातिका कहना शास्त्रमें व्यवहारके लिये है ॥ ४ ॥

**सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ॥ आनुलोम्येन संभूता
जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥ ५ ॥ स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पा-
दितान्सुतान् ॥ सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥ ६ ॥**

भाषा-ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंमें शास्त्रकी रीतिसे व्याही हुई समान जातिकी अक्षतयोनि स्त्रियोंमें अनुलोमतासे जैसे ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें और क्षत्रियसे क्षत्रियामें इस क्रमसे जे उत्पन्न हुए हैं वे मातापिताकी जातिकरि युक्त उसी जातिहीके जानने चाहिये ॥ ५ ॥ आनुलोम्य कहिये क्रममें व्यवधानरहित वर्णकी स्त्रियोंमें द्विजातियों करि उत्पन्न किये गये पुत्र जैसे ब्राह्मण करि क्षत्रियामें और क्षत्रिय करि वैश्यामें और वैश्य करि शूद्रामें उन पुत्रोंको माताकी हीन जातिपनके दो-

षसे निंदित और पिताके सदृश पिताके सजाती नहीं मनु आदि कहते हैं पिताके सदृश कहनेसे माताकी जातिसे ऊंचे और पिताकी जातिसे नीचे जानने चाहिये इनके नाम तो मूर्द्धावसिक्त माहिष्य करणसंज्ञक याज्ञवल्क्य आदिकोंने कहे हैं और इनकी वृत्तियां उशनाने कही हैं जैसे हाथी घोडा रथकी शिक्षा और शस्त्र बांधना ये मूर्द्धावसिक्तकी वृत्ति है और नाचना गाना नक्षत्रोंसे जीविका करना और सस्य जे धान्य हैं तिनकी रक्षा करना ये माहिष्योंकी वृत्तियां हैं और द्विजातिकी सेवा धन धान्यका स्वामी होना राजाकी सेवा दुर्गान्तःपुरकी रक्षा करना ये पारशव उग्र और करणकी वृत्तियां हैं ॥ ६ ॥

अनन्तरासु जातानां विधिरेष सनातनः ॥ द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम् ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ॥ निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥ ८ ॥

भाषा—परंपरासे चली आती है इसलिये नित्य यह विधि अनंतर जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्नोंकी कही एक वर्णसे अथवा दो वर्णोंसे व्यवहित भार्याओंमें उत्पन्नोंकी जैसे ब्राह्मणसे वैश्यामें क्षत्रियसे शूद्रामें और ब्राह्मणसे शूद्रामें इस वक्ष्यमाण विधिको धर्मयुक्त जाने ॥ ७ ॥ ब्राह्मणसे व्याही हुई वैश्यकी कन्यामें अंबष्ठ नाम पुत्र उत्पन्न होता है और व्याही हुई शूद्रकी कन्यामें निषाद उत्पन्न होता है वह दूसरे नामसे पारशवभी कहा जाता है ॥ ८ ॥

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ॥ क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते ॥ ९ ॥ विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः ॥ वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः ॥ १० ॥

भाषा—क्षत्रियसे व्याही हुई शूद्रकी कन्यामें क्रूर चेष्टायुक्त क्रूर कर्म करनेवाला क्षत्रिय तथा शूद्रके स्वभाव करि युक्त उग्रनाम पुत्र होता है ॥ ९ ॥ ब्राह्मणके क्षत्रिया आदि तीनि भार्याओंमें और क्षत्रियके वैश्या आदि दो स्त्रियोंमें और वैश्यके शूद्रामें तीनों वर्णोंके ये छः पुत्र सवर्ण पुत्रके कार्यकी अपेक्षा अपसद कहिये निकृष्ट कहे गये हैं ॥ १० ॥

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ॥ वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ ॥ ११ ॥ शूद्रादायोगवः क्षत्ता चाण्डालश्चाधमो नृणाम् ॥ वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥ १२ ॥

भाषा—ऐसे अनुलोमोंको कहके प्रतिलोमोंको कहते हैं. क्षत्रियसे ब्राह्मणकी कन्यामें जातिसे सूत नाम पुत्र होता है और वैश्यसे यथाक्रम क्षत्रिया और ब्राह्म-

णीमें मागध और वैदेह नाम पुत्र होते हैं इनकी वृत्तियां मनुही करि कही जांयगी ॥ ११ ॥ शूद्रसे वैश्या, क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें क्रमसे आयोगव, क्षत्ता और मनुष्योंमें अधम चांडाल ये वर्णसंकर होते हैं ॥ १२ ॥

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ ॥ क्षत्तृवैदेहकौ तद्व-
त्प्रातिलोम्येऽपि जन्मनि ॥१३॥ पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणो-
क्ता द्विजन्मनाम् ॥ ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

भाषा-एकांतरभी वर्णमें ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें अंबष्ठ और क्षत्रियसे शूद्रकी कन्यामें उग्र ये दोनों अनुलोमतासे जैसे स्पर्श आदिके योग्य हैं तैसेही एकांतरमें प्रतिलोम उत्पन्न होनेपरभी शूद्रसे क्षत्रियामें क्षत्ता वैश्यसे ब्राह्मणीमें वैदेह ये दोनोंभी स्पर्शके योग्य हैं एकांतर उत्पन्नोंके स्पर्श आदिकी आज्ञासे अनंतर उत्पन्न सूत मागध और आयोगवका स्पर्श आदिका योग्यत्व सिद्ध होता है इससे चांडालही एक प्रतिलोमज स्पर्श आदिमें निषेध किया जाता है ॥ १३ ॥ जे द्विजातियोंके अनंतर एकांतर और जातिकी स्त्रियोंमें अनुलोमतासे उत्पन्न पहले कहे गये पुत्र उनको हीन जातिकी माताके दोषसे माताकी जातिसे व्यपदेश्य कहिये कहनेयोग्य कहते हैं माता पितासे भिन्न संकीर्ण होनेपरभी माताका व्यपदेश कहना माताकी जातिके संस्कार आदि धर्मकी प्राप्तिके लिये है ॥ १४ ॥

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते ॥ आभीरोऽम्बष्ठकन्याया-
मायोगव्यां तु धिग्वणः ॥ १५ ॥ आयोगवश्च क्षत्ता च चण्डाल-
श्चाधमो नृणाम् ॥ प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रयः ॥१६॥

भाषा-ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न उग्र कन्या होती है उसमें ब्राह्मणसे आवृत नाम पुत्र होता है ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न अंबष्ठानाम कन्यामें ब्राह्मणसे आभीरनाम कन्यापुत्र उत्पन्न होता है शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न आयोगवीनाम कन्यामें ब्राह्मणसे धिग्वणनाम पुत्र होता है ॥ १५ ॥ आयोगव क्षत्ता और चांडाल ये मनुष्योंमें अधम हैं ये तीनों व्युत्क्रम कहिये उलटेपनमें वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणी स्त्रियोंमें पुत्रके कार्यसे रहित तीनों शूद्रसे उत्पन्न होते हैं ॥ १६ ॥

वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु ॥ प्रतीपमेते जायन्ते परे-
ऽप्यपसदास्त्रयः ॥ १७ ॥ जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति
पुक्कसः ॥ शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः ॥ १८ ॥

भाषा-क्षत्रिया और ब्राह्मणीसे मागध और वैदेह और क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें सूत इस प्रकार प्रतिलोमतासे औरभी तीनि पुत्र कार्यसे रहित उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥

निषादसे शूद्रामें उत्पन्न जातिसे पुक्कस होता है और निषादीमें शूद्रसे जो उत्पन्न हुआ वह कुक्कुटक नाम कहा गया ॥ १८ ॥

क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते ॥ वैदेहकेन त्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते ॥ १९ ॥ द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान् ॥ तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

भाषा-शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न पुत्र क्षत्ता होता है और क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्री उग्रा होती है उस क्षत्तासे उग्रामें उत्पन्न पुत्र श्वपाक कहा जाता है और वैदेहकसे तौ अंवष्ठीमें और ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न कन्यामें वेण कहा जाता है ॥ १९ ॥ द्विजाति सवर्णा स्त्रियोंमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं वे जो यज्ञोपवीत कर्मसे हीन होते हैं तौ उन यज्ञोपवीत न किये हुओंको व्रात्य इस नामसे कहे " अत ऊर्ध्वं त्रयोप्येते " यहभी कहा हुआ व्रात्यका लक्षण है यहभी प्रतिलोमज पुत्रके समान अयोग्य पुत्रत्व दिखानेके लिये इस संकीर्ण प्रकरणमें अनुवाद किया गया ॥ २० ॥

व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः ॥ आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च ॥ २१ ॥ झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च ॥ नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥ २२ ॥

भाषा-व्रात्य ब्राह्मणसे सवर्णा ब्राह्मणीमें पापस्वभाव भूर्जकंटक नाम उत्पन्न होता है तैसेही आवंत्य, वाटधान, पुष्पध और शैख उत्पन्न होते हैं एकहीके ये देशभेदसे प्रसिद्ध नाम हैं ॥ २१ ॥ व्रात्य क्षत्रियसे सवर्णामें झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट, करण, खस और द्रविड नाम उत्पन्न होते हैं येभी एकहीके नाम हैं ॥ २२ ॥

वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च ॥ कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च ॥ २३ ॥ व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च ॥ स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥ २४ ॥

भाषा-व्रात्य वैश्यसे सवर्णा स्त्रीमें सुधन्वा, आचार्य, कारुष, विजन्म, मैत्र, सात्वत, नाम होते हैं येभी एकहीके नाम हैं ॥ २३ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंमें परस्पर स्त्रीगमन करनेसे और विवाहके योग्य नहीं ऐसी सगोत्र आदिके विवाहसे और उपनयनरूप अपने कर्मके त्यागसे वर्णसंकर नाम होता है इससे इस प्रकरणमें व्रात्योंका कहना योग्य है ॥ २४ ॥

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ अन्योन्यव्यतिष-

क्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २५ ॥ सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः ॥ मागधः क्षत्तृजातिश्च तथाऽयोगव एव च ॥ २६ ॥

भाषा-जे संकीर्णयोनि हैं और प्रतिलोमोंसे आपसमें संबंध होनेसे उत्पन्न होते हैं उनको विशेषकरि कहूंगा ॥ २५ ॥ जिसके लक्षण कह चुके हैं ऐसे सूत, वैदेह और मनुष्योंमें अधम चांडाल, मागध, क्षत्तृ जातिमें तथा आयोगव ॥ २६ ॥

एते षट् सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु ॥ मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु च योनिषु ॥ २७ ॥ यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्मास्य जायते ॥ आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तथा बाह्येष्वपि क्रमात् ॥ २८ ॥

भाषा-ये पहले कहे हुए छः प्रतिलोमज अपनी योनियोंमें पुत्रकी उत्पत्ति करते हैं जैसे शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न आयोगव कहता है आयोगवीही माताकी जाति वैश्यामें और प्रवर कहिये श्रेष्ठ क्षत्रिया ब्राह्मणी योनियोंमें और चकारसे अपकृष्ट कहिये हीनभी शूद्रजातिमें सर्वत्र सदृश वर्णोंको उत्पन्न करते हैं पिताकी अपेक्षा सदृशता नहीं है किंतु माताकी जातिसे क्योंकि चातुर्वर्ण्यकी स्त्रियोंहीमें पितासे अधिक निंदित पुत्रकी उत्पत्ति आगे कही जायगी ॥ २७ ॥ जैसे क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन तीनों वर्णोंमेंसे क्षत्रिय वैश्य दो वर्णोंके गमनमें ब्राह्मणकी अनुलोमतासे द्विज उत्पन्न होता है और सजातीयामें तौ द्विज उत्पन्न होता है ऐसे बाह्योंमेंभी वैश्य और क्षत्रियसे क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्रोंमें उत्कर्षका अपक्रम होता है शूद्रसे उत्पन्न प्रतिलोमकी अपेक्षासे द्विज आदिकोंसे उत्पन्न प्रतिलोमकी प्रशस्तताके लिये यह कहा है ॥ २८ ॥

ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान् ॥ परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥ २९ ॥ यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते ॥ तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥ ३० ॥

भाषा-वे तो आयोगव आदिक छः परस्पर जातिकी स्त्रियोंमें बहुत अनुलोमतामेंभी अधिक दुष्ट और सत्क्रियासे बहिर्भूत पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं सो जैसे आयोगव क्षत्तृजातिमें अपनेसे हीनतर पुत्रको उत्पन्न करता है वैसेही क्षत्ताभी आयोगवीमें आपसे हीनतर पुत्रको उत्पन्न करता है ऐसेही औरभी प्रतिलोमजोंमें देखना चाहिये ॥ २९ ॥ जैसे ब्राह्मणीमें शूद्र अपकृष्ट चांडाल नाम प्राणीको उत्पन्न करता है ऐसेही बाह्य चांडाल आदि चारों वर्णोंमें चांडाल आदिकोंसेभी नीच पुत्र उत्पन्न करते हैं ॥ ३० ॥

प्रतिकूलं वर्तमाना बाह्या बाह्यतरान्पुनः ॥ हीना हीनान्प्रसू-
यन्ते वर्णान्पञ्चदशैवं तु ॥ ३१ ॥ प्रसाधनोपचारज्ञमदासं
दासजीवनम् ॥ सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ॥ ३२ ॥

भाषा-प्रतिकूल वर्त्तमान प्रतिलोमज होते हैं और द्विजोंके प्रतिलोमसे उत्पन्नोंसे निकृष्ट होनेके करण बाह्य शूद्रसे उत्पन्न आयोगव क्षत्तृ चांडाल ये तीनि पहले श्लोकसे अनुवृत्ति किये जानेपर चातुर्वर्ण्यमें और स्वजातिमें ये छः 'सदृशान्' यहां सजातिमें उत्पन्नभी पितासे गर्हित होनेका कथन होनेसे अपनी २ अपेक्षासे बाह्यान्तरोंको प्रत्येक पंद्रह पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं सो जैसे आयोगव चारों वर्णोंकी स्त्रियोंमें और आयोगवीमें आपसे निकृष्ट पांच पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं ऐसे क्षत्तृ चांडालभी प्रत्येक पांच पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं ऐसे बाह्य तीनि पंद्रह पुत्रोंका उत्पन्न करते हैं तैसे अनुलोमजोंसे हीन वैश्य क्षत्रियसे उत्पन्न मागध, वैदेह, सूत अपनी अपेक्षासे हीन पहलेके समान चातुर्वर्ण्यकी स्त्रियोंमें और सजातिमें प्रत्येक पांच पुत्रोंको उत्पन्न करते हुए हीनभी तीनि पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं. इस भांति ये तीस होते हैं अथवा बाह्य शब्द छः और हीन शब्द छः प्रतिलोमजोंहीको कहता है यहां बाह्य चांडाल क्षत्तृ आयोगव वैदेह मागध सूत छः यथोत्तर कहिये आगे आगेका उत्कर्ष होनेसे प्रतिलोमतासे स्त्रियोंमें वर्त्तमान बाह्यांतर पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं सो जैसा चांडाल क्षत्तृ आदि पांच स्त्रियोंमें क्षत्ता आयोगवी आदि चारिमें और आयोगव वैदेह आदि तीनिमें वैदेह मागधी सूतीमें और मागध सूतीमें सूत तौ प्रतिलोम न होनेसे प्रतिलोमतासे उत्पन्न करताही है ऐसे ये प्रतिलोमतासे पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करता है और पुनः शब्दके कहनेसे हीन सूत आदि चांडालतक छः यथोत्तर कहिये आगे आगे अपकर्ष कहिये कम होनेसे और आनुलोम्यसेभी प्रतिलोमकी कही हुई रीतिसे अपनी अपेक्षा हीन पंद्रहही पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं इस भांति ये तीस होते हैं ॥ ३१ ॥ केश चरण आदि प्रसाधन कहिये शोभित करना उसके उपचारके जाननेवाले और अदास कहिये उच्छिष्ट खाने आदि दासके कर्मसे रहित और देहके दाबने आदि दासकर्मसे जीनेवाले और पाशमें बांधनेसे मृग आदिके वधना व दूसरी वृत्तिके जीनेवाले जिसका सैरिंध्र नाम है ऐसेको "मुखबाहूरुपज्जानां" इस श्लोकमें जो आगे कहा जायगा ऐसा दस्यु आयोगव स्त्रीकी जातिमें और शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्ना स्त्रीमें उत्पन्न करता है इसका वह मृग आदि मारना देव पितृ औषधके लिये जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते ॥ नॄन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये ॥ ३३ ॥ निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम् ॥ कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्यावर्त्तनिवासिनः ॥ ३४ ॥

भाषा-वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न वैदेह आयोगवीमें मैत्रेय नाम मीठा बोलनेवाले पुत्रको उत्पन्न करता है जो प्रातःकाल घंटा बजाकर जीविकाके लिये राजा आदिकोंकी स्तुति करता है ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पहले कहा हुआ निषाद आयोगवीमें जिसका दूसरा नाम दास ऐसे नौकाके व्यवहारसे जीविका करनेवाले मार्गव नाम पुत्रको उत्पन्न करता है जिसको आर्यावर्त्त देशके रहनेवाले कैवर्त्तनामसे कहते हैं ॥ ३४ ॥

मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हितान्नाशनासु च ॥ भवन्त्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक्त्रयः ॥ ३५ ॥ कारावरो निषादात्तु चर्मकारः प्रसूयते ॥ वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥ ३६ ॥

भाषा-सैरिंध्र, मैत्रेय, मार्गव, हीन जाति ये तीनों मृतकके वस्त्र पहिरनेवाली, क्रूर उच्छिष्ट खानेवाली आयोगवियोंमें पिताके भेदसे भिन्न पुत्र होते हैं ॥ ३५ ॥ निषादसे वैदेहीमें उत्पन्न हुआ कारावर चर्मका काटनेवाला उत्पन्न होता है औशनसमें कारावरोंकी चर्मका काटनाही जीविका कही है और वैदेहक सैरिंध्र्य मेदनाम ग्रामके बाहर बसनेवाले हैं ॥ ३६ ॥

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान् ॥ आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते ॥३७॥ चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान् ॥ पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः ॥ ३८ ॥

भाषा-वैदेहीमें चांडालसे पांडुसपाक नाम बांसोंके व्यवहारसे जीविका करनेवाला उत्पन्न होता है और निषादसे वैदेहीमें आहिंडिक नाम पुत्र होता है इसकी तौ बंधनके स्थानोंमें बाहरी रक्षा करनेसे आहिंडकोंकी वृत्ति औशनसमें कही है माता पिताके समान होनेपरभी कारावर और आहिंडिककी जीविकाके भेदसे व्यपदेशका भेद है ॥ ३७ ॥ निषादसे शूद्रामें उत्पन्न पुक्सीमें चांडालसे उत्पन्न सोपान नाम पापात्मा सदा साधुओंकरि निंदित मारणके योग्य अपराधका मूल मारने योग्यका राजाकी आज्ञासे मारना जिसकी जीविका है ऐसा उत्पन्न होता है ॥ ३८ ॥

निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम् ॥ श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम् ॥३९॥ संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्र-

दर्शिताः ॥ प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः ॥ ४० ॥

भाषा-निषादी चांडालसे अंत्यावसायी नाम चांडाल आदिकोंसेभी अत्यंत दुष्ट श्मशानमें वसनेवाले उसीकी जीविका करनेवालेको उत्पन्न करती है ॥ ३९ ॥ वर्णसंकरोंके मध्ये ये जातियां इसकी यह माता और यह पिता और इस जातिका हुआ इस भांति पिता माताके कहकर दिखाई तैसेही गूढ अथवा प्रगट उनकी जातिके कहे हुए कर्मोंके करनेसे जानने योग्य हैं ॥ ४० ॥

सजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः ॥ शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥ ४१ ॥ तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे ॥ उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥

भाषा-द्विजातियोंकी समान जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न तैसेही अनुलोमसे उत्पन्न जैसे ब्राह्मणसे क्षत्रिया और वैश्यामें और क्षत्रियसे वैश्यामें ऐसे छः पुत्र द्विजधर्मी यज्ञोपवीत करने योग्य हैं और द्विजातिसे उत्पन्नभी सूत आदि प्रतिलोमज होते हैं वे शूद्रधर्मी हैं इनका यज्ञोपवीत नहीं होता है ॥ ४१ ॥ सजातिसे उत्पन्न और अनंतर जातिसे उत्पन्न तपके प्रभावसे विश्वामित्रके समान और बीजके प्रभावसे ऋष्यशृंग आदिके समान सतयुग त्रेता आदि युगोंमें मनुष्योंके मध्यमें जातिके उत्कर्ष कहिये उन्नतिको प्राप्त होते हैं और आगे कहे हुए कारणसे अपकर्ष कहिये हीनताको प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ॥ वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥ पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः ॥ पारदापह्लवाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः ॥ ४४ ॥

भाषा-ये वक्ष्यमाण क्षत्रिय आदि जातें यज्ञोपवीत आदि क्रियाओंके लोपसे और ब्राह्मण याजन अध्यापन और प्रायश्चित्त आदिके न होनेके कारण हौले हौले लोकमें शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ पौंड्रक, औड्र, द्रविड, कांबोज, यवन, शक, पारद, अपल्हव, चीन, किरात, दरद, खश ये सब क्रियाके लोपसे शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ॥ म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ ४५ ॥ ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः ॥ ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ॥ ४६ ॥

भाषा-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंकी जो जातियां हैं वे क्रियाके लोप आदिसे

बाह्य हो गईं और म्लेच्छ भाषाके अथवा आर्यभाषाके बोलनेवाले वे सब दस्यु कहे जाते हैं ॥ ४५ ॥ जे द्विजोंकी अनुलोमतासे उत्पन्न हैं ये छः अपसद कहे गये हैं उनकाभी पितासे नीचताके कारण अपसद शब्द कर पहले कहनेसे जानना चाहिये और जे अपध्वंसज प्रतिलोमज हैं वेभी द्विजातिके उपकारकही आगे कहे हुए निंदित कामोंसे जीवें ॥ ४६ ॥

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम् ॥ वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः ॥ ४७ ॥ मत्स्यघातो निषादानां त्वष्टिस्त्वायोगवस्य च ॥ मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ॥ ४८ ॥

भाषा-सूतोंकी जीविकाके लिये घोडोंका सिखाना जोतना आदि सारथीका कर्म है और अंबष्ठोंका रोगशांति आदि चिकित्सा और वैदेहकोंका अंतःपुरकी रक्षा करना और मागधोंका स्थलमार्गसे वाणिज्य करना कर्म है ॥ ४७ ॥ कहे हुए निषादोंका मछली मारना और आयोगवका काष्ठ छीलना और मेद, अंध्र, चुंचु तथा मद्गुओंका जंगली पशुओंका मारना चुंचु और मद्गु, वैदेहक और बंदीकी स्त्रियोंमें ब्राह्मणसे उत्पन्न बौधायन कर कहे हुए जानने चाहिये क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न बंदीकी स्त्री उसी उक्तिसे ग्रहण करने योग्य है ॥ ४८ ॥

क्षत्त्रुग्रपुक्कसानां तु बिलौकोवधबन्धनम् ॥ धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम् ॥ ४९ ॥ चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च ॥ वसेयुरेते विज्ञाना वर्त्तयन्तः स्वकर्मभिः ॥ ५० ॥

भाषा-क्षत्तृ आदिकोंका बिलमें वसनेवाले गोह आदिका मारना और बांधना और धिग्वणोंका चर्मका बनाना और बेंचना और वेणोंका कांस्य मुरज आदि वाद्य भांडोंका बजाना ॥ ४९ ॥ ग्राम आदिके समीप प्रसिद्ध वृक्ष चैत्यद्रुम हो उसके नीचे और श्मशान पर्वत तथा वनके समीप ये प्रकाशक अपने कर्मोंसे जीविका करते हुए वास करें ॥ ५० ॥

चण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ॥ अपपात्राश्च कर्त्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ॥ ५१ ॥ वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ॥ कार्ष्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥ ५२ ॥

भाषा-चांडाल तथा श्वपचोंका निवास ग्रामके बाहर होय और ये पात्ररहित कर्त्तव्य हैं और जिस लोह आदिके पात्रमें उन्होंने भोजन किया होय वह पात्र संस्कार करकेभी नहीं ग्रहण करने योग्य है और इनका धन कुत्ते गधे हैं बैल

आदि नहीं और कपडे तौ इनके मृतकके वस्त्र हैं और फूटे सरवा आदि मट्टीके पात्रमें भोजन और लोहेके कडे आदि इनका गहना है और सदा भ्रमण करना इनका काम है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ॥ व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥ ५३ ॥ अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने ॥ रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ५४ ॥

भाषा—धर्म करनेके समय चांडाल और श्वपाकोंके साथ दर्शन आदि व्यवहार न करे और इनका तौ ऋण देना धन लेना आदि व्यवहार तथा विवाह समान जातिवालोंके साथ आपसमें होय ॥ ५३ ॥ इनका अन्न पराये आधीन करना चाहिये साक्षात् इनको न देवे किन्तु फूटे पात्रमें नौकरोंसे दिवावे और वे तौ रात्रिके समय ग्राम तथा नगरमें न घूमें ॥ ५४ ॥

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः ॥ अबान्धवं चैव शवं निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥५५॥ वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ॥ वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥ ५६ ॥

भाषा—दिनके समय ग्राम नगर आदिमें खरीदने बेंचने आदि कामके लिये राजाकी आज्ञासे चिह्नकारि अंकित हो विचरें और जिसका कोई स्वामी नहीं है ऐसे मृतकको ग्रामसे ले जांय यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥५५॥ मारने योग्योंको शास्त्रकी आज्ञासे शूली आदिपर चढाने करि सदा राजाकी आज्ञासे मारे और उनके कपडे गहने आदि ले लेवें ॥ ५६ ॥

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ॥ आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥ ५७ ॥ अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ॥ पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ ५८ ॥

भाषा—वर्णसे रहित संकरसे उत्पन्न मनुष्यको जिसको लोग वैसा नहीं जानते हैं इसीसे आर्यके समान और वास्तवमें आर्य नहीं ऐसेको जातिके अनुरूप निंदित चेष्टाओंसे जो आगे कही जायगी निश्चय करे ॥ ५७ ॥ निष्ठुर होना कठोर बोलना हिंसा करना और शास्त्रमें कहे हुएका न करना संकर जातिके मनुष्यको लोकमें प्रकट कर देते हैं ॥ ५८ ॥

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ॥ न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति॥५९॥कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्या-

योनिसंकरः ॥ संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥ ६० ॥

भाषा-यह संकरसे उत्पन्न दुष्ट योनि पिताके दुष्ट स्वभावको सेवन करता है वा माताके अथवा दोनोंके यह अपने कारणको कभी नहीं छिपा सकता है ॥ ५९ ॥ वडे कुलमें उत्पन्न हुएभी जिस पुरुषका गुप्त योनि संकर होता है वह मनुष्य थोडे वहुत पिताके स्वभावका सेवन करताही है ॥ ६० ॥

यत्र त्वेते परिध्वंसा जायन्ते वर्णदूषकाः ॥ राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ॥ स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥ ६२ ॥

भाषा-जिस देशमें वर्णोंके विगाडनेवाले ये वर्णसंकर होते हैं वह देश वहांके निवासियोंसमेत शीघ्र नाशको प्राप्त होता है तिससे राजाको वर्णसंकर दूर करने योग्य है ॥६१॥ गौ, ब्राह्मण, स्त्री, वालक इनमेंसे किसीकी रक्षाके लिये प्राण जाय तौ प्रतिलोमसे उत्पन्नोंका स्वर्गकी प्राप्तिका कारण है ॥ ६२ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ६३ ॥ शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते ॥ अश्रेयाञ्छ्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥ ६४ ॥

भाषा-हिंसाका त्याग, यथार्थ कहना, अन्यायसे पराये धनका न लेना मृत्तिका जल आदिसे शुद्धि और इंद्रियोंका रोकना इस भांति चारों वर्णोंकरि करने योग्य धर्म मनुने कहा है प्रकरणकी सामर्थ्यसे संकीर्णोंकाभी यही धर्म जानने योग्य है ॥६३॥ अव तुल्य सवर्णा स्त्रियोंमें यह जो कहा लक्षण है जिसके विनाभी ब्राह्मणत्व आदि दिखानेको कहते हैं. ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पारशव नाम वर्ण उत्पन्न होता है इस सामर्थ्यसे स्त्री रूप होता है वह स्त्री जो ब्राह्मणको व्याही हुई कन्याहीको उत्पन्न करे वह कन्याभी अन्य ब्राह्मण करि व्याही हुई हो वेटीहीको जने वह वेटीभी औरको व्याही जाय ऐसेही सातवें जन्ममें वह पारशव नाम वर्ण वीजकी प्रधानतामें ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है अर्थात् सातवें जन्ममें ब्राह्मण हो जाता है ॥ ६४ ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ॥ क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५ ॥ अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया ॥ ब्राह्मण्यामप्यनार्याच्च श्रेयस्त्वं क्वेति चेद्भवेत् ॥ ६६ ॥

भाषा-ऐसे पहले कही हुई रीतिसे शूद्र ब्राह्मणताको प्राप्त होता है और ब्राह्मण शूद्रताको प्राप्त होता है ब्राह्मण यहां ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पारशव जानना

चाहिये वह जो पुरुष केवल शूद्राके व्याहसे और पुरुषहीको उत्पन्न करे वहभी ऐसे सातमें जन्मको प्राप्त केवल शूद्रताको बीजके निकर्षके कारण क्रमसे प्राप्त होता है ऐसे क्षत्रियसे और वैश्यसे शूद्रामें उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष जाने और क्षत्रियसे उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष पांचवें जन्ममें जानना चाहिये और वैश्यसे उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष तीसरे जन्ममें जानने योग्य हैं इसी न्यायसे ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष पांचवें जन्मसें और क्षत्रियामें उत्पन्नके तीसरेमें और क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्नके तीसरेहीमें जानने योग्य हैं ॥ ६५ ॥ एक विना व्याही हुइभी शूद्रामें ब्राह्मणसे यदृच्छा कारि उत्पन्न और दूसरा ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्न इन दोनोंमें कौनसा उत्पन्न अच्छा है कभी यह संदेह होय और संशय होय कारण तो जैसे बीजकी उत्कर्षतासे ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न साधु शूद्र होता है ऐसेही क्षेत्रकी उत्कर्षतासे ब्राह्मणीमेंभी शूद्रसे उत्पन्न यह क्या बात है जो साधु शूद्र न होय ॥ ६६ ॥

जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः ॥ जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः ॥ ६७ ॥ तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः ॥ वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः ॥ ६८ ॥

भाषा–वहां निश्चय करते हैं. शूद्रास्त्रीमें ब्राह्मणसे उत्पन्न स्मृतिमें कहे हुए किये गये पाक यज्ञ आदि गुणों करके युक्त श्रेष्ठ होता है और शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न प्रतिलोमतासे उत्पन्न होनेके कारण शूद्रोंके धर्ममेंभी अधिकारी न होनेसे श्रेष्ठ नहीं है यह निश्चय है ॥ ६७ ॥ पारशव और चांडाल दोनों यज्ञोपवीत करने योग्य नहीं हैं यह शास्त्रकी मर्यादा व्यवस्थित है पहला पारशव शूद्रासे उत्पन्न होनेके कारण जातिकी विगुणतासे उपनयन करने योग्य नहीं है प्रतिलोमतासे शूद्र कारि ब्राह्मणीमें उत्पन्न होनेसे दूसरा हुआ इससे उपनयन योग्य नहीं है ॥ ६८ ॥

सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते तथा ॥ तथाऽर्याज्जातं आर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति ॥ ६९ ॥ बीजमेके प्रशंसंति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः ॥ बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः ॥७०॥

भाषा–जैसे सुंदर बीज सुंदर खेतमें उत्पन्न भरा पूरा होता है ऐसेही द्विजातिसे सवर्णा द्विजातिकी स्त्रीमें अनुलोमतासे क्षत्रिया वैश्यामें उत्पन्न वह वर्णसंस्कार और क्षत्रियवैश्यसंस्कार और सब श्रौतस्मार्त्तसंस्कारके योग्य हैं और पारशव तथा चांडाल संस्कार योग्य नहीं है यह पहले कहे हुएका दृढताके लिये कहा है॥६९॥ कोई पंडित बीजकी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि हरिणी आदिमें उत्पन्न ऋष्यशृंग आदिका ब्रह्ममुनित्व देखा जाता है और दूसरे फिरि क्षेत्रकी प्रशंसा करते हैं,

क्योंकि क्षेत्रके स्वामीका पुत्रत्व देखा जाता है और अन्य फिरि वीज क्षेत्र दोनोंकी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि सुवीजकी सुक्षेत्रमें समृद्धि देखी जाती है इस मतभेदमें वक्ष्यमाण यह व्यवस्था जाननी चाहिये ॥ ७० ॥

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति ॥ अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ॥७१॥ यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन् ॥पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते ॥ ७२ ॥

भाषा–ऊपरके प्रदेशमें बोया हुआ बीज फलको न देकर बीचहीमें नष्ट हो जाता है और सुंदरभी खेत बीजरहित केवल स्थंडिलही होता है धान्य नहीं उत्पन्न होता है तिससे प्रत्येककी निंदासे " सुवीजं चैव सुक्षेत्रे " यह पहले कहा हुआ है तिससे दोनोंकी मुख्यता अभिमत है ॥ ७१ ॥ अब बीजकी प्राधान्यताके पक्षमें दृष्टांत कहते हैं जिससे बीजकी प्रधानता करिके तिर्यक् जाति हरिणी आदिमें उत्पन्नभी ऋष्यशृंग आदि मुनित्वको प्राप्त हुए और पूजित हुए और नमस्कारकी योग्यता आदिसे वेदके ज्ञान आदिसे प्रशस्त वाणी करि स्तुति किये गये तिससे बीजकी प्रशंसा करते हैं ऐसे बीजकी प्रधानता हुई बीज और योनिके मध्यमें बीजोत्कृष्ट जाति प्रधान होती है यह भली भांति जानना चाहिये ॥ ७२ ॥

अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम् ॥ संप्रधार्याब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थिताः ॥ ते सम्यगुपजीवेयुः षट् कर्माणि यथाक्रमम् ॥७४॥

भाषा–द्विजातिके कर्म करनेवाले शूद्रको और शूद्रके कर्म करनेवाले द्विजातिको ब्रह्माने विचार करके न सम है न असम है यह कहा जिससे द्विजातिके कर्म करनेवालाभी शूद्र द्विजातिके समान नहीं होता है क्योंकि उस अनधिकारीका द्विजातिके कर्मोंके करनेमें उनकी समता नहीं है ऐसेही शूद्रके कर्म करनेवालाभी द्विजाति शूद्रके समान नहीं होता है क्योंकि निषिद्धके सेवनसे जातिके उत्कर्षका नाश नहीं होता है और न असम हैं क्योंकि निषिद्ध आचरणसे दोनोंकी समता होती है तिससे जिसको जो कर्म गर्हित है उसको वह न करना चाहिये यह संकर पर्यंत वर्णोंके धर्मका उपदेश है ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणोंके आपद्धर्मका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं. जे ब्राह्मण ब्रह्मकी प्राप्तिके कारण ब्रह्मके ध्यानमें निष्ठ हैं और अपने कर्मोंके करनेमें लगे हैं वे आगे कहे जांयगे ऐसे अध्यापन आदि षट् कर्मोंको क्रमसे भली भांति करे ॥ ७४ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् क-

**माण्यग्रजन्मनः ॥ ७५ ॥ षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि
जीविका ॥ याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥ ७६ ॥**

भाषा–उन कर्मोंको कहते हैं अंगसहित वेदका पढना तथा पढाना और यजन याजन, दान और प्रतिग्रह ये छः कर्म ब्राह्मणके जानने योग्य हैं ॥ ७५ ॥ इस ब्राह्मणके इन अध्यापन आदि छः कर्मोंमेंसे याजन अध्यापन और शुद्ध प्रतिग्रह ये तीनि कर्म जीविकाके लिये जानने योग्य हैं ॥ ७६ ॥

**त्रयो धर्मा निवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति ॥ अध्यापनं याजनं च तृती-
यश्च प्रतिग्रहः ॥ ७७ ॥ वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्तेरन्निति स्थि-
तिः ॥ न तौ प्रति हि तान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ॥ ७८ ॥**

भाषा–ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रियके अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह, नाम जीविकाके अर्थ नहीं होते हैं अध्ययन, याग, दान तौ उसकेभी होते हैं ॥ ७७ ॥ जैसे क्षत्रियके अध्यापन याजन और प्रतिग्रह निवृत्त होते हैं वैसेही वैश्यकेभी यह शास्त्रकी व्यवस्था है जिससे मनु और प्रजापति इन दोनोंने क्षत्रिय वैश्योंप्रति वे जीविका निमित्त कर्म कर्त्तव्यत्वसे कहे ऐसे वैश्यकेभी अध्ययन याग और दान होते हैं ॥ ७८ ॥

**शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः ॥ आजीवनार्थं धर्मस्तु
दानमध्ययनं यजिः ॥ ७९ ॥ वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च
रक्षणम् ॥ वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥**

भाषा–शस्त्र, खड्ग आदि और शस्त्र बाण आदि इनका धारण प्रजाकी रक्षाके लिये क्षत्रियका जीविकाके लिये है और वाणिज्य पशुओंकी रक्षा खेती ये कर्म वैश्यके जीविकाके लिये हैं और इन दोनोंके धर्मके लिये दान अध्ययन और यज्ञ होते हैं ॥ ७९ ॥ ब्राह्मणका वेद पढाना और क्षत्रियका प्रजाकी रक्षा और वैश्यका वाणिज्य तथा पशुओंकी रक्षा ये इनकी जीविकाके लिये कर्मोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ८० ॥

**अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ॥ जीवेत्क्षत्रियधर्मेण
स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥ ८१ ॥ उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादि-
ति चेद्भवेत् ॥ कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥ ८२ ॥**

भाषा–अब आपद्धर्मोंको कहते हैं. ब्राह्मण कहे हुए अध्यापन आदि अपने कर्मसे नित्य कर्मोंका करना और कुटुंबके पालनपूर्वक न जीविका करि सकता हुआ ग्राम नगरकी रक्षा आदि क्षत्रियके कर्मसे जीविका करे जिससे क्षत्रियका धर्म

इसकी निकट वृत्ति है ॥ ८१ ॥ ब्राह्मण दोनों अपनी और क्षत्रियकी वृत्तिसे न जीविका करता हुआ किस प्रकारसे वर्त्ते यह जो संदेह होय तो खेती और पशुरक्षाका आश्रय लेकर वैश्य वृत्तिको करे ॥ ८२ ॥

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा ॥ हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ८३ ॥ कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता ॥ भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ८४ ॥

भाषा-ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वैश्य वृत्तिसेभी जीविका करता हुआ जिसमें बहुतसे जीवोंकी हिंसा अधिक होती होय ऐसी बलीवर्द आदिके पराधीन खेतीको यत्नसे त्याग करे इसीसे पशुपालन आदिके न होनेमें खेती करनी चाहिये यह देखना चाहिये "क्षत्रियोपि" इसके कहनेसे यह जाना गया कि, क्षत्रियभी अपनी वृत्तिके न होनेपर वैश्यकी वृत्तिसे निर्वाह करे ॥ ८३ ॥ यह अच्छी जीविका है कोई खेतीको ऐसा मानते हैं परंतु वह जीविका सज्जनोंकरि निंदित है कारण यह है कि, हलकुदाल आदि लोहके लगे हुए काष्ठसे भूमिकी और भूमिमें स्थित जीवोंकी हत्या होती है ॥ ८४ ॥

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम् ॥ विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम् ॥ ८५ ॥ सर्वान्रसानपोहेत कृतान्नं च तिलैः सह ॥ अश्मनो लवणं चैव पशवो ये च मानुषाः ॥ ८६ ॥

भाषा-ब्राह्मण और क्षत्रियको अपनी वृत्तिके न होनेपर धर्ममें कुशलताको छोडि जो वैश्य बेंचते हैं उन वस्तुओंको आगे कही हुई वर्जन करने योग्य वस्तुओंको छोडि धन बढानेवाली वस्तु बेंचनी चाहिये ॥ ८५ ॥ उन वर्जनीय वस्तुओंको कहते हैं सब रसोंको तथा सिद्ध अन्न कहिये पूरी आदि तिल पाषाण नोन पशु मनुष्य इन सबोंको न बेंचे ॥ ८६ ॥

सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च ॥ अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ॥ ८७ ॥ अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः ॥ क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥ ८८ ॥

भाषा-सब तागोंसे बने वस्त्र कुसुम आदिसे रंगे हुए न बेंचे और सन तथा अलसीके तागोंसे बने हुए तथा भेडके रोमोंसे बने हुए चाहे लालभी न होय तिसपरभी न बेंचे तैसेही फल मूल और गुडूची आदिको न बेंचे ॥ ८७ ॥ जस्त, लोह, विष, मांस, सोम, दूध, दही, घी, तेल, गुड, डाभ और सुगंधयुक्त सब कपूर आदि, माक्षिक (शहद), मोम इन सबोंको न बेंचे ॥ ८८ ॥

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च ॥ मद्यं नीलीं च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा ॥ ८९ ॥ काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः ॥ विक्रीणीत तिलाञ्छूद्रान्धर्मार्थमचिरस्थितान् ॥ ९० ॥

भाषा-सब जंगली पशु, हाथी, घोडा आदि और दंष्ट्री कहिये सिंह आदि और पक्षी, मद्य, लाख और एक खुरवाले घोडा आदिकोंको न वेंचे ॥ ८९ ॥ किसान आप जोतनेसे उत्पन्न कर दूसरी वस्तुके साथ मिले हुए तिलोंको उत्पन्न होतेही लाभके लिये कालांतरको न देखि धर्मके निमित्त इच्छासे वेंचे ॥ ९० ॥

भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ॥ कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ॥ ९१ ॥ सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥ त्र्यहेण शूद्रीभवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ९२ ॥

भाषा-भोजन उबटने तथा दानके सिवाय जो और निषिद्ध विक्रय आदि जो तिलोंका करता है वह उस पापसे पितरोंसमेत कृमि होके कुत्तेकी विष्ठामें डूबता है ॥ ९१ ॥ मांस, लाख और लवणके वेंचनेसे ब्राह्मण उसी क्षण पतित होता है और दूधके वेचनेसे तीनि दिनोंमें शूद्र हो जाता है ॥ ९२ ॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः ॥ ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति ॥ ९३ ॥ रसा रसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः ॥ कृतान्नं चाकृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः ॥ ९४ ॥

भाषा-ब्राह्मण कहे हुए मांस आदिकोंसे अन्य निषिद्ध वेंचनेकी वस्तुओंको इच्छासे प्रमादके विना दूसरी वस्तुके साथ सात रात्रितक वेंचनेसे वैश्य हो जाता है ॥ ९३ ॥ रस कहिये गुड आदि घी आदि रसोंसे बदला करने योग्य है और नोनका दूसरे रससे बदला न करे और सिद्ध अन्नका कच्चे अन्नसे बदला करे और तिलोंका धान्यसे बदला करे और धान्यका धान्यसे अर्थात् प्रस्थ प्रमाणसे प्रस्थ इस प्रकार उनके समान बदला करे ॥ ९४ ॥

जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः ॥ न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित् ॥ ९५ ॥ यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः ॥ तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ९६ ॥

भाषा-आपत्तिको प्राप्त क्षत्रिय ब्राह्मणके लिये निषिद्धभी रस आदिके वेंचनेसे वैश्यके समान जीविका करे और फिर ब्राह्मणकी जीविका कभी न करे केवल क्षत्रियही नहीं वैश्य आदिभी अन्य न करें ॥ ९५ ॥ जो निकृष्ट जाति लोभसे

उत्कृष्ट जातिके लिये कहे हुए कर्मोंसे जीविका करे उसका सर्वस्व लेकर राजा उसी समय देशसे निकाल देवे ॥ ९६ ॥

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ॥ परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः ॥ ९७ ॥ वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि वर्त्तयेत् ॥ अनाचरन्नकार्याणि निवर्त्तेत च शक्तिमान् ॥ ९८ ॥

भाषा-विगुण कहिये बिगडा हुआभी अपना कर्म करनेको योग्य है और संपूर्णभी पराया कर्म करना उचित नहीं है जिससे दूसरी जातिके लिये कहे हुए कर्मसे जीविका करता हुआ उसी क्षणसेही अपनी जातिसे पतित होता है ॥ ९७ ॥ अपनी वृत्तिसे जीविका करनेको असमर्थ वैश्य द्विजातिकी सेवारूप शूद्रकी और वृत्तिसे उच्छिष्ट भोजन आदिको न करता हुआ वरते और आपत्तिके दूरि होनेपर शूद्रकी वृत्तिसे निवृत्त होय ॥ ९८ ॥

अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम्॥ पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः ॥ ९९ ॥ यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः ॥ तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ॥१००॥

भाषा-द्विजातिकी सेवा करनेको असमर्थ और क्षुधासे नष्ट हो गये हैं पुत्र कलत्र जिसके ऐसा शूद्र सूत्रकार आदिकोंके कर्मोंसे जीवे ॥ ९९ ॥ जिन कर्मोंके करनेसे द्विजातिकी सेवा होय उन काष्ठतक्षण आदि कर्मोंको और शिल्पों और चित्र बनाना आदि नाना प्रकारके शिल्पोंके कामोंको करे ॥ १०० ॥

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः ॥ अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत् ॥ १ ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयं गतः ॥ पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते ॥ २ ॥

भाषा-जीविका न होनेसे पीडित दुर्वलताको प्राप्त हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्यकी वृत्तिको न करता हुआ बिगडाभी अपना धर्म श्रेष्ठ है यह कहनेके कारण अपनीही वृत्तिमें स्थित इस आगे कही हुई वृत्तिको करे इससे बिगडा प्रतिग्रह आदि अपनी वृत्तिके न होनेपर पराई वृत्तिका आश्रय लेना जानिये ॥१॥ आपत्तिमें प्राप्त हुआ ब्राह्मण सब निंदिततर और निंदिततम मनुष्योंसे क्रमसे दान लेवे जिससे पवित्र गंगा आदि गलीके जल आदिसे दूषित होते हैं यह शास्त्रकी मर्यादासे नहीं हो सकता है ॥ २ ॥

नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् ॥ दोषो भवति विप्रा-

णां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ॥ ३ ॥ जीवितात्ययमापन्नो योऽन्न-मत्ति यतस्ततः ॥ आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥ ४ ॥

भाषा-ब्राह्मणोंको आपत्तिसमयमें निंदित अध्यापन याजन और प्रतिग्रहसे अधर्म नहीं होता है कारण यह है कि, वे स्वभावसे पवित्र होनेके कारण अग्नि और जलके तुल्य हैं ॥ ३ ॥ प्राणके नाशको प्राप्त जो प्रतिलोमजसे लेकर अन्न खाता है वह कीचसे आकाशके समान पापसे लिप्त नहीं होता है ॥ ४ ॥

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद् बुभुक्षितः ॥ न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ॥ ५ ॥ श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तुं धर्माधर्म-विचक्षणः ॥ प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥ ६ ॥

भाषा-अजीगर्त्त नाम ऋषि भूखा हो शुनःशेप नाम पुत्रको आप बेंचता भया यज्ञमें सौ गौओंके लाभके लिये यज्ञस्तंभमें वांधके मारी हुई हो मारनेका आरंभ किया क्षुधा दूर करनेके लिये न वैसे करता हुआ पापसे लिप्त हुआ यह तो शुनः-शेपके आख्यानोंमें बह्वृच ब्राह्मणमें स्पष्ट कहा है ॥ ५ ॥ धर्म अधर्मका जाननेवाला वामदेव नाम ऋषि क्षुधासे पीडित हो प्राणत्राणके लिये कुत्तेके मांसको खानेकी इच्छा करता हुआ दोषसे लिप्त न हुआ ॥ ६ ॥

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने ॥ बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ॥ ७ ॥ क्षुधार्त्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् ॥ चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ ८ ॥

भाषा-बडे तपस्वी भरद्वाज मुनिने पुत्रसमेत निर्ज्जन वनमें वसके क्षुधासे पीडित हो वृधु नाम बढईसे बहुतसी गौएं दानमें लीं ॥७॥ धर्म अधर्मके जाननेवाले विश्वामित्र ऋषिने क्षुधासे पीडित हो चांडालके हाथसे लेकर कुत्तेकी जघनके मांसकी खानेकी इच्छा की ॥ ८ ॥

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि ॥ प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ॥ ९ ॥ याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृता-त्मनाम् ॥ प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः ॥ ११० ॥

भाषा-निंदितभी अध्यापन याजन प्रतिग्रहोंमेंसे ब्राह्मणको निषिद्ध दान लेना निकृष्ट हे और परलोकमें नरकका कारण है तिससे आपत्तिमें पहले निंदित अध्याप-पन और याजनमें प्रवृत्त होना चाहिये उनके असंभवमें तौ असत्प्रतिग्रह लेना चाहिये इसलिये यह कहा है ॥९॥ इसमें कारण कहते हैं. याजन और अध्या-

पन आपत्तिमें और अनापत्तिमें उपनयनसे संस्कार किये हुए द्विजातियोंहीको कराये जाते हैं और प्रतिग्रह तो निकृष्ट जाति शूद्रसेभी किया जाता है इससे वह उनसे दोनों निंदित हैं ॥ ११० ॥

जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् ॥ प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्या-
गेन तपसैव च ॥ ११ ॥ शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्त-
तः ॥ प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते ॥ १२ ॥

भाषा-पापके ग्रहणसे असत्प्रतिग्रह याजन और अध्यापनसे जो उत्पन्न पाप है वह प्रायश्चित्तके प्रकरणमें आगे कहे हुए क्रमसे जप और होमसे नाश होता है और असत्प्रतिग्रहसे उत्पन्न तोली हुई द्रव्य करके महीने भरतक गौओंके स्थानमें दूध पीकर रहे इत्यादिक आगे कहे हुए तपसे दूर होता है ॥ ११ ॥ अपनी वृत्तिसे जीविकाको न करता हुआ ब्राह्मण जहां तहांसे अर्थात् उपपातकी आदिकोंसेभी शिलोंछ ग्रहण करे और उसके संभव होनेपर असत्प्रतिग्रह न करे जिससे असत्प्रतिग्रहसे शिल उत्तम है धान्यकी वालोंके वीननेको शिल कहते हैं उंछ उससेभी श्रेष्ठ है एक एक धान्य वीनकर इकट्ठे करनेको उंछ कहते हैं ॥ १२ ॥

सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धनं वा पृथिवीपतिः ॥ याच्यः स्यात्स्ना-
तकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमर्हति ॥ १३ ॥ अकृतं च कृतात्क्षेत्राद्गौरजा-
विकमेव च ॥ हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वं पूर्वमदोषवत् ॥ १४ ॥

भाषा-धन न होनेके कारण धर्मके लिये अथवा कुटुंबके लिये दुःख पाते हुए स्नातक ब्राह्मणोंकरि सुवर्ण चांदीसे भिन्न धान्य वस्त्र आदि कुप्य धन और यज्ञ आदिके उपयोगी सुवर्ण आदिभी आपत्तिके प्रकरणसे शास्त्रसे बाहर चलनेवाला क्षत्रियभी मांगने योग्य होता है और जो देनेकी इच्छा न करे कृपणतासे निश्चय किया हुआ वह त्यागने योग्य है अर्थात् नहीं मांगने योग्य है और मेधातिथि गोविंदराज दोनों टीकाकार लिखते हैं कि, वह त्यागके योग्य है अर्थात् उसके देशमें न वसना चाहिये ॥ १३ ॥ अकृत कहिये विना बोया हुआ खेत कृत कहिये बोये हुएसे प्रतिग्रह कहिये दान लेनेमें दोषरहित है तैसेही गौ, बकरा, मेंढा, सोना, धान और सिद्धान्न कहिये परिपक्क अन्न, इनमेंसे पहिला पहिला दोषरहित है तिससे तौ इनमें पहले पहलेके न होनेमें पर पर जानिये ॥ १४ ॥

सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ॥ प्रयोगः कर्मयोग-
श्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥ १५ ॥ विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं
विपणिः कृषिः ॥ धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥ १६ ॥

भाषा-दाय जो भाग है तिसको आदि लेकर सात प्रकारके धनके आगम (आमदनी) धनके अधिकारके अनुसार धर्मयुक्त हैं उनमें दाय वंशके क्रमसे आये हुए धनको कहते हैं और लाभ निधि आदिकी प्राप्तिको अथवा मित्रता आदिसे प्राप्त धनको कहते हैं और क्रय प्रसिद्ध है ये तीनि चारों वर्णोंके धर्मसंबंधी हैं और जय धन कहिये विजय करनेसे प्राप्त क्षत्रियका धन धर्मसंबंधी है. और प्रयोग वृद्धि आदिके धनका और कर्मयोग कहिये खेती और वणिज ये प्रयोग वैश्यके धर्मसंबंधी हैं और सत्प्रतिग्रह ब्राह्मणका धर्मसंबंधी है ऐसे इन्होंका धर्मत्व वचनसे इनके अभावमें आपत्तिरहित समयमें कहे हुए अन्य जीविकाके कामोंमें प्रवृत्त होना चाहिये और उनके अभावमें आपत्तिमें कहे हुओंमें प्रवृत्त होना चाहिये इसलिये यह यहां कहा है ॥ १५ ॥ आपत्तिके प्रकरणमें " जीवनहेतवः " अर्थात् जीवनेके कारण इस कहनेसे इनके मध्यमें जिस वृत्तिसे जिसका जीवन आपत्तिरहित समयमें निषिद्ध है उस वृत्तिसे उसको आपत्तिकालमें जीवनेकी आज्ञा दी जाती है जैसे ब्राह्मणके भृति सेवा आदि ऐसेही शिल्प आदिमेंभी जानिये और विद्या कहिये वेद विद्याको छोडके वैद्य तर्क विषका दूर करना आदि विद्या सबोंको आपत्तिकालमें जीवनके लिये दोष नहीं है शिल्प कहिये लिखना आदि करना और भृति कहिये प्रेष्य भावसे नौकरीका द्रव्य लेना और सेवा कहिये पराई आज्ञाका करना और गौओंकी रक्षा कहिये पशुओंका पालना और विपणि कहिये दूकान करना और खेती अपने हाथसे की हुई और धृति कहिये संतोष उसके होनेपर थोडेसेभी जीवन होता है और भैक्ष्य कहिये भिक्षाका समूह और कुसीद कहिये व्याजके लिये धन देना इन दश जीवनके उपायोंसे आपत्तिमें जीवना चाहिये ॥ १६ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत् ॥ कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् ॥१७॥ चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि ॥ प्रजा रक्षन्परं शक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते ॥१८॥

भाषा-ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय व्याज आदिके धनको आपत्तिकालमेंभी न लगावे किन्तु निकृष्ट कर्म करनेवालेके लिये धर्मके निमित्त थोडेसेभी व्याज देवे ॥ १७ ॥ अब राजाओंका आपद्धर्म कहते हैं राजाका धान्योंमें आठवां भाग होता है इत्यादि कह चुके हैं वह आपत्तिकालमें धान्य आदिका चौथाभी भाग करके लिये लेता हुआ और परम शक्तिसे प्रजाकी रक्षा करता हुआ अधिक कर लेनेके पापसे युक्त नहीं होता है ॥ १८ ॥

स्वधर्मो विजयस्तस्य नाहवे स्यात्पराङ्मुखः ॥ शस्त्रेण वैश्यान्र-

क्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम् ॥ १९ ॥ धान्येऽष्टमं विंशं शुल्कं विंशं कार्षापणावरम् ॥ कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा ॥ १२० ॥

भाषा-राजाका शत्रुको विजय करना स्व कहिये अपना धर्म है और युद्धका फल विजय है प्रजाकी रक्षामें लगे हुए राजाको जो कहींसे भय होय तो युद्धसे न हटे ऐसे वैश्योंकी चोर तथा डाकुओंसे रक्षा करके उनसे धर्मयुक्त आप्तपुरुषोंके द्वारा कर लेवे ॥ १९ ॥ कौनसा कर लेवे सो कहते हैं. धान्यमें वृद्धि होनेपर वैश्योंसे आठवां भाग कर लेवे धान्योंका बारहवां भाग कहा है आपत्ति कालमें यह आठवां कहा जाता है और बडीही आपत्तिमें पहले कहा हुआ चौथा भाग जानना चाहिये तैसेही कार्षापणतक सुवर्णोंका वीसवां भाग कर लेवे वहांभी " पंचाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः" अर्थात् राजाकरि पशु और सुवर्णमें पचासवां भाग लेना चाहिये इत्यादिसे पचासवां भाग कहा है आपत्तिमें यह वीसवां कहा जाता है तैसेही शूद्र, कारु, सूत्रकार आदि शिल्पी बढई आदि ये कामहीसे उपकार करते हैं इनसे आपत्तिमेंभी कर न लेना चाहिये ॥ १२० ॥

शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि ॥ धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् ॥ २१ ॥ स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः ॥ जातब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥ २२ ॥

भाषा-ब्राह्मणकी सेवासे जीविकाको न करता हुआ शूद्र जो वृत्तिकी चाहना करे तौ क्षत्रियकी सेवा करके और उसके न होनेमें धनवान् वैश्यकी सेवा करके जीवनेकी इच्छा करे द्विजातिकी सेवामें समर्थ न होनेपर तौ पहले कहे हुए कर्मोंको करे ॥ २१ ॥ स्वर्गकी प्राप्तिके लिये अथवा स्वर्गमें अपनी वृत्तिकी प्राप्तिके लिये शूद्र ब्राह्मणोंहीकी सेवा करे कारण यह है कि, यह ब्राह्मणोंहीका आश्रित उत्पन्न हुआ है और यही इसकी कृतार्थता है ॥ २२ ॥

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ॥ यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम् ॥ २३ ॥ प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः ॥ शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम् ॥ २४ ॥

भाषा-ब्राह्मणकी सेवाही शूद्रको और सब कर्मोंसे शास्त्रमें श्रेष्ठ कर्म कहा है जिससे इसको छोडकर जिस कर्मको यह करता है वह इसका निष्फल होता है ॥ २३ ॥ इस सेवा करनेवाले शूद्रकी सेवामें सामर्थ्य और कर्ममें उत्साह तथा पालने योग्य पुत्र स्त्री आदिके परिमाणको देखि उन ब्राह्मणोंको अपने घरसे उसकी जीविका कल्पना करनी चाहिये ॥ २४ ॥

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च ॥ पुलकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः ॥२५॥ न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति॥नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम्॥ २६ ॥

भाषा-उस शूद्रके लिये भोजनसे बचा हुआ अन्न ब्राह्मणोंको देना चाहिये और जो "न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं" अर्थात् शूद्रको मति न दे और न उच्छिष्ट दे यह निषेध, जो शूद्र आश्रित नहीं है उसके मध्ये जानिये तथा पुराने वस्त्र और असार धान्य पुरानी शय्या तथा औरभी सब पुराने इसको देने चाहिये ॥ २५ ॥ लहशुन आदिके खानेमें शूद्रको कुछ पातक नहीं होता है तो ब्रह्मवध आदिमें तौ होताही है. क्योंकि "अहिंसा सत्यमस्तेयं" अर्थात् हिंसा न करना सत्य बोलना चोरी न करना यह चारों वर्णोंको साधारणतासे कहा है और यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंके योग्य नहीं है और इसका अग्निहोत्र आदि कर्मोंमें अधिकार नहीं है क्योंकि विहित नहीं है और शूद्रको कहे हुए पाकयज्ञ आदि धर्मसे इसका निषेध नहीं है अर्थात् पाकयज्ञ आदि करे ॥ २६ ॥

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ॥ मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च॥२७॥ यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः ॥ तथातथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥ २८ ॥

भाषा-अपने धर्मके जाननेवाले जे शूद्र धर्म प्राप्तिकी कामनासे जो निषिद्ध नहीं ऐसे तीनों वर्णोंके आचारका आश्रय लेते हैं वे नमस्कार मंत्रसे पंचयज्ञोंको करे और दूसरे मंत्रके विना नमस्कार मंत्रसे पंचयज्ञ आदि धर्मको करते हुए शूद्र दोषयुक्त नहीं होते हैं और लोकमें ख्यातिको प्राप्त होते हैं ॥ २७॥ पराये गुणोंकी निंदा न करनेवाला शूद्र जैसे जैसे द्विजातिके निषिद्ध नहीं ऐसे आचारोंको करता है वैसा वैसा जनों करि निंदित न हो इस लोकमें उत्कृष्ट कहा गया है और स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ॥ शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥ २९ ॥ एते चतुर्णां वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्त्तिताः ॥ यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजन्ति परमां गतिम् ॥ १३० ॥

भाषा-धनके जोडनेमें समर्थभी शूद्रको कुटुंबके पालने और पंचयज्ञ आदिके योग्य धनसे अधिक बहुतसे धनको संचय न करना चाहिये कारण यह है कि, शूद्र धनको पाके शास्त्र न जाननेके कारण धनके मदसे सेवा न करनेसे ब्राह्मणोंहीको

बाधा देता है ॥ २९ ॥ आपत्तिकालमें करने योग्य चारों वर्णोंके धर्म ये कहे उनको भली भांतिसे करते हुए विहितके करनेसे और निषिद्धके न करनेसे पापरहित होनेके कारण ब्रह्मज्ञानके लाभसे मोक्षरूप परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ १३० ॥

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ १३१ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

भाषा-यह चारों वर्णोंका संपूर्ण आचार कहा उसके उपरान्त शुभप्रायश्चित्तका अनुष्ठान कहूंगा ॥ १३१ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ।

सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ॥ गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनौ ॥ १ ॥ नवैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान् ॥ निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः ॥ २ ॥

भाषा-विवाहका प्रयोजन संतान है इसलिये सांतानिक कहिये विवाह करनेकी इच्छावाला १ और आगे कहा हुआ अवश्य करने योग्य ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ करनेकी इच्छावाला २ और अध्वग कहिये बटोही ३ और सर्ववेदस कहिये जिसने सर्वस्व दक्षिणायुक्त विश्वजितयज्ञ किया है ४ और विद्यागुरुके भोजन वस्त्रके लिये जिसका प्रयोजन है ५ ऐसेही पिता माताके लियेभी ६।७ और वेद पढनेके समय भोजन वस्त्र आदिका चाहनेवाला ब्रह्मचारी ८ और उपतापी कहिये रोगी ९ इन नव ब्राह्मणोंको धर्मभिक्षाशील स्नातक जाने इन निर्द्धनोंको जो गौ सुवर्ण आदि दिया जाय उस दानको विद्याविशेषके अनुरूप देवे ॥ १ ॥ २ ॥

एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् ॥ इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते ॥ ३ ॥ सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत् ॥ ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ॥ ४ ॥

भाषा-इन नव श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वेदीके मध्यमें दक्षिणासमेत अन्न देना चाहिये और इनसे जो भिन्न होय उनको वेदीके बाहर सिद्ध अन्न देना चाहिये यह उप-

देश किया जाता है और धनके देनेमें तो नियम नहीं है ॥ ३ ॥ राजा, मणि, मोती आदि सब रत्नोंको और यज्ञके उपयोगी दक्षिणाके लिये धन विद्याके अनुरूप वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको देवे ॥ ४ ॥

कृतदारोऽपरान्दारान्भिक्षित्वा योऽधिगच्छति ॥ रतिमात्रं फलं तस्य द्रव्यदातुस्तु संततिः ॥ ५ ॥ धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ॥ वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ ६ ॥

भाषा–स्त्रीयुक्त जो संतति आदि कारणके विना औरोंसे मांगकर विवाह करता है उसको रतिमात्रही फल होता है और उससे उत्पन्न सन्तान धन देनेवालेके होते हैं तिससे इस प्रकार धन मांगके दूसरा विवाह न करना चाहिये और ऐसेके लिये धन न देना चाहिये यह तात्पर्य है ॥ ५ ॥ गौ, भूमि, हिरण्य आदि धन शक्तिके अनुसार वेदके जाननेवाले पवित्र और पुत्र स्त्री आदि करि युक्त ब्राह्मणोंको दान करे उसके वशसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ॥ अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥ ७ ॥ अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः ॥ स पीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥ ८ ॥

भाषा–जिसके अवश्य पोष्य वर्गके भरणके लिये तीनि वर्षके खरचका पूरा अथवा उससे कुछ अधिक भोजन आदि होय वह काम्य सोमयाग करनेके योग्य है ॥ ७ ॥ तीनि वर्षके व्यय योग्य धनसे थोडा धन होनेपर जो सोमयागको करता है उसका प्रथम सोमयाग नित्यभी संपन्न नहीं होता है और द्वितीय काम्य सोमयाग तो कैसेहूं नहीं ॥ ८ ॥

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ॥ मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः ॥ ९ ॥ भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ॥ तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥ १० ॥

भाषा–जो वहुत धन होनेके कारण दानमें समर्थ होता हुआ अवश्य भरण करने योग्य पिता माता आदि जातिके जनोंको दुर्गतिसे दुःखयुक्त होनेपर यशके लिये औरोंको देता है वह उसका दान विशेष धर्मका प्रतिरूप कहे धर्म नहीं है पहले यशस्कर होनेसे मधुर तौ उसका आरंभ है और अंतमें नरक फल होनेसे विषका आस्वाद है तिससे यह न करना चाहिये ॥ ९ ॥ अवश्य भरण करने योग्य पुत्र स्त्री आदिको पीडा देकर जो परलोककी धर्मबुद्धिसे दान आदि करता है उस दाताके जीवतेको तथा मरेको वह दान दुःखरूप फलका देनेवाला होता है ॥ १० ॥

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः ॥ ब्राह्मणस्य विशे-षेण धार्मिके सति राजनि ॥ ११ ॥ यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ॥ कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये ॥ १२ ॥

भाषा-क्षत्रिय आदि यजमानका और विशेष कारि ब्राह्मणका यज्ञ जो और अंगोंके पूर्ण होनेपर एक अंगसे पूरा न होय तो जिस वैश्यके बहुत पशु आदि धन होय और वह पाकयज्ञ आदि तथा सोमयजन आदि न करता होय उसके घरसे उस अंगके योग्य द्रव्य बलसे अथवा चोरीसे ले लेवे यह तो राजाके धर्म प्रधान होनेपर करना चाहिये वह शास्त्रके अर्थ करनेवालेको दंड नहीं देता है ॥११॥१२॥

आहरेत्त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः ॥ न हि शूद्रस्य यज्ञे-षु कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥ १३ ॥ योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ॥ तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥ १४ ॥

भाषा-यज्ञके दो तीनि अंगोंके विकल होनेपर उन तीनि अंगोंको अथवा दो अंगोंको वैश्यसे न मिलनेपर बेधडक शूद्रके घरसे बल करके अथवा चोरीसे लेवे जिससे शूद्रका कोईभी यज्ञसे संबंध नहीं है और न ब्राह्मण यज्ञके लिये धन शूद्रसे मांगे यह आगे कहा हुआ निषेध शूद्र आदिकोंसे मांगनेका है बलसे लेने आदिका नहीं ॥ १३ ॥ जिस अग्निहोत्र न करनेवालेके सो गौ प्रमाण धन होय अथवा अग्निहोत्री होय और सोमयाग न करता होय उसके जो हजार गौप्रमाण धन होय तो दोनोंके घरोंसे दोनों अथवा तीनों अंगोंके शीघ्र पूरे करनेको ब्राह्मण कारि दोनोंसे लेना चाहिये और ब्राह्मण क्षत्रियोंसेभी लेवे ॥ १४ ॥

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः ॥ तथा यशोऽस्य प्र-थते धर्मश्चैव प्रवर्धते ॥ १५ ॥ तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता ॥ अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥ १६ ॥

भाषा-आदान नित्य कहिये जिसके प्रतिग्रह आदिसे नित्य धन आवे वह जो इष्टापूर्त्त तथा दानसे रहित होय उससे यज्ञके दो अथवा तीनि अंगोंके लिये याचना करनेपर न दे तो बलसे अथवा चोरीसे लेवे ऐसा करनेपर लेनेवालेकी ख्याति प्रकाशित होती है और धर्म बढता है ॥ १५ ॥ सायंकाल और प्रातःकालके भोजनके उपदेशसे तीनि दिनका उपवास होनेपर चौथे दिन प्रातःकाल सातवें भोजनकी प्राप्ति होनेपर दान आदि धर्मसे रहित एक दिनका पूर्ण भोजनके योग्य धन चोरीसे लेना चाहिये ॥ १६ ॥

खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते ॥ आख्यातव्यं तु तत्त-
स्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥ १७ ॥ ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं क्षत्रि-
येण कदाचन ॥ दस्युनिष्क्रिययोस्तु स्वमजीवन्हर्तुमर्हति ॥ १८ ॥

भाषा—खलिहानसे अथवा खेतसे अथवा घरसे अथवा और किसी स्थानसे हीन कर्मसंबंधी धान्य मिले वहांसे लेना चाहिये जो यह धनका स्वामी पूंछे कि, तुमने किस लिये किया तौ उससे कारण समेत चोरी आदि कहनी चाहिये ॥ १७ ॥ कहे हुए कारणोंके होनेपरभी क्षत्रियको ब्राह्मणका धन उससेही न होनेके कारण न लेना चाहिये समान न्याय होनेके कारण वैश्यों तथा शूद्रोंको ऊंची जातिसे न लेना चाहिये और निषिद्धके करनेवाले और विहितके न करनेवाले ब्राह्मण तथा क्षत्रियसे अत्यंत आपत्तिमें क्षत्रिय लेनेके योग्य है ॥ १८ ॥

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति ॥ स कृत्वा प्लवमा-
त्मानं संतारयति तावुभौ ॥ १९ ॥ यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं
तद्विदुर्बुधाः ॥ अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥ २० ॥

भाषा—जो हीन कर्म आदि उत्कृष्टोंसे कहे हुएभी कारणोंमें कहेके अनुरूप यज्ञ आदिकी सिद्धिके लिये धनको लेकर साधुओंको और उत्कृष्ट जो ऋत्विक् आदि हैं तिनको देता है वह जिसका धन लेता है उसके पापका नाश करता है और जिसको देता है उसको दुर्गतिसे बचाता है इस भांति आपको नाव बनाके दोनोंको दुःखसे छुडाता है ॥ १९ ॥ यज्ञ करनेवालोंका जो धन है उसको यज्ञमें लगनेके कारण विद्वान् देवताओंका धन मानते हैं और यज्ञ आदिसे शून्य पुरुषोंके धनको यज्ञ आदिमें न लगनेके कारण आसुर कहिये असुरोंका कहते हैं इससे उसकोभी हरण करके यज्ञ आदिसे देवस्व करना चाहिये ॥ २० ॥

न तस्मिन्धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ क्षत्रियस्य हि बालि-
श्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा ॥ २१ ॥ तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटु-
म्बान्महीपतिः ॥ श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥

भाषा—उस कहे कारणमें चोरी तथा बलात्कार करनेवालेको धर्मप्रधान राजा दंड न करे कारण यह है कि राजाकी मूढतासे ब्राह्मण क्षुधासे दुःखी होता है ॥ २१ ॥ उस ब्राह्मणके अवश्य भरण करने योग्य पुत्र आदि वर्गको जानि तथा शास्त्र और आचारको जानि इनके अनुरूप जीविका राजा अपने घरसे नियत करे ॥ २२ ॥

कल्पयित्वाऽस्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः॥राजा हि धर्मषड्भागं तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात्॥ २३ ॥ न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत कर्हिचित् ॥ यजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालः प्रेत्य जायते ॥२४॥

भाषा-इस ब्राह्मणकी जीविकाको नियत करि सब शत्रु चौर आदिकोंसे रक्षा करे कारण यह है कि रक्षा किये हुए ब्राह्मणसे उसके धर्मका छठा भाग पाता है ॥ २३ ॥ ब्राह्मण यज्ञकी सिद्धिके लिये शूद्रसे कभी धन न मांगे कारण यह है कि शूद्रसे मांगके यज्ञको करता हुआ मारिके चांडाल होता है इससे मांगनेका निषेध करनेसे शूद्रसे विना मांगे हुएभी प्राप्त हुआ धन यज्ञके लियेभी विरुद्ध नहीं है॥२४॥

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति ॥ स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः ॥२५॥ देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः ॥ स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥ २६ ॥

भाषा-यज्ञकी सिद्धिके लिये धनको मांगके जो यज्ञमें सब नहीं लगता है वह सौ वर्षतक भास कहिये नीलकंठ अथवा कौआ होता है ॥ २५ ॥ देवस्व कहिये प्रतिमा आदि देवताओंके लिये दिये हुए धनको और ब्राह्मणके धनको जो लोभसे ले लेता है वह पापस्वभाव दूसरे जन्ममें गीधकी जूंठनिसे जीवता है ॥ २६ ॥

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये ॥ क्लृप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसम्भवे ॥ २७ ॥ आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः ॥ स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥ २८ ॥

भाषा-वर्षके समाप्त होनेपर दूसरे वर्षके आरंभ होनेको अर्थात् चैत्रशुक्ल आदि वर्षकी प्रवृत्तिको वर्षपर्यंत कहते हैं उस वर्षांतरमें वैश्वानरी इष्टिको कहे हुए पशु सोमयागके न होनेमें उसके न करनेका दोष दूरि करनेके लिये सदा शूद्र आदिसे कहे हुए धनको ग्रहण कर इष्टिको करे॥ २७ ॥ जो द्विज आपत्तिमें कही हुई विधिसे आपत्तिके विना धर्मको करता है उसका वह परलोकमें निष्फल होता है यह मनु आदिकोंने विचार किया है ॥ २८ ॥

विश्वैश्च देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ॥आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः ॥२९॥ प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते ॥ न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥ ३० ॥

भाषा-विश्वदेव नाम देवोंसे और साध्योंसे तैसेही मरनेसे डरे हुए महर्षि ब्राह्मणोंकरि आपत्तिमें मुख्य विधि सोम आदिके वैश्वानरी आदि प्रतिनिधि किया

हुआ वह मुख्यके न होनेमें करना चाहिये मुख्यके संभवमें नहीं ॥ २९ ॥ मुख्यके करनेमें समर्थ जो आपत्तिमें कहे हुए प्रतिनिधिसे अनुष्ठान करता है उस दुर्बुद्धिका परलोकसंबंधी अभ्युदयरूप और प्रत्यवायका दूरि होनारूप फल नहीं होता है॥३०॥

न ब्राह्मणोऽवेदयेत किंचिद्राजनि धर्मवित् ॥ स्ववीर्येणैव तांछिष्यान्मानवानपकारिणः ॥ ३१ ॥ स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम् ॥ तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन्द्विजः ॥ ३२ ॥

भाषा–धर्मका जाननेवाला ब्राह्मण कुछभी अपकार राजासे न कहे अपितु अपनीही शक्तिसे आगे कहे हुए अभिचार आदिसे अपकार करनेवाले मनुष्योंको दंड देवे तिससे तौ अपने धर्मके विरोध आदि प्रकृष्ट अपराध करनेपर अभिचार आदि दोषके लिये नहीं होते हैं इसलिये यह कहा है कुछ अभिचारका विधान नहीं करते हैं अथवा न राजासे कहनेका निषेध करते हैं ॥ ३१ ॥ जिससे अपनी सामर्थ्य और राजाकी सामर्थ्य इन दोनोंमेंसे पराधीन राजाकी सामर्थ्यकी अपेक्षा अपने आधीन होनेसे अपनाही सामर्थ्य बलवान् है तिससे ब्राह्मण अपनेही पराक्रमसे शत्रुओंको दंड देवे ॥ ३२ ॥

श्रुतीरथर्वांगिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ॥ वाक्छस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन्द्विजः ॥ ३३ ॥ क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः ॥ धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥

भाषा–वह कौनसा अपना पराक्रम है सो कहते हैं. अथर्ववेदमें देखा गया है अभिचार जिनका ऐसी आंगिरसीश्रुतियोंको विना विचारके करे जिससे अभिचारमंत्रके उच्चारणरूप ब्राह्मणकी वाणीही शस्त्रका काम करनेसे शस्त्र है उससे ब्राह्मण शत्रुओंको मारे शत्रुके दंड देनेके लिये राजासे न कहना चाहिये ॥ ३३ ॥ क्षत्रिय अपने बलसे शत्रुके तिरस्काररूप अपनी आपत्तिके पार होय और वैश्य तथा शूद्र धनके देनेसे और ब्राह्मण अभिचार कहिये मारणरूप जप होमोंसे आपत्तिके पार होय ॥ ३४ ॥

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥ ३५ ॥ न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः ॥ होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्त्तो नासंस्कृतस्तथा ॥३६॥

भाषा–कहे हुए कर्मोंका करनेवाला और पुत्र शिष्य आदिकोंका सिखानेवाला और प्रायश्चित्त आदि धर्मोंका कहनेवाला और सब भूतोंकी मित्रतामें प्रधान ब्राह्मण कहा

जाता है उसके लिये दंड दो ऐसा अनिष्ट वचन न कहे और गाली आदि वाग्दंड तथा धिग्दंडरूप वाणीका उच्चारण उसके लिये न करे ॥ ३५ ॥ कन्या विना व्याही और व्याहीभी तरुणी और थोडा पण हुआ मूर्ख रोग आदिसे पीडित और उपनयन कर्मरहित ये सब श्रुतिमें कहे हुए सायंप्रातः होम आदिको न करे॥३६॥

नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत् ॥ तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः ॥ ३७ ॥ प्राजापत्यमदत्त्वाऽश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम् ॥ अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति ॥ ३८ ॥

भाषा-होमको करते हुए ये कन्या आदि नरकको जाते हैं और जिसकी ओरसे ये अग्निहोत्र करते हैं वहभी नरकको जाता है तिससे श्रौतकर्ममें चतुर सब वेदोंका पढनेवाला होता करना चाहिये ॥ ३७ ॥ अग्निके आधानमें ब्राह्मण संपत्तिके होनेपर प्रजापति जिसकी देवता है ऐसा अश्व दक्षिणामें दिये विना अग्निका आधान करनेपर आहिताग्नि नहीं होता है और आधानके फलको नहीं पाता है तिससे आधानमें अश्व दक्षिणा देवे ॥ ३८ ॥

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥ न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेतेह कथंचन ॥ ३९ ॥ इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजाः पशून् ॥ हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत् ॥४०॥

भाषा-श्रद्धावान् पुरुष इंद्रियोंको वशमें करके यज्ञसे भिन्न तीर्थयात्रा आदि पुण्यकर्मोंको करे और शास्त्रमें कही हुई दक्षिणासे थोडी दक्षिणावाले यज्ञोंसे कैसेहू यजन न करे ॥ ३९ ॥ नेत्र आदि इंद्रियोंको और जीवते हुएके ख्यातिरूप यश कीर्तिको और संततिको तथा पशुओंको थोडी दक्षिणाका यज्ञ नाश करता है तिससे थोडी दक्षिणा देके यज्ञ न करे ॥ ४० ॥

अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारतः ॥ चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥ ४१ ॥ ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते ॥ ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥ ४२ ॥

भाषा-अग्निहोत्री ब्राह्मण इच्छासे अग्नियोंमें सायंकाल तथा प्रातःकालके होमोंको न करके एक महीनेभर चांद्रायण व्रत करे जिससे यह वीरपुत्रकी हत्याके समान है ॥ ४१ ॥ जे शूद्रसे धनको पाके अथवा साधारण मांगनेसे धनको लेकर आधानपूर्वक अग्निहोत्र करते हैं वे शूद्रोंहीके याजक हैं उनको उसका फल नहीं होता है इसीसे वे वेदवादियोंमें निंदित हैं ॥ ४२ ॥

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् ॥ पदा मस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि संतरेत् ॥ ४३ ॥ अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ॥ प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥ ४४ ॥

भाषा-शूद्रके धनसे आहिताग्नि होनेवाले उन मूर्खोंके मस्तकपर पांव रखके देनेवाला शूद्र दानसे सदा परलोकमें दुःखोंसे निस्तर जाता है यजमानोंका फल नहीं होता है ॥ ४३ ॥ नित्य कहे हुए संध्योपासन आदिको और नैमित्तिक जैसे मृतकके छूनेमें स्नान आदिको न करता हुआ और निषेध किये हुए हिंसा आदिको करता हुआ नहीं कहे हुए निषिद्ध कर्मोंमें अत्यंत आसक्तिको करता हुआ नर प्रायश्चित्ती होता है ॥ ४४ ॥

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ॥ कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ४५ ॥ अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुद्ध्यति ॥ कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥ ४६ ॥

भाषा-विना किये हुए पापका प्रायश्चित्त होता है यह पंडित कहते हैं और कोई आचार्य कहते हैं कि जानके किये हुएका प्रायश्चित्त होता है यह तो पृथक् करके कहना प्रायश्चित्त गौरवके लिये है श्रुतिनिदर्शनात् वेदके दृष्टांतसे जैसे " इंद्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत् तमश्लीला वागित्यवदत् स प्रजापतिमुपाधावत् तस्मात्तमुपहव्यं प्रायच्छत् " इति। इसका अर्थ यह है कि इंद्र यतियोंको बुद्धिपूर्वक कुत्तोंसे खानेको देता हुआ वह प्रायश्चित्तके लिये प्रजापतिके समीप गया उसके लिये प्रजापतिके उपहव्य नाम कर्म प्रायश्चित्त दिया इसीसे जानके किये हुएमेंभी प्रायश्चित्त है ॥ ४५ ॥ इच्छाके विना किया हुआ पाप वेदके अभ्याससे शुद्ध होता है अर्थात् नाशको प्राप्त होता है और रागद्वेष आदिकी व्यामूढतासे जानकर किया हुआ पाप नाना प्रकारके प्रायश्चित्त अर्थात् विद्या धन तथा तपसे शुद्ध होता है॥४६॥

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा ॥ न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥ ४७ ॥ इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा ॥ प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥ ४८ ॥

भाषा-दैवात् कहिये प्रमादसे इस शरीर करि किये हुए अथवा पूर्वजन्ममें संचय किये हुए पापसे क्षयरोग आदि करि सूचितसे प्रायश्चित्ती होकर प्रायश्चित्तके विना किये साधुओंके साथ याजन आदिसे संसर्गको नहीं प्राप्त होता है॥४७॥ इस जन्ममें निषिद्ध काम करनेसे और कोई पूर्वजन्ममें किये हुओंसे दुष्ट स्वभाव मनुष्य कुनखी आदि होना रूपके विपर्यय कहिये अन्यथाभावको प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् ॥ ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥ ४९ ॥ पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्त्रताम् ॥ धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरैक्यं तु मिश्रकः ॥ ५० ॥ अन्नहर्त्तामयावित्वं मौक्यं वागपहारकः ॥ वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पंगुतामश्वहारकः ॥ ५१ ॥ दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ॥ हिंसया व्याधिभूतस्तु स्फीतोऽन्यंस्त्वभिमर्शकः ॥ ५२ ॥ एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्विगर्हिताः ॥ जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा ॥ ५३ ॥

भाषा-सुवर्ण चुरानेवालेके नख कुत्सित हो जाते हैं और निषिद्ध मद्य पीनेवालेके दांत काले हो जाते हैं और ब्रह्महत्यारा क्षयरोगी होता है गुरुकी भार्यामें गमन करनेवालेका लिंग बंद नहीं होता है खुला रहता है, और पिशुन कहिये विद्यमान दोषोंके कहनेवालेकी नाकमें दुर्गंध आती है और नहीं विद्यमान दोषोंके कहनेवालेके मुखमें दुर्गंध आती है और धान्यका चोर अंगहीन होता है और धान्य आदिकोंमें कुछ और मिलानेसे अधिक अंग हो जाते हैं और अन्न चुरानेवालेकी अग्नि मंद हो जाती है और विना आज्ञाके पढनेवाला मूक होता है और वस्त्रोंका चुरानेवाला श्वेतकुष्ठी होता है और घोडेका चुरानेवाला पंगु होता है दीपको चुरानेवाला नेत्र इंद्रियसे रहित अर्थात् अंध होता है और दीपकको बुझावनेवाला काना अर्थात् एक आंखीवाला होता है यज्ञदेवता आदिकोंके उद्देश विना केवल जिह्वाके स्वादसे जो पशुओंकी हिंसा करता है उसको रोग बहोत होते हैं और जो दूसरेके स्त्रीको दूषण करनेवाला अर्थात् संभोग आदिक करनेवाला वातसंबंधि रोगोंकरके स्थूल देहवान् होता है ऐसे बुद्धि वाणी नेत्र कानोंसे विकल विकृतरूप साधुओंकरि निंदित पूर्व जन्ममें संचय किये हुए भोगनेसे शेष रहे हुए पापोंसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥
निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥ ५४॥

भाषा-अनिष्कृतैनसः कहिये जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किये हैं वे परलोकमें भोगे हुए पापके शेषसे कुनखीपन आदि निंद्य लक्षणोंकारि युक्त उत्पन्न होते हैं तिससे शुद्धिके लिये अर्थात् पाप दूरि करनेके लिये प्रायश्चित्त सदा करना चाहिये ॥५४॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ॥
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥ ५५ ॥

भाषा–ब्राह्मणके प्राणवियोगरूप जिसका फल है ऐसे व्यापारको ब्रह्महत्या कहते हैं वह तौ साक्षात् अथवा दूसरेको नियुक्त करके तैसेही गौ, भूमि और सुवर्णका लेना आदि जिसका कार्य है उसके लिये ब्राह्मणके मरनेमें ब्रह्महत्या होती है ऐसी ब्रह्महत्या और निषिद्ध सुराका पीना और स्तेय कहिये ब्राह्मणका सुवर्ण ले लेना और गुरुकी स्त्रीमें गमन करना और इनके साथ संसर्ग करना इनको महापातक कहते हैं ॥ ५५ ॥

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ॥ गुरोश्चालीकनिर्बंधः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ५६ ॥ ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ॥ गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ॥ ५७ ॥

भाषा–जातिकी बडाईके लिये बढके बोलना जैसे जो ब्राह्मण नहीं है वह आपको ब्राह्मण कहे और जिसमें उनका मरण होय ऐसा चोर आदिकोंका दोष राजासे कहना और गुरुको झूंठा दोष लगाना ये सब ब्रह्महत्याके समान हैं ॥ ५६ ॥ पढे हुए वेदका अभ्यास न करनेसे भूलना और असत् शास्त्रके आश्रयसे वेदकी निंदा करना और साक्ष्य (गवाही) में झूंठ बोलना और ब्राह्मणसे अन्य मित्रका वध और निषिद्ध लशुन आदिका खाना और अभक्ष्य विष्ठा आदिका भक्षण ये सब सुरापानके समान हैं ॥ ५७ ॥

निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च ॥ भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥ ५८ ॥ रेतःसेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥ सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥ ५९ ॥

भाषा–ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न धरोहडका ले लेना तैसेही मनुष्य, घोडा, चांदी, भूमि, हीरा और मणियोंका ले लेना ये सब सुवर्णकी चोरीके तुल्य हैं ॥ ५८ ॥ सगी बहिनी, कुमारी, चांडाली और मित्र तथा पुत्रकी स्त्रीमें वीर्यका सींचना गुरुपत्नीमें गमन करनेके समान है ॥ ५९ ॥

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः ॥ गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ॥ ६० ॥ परिवित्तितानुजेऽनूढे परिवेदनमेव च ॥ तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥ ६१ ॥ कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम् ॥ तडा-

गारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ॥ ६२ ॥ व्रात्यता बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च ॥ भृत्या चाध्ययनादानमपण्यानां च विक्रयः ॥ ६३ ॥ सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्त्तनम् ॥ हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च ॥ ६४ ॥ इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् ॥ आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ॥ ६५ ॥ अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनपक्रिया ॥ असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया ॥ ६६ ॥ धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥ स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ॥ ६७ ॥

भाषा-अब उपपातकोंको कहते हैं . गौका मारना, जाति कर्मसे दुष्टोंको यजन करना; पराई स्त्रीमें गमन करना; आपना वेंचना; माता, पिता, गुरु आदिकी सेवा न करना; सदा ब्रह्मयज्ञका त्याग; स्मार्त्त अग्निका त्याग और पुत्रका संस्कार भरण आदि न करना; पहले छोटेका विवाह करनेसे ज्येष्ठ परिवित्ति होता है और छोटा परिवेत्ता होता है, उन दोनोंको कन्या देना और उन्हीका विवाह होम आदिमें ऋत्विक् होना; मैथुनके विना अंगुली आदिके डालनेसे कन्याको दूषित करना; वृद्धि कहिये व्याजसे जीविका करना; व्रतलोपन कहिये ब्रह्मचारीका मैथुन करना; तालाव, बाग, भार्या और संतानका वेंचना; कालमें यज्ञोपवीत न होना व्रात्यता है पितृव्य आदि बांधवोंकी अनुवृत्ति न करना; नियत वेतन लेकर पढाना; नियत वेतन देकर पढना नहीं; वेंचने योग्य तिल आदिका वेंचना; सुवर्ण आदिकी खानिमें राजाकी आज्ञासे अधिकार लेना; बडे जलके प्रवाह रोकनेके कारण पुल आदि प्रवृत्त करना; औषधियोंकी हिंसा भार्या आदि स्त्रियोंको वेश्या बनायके जीविका करना; श्येन आदि यज्ञसे अपराध रहितका मारना; मंत्र, औषध आदिसे वशीकरण करना; ईंधनके लिये हरित वृक्षका काटना; रोगरहितका देवता पितृ आदिके उद्देश विना पाक आदिका करना; निंदित अन्न लशुन आदिका एक वार इच्छाके विना खाना; अधिकार होनेपर अग्निहोत्र न करना; सुवर्णसे अन्यसार द्रव्यका हरण करना; तीनि प्रकारके ऋणोंको न दूर करना; श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध शास्त्रका सिखाना; नाचने, गाने, वजानेका सेवन करना; धान्य, तांबे, लोहे आदिकी और पशुओंकी चोरी करना; द्विजातियोंका मद्य पीनेवाली स्त्रीमें गमन करना; स्त्री, शूद्र, वैश्य और क्षत्रियका मारना और नास्तिक्य कहिये अदृष्टार्थ कर्ममें

अभावकी बुद्धि होना ये प्रत्येक उपपातक हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

ब्राह्मणस्य रुजःकृत्यां घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः ॥ जैह्म्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥ ६८ ॥ खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा ॥ संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥ ६९ ॥

भाषा-ब्राह्मणको दंड कहिये दंडा और हाथ आदिसे पीडा देना और अत्यंत दुर्गंध होनेके कारण न सूंघने योग्य लशुन पुरीष आदिकी तथा मद्यकी गंधका सूंघना और कुटिलता और पुरुषकी गुदा आदिमें मैथुन ये एक एक जातिके भ्रंश करनेवाले हैं ॥ ६८ ॥ गधा, घोडा, ऊंट, मृग, हाथी, वकरा, मेंढा, मछली, सांप, भैंसा इनमेंसे प्रत्येकका मारना संकरीकरण जानिये ॥ ६९ ॥

निंदितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ॥ अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् ॥ ७० ॥ कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम् ॥ फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥ ७१ ॥

भाषा-नहीं लेने योग्योंसे धनका दान लेना, वाणिज्य, शूद्रकी टहल और झूंठा बोलना, ये प्रत्येक अपात्र करनेवाले हैं ॥ ७० ॥ कृमि कहिये क्षुद्र जीव तिनसे कुछ स्थूल कीट तिनका और पक्षियोंका वध और मद्यके साथ एक पिटारीमें धरके लाये हुए शाक आदि भोज्य वस्तुका भोजन और फल काष्ठ तथा फूलोंकी चोरी करना और थोडीभी हानिमें वहु व्याकुल होना ये प्रत्येक मलिन करनेवाले हैं ॥ ७१ ॥

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक् ॥ यैर्यैर्व्रतैरपोह्यन्ते तानि सम्यङ्निबोधत ॥ ७२ ॥ ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् ॥ भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥ ७३ ॥

भाषा-भेदसे कहे हुए ये सब ब्रह्महत्या आदि पापोंका जिन जिन प्रायश्चित्तरूप व्रतोंसे नाश होता है उनको यथावत् सुनिये ॥ ७२ ॥ ब्राह्मणका मारनेवाला वनमें कुटी बनायके मारे हुएके शिरके कपालको अथवा उसके न होनेमें और किसीका चिन्ह करके भिक्षा खाता हुआ अपने पापके दूर करनेके लिये बारह वर्ष वनमें वसे और व्रत करे ॥ ७३ ॥

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः ॥ प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्छिराः ॥ ७४ ॥ यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा ॥ अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ॥ ७५ ॥

भाषा-धनुष बाण आदि शस्त्रके धारण करनेवाले युद्ध करनेवालोंका ब्राह्मण वधके पापकी क्षीणताके लिये यह प्रायश्चित्त है कि अपनी इच्छासे विद्वान् शस्त्रधारियोंके बाणका लक्ष्य (निशाना) होके स्थित होय जबतक मर जाय अथवा मरेके समान हो जाय तो शुद्ध होय सोई याज्ञवल्क्यने कहा है जैसे "संग्रामे वा हतो लक्ष्यीभूतः शुद्धिमवाप्नुयात् । मृतकल्पः प्रहारतो जीवन्नपि विशुद्ध्यति ॥" अर्थात् संग्राममें लक्ष्य होके मारा जाय तो शुद्धिको प्राप्त होय अथवा प्रहारोंसे पीडित हो मरेके समान होके जीवता हुआभी शुद्ध होता है अथवा जलती हुई अग्निमें नीचेको मुख करके तीनि बार शरीरको डारे तौ शुद्ध होय ॥ ७४ ॥ अश्वमेधसे अथवा स्वर्जिता नाम याग विशेषसे अथवा गोमेधसे अथवा अभिजित् यज्ञसे अथवा विश्वजितसे त्रिवृतासे अथवा अग्निष्टुतसे यजन करे ये अज्ञानसे ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्त हैं ॥ ७५ ॥

जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ॥ ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ् नियतेन्द्रियः ॥ ७६ ॥ सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥ ७७ ॥

भाषा-वेदोंमेंसे एक वेदको जपता हुआ स्वल्प आहार और जितेंद्रिय हो ब्रह्महत्याके पापके दूर करनेके लिये सौ योजन अर्थात् चार सौ कोस चला जाय यहभी अज्ञानसे किये हुए जातिमात्र ब्राह्मणके वधमें तीनों वर्णोंका प्रायश्चित्त है ॥ ७६ ॥ अथवा वेदके जाननेवाले ब्राह्मणको सर्वस्व दान कर देवे जितना धन उसके जीवनके लिये समर्थ होय अथवा गृह और घरकी उपयोगी सब धन धान्य आदि वस्तुओंसमेत इसीसे सर्वस्व अथवा सब सामान समेत घर देवे " जीवनाय अलं " इस वचनसे जीवनेके लिये पूर्ण सर्वस्व अथवा घर देवे उससे थोडा न होय यह तो अज्ञानसे जातिमात्र ब्राह्मणके वधमें ब्राह्मणका प्रायश्चित्त है सोई भविष्यपुराणमें लिखा है जैसे " जातिमात्रं यदा हन्यात् ब्राह्मणं ब्राह्मणो गुह । वेदाभ्यासविहीनो वै धनवानग्निवर्जितः ॥ प्रायश्चित्तं तदा कुर्यादिदं पापविशुद्धये । धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥ " अर्थ-हे कार्तिकेय ! जो ब्राह्मण जातिमात्र ब्राह्मणको मारे वेदाभ्याससे हीन होय धनवान् होय अग्निकरि वर्जित होय तो वह शुद्धिके लिये इस प्रायश्चित्तको करे अर्थात् जीवनेके लिये पूर्ण धन अथवा धान्य आदि सामग्री समेत घर देवे ॥ ७७ ॥

हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्प्रति स्रोतः सरस्वतीम् ॥ जपेद्वा नियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम् ॥ ७८ ॥ कृतवापनो निवसेद्ग्रामान्ते

गोव्रजेऽपि वा ॥ आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः ॥ ७९ ॥

भाषा—नीवार आदि हविष्य अन्नका भोजन करनेवाला विख्यात प्लक्षस्रवणसे लगाके पश्चिम समुद्रके स्रोताके प्रति सरस्वतीको जाय यह तो प्रायश्चित्त जातिमात्र ब्राह्मणके ज्ञानपूर्वक वधमें ब्राह्मणके लिये कहा है अथवा परिमित कहिये थोडासा आहार करके तीनि वार वेदकी संहिताको जपे संहिताशब्दसे पदक्रमका व्युदास हुआ ॥७८॥ अथवा बारहवें वर्षके समाप्त होनेपर इसकी उपस्थित होनेपर द्वादश वार्षिकका विशेष कहते हैं. कटे हैं केश नख डाढी मूछ जिसके ऐसा तथा गौ ब्राह्मणके हितमें लगा हुआ अर्थात् गौ ब्राह्मणका हित करता हुआ ग्रामके समीप गौओंके स्थानमें वृक्षके नीचे इनमेंसे कहीं रहे " वने कुटीं कृत्वा " इसका यह विकल्प है ॥ ७९ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ॥ मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च ॥८०॥ त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा ॥ विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥ ८१ ॥

भाषा—बारह वर्षके आरंभ होनेपर वीचमें अग्नि जल तथा हिंसक आदिकों करि दबाये हुए ब्राह्मणकी अथवा गौकी रक्षाके लिये प्राणोंको छोडता हुआ ब्रह्महत्यासे छूट जाता है गौ अथवा ब्राह्मणको उनसे बचाके जीवता हुआ बारहभी वर्षोंके न समाप्त होनेपरभी ब्रह्महत्यासे छूट जाता है ॥ ८० ॥ चोर आदिकोंकरि ब्राह्मणका सर्वस्व हरि लेनेपर उसके लानेके लिये कपटको छोडके यथाशक्ति यत्न करे वहां तीनि वार युद्धमें प्रवृत्त हो सर्वस्वके न लानेपरभी ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है अथवा पहलीवार रहे हुए ब्राह्मणके सर्वस्वको जीतके जो देता है वह ब्रह्महत्यासे छूट जाता है अथवा धनके हरि जानेके कष्टसे ब्राह्मण आपही युद्धसे मरनेमें प्रवृत्त होय तब यद्यपि हरे हुए धनके बराबर देनेसे उसको जिवाता है तबभी उसके निमित्त उसका प्राणालाभ होनेपर ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है ॥ ८१ ॥

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ८२ ॥ शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे ॥ स्वमेनोऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते ॥ ८३ ॥

भाषा—ऐसे कहे हुए प्रकारसे सदा नियुक्त स्त्रीसंयोग आदिसे रहित मनको रोके हुए बारह वर्षके समाप्त होनेपर ब्रह्महत्याके पापको नाश करता है ॥८२॥ अश्वमेध यज्ञमें ऋत्विज ब्राह्मणोंके और यजमान क्षत्रियके समागम होनेपर ब्रह्महत्याके पापको निवेदन करके यज्ञांतस्नानमें नहाया हुआ ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है॥८३॥

**धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते ॥ तस्मात्समागमे तेषा-
मेनो विख्याप्य शुध्यति ॥ ८४ ॥ ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि
दैवतम् ॥ प्रमाणं चैव लोकस्य ब्रह्मात्रैव हि कारणम् ॥ ८५ ॥**

भाषा-जिससे ब्राह्मण धर्मका कारण है ब्राह्मणकारि धर्मका उपदेश करनेपर धर्मके करनेसे राजा उस धर्मका आगेका भाग मनु आदिकोंकारि कहा गया है उन दोनों ब्राह्मण क्षत्रियोंकारि मूलसहित धर्मरूप वृक्षकी सिद्धि होती है तिससे उनके समागमरूप अश्वमेधमें पापका निवेदन कारि अवभृथमें नहाया हुवा शुद्ध होता है ॥ ८४ ॥ ब्राह्मण उत्पत्तिमात्रहीसे देवताओंकाभी पूज्य है और श्रुत आदि कारि संपन्न होय तो फिर क्या कहना है मनुष्योंका और लोकका तौ बहुतही पूज्य है क्योंकि उसके उपदेशकी प्रामाण्यता है जिससे उसमें वेदही कारण है और उप-देशका मूल वेद है ॥ ८५ ॥

**तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनःसुनिष्कृतिम् ॥ सा तेषां पावनाय
स्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक् ॥ ८६ ॥ अतोऽन्यतममास्थाय विधिं
विप्रः समाहितः ॥ ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥ ८७ ॥**

भाषा-उन विद्वान् ब्राह्मणोंमेंसे वेदके जाननेवाले तीनिभी अधिक होंय तो फिर क्या कहना है पाप दूरि करनेके लिये जिस प्रायश्चित्तको कहें वह पापियोंकी शुद्धिके लिये होता है कारण यह है कि विद्वानोंकी वाणी पवित्र करनेवाली होती है तिससे प्रकाश प्रायश्चित्तके लिये पंडितोंकीभी सभा अवश्य करनी चाहिये और रहस्य कहिये गुप्त प्रायश्चित्तमें तो यह नहीं है ॥ ८६ ॥ इस प्रायश्चित्तोंके समूहसे किसी एक प्रायश्चित्तका आश्रय लेकर सावधानमन ब्राह्मण आदि प्रशस्ततासे ब्रह्म-हत्यासे किये हुए पापको दूर करता है ॥ ८७ ॥

**हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ राजन्यवैश्यौ चेजानावा-
त्रेयीमेव च स्त्रियम् ॥ ८८ ॥ उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य
गुरुं तथा ॥ अपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥ ८९ ॥**

भाषा-स्त्री पुरुष तथा नपुंसकपनसे न जाने हुए ब्राह्मणके गर्भको मारके और यज्ञ करनेमें लगे हुए क्षत्रिय तथा वैश्यको और आत्रेयी कहिये रजस्वला ब्राह्मणी स्त्रीको मारके इसी ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तको करे ॥ ८८ ॥ हिरण्य भूमि आदि युक्त साक्षमें झूंठ बोलके और गुरुको मिथ्या दूषण देके और धरोहडका ब्राह्मणके सुवर्णको छोडि अन्य रजत आदि द्रव्यका और क्षत्रिय आदिके सुवर्णकाभी अप-

हरण करके और कहे हुए स्त्रीवधको करके और ब्राह्मण नहीं ऐसे मित्रको मारके ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तको करे ॥ ८९ ॥

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् ॥ कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९० ॥ सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ॥ तया सकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ॥ ९१ ॥

भाषा–यह प्रायश्चित्त अकामसे ब्राह्मणके वधमें कहा है और कामसे ब्राह्मणके वधमें यह प्रायश्चित्त नहीं है किंतु इससे द्विगुण करनारूप है यह प्रायश्चित्तके गौरवके लिये है कुछ प्रायश्चित्तके अभावके लिये नहीं है ॥ ९० ॥ द्विज कहिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अज्ञानसे सुराका पान करके अग्निवर्ण सुराका पान करे उस सुरासे शरीरके दग्ध होनेपर द्विज उस पापसे छूटि जाता है यह प्रायश्चित्त गुरुत्वके कारण कामसे किये हुए सुरापानमें जानना चाहिये सोई बृहस्पतिने कहा है जैसे–"सुरापाने कामकृते ज्वलंतीं तां विनिःक्षिपेत् । मुखे तया स निर्दग्धो मृतः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥" अर्थ–कामसे सुराका पान करनेपर जलती हुई सुराको मुखमें डारे उससे जलकर मरा हुआ वह शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ॥ पयो घृतं वा मरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ॥ ९२ ॥ कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ॥ सुरापानापनुत्त्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ॥ ९३ ॥

भाषा–गौका मूत्र, जल, गौका दूध, गौका घृत और गोवरका रस इनमेंसे किसी एकको अग्निसम तपाके जवतक मरे तबतक पीवे ॥ ९२ ॥ अथवा गौके रोम आदिसे बने हुए वस्त्र धारण किये हुए और जटाओंको रखाये हुए सुराके पात्रका चिन्ह लिये हुए चावलोंके किनकोंको अथवा तिलोंकी खलीको रातिमें एक वार एक वर्षतक सुरापानके पापके नाशके लिये भक्षण करे यह अशुद्धिपूर्वक असुख्य सुरापानमें देखना चाहिये ॥ ९३ ॥

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ॥ तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ ९४ ॥ गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥ यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ ९५ ॥

भाषा–सुरा चावलोंके पिष्टकी वनती है इस कारण अन्नका मल है और मलशब्दसे पाप कहा जाता है तिससे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पैष्टी सुराको न पीवे इससे निषेध होनेपर इसके अतिक्रमसे "सुरां पीत्वा" इस प्रायश्चित्तके विधानसे पैष्टीका निषेध तीनों वर्णोंके लिये मनुने स्फुट कहा है ॥ ९४ ॥ जो गुडसे की गई होय सो गौडी

और जो पिष्टसे की गई होय सो पैष्टी और महुआके वृक्षको मधु कहते हैं उसके फूलोंसे की गई होय सो माध्वी ऐसे तीनि प्रकारकी सुरा जाननी चाहिये जैसे एक पैष्टी मुख्य है तैसेही गौडी माध्वीभी द्विजोत्तमोंको न पीनी चाहिये ॥ ९५ ॥

यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ॥ तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥ ९६ ॥ अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत् ॥ अकार्यमन्यत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः ॥ ९७ ॥

भाषा-ग्यारह प्रकारका मद्य मांस और तीनि प्रकारकी सुरा तथा आसव ये चारों यक्ष राक्षस तथा पिशाचोंका अन्न हैं सो ये देवताओंकी हवि खानेवाले ब्राह्मणको न खाने चाहिये यहां कोई कहते हैं कि "देवानामश्नता हविः" यह जो पुंल्लिंगका लिखना है तिससे पुरुषही ब्राह्मणको मद्यपानका निषेध है स्त्रीको नहीं सो अच्छा नहीं है क्योंकि याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियोंमें लिखा है जैसे " पतिलोकं न सा याति ब्राह्मणी या सुरां पिबेत्। इहैव सा शुनी गृध्री शूकरी चोपजायते॥" अर्थ-जो ब्राह्मणी सुराको पीती है वह पतिके लोकको नहीं जाती यहीं वह कुतिया गीधनी तथा सुअरिया होती है ॥९६॥ ब्राह्मण मद्यपान करके मदसे मूढ बुद्धि हो अशुद्ध स्थानमें गिरे अथवा वेदके वाक्योंका उच्चारण करे अथवा नहीं करने योग्य ब्रह्महत्या आदिको करे इससे उसको मद्यपान न करना चाहिये ॥ ९७ ॥

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ॥ तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ॥ ९८ ॥ एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥ ९९ ॥

भाषा-जिस ब्राह्मणके शरीरमें स्थित वेद अर्थात् संस्काररूपसे स्थित एक वारभी मद्यसे डुवाये जांय अर्थात् एकवारभी जो ब्राह्मण मद्यको पीता है उसका ब्राह्मणत्व चला जाता है और वह शूद्रताको प्राप्त होता है तिससे सर्वथा मद्य न पीना चाहिये॥ ९८ ॥ यह सुरापानसे उत्पन्न पापका नाना प्रकारका प्रायश्चित्त कहा तिससे परे अब सुवर्णका चुरानेके पापका प्रायश्चित्त कहूंगा ॥ ९९ ॥

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु ॥ स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥ १०० ॥ गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ॥ वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥ १ ॥

भाषा-ब्राह्मणके सुवर्णका चुरानेवाला ब्राह्मण राजाके समीप जाके ब्राह्मणके सुवर्ण चुरानेरूप अपने कर्मको कहता हुआ मुझे दंड दीजिये ऐसे कहे ॥ १०० ॥ चोर कंधेपर मूसल रखके राजाके समीप जाय तब राजा उसके दिये हुए मूसलसे

चोरको एकवार आप मारे वह चोर मूसलकी चोटसे मारा हुआ मरे अथवा न मरै मरेके समान हो जीवे तौभी शुद्ध होय अर्थात् उस पापसे छूट जाय और ब्राह्मण तौ तपहीसे शुद्ध होता है सोई कहा है जैसे–" न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्ववस्थितम् । " इति । अर्थ–सब पापोंमें स्थितभी ब्राह्मणको कभी न मारे ॥ १ ॥

तपसाऽपनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ॥ चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥ २ ॥ एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ॥ गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ ३ ॥

भाषा–उसी तपको कहते हैं. तपसे सुवर्णकी चोरीके पापको दूर किया चाहता द्विज वल्कलवस्त्रोंको धारण करि वनमें वसिके ब्रह्महत्यारेके लिये कहे हुए व्रतको करे ॥ २ ॥ ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरीसे उत्पन्न पापको इन व्रतोंसे द्विज दूर करे और गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेके पापको तौ इन आगे कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे दूर करे ॥ ३ ॥

गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये ॥ सूर्मीं ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुद्ध्यति ॥ ४ ॥ स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ ॥ नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः ॥ ५ ॥

भाषा–गुरुतल्प जो गुरुकी भार्या है तिसमें गमन करनेवाला गुरुभार्यामें गमन करनेसे उत्पन्न पापको विख्यात करके लोहेकी तत्ती सेजपर सोवे और लोहेकी बनी हुई जलती स्त्रीकी प्रतिमाका आलिंगन करि वह मरनेसे शुद्ध होता है ॥ ४ ॥ अथवा आपही अपने लिंग और वृषणोंको काटके अंजलीमें राखि जबतक शरीर न गिरे तबतक सीधा दक्षिण पश्चिम दिशाको चला जाय ये कहे दोनों प्रायश्चित्त भारी होनेके कारण सुवर्ण गुरुकी भार्यामें ज्ञानसे वीर्यके त्यागपर्यंत मैथुनके मध्ये जानने चाहिये ॥ ५ ॥

खट्वाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने ॥ प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः ॥ ६ ॥ चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः ॥ हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये ॥ ७ ॥

भाषा–खट्वांगको धारण किये हुए कपडोंके चीथरोंको पहिरे हुए केश नख लोम और डाढी मूछोंको रखाये हुए सावधान मन निर्जन वनमें एक वर्षतक प्राजापत्य व्रतको करे यह तो आगे कहे हुए प्रायश्चित्तकी लघुतासे अपनी भार्याके भ्रमसे अज्ञानविषयक जानना चाहिये ॥ ६ ॥ अथवा गुरुभार्यामें गमन करनेसे उत्पन्न

पापके दूर करनेके लिये इंद्रियोंको वशमें करि फल मूल आदिसे अथवा हविष्य नीवार आदिसे की हुई यवागूसे तीनि महीने चांद्रायणोंको करे यह तो पहले कहे हुएसेभी लघु होनेसे असाध्वी वा असवर्णामें गमन करनेसे जानना चाहिये ॥ ७॥

एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम् ॥ उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नानाविधैर्व्रतैः ॥ ८ ॥ उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत् ॥ कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥ ९ ॥ चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् ॥ गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥ ११० ॥ दिवानुगच्छेद्गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् ॥ शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥ ११ ॥ तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ॥ आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः ॥ १२ ॥ आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः ॥ पतितां पंकलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥ १३ ॥ उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ॥ न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥ १४ ॥ आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ॥ भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥ १५ ॥ अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ॥ स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥ १६ ॥

भाषा-इन कहे हुए व्रतोंसे ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके करनेवाले पापको दूर करे और गोवध आदि उपपातकोंके करनेवाले तो आगे कहे हुए प्रकारसे अनेक रूप व्रतोंकरके पापको दूर करें ॥८॥ "उपपातकसंयुक्तः" यहांसे "अनेन विधिना" यस्तु यहांतक कुलक है उपपातक युक्त गौका मारनेवाला जवकी पतली दलिया पहले महीनेमें पीवे और शिखासमेत मूड मुडवा और डाढी मूछोंको मुडवा उस मारी हुई गौके चर्मसे शरीरको ढके हुए तीनि महीनेतक गोष्ठ कहिये गौओंके रहनेके स्थानमें वसे और गोमूत्रसे स्नान करे जितेंद्रिय हो बनाये हुए नोनके विना हविष्य अन्नको एक दिन खायके दूसरे दिन सायंकाल थोडा दूसरे तीसरे महीनोंमें खाय ऐसे तीनि महीने करे और दिनमें सबेरे उन गौओंके साथ जाय उन गौओंके खुरोंसे उठी हुई धूलिको खडे होके खाय और खुजाने आदिसे उनकी सेवा करके और प्रणाम करके रातिमें भीति आदिका सहारा लेकर बैठा रहे तथा शुद्ध और क्रोधरहित हो गौओंके

उठनेपर पीछे उठे और वनमें घूमतियोंके पीछे घूमे और गौओंके बैठनेपर बैठे और रागिणीको तथा चोर व्याघ्र आदिके भयके कारणोंसे दबाई हुईको गिरी हुईको अथवा कीचसे लिसी हुईको शक्तिके अनुसार छुडावे तथा उदय सूर्यके तपनेपर मेघके बरसनेपर और शीतके उपस्थित होनेपर और पवनके बहुत चलनेपर गौकी यथाशक्ति रक्षा न करके अपनी रक्षा न करे तैसेही अपने तथा औरोंके घरमें खेतमें और खलिहानमें अन्न आदि खाती हुई गौको और दूध पीते हुए बछडेको न कहे इस कहे हुए विधानसे जो गौका मारनेवाला गौओंकी सेवा करता है वह गौके मारनेसे उत्पन्न पापको तीनि महीनोंमें दूर करता है ॥ ९ ॥ ११० ॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

वृषभैकादशा गाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः ॥
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ १७ ॥

भाषा—सम्यक् प्रकारसे व्रत करनेवाला ग्यारहवां है बैल जिनमें ऐसी दश गौओंका दान करे जो इतना धन न होय तो वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंके लिये सर्वस्वका दान करे ॥ १७ ॥

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः ॥ अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥ १८ ॥ अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे ॥ पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥ १९ ॥

भाषा—और तो उपपातकी आगे जो कहा जायगा ऐसे अवकीर्णीको छोडकर पापके दूर करनेके लिये इसी गोवधके प्रायश्चित्तको अथवा चांद्रायण व्रतको करे चांद्रायण तौ लघु है इसलिये छोटे उपपातकमें करना चाहिये अथवा जाति शक्ति गुण आदिकी अपेक्षासे योजित करने योग्य है ॥ १८ ॥ आगे कहा हुआ अवकीर्णी तो काने गधेसे रातिमें चौराहेमें पाकयज्ञके मंत्रसे निर्ऋतिनाम देवताका यजन करे ॥ १९ ॥

हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्ततश्च समेत्यृचा ॥ वातेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाहुतीः ॥ १२० ॥ कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः ॥ अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥ २१ ॥

भाषा—तिस पीछे निर्ऋतिके लिये चौराहेमें गर्दभरूप आदि होमोंको यथावत् करके उसके अंतमें ' समासिञ्चन्तु मरुतः ' इस ऋचासे मरुत्, इंद्र, बृहस्पति, तथा अग्निके लिये घीसे आहुती होमें ॥ १२० ॥ प्रसिद्ध न होनेके कारण अवकीर्णीका लक्षण कहते हैं. इच्छासे ब्रह्मचारी द्विजस्त्रीमें वीर्यको सींचिके अवकीर्णी होता है इस वचनसे स्त्रीकी योनिमें शुक्रका त्याग करके ब्रह्मचर्यका अतिक्रम अवकीर्णरूप सर्वज्ञ वेदके वेत्ता कहते हैं ॥ २१ ॥

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च ॥ चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम् ॥ सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ २३ ॥

भाषा-ब्रह्मचारीका वेद पढनेके नियमके करनेसे उत्पन्न हुआ तेज अवकीर्णी होनेपर मारुत, इंद्र, बृहस्पति और अग्नि, इन चारोंमें चला जाता है इसीसे उनके लिये घीकी आहुतियां होमें ॥ २२ ॥ इस अवकीर्ण नाम पापके उत्पन्न होनेपर पहले कहे हुए गर्दभयान आदिको करके गर्दभचर्मको ओढे हुए मैं अवकीर्णी हूं ऐसे अपने कर्मको कहता हुआ सात घरोंमें भीख मांगे उनसे पाये हुए भीखके अन्नसे एक वार खायके रहे ॥ २३ ॥

तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुद्ध्यति ॥ २४ ॥ जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया ॥ चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥ २५ ॥

भाषा-उन सात घरोंसे मिले हुए भिक्षाके अन्नसे एक काल आहार करता हुआ संध्या सवेरे और दुपहरमें स्नान करता हुआ वह अवकीर्णी एक वर्षमें शुद्ध होता है ॥२४॥ " ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा " इत्यादिसे जातिके भ्रंश करनेवाले कर्म कह आये हैं उनमेंसे किसीको इच्छासे करके सात दिनतक करने योग्य सांतपन व्रतको करे और इच्छाके विना करके आगे कहे हुए प्राजापत्य व्रतको करे ॥ २५ ॥

संकरापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम् ॥ मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥ २६ ॥ तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ॥ वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडश ॥ २७ ॥

भाषा-खराश्वोष्ट्र इत्यादि करके संकरीकरण कहे हैं उनमेंसे एकको इच्छासे करके शुद्धिके लिये एक महीनेतक चांद्रायण करे और " कृमिकीटवयोहत्या " इत्यादिसे मलिनीकरण कहे है उनमेंसे एककोभी इच्छासे करके तीनि रात्रितक कथिता यवागूको खाय ॥ २६ ॥ ब्रह्महत्याका चौथा भाग अर्थात् बारह वर्षकी चौथाई तीनि वर्षरूप प्रायश्चित्त स्त्री शूद्र वैश्य और क्षत्रियके वधमें कहा है उपपातकत्व करके कहे हुए त्रैमासिककी अपेक्षा गुरुत्व होनेसे वृत्तमें स्थित क्षत्रियके कामसे किये हुए वधमें देखना चाहिये और साधु आचारवाले वैश्यके कामसे वधमें आठवां भाग अर्थात् डेढ वर्षका व्रत और व्रतस्थ शूद्रके कामनासे मारनेपर सोलहवां भाग अर्थात् नव महीनेका देखना चाहिये ॥२७॥

अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ॥
वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः ॥ २८ ॥

भाषा–अबुद्धिपूर्वक कहिये विना जाने हुए क्षत्रियको मारके एक बैल करि अधिक गौओंको सहस्र अर्थात् एक हजार गौ और एक बैल अपनी शुद्धिके लिये ब्राह्मणोंको दान करे ॥ २८ ॥

त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम् ॥ वसन्दूरतरे ग्रामाद् वृक्षमूलनिकेतनः ॥ २९ ॥ एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ॥ प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ॥ १३० ॥

भाषा–अथवा नियमयुक्त जटाओंको धारण किये हुए ग्रामसे दूरि वृक्षके नीचे निवास करता हुआ ब्रह्महत्यारेके लिये जो व्रत कहा है "ब्रह्महा द्वादश समाः" इत्यादि वह तीनि वर्ष "तुरीयो ब्रह्महत्यायाः" इससे पुनरुक्ति नहीं है क्योंकि "जटी दूरतरे ग्रामाद् वृक्षमूलनिकेतनः।" इस वचनमें कहे हुएसे व्यतिरिक्त शवके शिरका ध्वजाको धारण आदि सब धर्मोंकी निवृत्तिके लिये होनेसे और आकारसे यह अकाममें जानना चाहिये ॥ २९ ॥ इसी बारह वर्षके व्रतको विना कामनाके साधु आचारवाले वैश्यको मारिके एक वर्ष ब्राह्मण आदि करे अथवा एक सौ एक गौओंका दान करे ॥ १३० ॥

एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासाच्छूद्रहा चरेत् ॥ वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ॥ ३१ ॥ मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च ॥ श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ ३२ ॥

भाषा–कामनाके विना शूद्रका मारनेवाला इसी व्रतको छः महीने करे और दश सपेद गौएं और एक बैल ब्राह्मणको दान करे॥ ३१॥ बिलाव, नौला, चाष, मेढक, कुत्ता गोह, उलूक, कौआ इनमेंसे किसी एकको मारके शूद्रकी हत्याके व्रतको करे॥३२॥

पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाऽध्वनो व्रजेत् ॥
उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा सूक्तं वाऽब्दैवतं जपेत् ॥ ३३ ॥

भाषा–विना जाने मार्जार आदिके वधमें तीनि रात्रितक दूध पीवे जो मंदाग्नि आदिसे समर्थ न होय तो तीनि रात्रितक एक योजन अर्थात् चार कोश मार्ग चले इसमें अशक्त होय तो तीनि राति नदीमें स्नान करे उसमेंभी अशक्त होय तो "आपोहिष्ठा" इत्यादि सूक्तको जपे यथोत्तर लघु होनेसे पूर्व पूर्वके असंभवमें आगे आगेका परिग्रह है विकल्प नहीं है ॥ ३३ ॥

अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ॥ पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकमाषकम् ॥ ३४ ॥ घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ ॥ शुके द्विहायनं वत्सं क्रौंचं हत्वा त्रिहायणम् ॥ ३५ ॥

भाषा-सर्पको मारके ब्राह्मणके लिये तीक्ष्ण है अग्र जिसका ऐसा लोहका दंड देवे और नपुंसकको मारके पयारका भार और एक मासे सीसा ब्राह्मणको दान करे ॥ ३४ ॥ शूकरके मारनेपर घीका भरा घट ब्राह्मणोंको देवे तीतरके मारनेपर चारि आढक प्रमाण तिलोंका दान करे शुकके मारनेमें दो वर्षका बछरा और क्रौंच पक्षीको मारके तीनि वर्षका बछरा ब्राह्मणको दान करे ॥ ३५ ॥

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च ॥ वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् ॥ ३६ ॥ वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान्गजम् ॥ अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥ ३७ ॥

भाषा-हंस, बलाका, बक, मयूर, वानर, श्येन और भास इन पक्षियोंमेंसे किसीको मारे तो ब्राह्मणको गो दान करे ॥ ३६ ॥ घोडेको मारिके वस्त्रका दान करे हाथीको मारिके पांच नीले बैल दान करे बकरे तथा मेंढेको मारे तो एक बैल दान करे गधेको मारिके एक वर्षका बछरा दान करे ॥ ३७ ॥

क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥ ३८ ॥ जीनकार्मुकबस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये ॥ चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽनवस्थिताः ॥ ३९ ॥

भाषा-कच्चे मांसके खानेवाले मृगों अर्थात् व्याघ्र आदिको मारिके बहुत दूधकी गौ देवे और मांसके न खानेवाले हरिण आदिकोंको मारिके जवान बछिया देवे और ऊंटको मारिके सुवर्णकी रत्तीका दान करे ॥ ३८ ॥ लोभसे उत्कृष्ट अपकृष्ट पुरुषोंमें व्यभिचार करनेवाली ब्राह्मण आदि वर्णोंकी स्त्रियोंको मारिके ब्राह्मण आदिके क्रमसे चर्मपुट, धनुष्य, छाग, मेंढा इनका शुद्धिके लिये दान करे ॥ ३९ ॥

दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन् ॥
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ॥ १४० ॥

भाषा-अभ्रि आदिकोंके न होनेसे दानकरि संपूर्ण पाप दूरि करनेको असमर्थ ब्राह्मण आदि प्रत्येकके वधमें कृच्छ्रकी प्रथमतासे द्विज पाप दूर करनेके लिये प्राजापत्यको करे और सर्प आदिक तौ "अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्" इससे लगाके यहांतक ग्रहण किये जाते हैं ॥ १४० ॥

अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे ॥ पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ ४१ ॥ किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे ॥ अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्धयति ॥ ४२ ॥

भाषा-हड्डीवाले कृकलास (गिरगट) आदि हजार जीवोंके वधमें शूद्रके वधका प्रायश्चित्त करे और अस्थिरहित खटमल आदिकोंके छकडे प्रमाण मारनेमें उसी प्रायश्चित्तको करे ॥ ४१ ॥ हड्डीवाले कृकलास आदि क्षुद्र जीवोंके प्रत्येकके वधमें कुछ थोडासा दे देवे " अस्थिमतां वधेपणो देयः " अर्थात् हड्डीवालोंके वधमें पण देना चाहिये इस सुमंतुके वचनसे किंचिदेवसे पण जानना चाहिये और विना हड्डीके जुवां खटमल आदिकोंमें प्रत्येकके वधमें प्राणायामसे शुद्ध होता है और प्राणायाम तो व्याहृतियोंसमेत प्रणवसहित सावित्रीका शिरसमेत तीनि वार जप है जैसे-" त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते । " अर्थात् प्राणोंको चढाके तीनि वार पढै उसको प्राणायाम कहते हैं यह वसिष्ठ कारि कहे हुए लक्षणोंको जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्छतम् ॥ गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥ ४३ ॥ अन्नाद्यजानां सत्वानां रसजानां च सर्वशः ॥ फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥ ४४ ॥

भाषा-फलोंके देनेवाले आम्र आदि वृक्षोंके और कुब्जक आदि गुल्मोंके और वल्लियोंके तथा गुडूची आदि लताओंके और वृक्षोंकी शाखाओंमें लिपटी हुई पुष्पित वीरुधोंके कूष्मांड आदिकोंमें प्रत्येकके काटनेमें पाप दूर करनेके लिये सावित्री आदि सौ ऋचा जपनी चाहिये. "इंधनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् ।" इत्यादि उपपातकोंके मध्यमें पढे हुएका गुरु प्रायश्चित्तके कहनेसे यह फलवाले वृक्षोंके काटनेमें लघुप्रायश्चित्त एकवारके अबुद्धिपूर्वक करनेमें जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ अन्न आदिकोंमें उत्पन्न और गुड आदिके रसोंमें उत्पन्न और गूलर आदिके फलोंमें उत्पन्न और महु आदिके फूलोंमें उत्पन्न हुए सब प्राणियोंके वधमें घीका खाना पापका शोधनेवाला है ॥ ४४ ॥

कृष्टजानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने ॥ वृथालम्भेऽनुगच्छेद्गां दिनमेकं पयोव्रतः ॥ ४५ ॥ एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् ॥ ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे ॥ ४६ ॥

भाषा-जोतनेसे उत्पन्न हुई औषधी साठी आदिके और वनमें आपसे उत्पन्न हुए नीवार आदिके विना प्रयोजन काटनेमें एक दिन दूधका आहार और गौओंका

अनुगमन करे ॥ ४५ ॥ इन कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे हिंसासे उत्पन्न ज्ञान तथा अज्ञानसे किये हुए पाप दूर करने चाहिये अब अभक्ष्यभक्षणका प्रायश्चित्त जो आगे कहेंगे उसको सुनिये ॥ ४६ ॥

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्धयति ॥ मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥४७॥ अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा ॥ पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शंखपुष्पीशृतं पयः ॥४८॥

भाषा-अज्ञानसे गौडी तथा माध्वीको पीकर गौतमका कहा हुआ तप्तकृच्छ्र सांतपन व्रत करके फिरि पुनः संस्कारसेही शुद्ध होता है सोई गौतमने कहा है. जैसे "अमत्या मद्यपाने पयोघृतमुदकं वायुं प्रतित्र्यहं तप्तकृच्छ्रः ततोऽस्य संस्कारः॥" अर्थ-विना जाने मद्य पीनेमें दूध घी पानी और पवन प्रतित्र्यहं अर्थात् तीनि दिन बरावरि एक एक पीवे फिर तप्तकृच्छ्र करे तिस पीछे इसका संस्कार करना चाहिये भविष्यपुराणमेंभी ऐसाही व्याख्यान किया है. जैसे "अकामतः कृते पाने गौडीमाध्व्योर्नराधिप । तप्तकृच्छ्रविधानं स्याद्गौतमेन यथोदितम् ॥" इति. अर्थ-हे नराधिप! कामनाके विना गौडीमाध्वीका पान करनेपर तप्तकृच्छ्रका विधान होता है जैसा गौतमने कहा है इति. और बुद्धिपूर्वक तो पैष्टीसे भिन्न मद्य पीनेमें प्राणांतिक अनिर्देश्य दंड चाहिये यह शास्त्रकी मर्यादा है तैसेही ज्ञानसे गौडी माध्वीके पीनेपर मरणके निषेधसे और अन्यमद्योंकी अपेक्षासे और गुरुत्वसे मनुकाही कहा "कणान्वा भक्षयेदब्दं" अर्थात् वर्षभर कणोंका भक्षण करे यह प्रायश्चित्त कहा है इसीसे गौडी तथा माध्वीके ज्ञानसे पीनेमें भविष्यपुराणका वचन है अथवा इसी विषयमें मनुसंबंधी करे जैसे "कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि । सुरापानापनुत्त्यर्थं तालवासा जटी ध्वजी ॥" इति. अर्थ-एक वर्षतक कणोंका भक्षण करे अथवा रातिमें एकवार तिलकी खली खाय सुरापानके पाप दूर करनेके लिये तालके वस्त्र पहिरे जटा रखाये रहे और मद्यका ध्वजा लिये रहे इति ॥ ४७ ॥ पैष्टी सुराके पात्रमें अथवा उससे अन्यसुराके पात्रमें रक्खे हुए सुराके रस तथा गंधसे रहित जलको पीके शंखाहूली नाम औषधिको डाल औटायके पांच रातितक दूध पीवे ॥४८॥

स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च ॥ शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम् ॥४९॥ ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः ॥ प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥५०॥

भाषा-सुराको छूके देके और स्वस्तिवाचन पूर्वक दान लेके और शूद्रका उच्छिष्ट जल पीके ब्राह्मण दर्भ डालके औटाए हुए जलको तीनि दिन पीवे ॥ ४९ ॥ सोम-

याग करनेवाला ब्राह्मण सुरा पीनेवालेके मुखके गंधको सूंघि और जलके मध्य तीनि प्राणायाम करि घी खायके शुद्ध होता है ॥ १५० ॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ॥ पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ५१ ॥ वपनं मेखलादण्डौ भैक्षचर्या व्रतानि च ॥ निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ५२ ॥

भाषा–विना जाने मनुष्यके मूत्र तथा पुरीष खायके और सुरा करि स्पर्श किये हुए भक्त आदिके रसको खायके द्विजाति तीनों वर्ण फिरि यज्ञोपवीत करने योग्य होते हैं ॥ ५१ ॥ शिरका मुंडना मेखलाका धारण दंडधारण और भैक्ष्यचर्याव्रत मधु मांस स्त्री वर्जन करि युक्त ये सब प्रायश्चित्तके लिये दूसरी वार यज्ञोपवीत करनेमें द्विजातियोंके नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥

अभोज्यानां तु भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च ॥ जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥५३॥ शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वा मेध्यान्यपि द्विजः ॥ तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः ॥५४॥

भाषा–"अश्रोत्रियकृते यज्ञे"इत्यादि करि कहे हुए अभोज्य जिनका अन्न है ऐसोंका अन्न खायकर जलसे मिले हुए सत्तुओंके रूपसे अथवा गूजो दलिया है तिसके रूपसे यवोंको पीने योग्य करके सात रात्रि पीवे इसी विषयमें "मत्या भुक्त्वा चरेत्कृच्छ्रम्" अर्थात् जानके खायके कृच्छ्र करे यह चौथे अध्यायमें कहा है उसके साथ विकल्पित है विकल्प तो कर्त्ताकी शक्तिकी अपेक्षासे होता है तैसेही द्विजातिकी स्त्रियोंका उच्छिष्ट अथवा शूद्रका उच्छिष्ट खायके इसी व्रतको करे तैसेही "क्रव्याद्शूकरोष्ट्राणाम्"इत्यादिसे जो विशेष प्रायश्चित्त कहा है सो निषिद्ध मांसको खायके इसी प्रायश्चित्तको करे ॥ ५३ ॥ जे स्वभावसे मधुर आदि रस हैं और कालके योगसे जलमें वास आदिसे खट्टे हो जाते हैं वे शुक्त हैं और कषाय काहिये बहेडा आदिको और नहीं निषेध किये हुएभी क्वथितोंको पीकर जबतक न पचि जांय तबतक पुरुष अशुद्ध होता है ॥ ५४ ॥

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ॥ प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ ५५ ॥ शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कवकानि च ॥ अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेव व्रतं चरेत् ॥५६॥

भाषा–गांवका सुअर, गधा, ऊंट, स्यार, वानर, कौवा इनके मूत्र अथवा विष्ठाको द्विजाति खायके चांद्रायण व्रत करे ॥ ५५ ॥ पवन आदि करि सुखाये गये

मांसोंको खायके और भूमि आदिमें अथवा वृक्षमें उत्पन्न हुए छत्राकोंको जो खाते हैं उनको ब्रह्मघाती जाने इससे यमने वृक्षमें उत्पन्नकाभी निषेध किया है. हरिणका मांस है अथवा भैंसेका मांस है इस प्रकार भक्ष्याभक्ष्यके विना जानें हिंसाके स्थानसे लाये हुए मांसको खायके चांद्रायणही करे ॥ ५६ ॥

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे ॥ नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥ ५७ ॥ मासिकान्नं तु योऽश्नीयादसमावर्तको द्विजः ॥ स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥ ५८ ॥

भाषा-कच्चे मांसके खानेवालोंका और गांवके शूकर, ऊंट और गांवके मुरगेका तथा मनुष्य, कौवा, गधा इनमेंसे जानके किसीका मांस खानेसे आगे कहा हुआ तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त कहा है और ग्राम्य शूकर तथा कुक्कुटके जानके खानेमें पांचवें अध्यायमें पतित होना कहा है सो तो अभ्यासमें व्याख्यान किया गया है वह तो अभ्यासमें तप्तकृच्छ्र कहा है यह अविरोध हुआ ॥५७॥जो ब्रह्मचारी ब्राह्मण मासिकश्राद्धके अन्नको खाता है यह तौ सपिंडी करनेसे पहले एकोद्दिष्ट श्राद्धके अन्नका उपलक्षण है वह तीनि राति उपवास करे तीनि रातिके मध्यमें एक दिन जलमें वसे॥५८॥

ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं कथंचन ॥ स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥ ५९ ॥ बिडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च ॥ केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥१६०॥

भाषा-जो ब्रह्मचारी शहद अथवा मांसको अनिच्छासे अथवा आपत्तिमें खाय वह प्राजापत्यको करके आरंभ किये हुए ब्रह्मचर्य व्रतके शेषको समाप्त करे ॥५९॥ बिलाव, कौवा, मूसा, कुत्ता और नौला इनके उच्छिष्टको अथवा केश कीटरूप संसर्गसे दूषितको एक बार मिट्टी डालनेसे शुद्ध जानि खायके ब्रह्मसुवर्चलासंज्ञक क्वथित जलको पीवे ॥ १६० ॥

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता ॥ अज्ञानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाऽप्याशु शोधनैः ॥ ६१ ॥ एषोऽनाद्यादनस्योक्तो व्रतानां विविधो विधिः ॥ स्तेयदोषापहर्तॄणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ॥ ६२ ॥

भाषा-अपनी शुद्धि चाहनेवाले पुरुषको निषिद्ध अन्न न खाना चाहिये और प्रमादसे खाया हुआ वमन कर देना चाहिये उसके असंभवमें प्रायश्चित्तोंसे शीघ्र शोधन करना चाहिये वमनके पक्षमें तो लघु प्रायश्चित्त होताही है और ज्ञानसे पहलेकहा हुआ प्रायश्चित्त है ॥ ६१ ॥ अभक्ष्यके भक्षणमें जे प्रायश्चित्त हैं तिनका यह नाना प्रकारका विधान कहा अब चोरोंके पापोंके दूर करनेवालोंका विधान सुनिये ॥६२॥

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः ॥ स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुद्ध्यति ॥६३॥ मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ॥ कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ ६४ ॥

भाषा—ब्राह्मण ब्राह्मणके घरसे धान्य भोजन आदिकी चोरीको इच्छासे करके अपनेके भ्रमसे नहीं लेकर एक वर्षतक प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध होता है॥६३॥ पुरुष स्त्री खेत घर इनमेंसे किसीके हरनेमें और कुआके जलके तथा बावडीके सब जलके हरि लेनेमें चांद्रायण व्रत मनु आदिकोंने प्रायश्चित्त कहा है ॥ ६४ ॥

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः ॥ चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥६५॥ भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ॥ पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ६६ ॥

भाषा—जिनका मूल्य थोडा है और जिनका प्रयोजनभी कम पडता है और जिनका प्रायश्चित्त विशेषभी नहीं कहा है ऐसी रांगा सीसा आदि वस्तुओंके पराये घरसे चुराके वह चुराया हुआ द्रव्य उसके स्वामीको दे करि सांतपन कच्छ्र जो आगे कहा जायगा उसको अपनी शुद्धिके लिये करे ॥ ६५ ॥ लड्डू आदि भक्ष्यके और खीर आदि भोज्यके और शकट आदि यानके और शय्या तथा आसनके और पुष्प मूल फल इनमेंसे प्रत्येकके चुरानेमें पंचगव्यका पीना शोधन है ॥ ६६ ॥

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ॥ चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ ६७ ॥ मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च ॥ अयःकांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नता ॥ ६८ ॥

भाषा—तृण काष्ठ तथा वृक्षोंके और चावल आदि सूखे अन्नके चुरानेमें और भारी वस्त्र चर्म तथा मांस इनमेंसे एककेभी चुरानेमें तीनि रात्रि उपवास करे ॥ ६७ ॥ मणि, मोती, मूंगा, तामा, रूपा, लोह, कांसा और उपल इनमेंसे एककेभी चुरानेमें बारह दिनतक चावलोंके कनोंका खाना करे ॥ ६८ ॥

कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च ॥ पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥ ६९ ॥ एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ॥ अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ १७० ॥

भाषा—कपास रेशम तथा ऊनके वस्त्रोंके और दो खुरके तथा एक खुरके गौ घोडा आदिके और तोता आदि पक्षियोंके और चंदन आदि गंधोंके और रस्सीके इनमें प्रत्येकके चुरानेमें तीनि दिन दूधका आहार करे ॥ ६९ ॥ इन कहे हुए प्राय-

श्चित्तोंसे द्विजाति चोरीसे उत्पन्न पापको दूर करे और नहीं गमन करने योग्यमें गमन करनेसे उत्पन्नको तो इन आगे कहे हुए व्रतोंसे दूर करे ॥ १७० ॥

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु ॥ सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥७१॥ पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च ॥ मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥७२॥

भाषा-सगी बहिनीमें तैसेही मित्रकी भार्याओंमें और गुरुकी पत्नियोंमें कुमारियोंमें और चांडालियोंमें इन सबोंमेंसे प्रत्येकमें वीर्यको सींचिके गुरुभार्याके गमनका प्रायश्चित्त करे ॥ ७१ ॥ पिताके वहिनीकी तथा माताकी बहिनीकी पुत्री वहिनीमें और माताके सगे भाईकी पुत्रीमें जिनका गमन सगी बहिनिके समान निषिद्ध है उनमें गमन करके चांद्रायण व्रत करे एकवार अज्ञानसे करनेमें यह प्रायश्चित्त है ॥ ७२ ॥

एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान् ॥ ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताः पतति ह्युपयन्नधः ॥ ७३ ॥ अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु ॥ रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ ७४ ॥

भाषा-तीनि ये पिताकी वहिनीकी पुत्री आदिकोंको भार्याके निमित्त पंडित न व्याहे ज्ञातिपनसे और बांधवपनसे ये गमन करने योग्य नहीं है जिससे इनको व्याहि गमन करता हुआ नरकको जाता है ॥ ७३ ॥ अमानुषी कहिये गौको छोडके घोडी आदिमें गौओंमें अवकीर्णी एक वर्ष प्राजापत्य करे यह शंखलिखित आदिकोंने भारी प्रायश्चित्त कहा है तथा रजस्वलामें और योनिसे अन्यत्र स्त्रीमें और जलमें वीर्यसेचन करके पुरुष सांतपन कृच्छ्र करे ॥ ७४ ॥

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः॥ गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ॥७५॥ चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥ पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥ ७६ ॥

भाषा-जिस किसी स्थानमें पुरुषमें अथवा स्त्रीमें मैथुनका सेवन कारि अथवा बैलोंकी सवारी छकडे आदिमें जलमें और दिनमें मैथुनका सेवन कारि सचैल स्नान करे ॥ ७५ ॥ चांडालकी और अंत्यजोंकी और म्लेच्छ शबर आदिकोंकी स्त्रियोंमें ब्राह्मण अज्ञानसे गमन करके और उनका अन्न लायके और उनसे दान लेकरि पतित होता है वह पतितका प्रायश्चित्त करे यह तो गुरुत्वसे और अभ्याससे भोजन और प्रतिग्रहविषयक है और ज्ञानसे तौ उनकी स्त्रीमें गमन करके समानताको प्राप्त होता है यह तो प्रायश्चित्तके गौरवके लिये है ॥ ७६ ॥

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि ॥ यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥ ७७ ॥ सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता ॥ कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥ ७८ ॥

भाषा-विशेष कर प्रदुष्ट अर्थात् इच्छासे व्यभिचार करनेवाली स्त्रीको भर्ता रोके अर्थात् पत्नीके कामोंसे निवृत्त करके बेडियोंमें बंदीके समान एक घरमें रक्खे जो तौ पुरुषके सजातीय पराई दाराके गमनमें प्रायश्चित्त है वही इससे करावे तिस पीछे तौ "स्त्रीणामर्द्धं प्रदातव्यं" अर्थात् स्त्रियोंको आधा देना चाहिये यह वसिष्ठ आदिकोंने कहा है सो अनिच्छासे व्यभिचारमें करना चाहिये ॥ ७७ ॥ सजातीयके गमनसे एक वार दूषित और किया है प्रायश्चित्त जिसने ऐसी वह स्त्री जो फिरि सजातीयकरि प्रार्थित हुई उससे गमन करे तौ इसका प्रायश्चित्त प्राजापत्य और कृच्छ्रचांद्रायण शोधनेवाला मनु आदिकोंने कहा है ॥ ७८ ॥

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः ॥ तद्भैक्षभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ ७९ ॥ एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः ॥ पतितैः संप्रयुक्तानामिमाः शृणुत निष्कृतीः ॥ १८० ॥

भाषा-चांडालीमें गमनसे ब्राह्मण जिस पापका एक रात्रिमें संचय करता है उसको भिक्षाका खानेवाला और नित्य सावित्री आदिका जप करता हुआ तीनि वर्षमें दूर करता है ॥ ७९ ॥ हिंसा अभक्ष्यभक्षण चोरी अगम्यागमन करनेवाले इन चारों पाप करनेवालोंकी यह विशुद्धि कही अब साक्षात्पाप करनेवालोंके साथ संसर्ग करनेवालोंके लिये इन आगे कही हुई शुद्धियोंको सुनिये ॥ १८० ॥

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥ याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात् ॥ ८१ ॥ यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ॥ स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥ ८२ ॥

भाषा-पतितके साथ संसर्ग करता हुआ मनुष्य अर्थात् एक सवारीमें जाना एक आसनपर बैठना और एक पंक्तिमें भोजनरूप संसर्गोंको करता हुआ एक संवत्सरमें पतित होता है और याजन अध्यापन तथा यौनसंबंधसे संवत्सरमें नहीं पतित होता है किंतु शीघ्रही पतित होता है अध्यापन यहां उपनयनपूर्वक सावित्री मंत्रको सुनाना है ॥ ८१ ॥ इन पतितोंमें जो जिस पाप करनेवालेके साथ पहलेके कहे हुए संसर्गको करता है वह उस संसर्गकी शुद्धिके लिये उसीके व्रतरूप प्रायश्चित्तको करे मरणांतिक न करे यह कहा गया ॥ ८२ ॥

**पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः ॥ निन्दितेऽहनि साया-
ह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ॥ ८३ ॥ दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्ये-
त्प्रेतवत्पदा ॥ अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह ॥ ८४ ॥**

भाषा-सपिंड और समानोदकोंको जीवतेही महापातकी प्रेतक्रिया आगे कही हुई रीतिसे ग्रामके बाहर जाके ऋत्विक् और गुरुके निकट रिक्ता नवमीतिथिमें संध्या समय करनी चाहिये॥८३॥ सपिंड समानोदकोंकरि प्रेरण की हुई दासी जलसे भरे हुए घटको प्रेतवत् ऐसे कहके दक्षिणको मुख करि लातसे मारे जैसे वह निरुदक हो जाय अर्थात् तर्पणके योग्य न रहे तिस पीछे वे सपिंड समानोदकोंसमेत एक रातिदिनका आशौच करे ॥ ८४ ॥

**निवर्त्तेरंश्च तस्मात्तु संभाषणसहासने ॥ दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा
चैव हि लौकिकी ॥ ८५ ॥ ज्येष्ठता च निवर्त्तेत ज्येष्ठावाप्यं च
यद्धनम् ॥ ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः ॥ ८६ ॥**

भाषा-उस पतितसे सपिंड आदिकोंका बोलना एक आसनपर बैठना और उसके लिये हिस्सा देना और सांवत्सरिक आदिमें निमंत्रण आदि लोकव्यवहार ये सब दूर हो जाते हैं ॥ ८५ ॥ जेठेका जो प्रत्युत्थान आदि किया जाता है सो इस पतितका न करना चाहिये और जेठेके मिलने योग्य है जो उसका बीस उद्धार आदिका धन है सोभी उसको न देना चाहिये यद्यपि भाग देनेके निषेधहीसे उद्धारका निषेध सिद्ध है तिसपरभी छोटेको उसके पानेके लिये कहा जाता है उसी जेठेके धनको उद्धारसमेत गुणमें अधिक उसका छोटा भाई पाता है ॥ ८६ ॥

**प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् ॥ तेनैव सार्धं प्रास्येयुः
स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥ ८७ ॥ स त्वप्सु तं घटं प्रास्य प्रविश्य
भवनं स्वकम् ॥ सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥ ८८ ॥**

भाषा-पतितके प्रायश्चित्त करनेपर सपिंड और समानोदक उसी प्रायश्चित्त किये हुएके साथ पवित्र जलाशयमें स्नान करके जलसे भरे हुए नवीन घटको डाल देवें ॥ ८७ ॥ जिसने प्रायश्चित्त किया है वह उस पहले कहे हुए घटको जलमें डालके तिस पीछे अपने घरमें आके पहलेके समान सब ज्ञातिके कर्मोंको करे ॥ ८८ ॥

**एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ॥ वस्त्रान्नपानं देयं तु
वसेयुश्च गृहान्तिके ॥ ८९ ॥ एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किञ्चित्स-
हाचरेत् ॥ कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥ १९० ॥**

भाषा-पतित स्त्रियोंमेंभी ऐसेही "पतितस्योदकं कार्यं" इत्यादि विधिको भर्ता आदि सपिंड और समानोदक समूह करे और इनको भोजन वस्त्र देने चाहिये और घरके समीप इनको रहनेके लिये कुटी देनी चाहिये ॥ ८९ ॥ जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किये हैं ऐसे पाप करनेवालोंके साथ दान प्रतिग्रह आदि अर्थ कुछभी न करे और जिन्होंने प्रायश्चित्त किया है उनकी पहले किये हुए पापसे कभी निंदा न करे पहलेके समान व्यवहार करे ॥ १९० ॥

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः ॥ शरणागतहंतॄंश्च स्त्रीहन्तॄंश्च न संवसेत् ॥ ९१ ॥ येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि ॥ तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥ ९२ ॥

भाषा-जिसने बालकको मारा और जिसने किये हुए उपकारको अपकार करनेसे नाश किया और प्राणोंकी रक्षाके लिये आये हुएको और स्त्रीको जिसने मारा होय इनको यथायोग्य प्रायश्चित्त करनेपरभी संसर्गी करके समीप न वसावे ॥ ९१ ॥ जिन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका गौणकालमेंभी शास्त्रके अनुसार यज्ञोपवीत न किया गया उनको तीनि प्राजापत्य करवाके शास्त्रके अनुसार यज्ञोपवीत करे ॥ ९२ ॥

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः ॥ ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥ ९३ ॥ यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् ॥ तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥ ९४ ॥

भाषा-जे निषिद्ध शूद्रकी सेवा करनेवाले द्विज हैं वे यज्ञोपवीत होनेपरभी वेदको न पढे हुए जो प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा करे तो उनकोभी यह तीनि प्राजापत्य करनेका उपदेश करे ॥ ९३ ॥ निंदित कर्मसे अर्थात् निषिद्ध बुरे प्रतिग्रह आदिसे ब्राह्मण जिस धनको जोडते हैं उस धनके त्यागसे और आगे कहे हुए जप और तपसे शुद्ध होते हैं क्योंकि धनका त्यागही प्रायश्चित्तका विधान है ॥ ९४ ॥

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ॥ मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥ ९५ ॥ उपवासकृशं तं तु गोव्रजात्पुनरागतम् ॥ प्रणतं प्रति पृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम् ॥ ९६

भाषा-सावित्रीका तीनि हजार जप करके गौओंके स्थानमें वास करि दुग्धका आहार करनेवाला बुरे दानके लेनेसे उत्पन्न पापसे छूट जाता है शूद्रके प्रतिग्रह आदिमेंभी यही प्रायश्चित्त है ॥ ९५ ॥ केवल दूधके आहारसे और अन्य भोजन न करनेसे दुर्बल जिसका देह गौओंके स्थानसे लौटे हुए नमस्कार करते नम्र उस

मनुष्यसे पूंछे कि, हमारे साथ बराबरी चाहता है फिर बुरा दान लेगा ? ऐसे धर्मको ब्राह्मण पूंछे ॥ ९६ ॥

सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम् ॥ गोभिः प्रवर्त्तिते तीर्थे कुर्युस्तस्य परिग्रहम् ॥ ९७ ॥ व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च ॥ अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥९८॥

भाषा-यह सत्य है फिरि बुरे दानको न लेऊंगा ऐसे ब्राह्मणोंमें कहके गौओंको घास डारे उस घास खाये हुए पवित्रीभूत स्थानमें ब्राह्मण उसको व्यवहारमें अंगीकार करे ॥ ९७ ॥ व्रात्यस्तोम आदि याजन कराके और पिता गुरु आदिसे भिन्नोंका निषिद्ध और्ध्वदेहिक दाह श्राद्ध आदि करके और अभिचार तथा अहीनयागविशेष करके तीनि कृच्छ्रोंसे शुद्ध होता है ॥ ९८ ॥

शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः ॥ संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति ॥ ९९ ॥ श्वशृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च ॥ नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २०० ॥

भाषा-रक्षाके लिये शरणमें आये हुएको जो समर्थ होनेपर त्याग करता है और द्विजाति नहीं पढाने योग्यको वेद पढाके उससे उत्पन्न हुए पापको एक वर्षतक जवका आहार करके दूर करता है ॥ ९९ ॥ कुत्ता, स्यार, गधा, नर, अश्व, वाराह आदि ग्रामके और कच्चे मांसके खानेवाले बिलाव आदिकरि काटा हुआ पुरुष प्राणायामसे शुद्ध होता है ॥ २०० ॥

षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा ॥ होमाश्च सकला नित्यमपाङ्क्त्यानां विशोधनम् ॥ १ ॥ उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः ॥ स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २ ॥

भाषा-विशेषकरि जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा है ऐसे पंक्तिसे बाहर जो स्तेन, पतित, क्लीव, आदिकोंका १ मासतक दो दिन न खाके तीसरे दिन सायंकालके समय भोजन करना और वेदकी संहिताका जप और "देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि" इत्यादिक आठ मंत्रोंसे आठ होम प्रत्येक करे यह समुदित पापका शोधन है. ॥ १ ॥ ऊंट जिसमें जुते हैं ऐसा छकडा आदि यान (सवारी) में और गधेके यानमें इच्छासे चढके और ऊंट तथा गधेपर चढके चलनेमें और नंगे होके स्नान करनेमें बहुतसे प्राणायामोंके करनेसे शुद्ध होता है ॥ २ ॥

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं संनिवेश्य च ॥ सचैलो बहिराप-

त्य गामालभ्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥ वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ॥ स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥ ४ ॥

भाषा–जलके समीप न होनेपर अथवा जलमें वेगसे पीडित हो मूत्र अथवा पुरीषको करके गांवके बाहर नदी आदिमें सचैल स्नान कर गौको छूके शुद्ध होता है॥३॥ वेदमें कहे हुए और जिनके न करनेका प्रायश्चित्त विशेष नहीं कहा है ऐसे अग्निहोत्र आदि नित्य कर्मोंके लोप होनेपर और चौथे अध्यायमें कहे हुए स्नातकव्रतोंके अतिक्रम होनेपर एक रातिदिनका उपवास प्रायश्चित्त कहा है ॥ ४ ॥

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः ॥ स्नात्वाऽनश्नन्नहः शेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥ ५ ॥ ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वाबध्य वाससा ॥ विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ ६ ॥

भाषा–हूं चुप बैठिये ऐसे ब्राह्मणका आक्षेप करके और विद्या आदिमें अधिकको तू ऐसे कहके उस कहनेके समयसे लगाके जितना दिन बाकी होय उसमें भोजन न करे और पावोंमें पडके उसको कोपरहित करे ॥ ५ ॥ ब्राह्मणको तिनकेसे मारके अथवा गलेमें कपडेसे बांधके अथवा बातोंके कलहमें जीतके प्रणाम करके प्रसन्न करे ॥ ६ ॥

अवगूर्य त्वब्दशतं सहस्रमभिहत्य च ॥ जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥ शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतले ॥ तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत् ॥ ८ ॥

भाषा–ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे दंडेको उठाके सौ वर्षतक नरकमें रहता है और दंड आदिसे ताडन करके हजार वर्षतक नरकमें रहता है ॥ ७ ॥ प्रहार किये हुए ब्राह्मणका रुधिर जितने धूलिके कणोंको भूमिमें भिगोयके पिंड करता है उतनीही हजार वर्षोंतक वह रुधिर निकालनेवाला नरकमें वसता है ॥ ८ ॥

अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥ ९ ॥ अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामपनुत्तये ॥ शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ २१० ॥

भाषा–ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे दंड आदिके उठानेमें कृच्छ्र करे और दंड आदिके मार देनेमें आगे कहे हुए अतिकृच्छ्रको करे और रुधिरको उत्पन्न करके कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करे ॥ ९ ॥ जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा है ऐसे प्रतिलोमज आदिके वधसे किये हुए पापोंके दूर करनेके लिये करनेवालेके शरीर और धन

आदिकी सामर्थ्यको देखके और पापको ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे अथवा एक वारका किया हुआ जानकर प्रायश्चित्तकी कल्पना करे ॥ २१० ॥

यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति ॥ तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥ ११ ॥ त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ॥ त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥ १२ ॥

भाषा-जिन कारणोंसे मनुष्य पापको दूर करता है उन पापके नाश करनेवाले और देवता ऋषि तथा पितरों कर किये हुए कारणोंको तुमसे कहूंगा ॥ ११ ॥ प्राजापत्य व्रतको करता हुआ द्विजाति पहले तीनि दिन प्रातःकाल भोजन करे प्रातःशब्द यहां भोजनोंकी उचिततासे प्राप्त दिनके कालका सूचक है इसीसे वसिष्ठने कहा है. जैसे-" त्र्यहं दिवा भुंक्ते नक्तमात्ति च त्र्यहं त्र्यहम् अयाचितव्रतं त्र्यहं न भुंक्ते " इति कृच्छ्रः. अर्थ-तीनि दिन दिनमें खाता है और तीनि दिन रातिमें और तीनि दिन अयाचित खाता है और तीनि दिन नहीं खाता है यह कृच्छ्र है आपस्तंबनेभी कहा है. " त्र्यहं नक्ताशी दिवाशी च ततस्त्र्यहं त्र्यहमयाचितव्रतस्त्र्यहं नाश्नाति किञ्चन इति ". अर्थ-तीनि दिन रातिमें न खाय और तीनि दिन दिनमें न खाय और तीनि दिन अयाचित खाय और तीनि दिन कुछ न खाय इस भांति कृच्छ्रकी बारह रात्रिकी विधि है. "अपरं च दिनत्रयं सायंसंध्यायामतीतायां भुंजीत अन्यद्दिनत्रयमयाचितं तावदन्नं भुंजीत शेषं च दिनत्रयं न किंचिदश्नीयात् " इसका वही अभिप्राय है यहां ग्रासकी संख्या और परिमाणकी अपेक्षामें पराशरने कहा है. जैसे-" सायं द्वात्रिंशतिर्ग्रासाः प्रातः षड्विंशतिस्तथा । अयाचिते चतुर्विंशं परं चानशनं स्मृतम् ॥ कुक्कुटांडप्रमाणं च यावांश्च प्रविशेन्मुखम् । एतं ग्रासं विजानीयाच्छुद्ध्यर्थं कायशोधनम् ॥ हविष्यं चान्नमश्नीयाद्यथा रात्रौ तथा दिवा । त्रींस्त्रीण्यहानि शास्त्रीयान्ग्रासान्संख्याकृतान्यथा ॥ अयाचितं तत्रैवाद्यादुपवासस्त्र्यहं भवेत् ।" अर्थ-संध्याको बत्तीस ग्रास और सबेरे छब्बीस और अयाचितमें चौवीस तिसके पीछे न खाना कहा है कुक्कुटके अंडके बराबर और जितना मुखमें समाय शुद्धिके लिये शरीरका शोधनेवाला यह ग्रास जानिये. हविष्य अन्न खाय जैसे रात्रिमें वैसेही दिनमें तीनि तीनि दिन शास्त्रमें कहे हुए ग्रासोंको संख्याके समान खावे तैसेही तीनि दिन अयाचित खावे और तीनि दिन उपवास करे ॥ १२ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ १३ ॥ एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ॥ त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः ॥ १४ ॥

भाषा–गोमूत्र गोबर गौका दूध तथा दही घी और कुशोंका जल इन सबोंको मिलाके एक दिन भक्षण करे और कुछ न खाय और दूसरे दिन उपवास यह सांतपन कृच्छ्र है जब तौ गोमूत्र आदि छः प्रत्येक छः दिन खायके सातवें दिन तो उपवास करे तो महासांतपन होता है सोई याज्ञवल्क्यने कहा है. जैसे–" कुशोदकं च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृद् घृतम्।जग्ध्वापरेऽह्न्युपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं चरन्॥पृथक्सान्तपनद्रव्यैः षडहः सोपवासिकः । सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनं स्मृतम् ॥ " इति. अर्थ–कुशोंका जल, गौका दूध तथा दही, मूत्र, गोबर और घी इनको खायके कृच्छ्र सांतपनको करता हुआ पुरुष दूसरे दिन उपवास करे और जुदी जुदी सांतपनकी वस्तुओंको छः दिन खायके सातवें दिन उपवास करे तो सात दिनमें यह कृच्छ्र महासांतपन होता है इति ॥ १३ ॥ अतिकृच्छ्रको करता हुआ द्विजाति प्रातःकाल सांयकाल अयाचित आदिके रूपसे एक एक ग्रास ऐसे तीनि तीनि दिन पहलेके समान खाय और पिछले तीनि दिन कुछ न खाय ॥ १४ ॥

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ॥ प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णा-न्सकृत्स्नायी समाहितः ॥ १५ ॥ यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहम-भोजनम् ॥ पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥ १६ ॥

भाषा–तप्तकृच्छ्रको करता हुआ द्विजाति तीनि दिन उष्ण जल और तीनि दिन गौका उष्ण दूध और तीनि दिन उष्ण घी और तीनि दिन उष्ण पवन और एक वार स्नान करके नियमवान् होके पीवे यहां पराशरका कहा हुआ विशेष है. जैसे–"षट्पलं तु पिबेदम्भस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् । पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते॥" इति. अर्थ–जल तो छः पल पीवे और दूध तीनि पल पीवे और घी एक पल पीवे यह तप्तकृच्छ्रका विधान है ॥ १५ ॥ स्वस्थचित्त और संयतेंद्रिय पुरुषका बारह दिनोंतक न भोजन करनाही पराक नाम कृच्छ्र है एक वार अथवा आवृत्ति करनेसे भारी तथा हलके पापका दूर करनेवाला है ॥ १६ ॥

एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ॥ उपस्पृशंस्त्रिषव-णमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ १७ ॥ एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरे-द्यवमध्यमे ॥ शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ १८ ॥

भाषा–सायंकाल प्रातःकाल और मध्याह्नमें स्नान करता हुआ पूर्णमासीके दिन पंद्रह ग्रासोंको खायके तिस पीछे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके क्रमसे एक एक ग्रास घटावे ऐसे चतुर्दशीको एक ग्रास खाय तिस पीछे अमावास्याको व्रत करके शुक्ल-पक्षकी प्रतिपदासे लगाके एक एक ग्रास बढाता जाय ऐसे पूर्णमासीको पंद्रह ग्रास होते हैं यह पिपीलिकामध्य नाम चांद्रायण कहा गया है ॥ १७ ॥ इसीको पिंडके

घटाने और बढाने तथा तीनि वार स्नानरूप विधानको यवमध्य नाम चांद्रायणमें शुक्लपक्षकी आदिसे करके जितेंद्रिय चांद्रायणको करता हुआ आचरण करे तिस पीछे तो शुक्ल प्रतिपदाका आरंभ करके एक एक पिंडको बढावे जैसे पूर्णमासीको पंद्रह ग्रास होते हैं तिस पीछे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाका आरंभ करके एक एक पिंड घटावे जैसे अमावास्याको उपवास होय ॥ १८ ॥

अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यंदिने स्थिते ॥ नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥ १९ ॥ चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः॥ चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम्॥२२०

भाषा-यतिचांद्रायणको करता हुआ शुक्लपक्षसे अथवा कृष्णपक्षसे लगाके एक महीनेतक जितेंद्रिय हो मध्याह्नके समय प्रतिदिन आठ ग्रास खाय मध्यन्दिनका कहना गृहस्थ और ब्रह्मचारीको सायंकालमें भोजनकी निवृत्तिके लिये है ॥ १९ ॥ प्रातःकाल चार ग्रास खाय और सूर्यके अस्त होनेपर चार ग्रासोंका भोजन करे यह शिशुचांद्रायण मुनियोंने कहा है ॥ २२० ॥

यथाकथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः ॥ मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥ २१ ॥ एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्चाचरन्व्रतम् ॥ सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः ॥२२॥

भाषा-नीवार आदि हविष्यके ग्रासोंको दो सौ चालीस कभी दशककी पांच और कभी सोलह और कभी उपवास इत्यादि नियमसे जैसे कैसेहू पिंडोंको एक महीनेमें जितेंद्रिय हो खाता हुआ चंद्रकी सलोकताको प्राप्त होता है ऐसेही पापके क्षयके लिये और अभ्युदयके लिये यह कहा है इसीसे याज्ञवल्क्यने कहा है. जैसे- "धर्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैति सलोकताम्।कृच्छ्रकृच्छ्रमकामस्तु महतीं श्रियमाप्नुयात्॥" अर्थ-जो इस व्रतको धर्मके लिये करता है वह चंद्रकी सलोकताको प्राप्त होता है और जो कृच्छ्रका करनेवाला सुख चाहता है वह वडी लक्ष्मीको प्राप्त होता है इति. इससे प्राजापत्य आदि कृच्छ्रभी अभ्युदयरूप फलका देनेवाला है यह याज्ञवल्क्यने कहा है ॥ २१ ॥ इस चांद्रायण नाम व्रतको ऋषियोंसमेत रुद्र आदित्य वसु और मरुतोंने सब पापोंके नाशके लिये गुरु लघु पापोंकी अपेक्षासे एक वार आवृत्तिके प्रकारसे किया ॥ २२ ॥

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहम् ॥ अहिंसा सत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत् ॥२३॥ त्रिरह्नस्त्रिर्निशायां च सवासा जलमाविशेत् ॥ स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित् ॥ २४ ॥

भाषा-"भूर्भुवःस्वः" इन महाव्याहृतियोंसे आज्य जो घी है तिससे प्रति दिन होम करे और अहिंसा सत्य अक्रोध और कुटिलता न करना इन सबोंको करे यद्यपि ये पुरुषार्थतासे विहित हैं तिसपरभी व्रतके अंगपनसे कहे गये हैं ॥ २३ ॥ दिनमें अथवा रातिमें आदि मध्य तथा अंतमें स्नानके लिये वस्त्रोंसमेत नदी आदिके जलमें प्रवेश करे यह तो पिपीलिकामध्य और यवमध्य चांद्रायणसे अन्य चांद्रायणके मध्ये हैं क्योंकि उनमें आचमन और तीनि वार स्नान कहा है और स्त्री शूद्र तथा पतितोंके साथ जबतक व्रत करे तबतक संभाषण न करे ॥ २४ ॥

स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽधः शयीत वा ॥ ब्रह्मचारी व्रती च स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ २५ ॥ सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ॥ सर्वेष्वेवं व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृतः ॥ २६ ॥

भाषा-दिनमें और रातिमें उठा हुआ तथा बैठा हुआ रहे सोवे नहीं असमर्थ होनेपर तो भूमिमें सोवे खट्वा आदिमें न सोवे ब्रह्मचारी स्त्रीके संयोगसे रहित व्रती मौंजी दण्ड आदि करि युक्त गुरु देवता और ब्राह्मणोंका पूजक होय ॥ २५ ॥ सावित्रीको सदा जपे और पवित्र अघमर्षण आदिकोंको शक्तिके अनुसार जपे यह तो जैसे चांद्रायण आदिमें है वैसेही प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंमेंभी यत्नवाला प्रायश्चित्तके लिये करे ॥ २६ ॥

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः ॥ अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥ २७ ॥ ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च ॥ पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि ॥ २८ ॥

भाषा-लोकमें विदित पापोंसे द्विजाति इस कहे हुए प्रायश्चित्तोंकरि आगे कही हुई परिषद् कहिये सभाकरि शोधने योग्य हैं और अप्रकाशित पापोंको तो मंत्रोंसे और होमोंसे सभाही शोधन करे यद्यपि परिषदमें निवेदन करनेसे रहस्यपनका नाश होता है तिसपरभी लोकमें नहीं विदित ऐसे इस पापके किसीके करनेपर क्या प्रायश्चित्त होता है इस भांति सामान्यतासे पूछनेमें कुछ विरोध नहीं है ॥ २७ ॥ पाप करनेवाला मनुष्य लोकमें अपना पाप कहनेसे और मुझ पाप करनेवालेको धिक्कार है इस भांति पश्चात्ताप करनेसे शुद्ध होता है और उग्ररूप तपसे तथा सावित्रीके जप आदि करि पापसे शुद्ध होता है और तपमें असमर्थ होय तो आपत्तिमें दान करनेसेभी पापसे मुक्त होता है ॥ २८ ॥

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते ॥ तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २९ ॥ यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं

कर्म गर्हति ॥ तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २३० ॥

भाषा-मनुष्य पापको करके जैसे जैसे पापको लोकमें कहता है वैसे वैसे उस पापसे जीर्ण त्वचा करि सापके समान मुक्त होता है ॥ २९ ॥ उस पाप करनेवालेका मन जैसे जैसे बुरे कर्मकी निंदा करता है वैसे वैसे उसका शरीर जीवात्मा उस अधर्मसे मुक्त होता है ॥ २३० ॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते॥ नैवं कुर्यात्पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः॥३१॥ एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम् ॥ मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥ ३२ ॥

भाषा- पापको करके पीछे संतापयुक्त होनेसे उस पापसे छूट जाता है जब पश्चात्तापयुक्त हो ऐसे कहता है कि मैं फिर कभी ऐसा न करूंगा तब तो बहुतही उस पापसे पवित्र होता है ॥३१॥ इस प्रकार शुभ अशुभ कर्मोंका परलोकमें इष्ट अनिष्ट फलको मनसे विचारके मन वाणी और शरीरसे सब शुभही करे क्योंकि उसका फल इष्ट है और नरक आदि दुःखका कारण होनेसे अशुभ कर्म न करे॥३२॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ॥ तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन्द्वितीयं न समाचरेत् ॥३३॥ यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम्॥तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥३४॥

भाषा-भूलसे अथवा इच्छासे निषिद्ध कर्म करके उस पापसे मुक्तिको चाहता हुआ फिर उसको न करे यह तो फिर करनेमें प्रायश्चित्तकी गुरुताके लिये है ॥ ३३ ॥ जिस प्रायश्चित्त नाम कर्मके करनेपर इस पाप करनेवालेको संतोष न होय तो उसमें उसी प्रायश्चित्तको तबतक लौटावे जबतक मनका संतोष और प्रसन्नता होय ॥ ३४ ॥

तपोमूलमिदं सर्वं दैवं मानुषकं सुखम् ॥ तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ॥ वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥ ३६ ॥

भाषा-इस सब देवताओं और मनुष्योंके सुखका कारण तपही है और तपहीसे उसकी स्थिति है और तपही मध्य है यह पंडितोंने कहा है और तपही अंत है यह वेदका अर्थ जाननेवाले कहते हैं ॥३५॥ ब्राह्मणका ब्रह्मचर्यरूप जो वेदांतका ज्ञान है वही तप है और क्षत्रियका रक्षा करना तप है और वैश्यका खेती वाणिज्य और पशुओंकी पालन आदि तप है और शूद्रका ब्राह्मणकी सेवा तप है यह वर्णविशेषसे उत्कर्ष सूचनके लिये है ॥ ३६ ॥

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ॥ तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३७ ॥ औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः ॥ तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥ ३८ ॥

भाषा-वाणी मन और कायके नियमोंकरि युक्त फल मूल तथा वायुके खानेवाले ऋषि तपहीसे जंगम स्थावर सहित पृथिवी आकाश स्वर्गरूप तीनों लोकोंको एक स्थानमें बैठे हुए पापरहित अंतःकरणसे प्रकर्षकरि देखते हैं ॥ ३७ ॥ रोगकी शांतिके कारणरूप औषध और नीरोग होना तथा ब्रह्मकर्मरूप वेदके अर्थका जानना और वेदसंबंधिनी विद्या और नानारूप स्वर्ग आदिमें स्थिति ये सब तपहीसे प्राप्त होते हैं जिससे तपही इनकी प्राप्तिका कारण है ॥ ३८ ॥

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ॥ सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ३९ ॥ महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः ॥ तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः ॥ २४० ॥

भाषा-जो दुःखसे पार होने योग्य है जैसे ग्रहोंके दोषसे सूचित आपत्ति आदि और जो दुःखसे क्षत्रिय आदिको करि प्राप्त होने योग्य है जैसे विश्वामित्रका उसी शरीरसे ब्राह्मणत्वका पाना और जो दुःखसे जाने योग्य है जैसे सुमेरुका शिखर और जो दुःखसे करने योग्य है जैसे गौओंका बहुतसा दान आदि सो सब तपसे साधन करि सकते हैं जिससे अति कठिन कार्यके करनेमें तपकी शक्तिका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है ॥ ३९ ॥ ब्रह्महत्या आदि पातकोंके करनेवाले तथा उपपातक आदि नहीं करने योग्यके करनेवाले उक्ततपहीके करनेसे उस पापसे छूट जाते हैं कहे हुएका फिर कहना प्रायश्चित्तकी प्रशंसाके लिये है ॥ २४० ॥

कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च ॥ स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात् ॥ ४१ ॥ यत्किंचिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः ॥ तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥ ४२ ॥

भाषा-कीडे, सांप, पतंग, पशु, पक्षी और वृक्ष, गुल्म आदि स्थावर आदि सब भूत तपके माहात्म्यसे स्वर्गको जाते हैं इतिहास आदिकोंमें कपोतोंके उपाख्यान आदिमें पक्षी अग्निमें प्रवेश आदि तपको करके और कीटोंका उनकी जातिका स्वाभाविक दुःखका सहना तप है उससे क्षीणपाप हो विकाररहित जन्मांतरमें किये हुए सुकृतसे स्वर्गको जाते हैं ॥ ४१ ॥ मनुष्य मन वाणी और देहसे जो कुछ पाप करते हैं उस सब पापको तपोधन तपहीसे जला देते हैं ॥ ४२ ॥

तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः ॥ इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान्संवर्धयन्ति च ॥ ४३ ॥ प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः ॥ तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ ४४ ॥

भाषा–प्रायश्चित्तरूप तपसे क्षीणपाप ब्राह्मणके यज्ञमें देवता हविको ग्रहण करते हैं और वांछित अर्थको देते हैं ॥ ४३ ॥ संपूर्ण लोककी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयमें समर्थ हिरण्यगर्भ पहले तपको करकेही इस ग्रंथको बनाते भये तैसे वसिष्ठ आदि ऋषि तपहीसे मंत्र ब्राह्मणरूप वेदोंको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥

इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यं प्रचक्षते ॥ सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्तपसः पुण्यमुत्तमम् ॥ ४५ ॥ वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा ॥ नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ ४६ ॥

भाषा–इस सब संसारके जीवोंका जो दुर्लभ जन्म है सो तपहीसे होता है इसको देखते हुए देवता 'तपोमूलमिदं सर्वं' इत्यादि तपके माहात्म्यको कहते हैं ॥ ४५ ॥ शक्तिके अनुसार प्रतिदिन वेदका पढना और पंचयज्ञोंका करना और अपराधका सहनशील होना ये महापातकसे उत्पन्न पापोंको शीघ्रही नाश कर देते हैं और पापोंकी तो क्या चलाई है ॥ ४६ ॥

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ॥ तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ॥ ४७ ॥ इत्येतदेनसामुक्तं प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥ ४८ ॥

भाषा–जैसे अग्नि समीपके काष्ठोंको तेजसे निःशेष करि देती है तैसेही वेदके अर्थका जाननेवाला ब्राह्मण ज्ञानरूपी अग्निसे सब पापोंको नाश करि देता है ॥ ४७ ॥ यह ब्रह्महत्या आदि प्रकाश पापोंका प्रायश्चित्त विधिपूर्वक कहा इसके उपरान्त अप्रकाश कहिये गुप्त पापोंका प्रायश्चित्त सुनिये ॥ ४८ ॥

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ॥ अपि भ्रूणहणं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥४९॥ कौत्सं जप्त्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च प्रतीत्यृचम् ॥ माहित्रं शुद्धवत्यश्च सुरापोऽपि विशुद्ध्यति ॥२५०॥

भाषा–व्याहृतियों तथा प्रणव करि युक्त और सावित्रीशिर करि युक्त पूरक कुंभक रेचक आदिकी विधिसे प्रति दिन किये हुए सोलह प्राणायाम एक महीनेमें भ्रूणहत्यारेकोभी पापरहित कर देते हैं ॥ ४९ ॥ कौत्सऋषि करि देखे हुए "अपनः शोशुचदघं" इस सूक्तको और वसिष्ठऋषिकरि देखे हुए "प्रतिस्तोमेभिरुषसंवसिष्ठा'

इस ऋचाको और माहित्र कहिये "महित्रीणामवोस्तु" इस सूक्तको और शुद्धवत्यः "एतोन्विन्द्रं स्तवाम" इन तीनि ऋचाओंको एक महीनेपर प्रतिदिन सोलह वारभी जपके सुराका पीनेवालाभी शुद्ध होता है ॥ २५० ॥

सकृज्जप्त्वास्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च ॥ अपहृत्य सुवर्णं तु क्षणाद्भवति निर्मलः ॥ ५१ ॥ हविष्पान्तीयमभ्यस्य नतमंह इतीति च ॥ जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥ ५२ ॥

भाषा–ब्राह्मणके सुवर्णको चुराके अस्यवामीयं' "अस्य वामस्य पलितस्य"इस सूक्तको एक महीने प्रतिदिन एकवारभी जपके और "शिवसंकल्पं" "यज्जाग्रतोदूरं" इसको जो वाजसनेयकमें पढा है जपके सुवर्णको चुरायके शीघ्रही पापरहित होता है ॥५१॥ "हविष्पान्तमजरंस्वर्विदि" इन उन्नीस ऋचाओंको और "नतमंहोनदुरितं" इन आठको अथवा हविष्पांत इसको और "इति मे मनः" इस सूक्तको और "सहस्रशीर्षा पुरुष" इस षोडश ऋचा सूक्तको एक महीने प्रतिदिन सोलहवारके अभ्याससे जपके गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेवाला उस पापसे छूट जाता है ॥ ५२ ॥

एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् ॥ अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किंचेदमितीति वा ॥ ५३ ॥ प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् ॥ जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥५४॥

भाषा–स्थूलपाप जे महापातक हैं उनके और सूक्ष्म जे उपपातक हैं तिसके दूर करनेकी इच्छा करता हुआ " अवतेहेळोवरुणनमोभिः " इस ऋचाको और "यत्किंचेदंवरुण दैव्येजने " इस ऋचाको और " इतिवाइतिमेमनः " इस सूक्तको एक वर्ष प्रतिदिन जपे ॥ ५३ ॥ स्वरूपसे महापातकीके धन आदिके कारण नहीं लेने योग्य प्रतिग्रहको लेकारि और स्वभाव काल तथा प्रतिग्रहके संसर्गसे दुष्ट अन्नको खायके " तरत्समंदीधावति " इन चारि ऋचाओंको तीनि दिन जपके मनुष्य उस पापसे पवित्र होता है ॥ ५४ ॥

सोमारौद्रं तु बह्वेना मासमभ्यस्य शुद्धयति ॥ स्रवन्त्यामाचरन्स्नानमर्यम्णामिति च त्र्यृचम् ॥५५॥ अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकं जपेत् ॥ अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमासीत भैक्षभुक् ॥५६॥

भाषा–"सोमारुद्राधारयेथामसूर्यम्" इन चारि ऋचाओंको और "अर्यमणं वरुणमित्रं च" इन तीनि ऋचाओंको नदीमें स्नान कारि एकमहीने प्रत्येकका अभ्यास करके बहुत पापवाला शुद्ध होता है ॥ ५५ ॥ एनस्वी कहिये पाप करनेवाला मनुष्य सब पापोंमें "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये"इन सात ऋचाओंका छः महीने जप करे

और अप्रशस्त मूत्र पुरीष आदिका त्याग जलमें करके एक महीनेभर भिक्षाका भोजन करनेवाला होय ॥ ५६ ॥

मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः ॥ सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम् ॥ ५७ ॥ महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समाहितः ॥ अभ्यस्याब्दं पावमानीर्भैक्षाहारो विशुद्ध्यति ॥ ५८ ॥

भाषा-" देवकृतस्य " इत्यादि शाकल होममंत्रोंसे एक वर्ष घीका होम करके "नम इन्द्रश्च"इस ऋचाका एक वर्ष जप करके महापातकसे उत्पन्नभी पापको द्विजाति नाश करता है॥५७॥ ब्रह्महत्या आदि महापातकोंसे युक्त पाई हुई भिक्षासे आहार करता हुआ एक वर्ष जितेंद्रिय हो गौओंका अनुगमन करता हुआ पावमानी ऋचाओंका प्रतिदिन जप करता हुआ उस पापसे शुद्ध होता है ॥ ५८ ॥

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥ ५९ ॥ त्र्यहं तूपवसेद्युक्तस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाऽघमर्षणम् ॥ २६० ॥

भाषा-तीनि पराकों कर शुद्ध मंत्रब्राह्मणरूप वेदकी संहिताका वनमें तीनिवार अभ्यास कर प्रयत कहिये बाहरी भीतरी शौच कर युक्त सब महापातकोंसे छूट जाता है ॥ ५९ ॥ तीनि रात्रि उपवास करता हुआ जितेंद्रिय प्रतिदिन प्रातः-काल मध्याह्न और सायंकाल स्नान करता हुआ तीनि वार स्नानके समयहीमें जलमें गोता लगाके " ऋतं च सत्यं चा " इस सूक्तसे अघमर्षण तीनि आवृत्तिसे जपके सब पापोंसे छूट जाता है ॥ २६० ॥

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनम् ॥ तथाऽघमर्षसूक्तं च सर्वपापापनोदनम् ॥ ६१ ॥ हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः ॥ ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किञ्चन ॥ ६२ ॥

भाषा-जैसे अश्वमेधयज्ञ सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ है और सब पापोंके क्षयका कारण है तैसेही अघमर्षणसूक्तभी सब पापोंके क्षयका कारण है ॥ ६१ ॥ भू आदि तीनों लोकोंकोभी मारके और महापातकी आदिकोंकाभी अन्न खाता हुआ ऋग्वेदको धारण किये हुए विप्र आदि किंचित्भी पापको नहीं प्राप्त होता है ऋग्वेदका धारण तौ रहस्य प्रायश्चित्तके लिये कहा है तिससे रहस्य पापके करनेपर मंत्रब्राह्मणरूप ऋक्संहिताका अभ्यास करे ॥ ६२ ॥

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः ॥ साम्नां वा सरहस्यानां-

नां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६३ ॥ यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति ॥ तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति ॥ ६४ ॥

भाषा-मंत्रब्राह्मणरूप ऋग्वेदकी संहिताका केवल मंत्रात्मिकाहीका नहीं अथवा यजुर्वेदकी मंत्रब्राह्मणरूप संहिताका अथवा सामवेदकी मंत्रब्राह्मण उपनिषद्रूप संहिताका तीनि वार अभ्यास करके सब पापोंसे छूट जाता है ॥६३॥ ऋक् आदि रूपसे जो तीनि वार लौटे उसको त्रिवृत् कहते हैं. जैसे वडे कुंडमें प्राप्त होके मट्टीका डेल विखर जाता है तैसे सब पाप त्रिवृत्वेदमें नाशको प्राप्त होते हैं ॥६४॥

ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च ॥ एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित् ॥६५॥ आद्यं यस्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता ॥ स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥२६६॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

भाषा-त्रिवृत्पनको कहते हैं. ऋग्वेदके मंत्र और यजुके मंत्र और बृहद्रथंतर आदि नाना प्रकारके साम और परस्पर तीनोंके पृथक् पृथक् मंत्र ब्राह्मण यह त्रिवृद्वेद जानना चाहिये जो इसको जानता है वह वेदका वेत्ता होता है ॥ ६५ ॥ सब वेदोंका आद्य कहिये प्राथमिक और सब वेदोंका सार अकार उकार मकार रूपसे तीनि अक्षरका जो ब्रह्म है उसमें तीनों वेद स्थित हैं सो दूसरा त्रिवृद्वेद प्रणव नाम गुह्य वेदके मंत्रोंमें श्रेष्ठ होनेसे छिपाने योग्य है परमार्थका कहनेवाला है. इससे और परमार्थक होनेसे धारण तथा जपसे मोक्षका कारण है जो उसको स्वरूपसे जानता है वह वेदका जाननेवाला है ॥ २६६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतावेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानघ ॥ कर्मणां फलनिर्वृत्तिं शंस नस्तत्त्वतः पराम् ॥ १ ॥ स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ॥ अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम् ॥ २ ॥

भाषा-हे पापरहित! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका और अन्तरप्रभवोंका यह धर्म तुमने कहा अब कर्मोंकी शुभ अशुभ फलकी प्राप्तिको और परां कहिये

जन्मांतरमें हुई परमार्थरूपको हमसे कहो महर्षियेंने यह भृगुसे कहा ॥ १ ॥ वह धर्मप्रधान मनुका पुत्र भृगु इस सब कर्मसंबंधके फलके निश्चियको सुनिये यह उन महर्षियोंसे बोला ॥ २ ॥

**शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ॥ कर्मजा गतयो नृणा-
मुत्तमाधममध्यमाः ॥ ३ ॥ तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य
देहिनः ॥ दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात्प्रवर्तकम् ॥ ४ ॥**

भाषा-मन वाणी देह जिसका कारण ऐसा सुखदुःखरूप फलका देनेवाला विहित निषिद्धरूप कर्म और उसीसे उत्पन्न मनुष्य तिर्यक् आदिके भावसे उत्कृष्ट मध्यम और अधमकी अपेक्षा मनुष्योंकी गति अर्थात् जन्मांतरोंकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ उस देहकी कर्मकी उत्कृष्ट मध्यम अधमतासे तीनि प्रकारके मन वाणी तथा कायके आश्रित और आगे कहे हुए दश लक्षणोंकरि युक्त कर्मका मनही प्रवर्तक जानना चाहिये मन करि संकल्प किया हुआ कहा जाता है और किया जाता है सोई तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा है. जैसे "तस्मात् यत्पुरुषो मनसाऽभिगच्छति तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति " इति. अर्थ-तिससे पुरुष जिसको मनसे जानता है उसको वाणीसे कहता है और कर्मसे करता है ॥ ४ ॥

**परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ॥ वितथाभिनिवेशश्च
त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ ५ ॥ पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि
सर्वशः ॥ असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ६ ॥**

भाषा-उन दशलक्षणोंके कर्म दिखानेको कहते हैं. कैसे कि पराये धनको अन्यायसे लेलो इस भांति सोचना और मनसे ब्रह्मवध आदिकी निषिद्ध इच्छा और परलोक नहीं है देहही आत्मा है इस भांति तीनि प्रकारका अशुभ फल मानस कर्म ये तीनों और विपरीत बुद्धि तीनि प्रकारका शुभफल मानस कर्म है ॥ ५ ॥ अप्रियका कहना झूंठ बोलना पीठि पीछे पराये दूषणोंका कहना और सत्यभी राजा देश और पुरवासियोंकी वार्त्ता आदिका विना प्रयोजन वर्णन करना इस भांति चारि प्रकारका अशुभ फल वाचिक कर्म होता है इससे विपरीत प्रिय सत्य और परगुणोंका कहना और श्रुति पुराण आदिमें राजा आदिकोंके चारित्रका कहना शुभफल है ॥ ६ ॥

**अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥ परदारोपसेवा च शारी-
रं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ७ ॥ मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशु-
भम् ॥ वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥ ८ ॥**

भाषा-अन्यायकरके पराये द्रव्यका हरण करना वेदादिक शास्त्रोंसे निषिद्ध हिंसाका करना और पराये स्त्रीके साथ संभोग करना, इन तीन प्रकारका अशुभ फल देनेवाला शारीरकर्म होता है और इनसे विपरीत अर्थात् न्यायसे द्रव्यका संग्रह करना वेदादिक शास्त्रोंसे यज्ञादिकोंमें विहित पशुओंकी हिंसा करना और अपने स्त्रीके साथ ऋतुकालमें संभोग करना ये तीन प्रकारका शुभफल देनेवाला शारीर कर्म होता है ॥ ७ ॥ मन करके जो सुकृत अथवा दुष्कृत कर्म किया उसका फल सुखदुःखरूप इस जन्ममें अथवा दूसरे जन्ममें मनसेही यह भोगता है ऐसे वाणीकरि किया हुआ शुभ अशुभ वाणीके द्वारा मधुर, गद्गद बोलने आदिसे और शरीरसंबंधी शुभ अशुभ शरीरके द्वारा स्रक् चंदन आदि प्रियाके उपभोगसे व्याधित आदि होनेसे भोगता है तिससे यत्न करके शारीर मानस और वाचिक धर्मरहित और धर्मजनक कर्मोंको छोडे तथा करे ॥ ८ ॥

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः ॥ वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥ ९ ॥ वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्ड-स्तथैव च ॥ यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥ १० ॥

भाषा-यद्यपि पापिष्ठोंके शारीर, वाचिक और मानसिकही तीनि पाप होते हैं तिसपरभी वह जो बहुधा अधर्मही करे धर्म थोडा करे तो बाहुल्यके अभिप्रायसे यह व्याख्यान किया है जैसे अधिकतासे शरीरके कर्मोंसे उत्पन्न पापोंकारि युक्त मनुष्य स्थावरत्वको प्राप्त होता है और बाहुल्यसे वाणी कारि किये हुओंसे पक्षि-भाव और मृगभावको अथवा बाहुल्यसे मनकारि किये हुओंसे चांडाल आदिके भावको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ वाणीका दण्ड, मनका दंड, तैसेही कायदंड ये तीनों दंड जिसकी बुद्धिमें स्थित हैं वह त्रिदंडी कहा जाता है और तीनि दंडोंके धारण-मात्रसे त्रिदंडी नहीं होता है ॥ १० ॥

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः ॥ कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ११ ॥ योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते ॥ यः करोति स कर्माणि भूतात्मेत्युच्यते बुधैः ॥ १२ ॥

भाषा-इस निषिद्ध वाणी आदिकोंका सब भूतोंकी गोचरतासे दमन करके और इन्हींके दमनके लिये काम तथा क्रोधको रोकके तिस पीछे मनुष्य मोक्षप्राप्तिरूप सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ कौन सिद्धिको प्राप्त होता है सो कहते हैं. जो इस लोकसिद्ध शरीर नाम आत्माको कर्मोंमें प्रवृत्त करानेवाला है उसको पंडित क्षेत्रज्ञ कहते हैं और जो यह व्यापारोंको करता है वह शरीर नाम है वह पृथिवी आदि भूतोंसे बननेके कारण पंडितोंकारि भूतात्मा कहा जाता है ॥ १२ ॥

जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ॥ येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ १३ ॥ तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च ॥ उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥ १४ ॥

भाषा–शरीर तथा क्षेत्रज्ञसे भिन्न शरीरके भीतर आत्मा नाम होनेसे आत्मा जीवनामसे क्षेत्रज्ञोंको सहज आत्मा नामकी प्राप्ति है क्योंकि उनसे उसका विनियोग है अहंकार और इंद्रियोंके रूपसे परिणामको प्राप्त कारणभूत जिस जीवात्माकरि क्षेत्रज्ञ प्रतिजन्ममें सुख और दुःखका अनुभव करता है ॥ १३ ॥ वे दोनों महत् और क्षेत्रज्ञ पृथिवी आदि पांच भूतोंसे मिले हुए आगे जो कहा जायगा और सब लोकमें तथा वेद स्मृति और पुराण आदिमें प्रसिद्ध होनेसे जो तंशब्दसे निर्देश किया गया और उत्कृष्ट अपकृष्टजीवोंमें स्थित ऐसे परमात्माको आश्रय लेकरि दोनों स्थित रहते हैं ॥ १४ ॥

असंख्या मूर्त्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः ॥ उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयंति याः ॥ १५ ॥ पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम् ॥ शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥ १६ ॥

भाषा–इस परमात्माके शरीरसे असंख्य हैं मूर्तियां जिनकी ऐसे जो क्षेत्रज्ञ शब्दसे पीछे कही हुई लिंगशरीरमें स्थित और वेदांतके कहे हुए प्रकारसे आगिकी चिनगारियोंके समान जे मूर्तियां निकलीं वे देहरूपसे परिणामको प्राप्त उत्कृष्ट अपकृष्ट जीवोंको सदा कर्मोंमें प्रेरणा करती ॥ १५ ॥ पृथिवी आदि पांचही भूतोंके भागोंसे दुष्कृत करनेवाले मनुष्योंको पीडाका अनुभव करानेवाले जरायुज आदि देहोंसे भिन्न दुःख सहनेवाला शरीर परलोकमें उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥

तेनानुभूय ता यामीः शरीरेणेह यातनाः ॥ तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः ॥ १७ ॥ सोऽनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसंगजान् ॥ व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ ॥ १८ ॥

भाषा–उस निकले हुए शरीरसे पापी जीव उन यमकी की हुई यातनाओंको भोगके स्थूल शरीरके नाश होनेपर उन्ही आरंभ करनेवाले भूतोंके भागोंमें जो जिसका भाग है वह उसमें इस क्रमसे लीन हो जाता है अर्थात् उन भूतोंके संयोगी होकारि स्थित रहता है ॥ १७ ॥ वह शरीरी भूत सूक्ष्म आदि लिंगशरीरमें स्थित हो निषिद्ध शब्दस्पर्शरूपरसगंध नाम विषयोंके भोगसे उत्पन्न यमलोकके दुःख आदिको भोगके तिस पीछे अनंतर भोगसे नाश हुए हैं पाप जिसके ऐसा हो उन्हीं बडे पराक्रमी दोनों महत् और परमात्माका आश्रय लेता है ॥ १८ ॥

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ॥ याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् ॥१९॥ यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः ॥ तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते ॥ २० ॥

भाषा–वे दोनों महत् और परमात्मा आलस्यरहित हो उस जीवके धर्मको और भोगनेसे बाकी रहे पापका साथ विचार करते हैं जिन धर्म अधर्मोंकरि युक्त जीव परलोक और इस लोकमें सुख तथा दुःखको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ वह जीव जो मनुष्यकी दशामें अधिकतासे धर्मको करता है और थोडा अधर्म तब स्थूल शरीरके रूपसे परिणामको प्राप्त उन्हीं पृथिवी आदि भूतोंकरि युक्त स्वर्गके सुखको भोगता है ॥ २० ॥

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ॥ तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः ॥ २१ ॥ यामीस्ता यातनाः प्राप्य स जीवो वीतकल्मषः ॥ तान्येव पञ्च भूतानि पुनरप्येति भागशः ॥२२॥

भाषा–जो वह जीव मनुष्यकी दशामें अधिकतासे पाप करता है और पुण्य थोडा तब मनुष्यके देहरूपसे परिणामको प्राप्त उन्हीं भूतोंकरि त्याग किया हुआ मरके पीछे पांचोंही मात्राओंसे उक्तरीति करि यातना भोगनेके योग्य हुआ है कठिन देह जिसका ऐसा हो यमकी पीडाओंको भोगता है ॥ २१ ॥ वह जीव यमकी उन यातनाओंको उस कठिन देहसे भोगके उसके भोगसे पापरहित हो उन जरायुज आदि शरीरोंके आरंभ करनेवाले पृथिवी आदि भूतोंके भागोंमें अधिष्ठित हो मनुष्य आदिके शरीरको ग्रहण करता है ॥ २२ ॥

एता दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा ॥ धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः ॥ २३ ॥ सत्वं रजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान् ॥ यैर्व्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः ॥ २४ ॥

भाषा–धर्म अधर्म है कारण जिनका ऐसी इस देहकी स्वर्ग नरक आदिके भोगनेके उचित प्रिय अप्रिय देहकी प्राप्तियोंको अंतःकरणसें जानके धर्ममें मनको सदा लगावे ॥ २३ ॥ जिनके लक्षण आगे कहे जांयगे ऐसे सत्व रज तम आदि तीनि गुणोंको आत्माके उपकारक होनेसे आतमा जो महत् है उसके गुणोंको जाने जिन करके व्याप्त महान् इन स्थावर जंगमरूप सब पदार्थोंमें व्याप्त होके स्थित है॥२४॥

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते॥स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम्॥ २५ ॥ सत्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः

स्मृतम् ॥ एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥ २६ ॥

भाषा-यद्यपि यह सब त्रिगुणमय है तिसपरभी जिस देहमें इन गुणोंमेंसे जो गुण सकलरूपसे अधिक होता है तब उस गुणके बहुत हैं लक्षण जिसमें ऐसे उस देहीको करता है ॥ २५ ॥ अब सत्व आदिकोंके लक्षण कहते हैं. यथार्थका जो अवभास ज्ञान है वह सत्वका लक्षण है इससे विपरीत जो अज्ञान है वह तमका लक्षण है विषयोंका अभिलाषरूप जो मनका कार्य है वह रजोगुणका लक्षण है और सत्व रज तमका स्वरूप तौ प्रीति अप्रीति और विषादरूप है सोई पढते हैं. जैसे-“प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः अन्योन्याभिभवजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः” इति. अर्थ-प्रीति अप्रीति और विषादरूप तथा प्रकाशवृत्तिका नियम है अर्थ जिनका और आपसमें अभिभवका करना और मिथुनवृत्तिगुण हैं इति. यह तौ इनका स्वरूप आगेके तीनि श्लोकोंसे कहेंगे इन सत्व आदि गुणोंका यह सब ज्ञान आदि सब प्राणियोंमें व्याप्त लक्षण है ॥ २६ ॥

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत् ॥ प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥ २७ ॥ यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ॥ तद्रजोऽप्रतिघं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥ २८ ॥

भाषा-उस आत्मामें जो कुछ संवेदन प्रीतियुक्त लक्षित होय क्लेशनामको न होय शांत तथा शुद्धरूप होय उसको सत्व जानिये ॥ २७ ॥ जो तौ दुःखकारि युक्त और आत्माकी प्रीतिका नहीं उत्पन्न करनेवाला और सदा विषयोंमें शरीरियोंकी इच्छाके उत्पन्न करानेवाले उसके दुर्निवार होनेसे सतोगुणके प्रतिपक्षको रज जानो ॥ २८ ॥

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ २९ ॥ त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः ॥ अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३० ॥

भाषा-जो सत् असत्के विचारसे शून्य और नहीं प्रगट है विषयोंके आकारका स्वभाव जिसमें और नहीं तर्क करने योग्य है स्वरूप जिसका और अंतःकरण वही करणोंसे जो नहीं जानने योग्य उसको तप जानिये इन गुणोंके स्वरूपका कहना इसलिये है कि, मनुष्यको सत्ववृत्तिमें स्थित होनेको यत्न करना चाहिये ॥ २९ ॥ इन सत्व आदि तीनों गुणोंका उत्तम मध्यम अधमरूप जो फलका उत्पन्न करनेवाला है उसको विशेष करके कहेंगे ॥ ३० ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्विकं गुणलक्षणम् ॥ ३१ ॥ आरम्भरुचिता धैर्यमसत्का-

र्यपरिग्रहः ॥ विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥ ३२ ॥

भाषा–वेदमें अभ्यास और प्राजापत्य आदिका करना और शास्त्रके अर्थका ज्ञान और मिट्टी जल आदिसे शुद्धि और इंद्रियोंका रोकना और दान आदि धर्मोंका करना और आत्माके ध्यानमें तत्पर होना ये सत्वनाम गुणके कार्य हैं ॥ ३१ ॥ फलके लिये कर्मोंका करना और थोडेभी अर्थमें व्याकुल होना और निषिद्ध कर्मोंका करना और सदा शब्द आदि विषयोंका भोगना यह रज नाम गुणका कार्य है ॥३२॥

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ॥ याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३३ ॥ त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम् ॥ इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम् ॥ ३४ ॥

भाषा–अधिक धनकी इच्छा, अधिक सोना, कातरपन, क्रूरता और नास्तिक्य कहिये परलोकके न होनेकी बुद्धि और आचारका लोप और याचनका स्वभाव होना और प्रमाद कहिये संभव होनेपरभी धर्म आदिकोंमें मनका न लगाना ये तामस नाम गुणके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥ इन सत्व आदि तीनोंही गुणोंका भूत भविष्यत और वर्त्तमान इन तीनों कालोंमें विद्यमानोंका यह आगे जो कहा जायगा वह संक्षेपके क्रमसे लक्षण जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति ॥ तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३५ ॥ येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ॥ न च शोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥ ३६ ॥

भाषा–जिस कर्मको करके करता हुआ और आगे करनेकी इच्छा करता हुआ लज्जित होय तो वह सब तमका कार्य होनेसे तम है नाम जिसका ऐसे गुणका लक्षण शास्त्रके जाननेवालेको जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ इस लोकमें बडी ख्यातिको प्राप्त होउ इस लियेही जो जिस कर्मको करता है परलोकके लिये नहीं और उस कर्मके फलके न होनेपर दुःखी होता है वह रजका कार्य होनेसे रजोगुणका लक्षण जानिये ॥ ३६ ॥

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ॥ येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥ ३७ ॥ तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ॥ सत्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥ ३८ ॥

भाषा–जो कर्म सब प्रकारसे वेदके अर्थकी जाननेकी इच्छा करता है और जिस कर्मको करता हुआ तीनों कालमेंभी लज्जित नहीं होता है और जिस जिस कर्मसे

इसके आत्माको संतोष होय वह सत्वनाम गुणका लक्षण जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ कामकी प्रधानता होना यह तमका लक्षण है और धनमें निष्ठ होना रजक लक्षण है धर्मकी प्रधानता होना यह सत्वगुणका लक्षण है इन काम आदिकोंमें आगे आगे-वालेकी श्रेष्ठता है कामसे अर्थ श्रेष्ठ है, क्योंकि कामका अर्थ मूल है और उन दोनोंसे धर्म श्रेष्ठ है क्योंकि उन दोनोंका वही मूल है ॥ ३८ ॥

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते ॥ तान्समासेन वक्ष्यामि सर्व-स्यास्य यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥ देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः॥तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥ ४० ॥

भाषा–इस सत्व आदि गुणोंमेंसे जिसके गुणसे जीव जिन गतियोंको प्राप्त होता है इस जगत्‌की उन सब गतियोंको संक्षेपसे क्रमकरि कहूंगा ॥ ३९ ॥ जे सत्व-गुणकी वृत्तिमें स्थित हैं वे देवत्वको प्राप्त होते हैं और जे तौ रजोवृत्तिमें स्थित हैं वे मनुष्यत्वको और जे तमोवृत्तिमें स्थित हैं वे तिर्यक्कू योनिको प्राप्त होते हैं यह तीनि प्रकारकी जन्मकी प्राप्ति है ॥ ४० ॥

त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः ॥ अधमा मध्यमा-ग्र्या च कर्मविद्याविशेषतः ॥४१॥ स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः॥पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥४२॥

भाषा–सत्व आदि तीनि गुण हैं कारण जिसके ऐसी तीनि प्रकारकी जन्मां-तरोंकी प्राप्ति कही वह देशकाल आदिके भेदसे और संसारके कारणभूत कर्मोंके भेदसे और ज्ञानके भेदसे अधम मध्यम उत्तम इन भेदोंसे तीनि प्रकारकी जाननी चाहिये ॥ ४१ ॥ स्थावर वृक्ष आदि कृमि सूक्ष्म प्राणी उनसे कुछ मोटे कीट तथा मछली, सांप, कछुआ और मृगोंतक यह सब तमोगुण हैं कारण जिसका ऐसी जघन्य कहिये अधम गति है ॥ ४२ ॥

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः ॥ सिंहा व्याघ्रा वरा-हाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥ ४३ ॥ चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषा-श्चैव दाम्भिकाः॥रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥४४॥

भाषा–हाथी, घोडा, शूद्र और गर्हित, म्लेच्छ, सिंह, वाघ, सुअर यह तमो-गुण है कारण जिसका ऐसी यह मध्यम गति है ॥ ४३ ॥ चारण, नट आदि और सुपर्ण पक्षी और कपटसे धर्म करनेवाले पुरुष और राक्षस तथा पिशाच यह तामसी गतियोंमें उत्तम गति है ॥ ४४ ॥

झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः ॥ द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥ ४५ ॥ राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञश्चैव पुरोहिताः ॥ वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ ४६ ॥

भाषा-व्रात्य क्षत्रियसे सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न दशम अध्यायमें कहे हुए झल्ल मल्ल उनमें लाठी धारण करनेवाले (छडीवरदार) और मल्ल बांहोंसे युद्ध करनेवाले और रंगभूमिमें उतरनेवाले नट और शस्त्रोंसे जीविका करनेवाले और जुवामें तथा मद्यके पीनेमें लगे हुए पुरुष यह अधम राजसी गति जाननी चाहिये ॥ ४५ ॥ राजा कहिये अभिषेक किये हुए देशके स्वामी तैसेही क्षत्रिय और राजाके पुरोहित और जिनको शास्त्रार्थ तथा कलह प्यारा है, यह राजसी गति मध्यम जानिये ॥ ४६ ॥

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये ॥ तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः ॥ ४७ ॥ तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः ॥ नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्विकी गतिः ॥४८॥

भाषा-गंधर्व, गुह्यक, यक्ष, देवता और उनके अनुचर विद्याधर आदि और अप्सरा सब ये राजसीमें उत्तम गति है ॥ ४७ ॥ वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्राह्मण और जे विमानमें चलनेवाले अप्सराओंसे भिन्न, पुष्पक आदि विमानमें चलनेवाले और नक्षत्र तथा दैत्य यह सत्व निमित्त अधम गति जाननी चाहिये ॥ ४८ ॥

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः ॥ पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्विकी गतिः ॥४९॥ ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च ॥ उत्तमां सात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ ५० ॥

भाषा-यज्ञ करनेवाले तथा ऋषि और देवता और वेदके अभिमानी देवता और ध्रुव आदि ज्योति कहिये तारागण और वत्सर कहिये इतिहासमें देखे हुए विग्रहवाले और पितर कहिये सोमपा आदि और देवयोनिविशेष साध्य, यह सत्वनिमित्त मध्यम गति जानिये ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा कहिये चतुर्मुख और विश्वसृज् कहिये मरीचि आदि और देह धारण किये हुए धर्म और महान् तथा अव्यक्त सांख्यमें प्रसिद्ध दो तत्व उनके अधिष्ठाता दोनों देवता इस चतुर्मुख आदि रूप सृष्टिको सात्विक निमित्त उत्कृष्ट गति पंडित कहते हैं ॥ ५० ॥

एष सर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ॥ त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥ ५१ ॥ इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्या-

सेवनेन च ॥ पापान्संयांति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥ ५२ ॥

भाषा-यह मन, वाणी और कामरूप, तीनि साधनोंके भेदसे तीनि प्रकारके कर्म सत्व रज तमके भेदसे फिर तीनि प्रकारका फिर प्रथम मध्यम उत्तमके भेदसे तीनि प्रकारका सब प्राणियोंमें स्थित गति विशेष संपूर्णतासे कहा और सार्वभौतिक इस कहनेसे नहीं कही हुईभी गतियां देखनी चाहिये और उक्त गतियां तो दिखानेके लिये है ॥ ५१ ॥ इंद्रियोंके विषयोंमें लगनेसे और निषिद्ध आचरणसे और प्रायश्चित्त आदि धर्मोंके न करनेसे मूढ मनुष्योंमें नीच कुत्सित गतियोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा ॥ क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ॥ ५३ ॥ बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् ॥ संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ॥ ५४ ॥

भाषा-यह जीव जिस जिस किये हुए पापकर्मसे इस लोकमें जिस जन्मको प्राप्त होता है उन सबको क्रमसे सुनिये ॥ ५३ ॥ ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके करनेवाले बहुतसे वर्षोंके समूहोंतक भयंकर नरकोंमें प्राप्त हो उनके भोगके पूरे होने पर पापके शेषसे आगे कहे हुए जन्म विशेषोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥

श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् ॥ चण्डालपुक्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥ ५५ ॥ कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम् ॥ हिंस्राणां चैव सत्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥ ५६ ॥

भाषा-कुत्ता, सुअर, गधा, ऊंट, गौ, बकरा, मेंढा, मृग, पक्षी, चांडाल और जो निषादसे शूद्रमें उत्पन्न व पुक्कस इनकी योनिमें ब्रह्महत्यारा जन्म लेता है यहां शेष पापकी गुरुता और लघुताकी अपेक्षासे क्रमसे सब योनियोंकी प्राप्ति जाननी चाहिये ऐसेही आगेभी जानिये ॥ ५५ ॥ कृमि, कीट, पतंग और विष्ठा खानेवाले पक्षी और हिंसा करनेवाले व्याघ्र आदि इनकी जातिमें सुरा पीनेवाला ब्राह्मण उत्पन्न होता है ॥ ५६ ॥

लूताहिसरठानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ॥ हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ ५७ ॥ तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि ॥ क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥ ५८ ॥

भाषा-मकडी, सांप, गिरगट और जलमें विचरनेवाले पक्षी और हिंसा करनेवाले पिशाच आदि, इनकी योनिमें सुवर्णका चुरानेवाला ब्राह्मण हजारोंवार प्राप्त

होता है ॥ ५७ ॥ दूब, तृणोंकी और गुल्मोंकी और गुडूची आदि लताओंकी और कच्चा मांस खानेवाले गीध आदिकी और सिंह आदि दंष्ट्रियोंकी और क्रूर कर्म करनेवाले वधशील व्याध आदिकोंकी जातिमें, सौ वार गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेवाला प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः ॥ परस्परादिनः स्तेनाः प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥ ५९ ॥ संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम् ॥ अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ६० ॥

भाषा–जे प्राणियोंके वध करनेवाले हैं वे कच्चे मांसके खानेवाले बिलाव आदिकी योनिमें उत्पन्न होते हैं और जे अभक्ष्यभक्षी हैं वे कृमि होते हैं और जे महापातकियोंसे भिन्न चोर हैं वे आपसमें मांस खानेवाले होते हैं और जे चांडाल आदिकी स्त्रीमें गमन करनेवाले हैं वे प्रेत नाम प्राणीविशेष होते हैं ॥ ५९ ॥ जितने कालमें पतितके संयोगसे पतित होता है उतने कालतक ब्रह्मघाती आदि चारिके साथ संसर्गको करके और औरोंकी स्त्रीमें गमन करके और ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न अन्यवस्तुको चुराके एक एक पाप करनेसे ब्रह्मराक्षस प्राणीविशेष होता है॥ ६० ॥

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः ॥ विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥ ६१ ॥ धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलं प्लवः ॥ मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् ॥ ६२ ॥

भाषा–माणिक्य आदि मणियोंको, मोती मूंगोंको और नाना प्रकारके वैदूर्य हीरा आदि रत्नोंको, अपनेके श्रमविना लोभसे चुराके सुवर्णकारकी योनिमें उत्पन्न होता है कोई तो हेमकार पक्षीको कहते हैं ॥ ६१ ॥ धान्यको चुराके मूसा होता है और कांसेको चुरायके हंस होता है और जलको चुरायके प्लव नाम पक्षी होता है और शहद चुरायके डांस और दूध चुरायके कौआ और विशेष करि कहे हुए गुड नोन आदिसे भिन्न ईख आदिके रसको चुरायके कुत्ता होता है और घी चुरायके न्योला होता है ॥ ६२ ॥

मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः ॥ चीरीवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि ॥६३॥ कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः ॥ कार्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोधा गां वाग्गुदो गुडम् ॥ ६४ ॥

भाषा–मांस चुरायके गीध होता है और वसा (चरबी) को चुरायके मद्गु नाम जलचर पक्षी होता है और तेल चुरायके तैलपायिक नाम पक्षी और नोन

चुरायके चीरिवाक नाम ऊंचे स्वरवाला कीट और दही चुरायके बलाका नाम पक्षी होता है ॥ ६३ ॥ रेशमी वस्त्र चुरायके तीतर नाम पक्षी होता है और क्षौमसे बने हुए वस्त्रको चुरायके मेढक और कपासके बने हुए वस्त्रको चुरायके क्रौंच नाम प्राणी और गौको चुरायके गोह और गुडको चुरायके वाग्गुद नाम पक्षी होता है ॥ ६४ ॥

छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकं तु बर्हिणः ॥ श्वावित्कृतान्नं वि-विधमकृतान्नं तु शल्यकः ॥६५॥ बको भवति हृत्वाग्निं गृहकारी ह्युपस्करम् ॥ रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः ॥ ६६ ॥

भाषा-कस्तूरी आदि सुगन्ध द्रव्योंको चुरायके छुछूंदरी होता है वथुआदि पत्र-शाकोंको चुरायके मोर और लड्डू सक्तु आदि नाना प्रकारके सिद्ध अन्न चुरायके श्वाविध नाम प्राणी और विना किये हुए अन्न धान जव आदि चुरायके शल्यक नाम होता है ॥ ६५ ॥ अग्निको चुरायके बक नाम पक्षी होता है और घरके उपयोगी सूप मूसल आदि चुरायके भीति आदि मट्टीका घर बनानेवाला परोंकरि युक्त कीट अर्थात् कुह्मारकीडा होता है कसुंभ आदिसे रंगे वस्त्रोंको चुरायके चकोर नाम पक्षी होता है ॥ ६६ ॥

वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलं तु मर्कटः ॥ स्त्रीमृक्षः स्तोकको वारि यानान्युष्ट्रः पशूनजः ॥ ६७ ॥ यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य ब-लान्नरः ॥ अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ॥ ६८ ॥

भाषा-मृग अथवा हाथीको चुरायके भेडिया नाम हिंसक पशु होता है और घोडा चुरायके व्याघ्र होता है और फल मूल चुरायके बंदर होता है और स्त्रीको चुरायके रीछ होता है और पीनेके लिये जल चुरायके चातक नाम पक्षी होता है और शकट आदि यानोंको चुरायके ऊंट होता है और कहे हुए पशुओंसे अन्य पशुओंको चुरायके बकरा होता है ॥ ६७ ॥ यत्किंचित् असारभी पराई वस्तुको इच्छासे चुरायके और विना होम हुए पुरोडाश आदिको खायके मनुष्य निश्चय तिर्यक् योनिमें प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः ॥ एतेषामेव जंतूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ ६९ ॥ स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्यु-ता वर्णा ह्यनापदि॥पापान्संसृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु॥७०॥

भाषा-स्त्रियांभी इसी प्रकारसे इच्छा करके पराई वस्तुको चुरायके पापको प्राप्त होती हैं और उस पापसे कहे हुए जीवोंकी स्त्री होती है ॥ ६९ ॥ इस भांति नि-

षिद्ध काम करनेके फलोंको कहके अब कहे हुएको न करनेके फलका परिपाक कहते हैं ब्राह्मण आदि चारों वर्ण आपत्तिके विना पंचकर्मोंके त्याग करनेसे आगे कही हुई कुत्सित योनियोंको प्राप्त हो तिस पीछे दूसरे जन्ममें शत्रुके दासभावको प्राप्त होते हैं ॥ ७० ॥

वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥ अमेध्याकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः ॥ ७१ ॥ मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् ॥ चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥ ७२ ॥

भाषा—अपने कर्मसे भ्रष्ट और वांतका खानेवाला ब्राह्मण ज्वालामुख नाम एक भांतिका प्रेत होता है और अपने कर्मसे नष्ट क्षत्रिय विष्ठा खानेवाला कटपूतन नाम एक भांतिका प्रेत होता है ॥ ७१ ॥ अपने कर्मसे भ्रष्ट वैश्य मैत्राक्षज्योतिक नाम पीवका खानेवाला प्रेत दूसरे जन्ममें होता है और अपने कर्मसे भ्रष्ट शूद्र चैलाशक नाम प्रेत होता है ॥ ७२ ॥

यथा यथा निषेवन्ते विषयान्विषयात्मकाः ॥ तथा तथा कुशलता तेषां तेषूपजायते ॥ ७३ ॥ तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पबुद्धयः ॥ संप्राप्नुवंति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु ॥ ७४ ॥

भाषा—विषयोंमें लोभी जैसे शब्द आदि विषयोंको सदा सेवन करते हैं तैसे तैसे उनकी विषयोंमें प्रवीणता होती है ॥ ७३ ॥ वे अल्पबुद्धिवाले उन निषिद्ध विषयोंमें उपभोगके अभ्याससे उन उन निंदिततर और निंदिततम तिर्यक् आदि योनियोंमें दुःखको भोगते हैं ॥ ७४ ॥

तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्त्तनम् ॥ असिपत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनानि च ॥ ७५ ॥ विविधाश्चैव संपीडाः काकोलूकैश्च भक्षणम् ॥ करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ॥ ७६ ॥

भाषा—तामिस्र आदि चौथे अध्यायमें कहे हुए घोर नरकोंमें दुःखके अनुभवको प्राप्त होते हैं तैसेही असिपत्रवन आदि बंधन च्छेदनरूप नरकोंको प्राप्त होते हैं ॥ ७५ ॥ नाना प्रकारकी पीडाओंको और कौआ उलूक आदिसे खाया जाना और तप्त वालुका आदि तथा कुंभीपाक आदि दारुण नरकोंमें प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यशः ॥ शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानि च ॥ ७७ ॥ असकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च

दारुणम् ॥ बन्धनानि च कष्टानि परप्रेष्यत्वमेव च ॥ ७८ ॥

भाषा-जिनमें दुःख बहुत है ऐसी तिर्यक्आदि योनियोंमें उत्पन्न होना उन शीत घाम आदिकी पीडा आदिसे नाना प्रकारके दुःखों और भयोंको प्राप्त होते हैं ॥ ७७ ॥ वारंवार गर्भस्थानोंमें बसनेको और योनि यंत्र आदिकोंसे दुःख देनेवाली उत्पत्तिको और संकल आदिसे बंधनेकी पीडाको प्राप्त होते हैं ॥ ७८ ॥

बन्धुप्रियवियोगांश्च संवासं चैव दुर्जनैः ॥ द्रव्यार्जनं च नाशं च मित्रामित्रस्य चार्जनम् ॥७९॥ जरां चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चो-पपीडनम् ॥ क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जयम् ॥ ८० ॥

भाषा-बांधवों और मित्रोंसे वियोगोंको और दुष्टोंके साथ एक स्थानमें रहनेको और धन जोडनेके श्रमको और धनके नाशको और कष्टसे मित्रके अर्जनको और शत्रुके प्रकट होनेको प्राप्त होते हैं ॥ ७९ ॥ जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसी वृद्धअव-स्थाको और रोगोंसे तथा भूख प्यास आदिसे पीडित होनेको और नाना प्रकारके क्लेशोंको और जो रुकि नहीं सकती ऐसी मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ८० ॥

यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते ॥ तादृशेन शरीरेण तत्तत्फ-लमुपाश्नुते ॥ ८१ ॥ एष सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वः फलोदयः॥ निःश्रेयसकरं कर्म विप्रस्येदं निबोधत ॥ ८२ ॥

भाषा-जिस प्रकारके सात्विक राजस अथवा तामस चित्तसे स्नान दान योग आदि जिस कर्मको करता है वैसेही सत्वअधिक रजअधिक अथवा तमअधिक शरी-रसे उस उस स्नान आदिके फलको भोगता है ॥ ८१ ॥ यह तुमसे विहित और प्रतिषिद्ध कर्मोंके फलके उदयको संपूर्ण कहा अब ब्राह्मणके कल्याणके लिये तथा मोक्षके लिये हितकारी कर्मोंको करना जो आगे कहा जायगा उसको सुनिये॥८२॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥ अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥ ८३ ॥ सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्मणाम् ॥ किञ्चिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥ ८४ ॥

भाषा-उपनिषद् आदि वेदका ग्रंथसे और अर्थसे आवृत्ति करना और कृच्छ्र आदि तप और ब्रह्मविषयक ज्ञान और इंद्रियोंका वश करना और नहीं कही हुई हिंसाका न करना और गुरुकी सेवा ये उत्कृष्ट मोक्षके साधन हैं ॥ ८३ ॥ इन सब वेदाभ्यास आदिक शुभकर्मोंमें कुछ कर्म अतिशय करके मोक्षका साधन होय यह वितर्क होनेपर ऋषियोंकी जिज्ञासा विशेषसे आगेके श्लोकसे निर्णय कहते हैं॥८४॥

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ॥ तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥ ८५ ॥ षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य चेह च ॥ श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥ ८६ ॥

भाषा-इन वेदाभ्यास आदि सर्वोंमेंसे उपनिषद् कर कहा हुआ परमात्माका ज्ञान उत्कृष्ट कहा है जिससे सब विद्याओंका प्रधान है इसीमें हेतु कहते हैं कि जिससे उसके द्वारा मोक्ष मिलता है ॥ ८५ ॥ पहले कहे हुए इन वेदाभ्यास आदि छः कर्मोंमें परमात्मा ज्ञानरूप वैदिक कर्म इस लोक तथा परलोकमें अत्यंत कल्याण करनेवाला जानना चाहिये ॥ ८६ ॥

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः ॥ अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तस्मिंस्तस्मिन्क्रियाविधौ ॥ ८७ ॥ सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ ८८ ॥

भाषा-अब आत्मज्ञानका इस लोक तथा परलोकमें श्रेयका साधन होना स्पष्ट कहते हैं. परमात्माकी उपासनारूप वैदिक कर्मयोगमें ये सब पहले श्लोकमें कहे हुए इस लोक तथा परलोकके श्रेय उस उस उपासना विधिमें क्रमसे संभावित होते हैं ॥ ८७ ॥ वैदिक कर्म यहां ज्योतिष्टोम आदि और प्रतीकोपासना आदि ग्रहण किये जाते हैं क्योंकि स्वर्ग आदिके सुखका देनेवाला संसारकी प्रवृत्तिका कारण है इससे वैदिक कर्मका प्रवृत्त नाम है तैसेही निःश्रेयस मोक्षको कहते हैं उसके लिये जो कर्म है उसको नैःश्रेयसिक कहते हैं क्योंकि वह संसारकी निवृत्तिका कारण है इससे प्रवृत्त और निवृत्त दो प्रकारका वैदिक कर्म जानना चाहिये ॥ ८८ ॥

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते ॥ निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते ॥ ८९ ॥ प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम् ॥ निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै ॥ ९० ॥

भाषा-इसीको स्पष्ट कहते हैं. इस लोकमें कामनाका साधन करनेवाला यज्ञ आदि और पर स्वर्ग आदिका साधन ज्योतिष्टोम आदि जो कामनासे किया जाता है वह संसारकी प्रवृत्तिका कारण होनेसे प्रवृत्त कहा जाता है और दृष्ट अदृष्ट फलकी कामनारहित ब्रह्मज्ञानके अभ्यासपूर्वक किया जाता है वह संसारकी निवृत्तिका कारण होनेसे निवृत्त कहा जाता है ॥ ८९ ॥ प्रवृत्त कर्मके अभ्याससे देवताओंके समान गतित्वको अर्थात् उसके फलको कर्मसे प्राप्त होता है यह तो प्रदर्शनके लिये है अन्यफलके देनेवाले कर्मके प्रवृत्त होनेसे दूसरा फलभी प्राप्त होता है

और निवृत्त कर्मके अभ्याससे शरीरके आरंभ करनेवाले पंचभूतोंको अतिक्रमण कर जाता है अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥ ९१ ॥ यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः ॥ आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥ ९२ ॥

भाषा-स्थावरजंगमरूप सब जीवोंमें मैंही आत्मारूप हूं और परमात्माके परिमाणसे सिद्ध सब जीव मुझ परमात्मामें हैं सामान्यतासे यह जानता हुआ आत्माका यजन करनेवाला ब्रह्ममें अर्पण करनेके न्यायसे ज्योतिष्टोमादिकोंको करता हुआ स्व जो ब्रह्म है तिससे प्रकाशित होता है स्वराट् ब्रह्मको कहते हैं तिसके भावको स्वराज्य अर्थात् ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥ वेद करि प्रेरणा किये गयेभी अग्निहोत्र आदि कर्मोंको त्याग करके ब्रह्मके ध्यानमें इंद्रियोंसे उत्पन्न प्रणव और उपनिषद् आदि वेदके अभ्यासमें ब्राह्मण यत्न करे ॥ ९२ ॥

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥ ९३ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ॥ अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥ ९४ ॥

भाषा-यह आत्मज्ञान और वेदका अभ्यास आदि द्विजातिके जन्मकी सफलताका करनेवाला है जिससे द्विजाति इसको प्राप्त होके कृतार्थ होता है और भांति नहीं ॥ ९३ ॥ अब वेदहीसे ब्रह्म जानने योग्य है यह दिखानेके लिये वेदकी प्रशंसा करते हैं. पितृ देवता और मनुष्योंका हव्यकव्यके दानोंमें वेदही चक्षुके समान अविनाशी चक्षु है और वेदशास्त्र करनेको अशक्य है इससे वेदकी अपौरुषेयता कही गई और अप्रमेय कहिये मीमांसा तथा न्यायशास्त्रके विना इसका अप्रमेय नहीं जाना जा सकता है यह व्यवस्था है तिससे मीमांसा करके और व्याकरण आदि अंगोंसे कर्म तथा ब्रह्मरूप वेदके अर्थको जाने यह कहा गया ॥ ९४ ॥

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ॥ सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥ ९५ ॥ उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ॥ तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ ९६ ॥

भाषा-जो स्मृतियां वेदसे बाह्य हैं अर्थात् वेद नहीं हैं जैसे चैत्यकी वंदना करनेसे स्वर्ग मिलता है इत्यादि दृष्टार्थ वाक्य हैं और जे देवताओंका अपूर्व निराकरणरूप असत्तर्कमूल हैं और जे वेदविरुद्ध चार्वाकोंके शास्त्र हैं वे सब परलोकमें

निष्फल हैं वे सब मनु आदिकोंकारि नरकरूप फलके देनेवाले कहे गये हैं ॥ ९५ ॥ इसीको स्पष्ट करते हैं. इससे वेदसे अन्य जिनका मूल है ऐसे जे कोई शास्त्र हैं वे पौरुषेय कहिये पुरुषोंके बनाये हुए होनेसे उत्पन्न होते हैं और शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं वे आधुनिक होनेसे निष्फल और असत्यरूप हैं और स्मृति आदिकोंका तो वेद मूल होनेसे प्रामाण्य है ॥ ९६ ॥

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥ ९७ ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गंधश्च पञ्चमः ॥ वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिर्गुणकर्मतः ॥ ९८ ॥

भाषा-" ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत् " इत्यादि वेदहीसे चारों वर्ण सिद्ध होते हैं तैसेही स्वर्ग आदि तीनों लोकभी वेदहीसे प्रसिद्ध हैं ऐसे ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रमभी वेदमूलक होनेहीसे प्रसिद्ध हैं बहुत कहनेसे क्या है जो कुछ भूत वर्त्तमान और भविष्य है वह सब " अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यक् " इत्यादि न्यायसे वेदहीसे प्रसिद्ध होता है ॥ ९७ ॥ जो इस लोकमें और परलोकमें शब्द आदि विषय उपयोगी होते हैं वे प्रसूतिगुण सत्व रज तमोरूप वेदहीसे प्रसिद्ध होते हैं ॥ ९८ ॥

बिभर्त्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ॥ तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥ ९९ ॥ सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ १०० ॥

भाषा-वेदशास्त्र नित्य सब भूतोंको धारण करता है सोई कहते हैं कि हवि अग्निमें होमी जाती है उसको अग्नि सूर्यके लिये पहुँचाती है उसको सूर्य किरणोंसे वरसते हैं उससे अन्न होता है. " अथेह भूतानामुत्पत्तिस्थितिश्चेति हविर्जायते " यह ब्राह्मणमें लिखा है. अर्थ-इस पीछे यहां भूतोंकी उत्पत्ति और स्थिति हवि होती है इति. तिससे वेदशास्त्र इस जंतुके वैदिक कर्ममें अधिकारी पुरुषके प्रकृष्ट पुरुषार्थको साधन जानते हैं ॥ ९९ ॥ सेनाका पति होना राजदंडका करना और सब भूमिका स्वामी होना यह सब जिसका प्रयोजन कह चुके हैं उसको वेदरूप शास्त्रके जाननेवालेही योग्य हैं ॥ १०० ॥

यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ॥ तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः ॥ १ ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २ ॥

भाषा-जैसे बढी हुई अग्नि गीलेभी वृक्षोंको जला देती है ऐसेही ग्रंथसे तथा

अर्थसे वेदका जाननेवाला निषेध किये हुए कर्मोंके करनेसे उत्पन्न पापोंका आप नाश करता है ऐसे तो वेद केवल स्वर्ग अपवर्ग आदिहीका हेतु नहीं है किंतु अहितका नाश करनेवालाभी है ॥ १ ॥ जिससे जो कर्म और ब्रह्मात्मक वेदको और उसके अर्थको तत्त्वसे जानता है वह नित्यनैमित्तिक कर्मोंकरि अनुगृहीत ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मचारी आदिके आश्रममें स्थित इसी लोकमें रहता हुआ ब्रह्मत्वके लिये समर्थ होता है ॥ २ ॥

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः॥ धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः॥३॥ तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्॥ तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ ४ ॥

भाषा-जे थोडा पढे हैं वे अज्ञ हैं उनसे संपूर्ण वेदके पढनेवाले श्रेष्ठ हैं उनसे पढे हुए ग्रंथके धारणमें समर्थ श्रेष्ठ हैं और धारण करनेवालोंसे पढे हुए ग्रंथके अर्थ जाननेवाले श्रेष्ठ हैं और उनसे करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ तप कहिये आश्रमके लिये विहित कर्म और विद्या कहिये आत्मज्ञान ये दोनों ब्राह्मणको पर कहिये उत्कृष्ट निःश्रेयसकर अर्थात् मोक्षका साधन हैं उनमेंसे तपसे पापको नाश करता है और ब्रह्मज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्॥ त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥५॥ आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना ॥ यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥ ६ ॥

भाषा-धर्मके तत्त्वको जानना चाहता पुरुष प्रत्यक्ष और अनुमान और स्मृति आदि नाना प्रकारके वेदमूलक शास्त्र धर्मका मूल जाननेके लिये सुविदित कहिये भली भांतिसे ज्ञान करना चाहिये येही तीनों प्रमाण मनुको अभिमत हैं उपमान और अर्थापत्ति आदिकोंका अनुमानमें अंतर्भाव है ॥५॥ ऋषियोंकरि सेवित होनेसे आर्ष जो वेद है तिसको और धर्मके उपदेशको और धर्ममूलक स्मृति आदिको जो धर्मसे विरुद्ध नहीं ऐसे मीमांसा आदि न्यायसे जो विचार करता है वह धर्मको जानता है और मीमांसाका न जाननेवाला नहीं जानता है ॥ ६ ॥

नैःश्रेयसमिदं कर्म यथोदितमशेषतः ॥ मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते ॥ ७ ॥ अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ॥ यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः ॥ ८ ॥

भाषा-यह कल्याणका साधन कर्म संपूर्णतासे यथावत् कहा इसके उपरांत इस मानवशास्त्रके छुपाने योग्य इस वक्ष्यमाण रहस्यको सुनिये ॥ ७ ॥ इस शास्त्रका सब धर्मोंके न कहनेकी शंका करके इस सामान्य उक्तिसे समग्र धर्मका उपदेश करना सूचित करते हैं. सामान्य विधिसे प्राप्त और विशेष करि नहीं कहे गये धर्मोंमें कैसे करना चाहिये यह जो संदेह होय तो जिस धर्मको जिनके लक्षण आगे कहे जांयगे ऐसे शिष्टब्राह्मण कहे वह वहां निश्चित धर्म होय ॥ ८ ॥

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः ॥ ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः
श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ ९ ॥ दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पये-
त् ॥ त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ ११० ॥

भाषा-ब्रह्मचर्य आदि कहे हुए धर्मसे जिन्होंने अंग मीमांसा धर्मशास्त्र और पुराण आदि करि उपबृंहित वेद पढा है वे ब्राह्मण श्रुतिके प्रत्यक्ष करनेमें कारण हैं. और जे श्रुतिको पढके उसके अर्थका उपदेश करते हैं वे शिष्ट जानने चाहियें॥९॥ जो बहुतसे इकट्ठे न होंय तो कमसे कम दश अथवा कमसे कम तीनि जिनके लक्षण आगे कहे जांयगे ऐसे जिसमें सदाचार होंय वह परिषत् कहिये सभा जिस धर्मका निश्चय करे अर्थात् धर्मत्वसे स्वीकार करे उसमें विवाद न करे ॥ ११० ॥

त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ॥ त्रयश्चाश्रमिणः
पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ ११ ॥ ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवे-
दविदेव च ॥ त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ १२ ॥

भाषा-तीनों वेदोंकी तीनि शाखाओंका पढनेवाला और श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध नहीं ऐसे न्यायशास्त्रके जाननेवाले और मीमांसात्मक तर्कोंके जाननेवाले और निरुक्तके ज्ञाता और मानव आदि धर्मशास्त्रोंके वेत्ता, ब्रह्मचारी, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ, यह कमसे कम दशकी सभा होय॥ ११ ॥ ऋक् यजु और सामवेदकी शाखाओंके पढनेवाले और उनके अर्थके जाननेवाले तीनि ब्राह्मण जिसमें होंय वह धर्म संदेह दूर करनेके लिये त्र्यवरा परिषत् जाननी चाहिये ॥ १२ ॥

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः ॥ स विज्ञेयः परो धर्मो
नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ १३ ॥ अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोप-
जीविनाम् ॥ सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ १४ ॥

भाषा-एकभी वेदके अर्थ और धर्मका जाननेवाला जिस धर्मका निश्चय करे वह

प्रकृष्ट धर्म जानना चाहिये और वेदके न जाननेवालोंके दशसहस्रोंसेभी युक्त परिषत् नहीं होती है यह वेदवित् शब्द वेदका अर्थ और धर्मज्ञको कहता है यह तौ उपलक्षण है स्मृति पुराण मीमांसा तथा न्यायशास्त्रका ज्ञाताभी गुरुपरंपरासे उपदेशका वेत्ताभी जानना चाहिये तथा "केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिर्णयः॥ युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते ।" इति. अर्थ-केवल शास्त्रका आश्रय लेकर निर्णय न करना चाहिये युक्तिसे हीन विचारमें तो धर्मकी हानि होती है इति. तिससे बहुतसी स्मृतियोंका जाननेवालाभी जो भली भांतिसे प्रायश्चित्त आदि धर्मको जानता होय तो उस एक करकेभी कहा हुआ धर्म उत्कृष्ट धर्म जानना चाहिये इसीसे यमने कहा है.जैसे-"एको द्वौ वा त्रयो वापि यद्ब्रूयुर्धर्मपाठकाः। स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥" इति. अर्थ-एक दो अथवा तीनि धर्मपाठक जो जो कहें वह धर्म जानना चाहिये औरोंके हजारों नहीं ॥ १३ ॥ सावित्री आदि ब्रह्मचारीके व्रतोंकरि रहितों और मंत्रवेदाध्ययन रहितोंके तथा ब्राह्मण जातिमात्रके धारण करनेवाले हजारोंके मिलनेका परिषद्भाव नहीं होता है धर्मके निर्णयका अभाव होनेसे ॥ १४ ॥

यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ॥ तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥ १५ ॥ एतद्वोऽभिहितं सर्वं निःश्रेयसकरं परम् ॥ अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १६ ॥

भाषा-तमोगुण बहुत जिनमें ऐसे मूर्ख धर्मका प्रमाण और वेदका अर्थ न जाननेवाले होते हैं इसीसे प्रश्न विषयधर्मके न जाननेवाले जिस प्रायश्चित्त आदि धर्मका उपदेश करते हैं उसका पाप सौगुना होकरि बहुतसे कहनेवालोंमें जाता है ॥ १५ ॥ यह कल्याणका साधन उत्कृष्ट धर्म आदि सब तुमसे कहा इसको करता हुआ ब्राह्मण आदि स्वर्ग अपवर्गरूप परमगतिको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

एवं स भगवान् देवो लोकानां हितकाम्यया ॥ धर्मस्य परमं गुह्यं ममेदं सर्वमुक्तवान् ॥ १७ ॥ सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः ॥ सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ॥ १८ ॥

भाषा-वह भगवान् ऐश्वर्य आदिकरि युक्त देव मनुने नहीं सुननेकी इच्छावाले शिष्योंसे छिपाने योग्य यह सब धर्मका परमार्थ लोकके हितकी इच्छासे मेरे लिये कहा भृगु महर्षियोंसे कहते हैं ॥ १७ ॥ ऐसे उपसंहार करके महर्षियोंके हितके लिये कहे हुएभी आत्माके ज्ञानको प्रकृष्ट मोक्षका उपकारक होनेसे जुदा करके

कहते हैं. सद्भाव और असद्भाव इस सब ब्रह्मको जानता हुआ अपनेमें उपस्थित ब्रह्मके स्वरूपको तद्रूप एकाग्रमन हो ध्यानके प्रकर्षसे साक्षात् करे जिससे सबको आत्मत्वसे देखता हुआ रागद्वेषके न होनेसे अधर्ममें मनको नहीं करता है ॥ १८॥

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ॥
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥ १९ ॥

भाषा–इसीको स्पष्ट करते हैं. इंद्र आदि सब देवता परमात्माही हैं परमात्माके सर्वात्मा होनेसे सब जगत् आत्माहीमें अवस्थित है क्योंकि परमात्माका परिणाम जिससे परमात्माही इन क्षेत्रज्ञ आदिकोंके कर्मसंबंधको उत्पन्न करता है ॥ १९ ॥

खं संनिवेशयेत्खेषु चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम् ॥ पक्तिदृष्ट्योः परं ते-
जः स्नेहेऽपो गां च मूर्तिषु ॥२०॥ मनसीन्दुं दिशः श्रोत्रे क्रांते
विष्णुं बले हरम्॥वाच्यग्निं मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् ॥ २१ ॥

भाषा–वक्ष्यमाण ब्रह्मके ध्यानविशेषका उपयोगी होनेके कारण देहमें स्थित आकाश आदिकोंमें बाहरी आकाश आदिकोंका लय कहते हैं. बाहरी आकाशको पेट आदिमें स्थित देहके आकाशमें लीन करे अर्थात् एकतासे धारण करे तैसेही चेष्टा और स्पर्श कारणभूत वायुमें बाहरी वायुको और उदरके तथा नेत्रोंके तेजमें बाहरी अग्नि तथा सूर्यके उत्कृष्ट तेजको और देहके जलमें बाहरी जलको और शरीरसंबंधी पृथिवीके भागोंमें बाहरी पृथिवीको और मनमें चंद्रमाको और कानमें दिशाओंको और पाद इंद्रियमें विष्णुको बलमें हरको और वाक् इंद्रियमें अग्निको और पायुइंद्रियमें मित्रको और उपस्थ इंद्रियमें प्रजापतिको लीन कहिये एकतासे भावना करे ऐसेही आत्मामें स्थित भूतादिकोंमें बाहरी भूतादिकोंको लीन करि अर्थात् एकतासे भावना करि जो यह अग्नि आदिकोंका दैहिक आदि नियम है और जो कर्मोंका प्रतिनियत फल है उस सबको आत्माके आधीन करे॥२०॥२१॥

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ॥
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥ २२ ॥

भाषा–ब्रह्माको आदि ले स्तंबपर्यंत सब चेतन अचेतन अर्थात् जड चैतन्य जातिका प्रशासिता कहिये नियंता और "अणोरणीयांसं" अर्थात् छोटेसेभी बहुत छोटा है सोई श्रुति कहती है. जैसे "वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवोति विज्ञेयः स चानंत्याय कल्पते ॥" इति. अर्थ–वालकी नोकका जो सौवां भाग है उसके सौ भाग कल्पना करनेसे जो भाग होय वह जीव जानना चाहिये

वही अनंत हो जाता है इति और रुक्माभं यद्यपि शब्दरहित स्पर्शरहित अविनाशी इन विशेषणोंसे उपनिषदने परमात्माके रूपका निषेध किया है तिसपरभी उपासना विशेषमें शुद्ध सुवर्णके समान कांति है इसीसे " य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः " अर्थात् जो यह सूर्यके भीतर सुवर्णमय है इत्यादि छांदोग्य उपनिषदमें लिखा है और "स्वप्नधीगम्यं" यह दृष्टान्त है स्वप्नकी बुद्धिके समान ज्ञानसे ग्रहण करने योग्य है जैसे स्वप्नकी बुद्धि चक्षु आदि बाहरी इंद्रियोंके उपराममें मनमात्रसे उत्पन्न होती है ऐसे आत्मबुद्धिभी जानिये इसीसे व्यासने कहा है. जैसे-" नैवासौ चक्षुषा ग्राह्यो नच शिष्टैरपीन्द्रियैः । मनसा तु प्रसन्नेन गृह्यते सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ " अर्थ-यह नेत्रोंसे ग्रहण करने योग्य नहीं है और शेष इंद्रियों करकेभी नहीं ग्रहण किया जाता है सूक्ष्म दृष्टिवाले मनुष्योंकारि प्रसन्न मनसे ग्रहण किया जाता है. इस प्रकारके परमात्माका चिंतवन करे ॥ २२ ॥

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ॥ इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ २३ ॥ एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः ॥ जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ २४ ॥

भाषा-कोई याज्ञिक इस परमात्माकी अग्निभावसे उपासना करते हैं और फिर मनुनाम प्रजापतिके रूपसे उपासना करते हैं और कोई फिर ऐश्वर्यके योग आदिसे इंद्ररूपसे उपासना करते हैं अपर फिरि प्राणभावसे उपासना करते हैं अपर फिर अपगत प्रपंचात्मक सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्माकी उपासना करते हैं. मूर्ति और अमूर्त्तिमान् स्वरूप ब्रह्ममें श्रुतिप्रसिद्ध सबही उपासना होती है ॥ २३ ॥ यह आत्मा सब प्राणियोंको शरीरके आरंभ करनेवाले पृथिवी आदि पांच महाभूतोंसे ग्रहण करके पूर्वजन्मके अर्जित कर्मोंकी अपेक्षासे उत्पत्ति स्थिति विनाशोंसे रथ आदिके चक्रके समान वारंवार फिरनेसे मोक्षतक संसारी करता है ॥ २४ ॥

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ॥ स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥ २५ ॥ इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन्द्विजः ॥ भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥ १२६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

भाषा-अब मोक्षके कारण भावसे कहे हुए सब धर्मोंकी श्रेष्ठतासे सर्वत्र परमात्माके दर्शनकी अनुष्ठेयतासे उपसंहार करते हैं. इस भांति सब जीवोंमें आत्माको इत्यादि कहे हुए प्रकासे जो सब भूतोंमें स्थित आत्माको आत्माकारि देखता है वह

ब्रह्मके साक्षात्कारसे परम श्रेष्ठ स्थान जो ब्रह्म है तिसको प्राप्त होता है उसमें अत्यंत लीन हो जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है ॥ २५ ॥ इतिशब्द समाप्तिके लिये है यह स्मृतिशास्त्र भृगुने प्रकर्षकरि कहा द्विजाति इसको पढता हुआ विहितके करने और निषेध किये हुएके त्यागनेरूप आचारवान् होता है जैसे चाही हुई स्वर्ग अपवर्गरूप गतिको प्राप्त होय ॥ १२६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

तर्कोऽब्ध्यङ्कनिशाकराङ्कगणिते वर्षे शुभे वैक्रमे
माघे मास्यसिते दले गुहतिथौ नीता समाप्तिं मया ॥
श्रीमन्मानवधर्म्मशास्त्रविवृतिर्नॄणां गिरा स्वच्छया
श्रीमत्केशवशर्म्मणाऽर्गलपुरे श्रीभानुजाभूषिते ॥ १ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापखाना
कल्याण–मुंबई.

टीकाकारप्रस्तावः ।

ब्रह्मावर्तात्प्रतीच्यां सुरतटिनितटे वर्त्तते राधनाख्यो
ग्रामस्तस्मिन्हि जातो द्विजकुलतिलकः श्रीभवानीप्रसादः ॥
तत्सूनुः श्रीद्विवेदी समजनि विदितो देवमण्याख्यया य-
स्तस्माज्जातस्सुबुद्धिः परमसुख इति ख्यातिमान् पण्डिताग्र्यः ॥ १ ॥
तस्यात्मजः केशवपूर्वकोऽहं प्रसादनामा बहुधा प्रसिद्धः ॥
अकारि येनेह मनुप्रणीतशास्त्रस्य टीका नृगिराऽऽगराख्ये ॥ २ ॥

भाषा—ब्रह्मावर्त्त जिसको बिठूर कहते हैं उससे पश्चिमदिशामें गङ्गाजीके तटपर राधन नाम ग्राम है उसमें ब्राह्मणोंके कुलमें श्रेष्ठ श्रीयुत भवानीप्रसाद उत्पन्न हुए उनके पुत्र देवमणि नामसे विदित द्विवेदी हुए उनसे सुन्दर बुद्धिवाले पंडितोंमें मुख्य परमसुख इस नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ १ ॥ उनका पुत्र केशवप्रसादनाम मैं बहुधा प्रसिद्ध हों जिसने मनुजीके बनाये हुए शास्त्रकी यह टीका मनुष्योंकी भाषामें आगरा नाम नगरमें बनाई ॥ २ ॥ इति ॥